पद्म पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(मूल एव सरल हिन्दी भावार्थ)

सम्पादक:

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन,
२० स्मृतियाँ और १८ पुराणो के
प्रसिद्ध भाष्यकार

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

※

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

※



※

प्रथम संस्करण
१९६९

※

मुद्रक :

दाऊदयाल गुप्त
सस्ता साहित्य प्रेस,
मथुरा

※

मूल्य :
सात रुपये

प्राक्कथन

'पद्म पुराण' की विशेषताओ पर प्रथम खण्ड की भूमिका में प्रकाश डाला जा चुका है। इस दूसरे खण्ड की सामग्री भी वैसी ही श्रेष्ठ है। इस पुराण की सिद्धान्त सम्बन्धी बातो मे तो अन्य पुराणो से विशेष अन्तर नही, पर कथा-भाग मे आपको सर्वत्र कुछ न कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होगी। ऐसा जान पडता है कि रचयिता ने निरन्तर यह ध्यान रखा है कि प्रचलित धार्मिक कथाओ के सम्बन्ध मे कुछ ऐसे विशेष तथ्य ढूंढे जाय या उनको ऐसा मोड दिया जाय जिससे श्रोताओ की रुचि उनमे बढती रहे। जहाँ तक अनुमान किया जाता है, उसने अपनी निजी सूझ-बूझ से ही ज्यादा काम लिया है। 'पद्म पुराण' से बडा एक मात्र स्कन्दपुराण है, पर उसमे अधिकाश मे छोटे-छोटे माहात्म्य ही दिये गये हैं। इतनी लम्बी और गुँथी हुई कथाओ का उसमे कही चिह्न भी नही जान पड़ता। अन्य सब पुराण इससे तिहाई या चौथाई परिमाण वाले हैं। इसलिये अगर यह कहा जाय कि 'पद्म-पुराणकार' ने इन कथाओ को कही अन्यत्र से लिया है तो ऐसा कोई अन्य स्रोत दिखलाई नहीं पडता-जिससे इनका सम्बन्ध जोडा जा सके। इसलिये यही मानना पडता है कि निस्सन्देह 'पद्मपुराणकार' ने इन कथाओ को या तो पुरातन ऋषियो से सुना, या इस समय अप्राप्य प्राचीन ग्रन्थो मे पढा और फिर उनमे अपनी कल्पना का प्रयोग करके एक नये ढँग की चीज प्रस्तुत करदी। इसमे जो पुराकल्पीय रामायण' दी गई है, उसे पढने से पाठक के मन मे यही भाव उदित होता है कि 'रामचन्द्रजी के विषय मे यह उल्टी-सीधी बातें कहाँ से आगई। 'रामचन्द्र जी के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर रावण के समान ही बलशाली राक्षसो से युद्ध हुए हैं उनका वर्णन अलग कही दिखाई नही पडता। इन बातो पर गहराई के साथ विचार करने से यही स्वीकार करना

पड़ता है कि 'पद्म-पुराण' मे मौलिकता का अ श सब पुराणो की अपेक्षा अधिक है। हमको सब यह जानकारी होरही है कि हमने समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओ के लेखो तथा अन्य छोटी-बडी पुस्तको मे जो नई-नई कथाए या दृष्टान्त आदि पढे थे उनमे से अधिकाश 'पद्म-पुराण' के ही थे।

दूसरी बात यह है कि इस पुराण की कथाए बहुत विस्तार के साथ लिखी गई हैं। इसके बहुत से अध्याय तो ३०० से ५०० श्लोको तक के हैं। इस सुलभ सस्करण मे हमको उसमे से छ-सात हजार श्लोक ही सकलित करने थे, इसलिए सभी कथाओं को बहुत सक्षेप करके ही प्रकाशित करना पडा है। पर वास्तव मे यह पुराण ऐसा विशेषता युक्त है कि यदि इसे अच्छी तरह खोज-बीन के साथ पढा जाय और ढूँढा जाय तो इसमें बहुत सी अद्भुत कथाये तथा महत्व-पूर्ण तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। यदि पाठकों ने इस सुलभ-सस्करण का हार्दिक स्वागत करके हमारा उत्साह बढाया तो समय आने पर इसका पूरा सस्करण भी पाठको की सेवा मे उपस्थित करने का प्रयत्न किया जायगा।

जिस प्रकार कई पुराणो मे व्रत, उपवास, पर्व, तीर्थ माहात्म्य, दान आदि का ही बहुत अधिक समावेश कर दिया गया है, वैसी बात 'पद्म पुराण' के सम्बन्ध मे नही कही जा सकती। यद्यपि इसके कुछ अध्यायो मे तीर्थों और व्रतादि का माहात्म्य भी दिया गया है पर उसका परिमाण समस्त ग्रन्थ के आकार को देखते हुए कम ही है। हमने उसको इस कारण छोड दिया है, क्योंकि 'भविष्य-पुराण' और 'मत्स्यपुराण' मे उनका वर्णन पर्याप्त मात्रा मे दे दिया गया है। हमारी दृष्टि में 'पद्म पुराण' की महत्ता उसमे दिये गये मौलिक उपाख्यानों व आध्यात्मिक तथा धार्मिक विषयो की विवेचना करने वाले वर्णनों से है, जिनका उत्तम सक-लन पाठकों को इस खण्ड मे मिलेगा, इसके पहले ही अध्याय'शरीरोत्पत्ति

वर्णन' में मानव के गर्भवास और उसके क्रमशः विकास का वर्णन इस प्रकार किया गया है जिससे अनायास ही 'अध्यात्मिक भाव जागृत हो जाता है। 'भारत वर्ष मे पर्वत और नदी' वाला अध्याय प्राचीन भूगोल की दृष्टि से निस्सन्देह बड़ा महत्वपूर्ण है। लेखक का झुकाव किसी कारण वश नर्मदा नदी की तरफ सर्वाधिक है। वह कहता है— 'सरस्वती नदी का जल तीन दिन मे, यमुना जी का जल सात दिन मे, गंगा का जल तुरन्त पवित्र कर देता है, किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शन मात्र से ही पुनीत करने वाला है।'

"वर्णाश्रम धर्म" "गृहस्थ धर्म" "विष्णु भक्ति" "भगवान् का नाम माहात्म्य" 'प्रतिज्ञा पालन का महाफल" "वैष्णव के लक्षण" आदि अनेक अध्यायो मे धर्म-व्यवहार, सदाचरण, आध्यात्मिक-जीवन आदि विषयो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस पुराण की लेखन शैली अधिक स्पष्ट और बुद्धि सगति है, जिससे उसके उपदेशो का प्रभाव शीघ्र हृदयंगम होता है। यद्यपि पौराणिक शैली के अनुसार प्रत्येक धर्मक्रिया और सदाचार का महत्व बढ़ा-चढ़ा कर बताया जाता है, जिसकी अनेक व्यक्ति विपरीत आलोचना करते है। पर यदि सामान्य जन समुदाय के बहुसंख्यक व्यक्ति उससे आकर्षित होकर ही कुछ अशो मे धर्म मार्ग के अनुगामी बन सकें तो उसे उचित ही कहा जायगा।

—प्रकाशक

विषय-सूची



पद्म-पुराण

(द्वितीय खण्ड)

॥ शरीरोत्पत्ति वर्णन ॥

पापात्पतति कायोऽयं धर्माच्च शृणु मातले ।
विशेषं न च पश्यामि पुण्यस्यापि महीतले ॥१॥
पुनः प्रजायते कायो यथा हि पतनं पुरा ।
कथमुत्पद्यते देहस्तन्मे विस्तरतो वद ॥२॥
अथ नारकिणां पुंसामधर्मादेव केवलात् ।
क्षणमात्रेण भूतेभ्यः शरीरमुपजायते ॥ ३ ॥
तद्वद्धर्मेण चैकेन देवानामौपपादिकम् ।
सद्यः प्रजायते दिव्यं शरीरं भूतसारतः ॥४॥
धर्मेण व्यतिमिश्रेण यच्छरीरं महात्मनाम् ।
तद्रूपं परिणामेन विज्ञेयं हि चतुर्विधम् ॥५॥
उद्भिज्जाः स्थावरा ज्ञेयास्तृणगुल्मादिरूपिणः ।
कृमिकीटपतङ्गाद्याः स्वेदजा नाम देहिनः ॥६॥
अण्डजाः पक्षिणः सर्वे सर्पा नक्राश्च भूपते ।
जरायुजाश्च विज्ञेया मानुषाश्च चतुष्पदाः ॥७॥
तत्र सिक्ताजलैर्भूमिरर्कस्योष्मविपाचिता ।
वायुना धम्यमाना च क्षेत्रतां तु प्रपद्यते ॥८॥

राजा ययाति ने कहा— हे मातले ! यह शरीर पाप से पतित हो जाया करता है । और धर्म से इसका जो होता है उसका तुम अब

श्रवण करो। इस महीतल में किये हुए पुण्य का विशेष क्या फल होता है— यह मैं नहीं देखता हूँ॥ १॥ जिस प्रकार से पहिले इस शरीर का पतन होता है वैसे ही यह काय पुन उत्पन्न हो जाता है। यह देह कैसे समुत्पन्न हुआ करता है उसका मेरे सामने आप विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए॥ २॥ मातलि ने कहा— इसके अनन्तर जो नारकी पुरुष होते हैं उनका केवल अधर्म से ही क्षण मात्र मे भूतो से यह शरीर समुत्पन्न हो जाता है ठीक उसी भाँति देवो का केवल एक धर्म से औदर्यारिव शरीर तुरन्त ही उत्पन्न हो जाया करता है। यह शरीर भूतो के सार से परम दिव्य होता है॥ ३॥ ४॥ महान् आत्मा वाले पुरुषो के व्यति मिश्रित कर्म से जो शरीर होता है उसका रूप परिणाम से चार प्रकार का जान लेना चाहिए॥५॥ उन चार प्रकार के शरीरो मे एक उद्भिज्ज नाम वाला शरीर होता है जो कि स्थावरो का हुआ करता है और वे तृण-गुल्म आदि के रूप वाले हुआ करते हैं। ये भूमिका उत्भेदन करके ही उत्पन्न होते हैं अतएव इनका नाम उद्भिज्ज है। जो कृमि-कीट और पतङ्ग आदि शरीरधारी होते हैं वे स्वेदज नाम वाले शरीर के धारण करने वाले देही होते हैं। उनकी स्वेद से ही उत्पत्ति होती है अत. इनका नाम स्वेदज होता है॥ ६॥ हे भूपते! एक अण्डज शरीरधारी होते हैं अर्थात् अण्ड से ही फिर उनके शरीर की उत्पत्ति हुआ करती है। सर्प नक्र और सभी पक्षी हुआ करते हैं। चौथा भेद जरायुज होता है जिनमे मनुष्य और सभी चतुष्पद हुआ करते है। इनका शरीर एक जेर से लिपटा हुआ ही उत्पन्न हुआ करता है। इसीलिये इन्हे जरायुज कहा जाता है॥ ७॥ यह भूमि जल से सिक्त होकर सूर्य की उष्णता विशेष रूप से पाचित हुआ करती है। फिर वायु के द्वारा धम्यमान होकर ही यह क्षेत्रता को प्राप्त किया करती है अर्थात् उत्पादन शक्ति इसमे उत्पन्न हो जाती है॥ ८॥

तत्र चोप्तानि बीजानि ससिक्तान्यम्भसा पुन. ।
उपगम्य मृदुत्व च मूलभाव व्रजन्ति च ॥९॥
तन्मूलादङ्कुरोत्पत्तिरङ्कुरात्पर्णसम्भवः ।
पर्णाद्नाल तत काण्ड काण्डाच्च प्रभव. पुन. ॥१०॥
प्रभवाच्च भवेत्क्षीर क्षीरात्तण्डुल सम्भवः ।
तण्डुलाच्च तत पक्वा भवन्त्योषधयस्तथा ॥११॥
यवाद्याः शालीपर्यन्ता श्रेष्ठास्सप्तदश स्मृताः ।
ओषध्य. फलासाराढ्या शेषाः क्षुद्राः प्रकीर्तिताः ॥१२॥
एता लूना मर्दिताश्च मुनिभि. पूर्वसस्कृता. ।
शूर्पोलूखल पात्राद्यै. स्थालिकोदक वह्निभिः ॥१३॥
षड्विधा हि स्वभेदेन परिणामं व्रजन्ति ताः ।
अन्योन्य रससयोगादनेकस्वादता गताः ॥१४॥

जब भूमि मे क्षेत्रता की शक्ति हो जाया करती है तो फिर उसमें बीजो का वपन किया जाया करता है। फिर जल से उनका सिञ्चन किया जाता है। तभी वे बोये हुए बीज मृदुता को प्राप्त होकर मूल भाव को प्राप्त हुआ करते हैं अर्थात् पहिले उनमे मृदुता होती है और फिर जड़ें निकला करती हैं तभी उनमे पौधो की उत्पत्ति हुआ करती है ॥ ९ ॥ उस मूल मे जो बोये हुए बीज के मृदु होने पर उसमें से निकला करता है, जब वह मूल भूमि मे अपनी स्थिरता कर लेता है तो उस मे फिर एक अकुर निकला करता है उस निकले हुए अकुर से जो कि ऊपर सबकी दृष्टि मे आता है छोटे २ लाल पत्ते निकला करते हैं। उन पत्तो मे नालकी उत्पत्ति होती है फिर उससे काण्ड समुत्पन्न हुआ करता है और उस काण्ड मे पूर्ण प्रभाव हो जाता है। ॥ १० ॥ प्रभव मे क्षीर होता है। फिर उस तण्डुल से औषधियाँ परिपक्व हुआ करती हैं। ॥ यवादि से शाली तक श्रेष्ठ सत्रह बतलाई हैं। फल के सारसे आढय शेष औषधियाँ क्षुद्र बतलाई गई हैं ॥११॥१२॥

ये सब काटी हुई और मर्दन की हुई मुनियों के द्वारा पहिले संस्कार की गई हैं। इनका संस्कार शूप-उलूखल और पात्र आदि के द्वारा तथा स्थाली-उदक और वह्नि से किया जाता है। ॥ १३ ॥ इस प्रकार की वे औषधियाँ अपने भेद से परिणाम को प्राप्त होती हैं। वे आपस में एक दूसरे के रसके संयोग से विभिन्न विविध तरह के स्वाद को प्राप्त हो जाया करती हैं ॥ १४ ॥

भक्ष्यं भोज्यं पेयलेह्यं चोष्यं खाद्यं च भूपते ।
तासां भेदाः षडङ्गाश्च मधुराद्याश्च षड्गुणाः ॥१५॥
तदन्नं पिण्डकवलैर्ग्रासैर्भुक्तं च देहिभिः ।
अन्तः स्थूलाशये सर्वप्राणास्थापयति क्रमात् ॥१६॥
अपक्व भुक्तमाहारं स वायुः कुरुते द्विधा ।
सम्प्रविश्यान्नमध्ये च पक्वं कृत्वा पृथग्गुणम् ॥१७॥
अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्य तदन्नं च जलोपरि ।
जलस्याधः स्वयं प्राणः स्थित्वाग्नि धमते शनैः ॥१८॥
वायुना धम्यमानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् ।
तदन्नमुष्णयोगेन समन्तात्पच्यते पुनः ॥१९॥
द्विधा भवति तत्पक्वं पृथक्किट्टं पृथग्रसः ।
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहाद्बहिर्व्रजेत् ॥२०॥
कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्तोष्ठप्रजनं गुदम् ।
मलान्त्रवेदथ स्वेदो विण्मूत्रं द्वादश स्मृतः ॥२१॥

हे राजन्! भक्ष्य-भोज्य-पेय-लेह्य-चोष्य और खाद्य में छैः इनके भेद हुआ करते हैं। जो चबाकर खाने वाले पदार्थ होते हैं। वे भक्ष्य हैं। सामान्य तथा खाये जाने वाले भोज्य होते हैं। पीये जाने वाले पदार्थ पेय कहे जाते हैं। चाटने के पदार्थ लेह्य कहे जाते हैं। चूंस कर खाने वाले चोष्य हैं और रौंधकर, खाये जाने वाले पदार्थ खाद्य होते हैं ये छैः इसके अङ्ग हैं। मधुर आदि छैः गुण, होते हैं, जिनके नाम—मधुर—लवण—कषाय—कटु—तिक्त और अम्ल हैं ॥ १५ ॥

वह अन्न पिण्ड के द्वारा देहधारी खाते है और वह अन्दर स्थूलाशय में क्रम से समस्त प्राणों को स्थापित किया करता है ॥ १६ ॥ जो आहार पका नहीं होता है और खा लिया जाता है वह वायु के द्वारा दो भागो में कर दिया जाता है। यह अन्न मध्य मे प्रवेश करके जो पक्व होता है उसे पृथक् गुण वाला कर देता है ॥ १७ ॥ अग्नि के ऊपर जल को स्थापित करके उस जल के ऊपर अन्न को स्थापित कर देना है। जल के नीचे प्राण स्वयं स्थित होकर धीरे-२ अग्नि का धमन किया करता है ॥१८॥ वायु के द्वारा जब यह उस जठराग्नि धमन किया जाता है तो उस जल को अत्यन्त उष्ण कर दिया करता है। वह अन्न उसकी उष्णता के योग से फिर सभी ओर मे पचता है ॥ १९ ॥ उस परिपक्व अन्न के भी वहाँ पर दो भाग होते हैं। एक तो रस का भाग है जिसे "रस"-इसी नाम से पुकारा जाया करता है। दूसरा भाग उसका किट्ट होता है अर्थात् फोक होता है जिसमें कुछ भी सार नही रहता है। वह किट्ट बारह प्रकार के मलों के स्वरूप मे होकर इस शरीर से बाहर निकला करता है और भिन्न हो जाता है ॥ २० ॥ बारह मलो के द्वार ये होते हैं—कान—आँख—नासिका—जिह्वा—दाँत— ओष्ठ प्रजननेन्द्रिय और गुदा। दो आँखें और दो कान होते हैं ऐसे बारह हुआ करते है। ये ही मलों को स्रावित किया करते हैं। स्वेद—विष्ठा और मूत्र मल है। इस तरह बारह कहे गये है ॥ २१ ॥

हृत्पद्मे प्रतिबद्धाश्च सर्वनाड्यः समन्ततः ।
तासां मुखेषु तं सूक्ष्मं प्राणः स्थापयते रसम् ॥२२॥
रसेन तेन ता नाडीः प्राणः पूरयते पुनः ।
सन्तर्पयन्ति ता नाड्यः पूर्णा देहं समन्ततः ॥२३॥
ततः स नाडीमध्यस्थः शारीरेणोष्मणा रसः ।
पच्यते पच्यमानश्च भवेत्पाकद्वयं पुनः ॥२४॥
त्वङ्मांसास्थिमज्जा मेदोरुधिरं च प्रजायते ।

रक्ताल्लोमानि मांसं च केशा स्नायुश्च मांसतः ॥२५॥
स्नायोर्मज्जा तथास्थीनि निवसामज्जास्थि सम्भवा ।
मज्जाकारेण वैकर्त्यं शुक्रं च प्रसवात्मकम् ॥२६॥
इति द्वादशचाशस्य परिणामा प्रकीर्तिताः ।
शुक्रं तस्य परोणाम शुक्रा देहस्य सम्भवः ॥२७॥
ऋतुकाले यदा शुक्रं निर्दोषं योनिसंस्थितम् ।
तदा तद्वायुसंसृष्टं स्त्रीरक्तेनैकता व्रजेत् ॥२८॥

हृदय रूपी पद्म मे सभी नाड़ियाँ प्रतिबद्ध होती है। यह प्राण वायु उन सम्पूर्ण नाड़ियो के मुख मे उस रस को स्थापित किया करता हैं। समस्त नाड़ियाँ उस रस से प्राण के द्वारा पुन. पूरित की जाती हैं। फिर वे सब नाड़ियाँ सभी ओर से सम्पूर्ण देह को सतृप्त किया करती हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर वह नाड़ियो के मध्य मे स्थित रस शारीरिक ऊष्मा मे पकाया जाता है और पकता हुआ वह फिर दो प्रकार का पाक प्राप्त किया करता है ॥ २४ ॥ इस से ही त्वचा-माँस-अस्थि-मज्जा-मेद और रुधिर की उत्पत्ति होती है। रक्त से लोम और मांस से केश और स्नायु, स्नायु से मज्जा तथा अस्थियाँ, वसा और मज्जा अस्थियों से उत्पन्न होती हैं। फिर मज्जा से शुक्र होता है जो प्रसवात्मक होता है ॥ २५ ॥ २६॥ इस प्रकार से ये बारह अन्न के परिणाम कहे गये हैं। उसका मुख्य परिणाम शुक्र है क्यो कि इस शुक्र से ही देह की समुत्पत्ति हुआ करती है ॥ २७ ॥ स्त्री का जब ऋतुकाल उपस्थित होता है उस समय में जब यह शुक्र (वीर्य) उसकी योनि मे संस्थित होता है तब वह वायु द्वारा संसृष्ट होता हुआ उसके रक्त के साथ मह एकता को प्राप्त हो जाया करता है ॥२८॥

विसर्गकाले शुक्रस्य जीवः कारणसंयुतः ।
नित्यं प्रविशते योनिं कर्मभि स्वैर्नियन्त्रितः ॥२९॥

शुक्रस्य सहरक्तस्य एकाहात्कललं भवेत् ।
पञ्चरात्रेण यलले बुद्बुदत्व ततो भवेत् ॥३०॥
मांसत्वं मासमात्रेण पञ्चधा जायते पुनः ।
ग्रीवा शिरश्च स्कन्धश्च पृष्ठवशस्तथोदरम् ॥३१॥
पाणीपादौ तथा पार्श्वौ कटिर्गात्रं तथैव च ।
मासद्वयेन पर्वाणि क्रमशः सम्भवन्ति च ॥३२॥
मुखं नासा च कर्णौ च मासैर्जायन्ति पञ्चभिः ।
दन्तपङ्क्तिस्तथा जिह्वा जायते तु नखाः पुनः ॥३३॥

पुरुष के वीर्य का जिस समय में विसर्ग होता है तो कारण संयुक्त जीव होता है। वह जीवात्मा अपने ही कर्मों से नियन्त्रित होता हुआ नित्य ही स्त्री की योनि में प्रवेश किया करता है ॥ २९ ॥ स्त्री के रक्त के साथ जो शुक्र मिलता है उसका एक दिन में कलल स्वरूप हो जाता है। जब पाँच दिन हो जाते हैं तो वही कलल बुदबुद हो जाता है ॥ ३० ॥ एक मास में माँस जैसा होकर फिर उसके पाँच अङ्ग बन जाते हैं— ग्रीवा, शिर, स्कन्ध, पृष्ठ वंश और उदर ये हो जाया करते हैं ॥ ३१ ॥ दो महीने समाप्त होने पर हाथ-पैर दोनों पसवाड़े, कमर और गात्र एवं पर्व क्रम में उत्पन्न हो जाया करते हैं। इस तरह उसके आकार की रचना होती है ॥ ३२ ॥ तीन मास में सैकड़ों अङ्कुर और सन्धियाँ हो जाया करती हैं। चार महीने समाप्त होने पर क्रमानुसार उस गर्भ में स्थित शरीर की उंगली आदि उत्पन्न होती हैं ॥ ३३ ॥ पाँच मास में मुख, नाक और दोनों कान आदि बन जाते हैं। दाँतों की पंक्ति और नख उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

कर्णयोश्च भवेच्छिद्रं षण्मासाभ्यन्तरे पुनः ।
पायुर्मेढ्रमुपस्थं च शिश्नश्चाप्युपजायते ॥३४॥
सन्धयो ये च गात्रेषु मासैर्जायन्ति सप्तभिः ।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णं शिरः केशसमन्वितम् ॥३५॥

विभक्तावयवस्पष्ट पुनर्मासेऽष्टमे भवेत् ।
पञ्चात्मकसमायुक्त परिपक्व स तिष्ठति ।।३६।।
मातुराहार वीर्येण षड्विधेन रसेन च।
नाभिसूत्र निबद्धेन वर्द्धते स दिने दिने ।।३७।।
तत स्मृति लभेज्जीव सम्पूर्णेऽस्मिञ्छरीरके ।
सुख दु ख विजानाति निद्रा स्वप्न पुराकृतम् ।।३८।।
मृतश्चाहृ पुनर्जातो जातश्चाहृ पुनर्मृत ।
नानायोनिसहस्राणि मया दृष्टान्यनेकधा ।।३९।।
अधुना जातमात्रोऽहं प्राप्तसस्कार एव च।
तत श्रेय करिष्यामि येन गर्भे न सम्भव ।।४०।।

छँ मास के अदर हो दोनो कानो मे छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। इसी अन्तर म गुप्त उपस्थ मेढ़ शिश्न भी समुत्पन्न हो जाया करते है ।। ३५ ।। सात मास का जब गर्भ हो जाता है तो उसके शरीर मे सम्पूर्ण सन्धियाँ हो जाया करती हैं और वह गर्भस्थ प्राणी के शिर-केश तथा अङ्ग प्रत्यङ्ग सभी से पूर्णतया समन्वित हो जाता है ।। ३६ ।। जिसके सभी अवयव विभक्त होकर स्पष्ट दिखलाई देने लगे ऐसी अवस्था अष्टम मास म हो जाया करती हैं।। वह फिर पञ्चात्मक समायुक्त होकर पूर्ण परिपक्व होता हुआ स्थित रहता है ।।३७।। गर्भस्थ प्राणी की माता जो भी आहार लिया करती है उसी की शक्ति से वह जीवित रहा करता है उसमे छँ प्रकार के रस जो भी माता ग्रहण किया करती है उसे प्राप्त होते हैं जो कि नाभि के नाल सूत्र मे बद्ध रहता है। इसी प्रकार से वह दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त होता है ।। ३८ ।। इस के उपरात वह जीवात्मा स्मृति को प्राप्त करता है और सम्पूर्ण शरीर मे सुख दुःख और पुराकृत निद्रा-स्वप्न को जान जाता है ।। ३९ ।। उसे उस समय म यह ज्ञान होता है कि मैं अमुक शरीर म अमुक था और इस तरह से मेरी मौत हो गई थी फिर मैंने जन्म ग्रहण किया था और

मैं फिर भी मर गया था। मैंने इस तरह से अनेकों सहस्र योनियाँ अब देखी हैं। बराबर जन्म लेता एवं मरता रहता हूँ —उस गर्भ की दशा मे उसका सब स्पष्ट ज्ञान एवं स्मृति बनी रहती है। वहाँ वह सोचता है कि अबकी बार जैसे ही मेरा जन्म होगा वैसे ही संस्कार होने पर अपना श्रेय के कर्म करूंगा जिससे फिर इस गर्भ में न आना पड़े और मेरा छुटकारा ही हो जावे ॥ ४० ॥ ४१ ॥।

गर्भस्थश्चिन्तयत्येव मह गर्भाद्विनि सृत ।
अध्येष्यामि पर ज्ञान ससार विनिवर्तकम् ॥४२॥
अवश्य - गर्भदु खेन महता परिपीडित ।
जीव कर्मवशादास्ते मोक्षोपाय विचिन्तयेत् ॥४३॥
यथा गिरिवराक्रान्त-कश्चिद्दु खेन तिष्ठति ।
तथा जरायुणा देही दु ख तिष्ठति दु खित ॥४४॥
पतित सागरे यद्वद् दु खमास्ते समाकुल ।
गर्भोदकेन सिक्ताङ्गस्तथास्ते व्याकुलात्मक ॥४५॥
लोहकुम्भे यथा न्यस्त पच्यते कश्चिदग्निना।
गर्भकुम्भे तथाक्षिप्त पच्यते जठराग्निना ॥४६॥
सूचीभिरग्निवर्णाभिर्भिन्नगात्रो निरन्तरम् ।
यद्दु ख जायते तस्य तद्गर्भेऽष्टगुण भवेत् ॥४७॥
गर्भवासात्परवास कष्टं नैवास्ति कुत्रचित् ।
देहिना दु खमतुल सुघोरमपिसङ्कटम् ॥४८॥
इत्येतद् गर्भदु ख हि प्राणिना परिकीर्तितम् ।
चरस्थिराणा सर्वेपामात्मगर्भानुरूपत ॥४९॥
गर्भात्कोटिगुणा पीडा योनियन्त्रनिपीडनात् ।
सम्मूर्च्छि तस्य जायेत जायमानस्य देहिनः ॥५०॥

जिस समय मे यह प्राणी गर्भ मे स्थित होता है उस समय में तो यह इसी प्रकार से चिन्तन किया करता है कि मैं ज्यो ही गर्भ से

बाहर निकलूँगा वैसे ही मैं परम ज्ञान का अध्ययन करूँगा जिस ज्ञान के जान लेने पर फिर मेरा इस ससार के आवागमन से छुटकारा होवेगा ।।४२।। अवश्य ही गर्भ मे स्थित जीवात्मा गर्भ दु ख से महान् पीडा युक्त होता है । यह जीव तो कर्मों के वशीभूत रहता है किन्तु फिर भी इसे अपने ससारिक बन्धन से मुक्ति पाने के उपाय अवश्य ही सोचना चाहिए ।। ४३ ।। जिस प्रकार से किसी पर्वत के नीचे दबा हुआ बहुत ही दु ख के साथ वहा पडा रहा करता है क्यो कि उस समय उसका दु ख भोगते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा ही नही होता है ठीक उसी भांति जरायु से जकडा हुआ यह देहधारी प्राणी भी अत्यन्त दु खित होकर गर्भ मे पडा रहा करता है ।। ४४ ।। जैसे कोई विशाल सागर में गिर जावे और वह जिस तरह अत्यन्त समाकुल (बेचैन) होकर बहुत ही दु ख भोगता है क्यो कि उससे त्राण पाने का कोई भी साधन दिखलाई नही देता है उसी भाँति गर्भ के जल से भीगा हुआ यह गर्भस्थ प्राणी भी बहुत अधिक व्याकुल होता रहता है ।।४५।। लोहे के पात्र मे पडा हुआ जैसे कोई प्राणी अग्नि के द्वारा पकाया जावे और उस समय उसे जो भी वेदना का अनुभव होता है उसी तरह से गर्भ के कुम्भ मे पडा हुआ यह प्राणी भी माता की जठराग्नि से पकता रहता है ।। ४६ ।। अग्नि से तपी हुई सुइयो से इसके सभी शरीराग भेदित होते रहते हैं और निरन्तर वह छिदता रहा करता है । गर्भ सुइयो के द्वारा छेदन करने से जो कुछ दु ख होता है वही दु ख गर्भ मे प्राणी को अठगुना हुआ करता है ।। ४७ ।। गर्भ का निवास सबसे अधिक दु खदाई निवास होता है । इस तरह का कष्ट अन्यत्र कहीं भी इस प्राणी को नहीं होता है । गर्भवास भी महान् कष्टप्रद नारकीय वास ही होता है । देहधारियो को अनुपम दु ख उस समय मे होता है और बहुत घोर सङ्कट उसमे यह अनुभव किया करता है ।। ४८ ।। यह दु ख इस तरह का है कि उसका ठीक वर्णन नहीं किया जा सकता है । इस दु ख का जो कि गर्भवास मे

प्राणियों को होता है हमने वर्णन कर दिया है। यह गर्भवास का कष्ट और पीड़ा सभी को अपने गर्भ के अनुसार हुआ करती है ॥४९॥ गर्भवास में जो पीड़ा होती है उससे अधिक करोड़ गुनी पीड़ा उस समय में हुआ करती है जब प्रसव होता है और योनि रूपी यन्त्र से भिच कर बाहिर आता है। तन्त्री से खीचे जाने वाले तार की भाँति उसके सभी अङ्गों पर पूरा भिचाव पड़ता है। पैदा होने वाले देहधारी को उस समय में बड़ी भारी मूर्च्छा हो जाया करती है ॥ ५० ॥

इक्षुवत्पीड्यमानस्य पापमुद्गर पेषणात्।
गर्भान्निष्क्रममाणस्य प्रबलै.सूतिवायुभिः ॥५१॥
जायते सुमहद् दु खं परित्राणं न विन्दति।
यन्त्रेण पीड्यमानाः स्युर्निसाराश्च यथेक्षवः ॥५२॥
तथा शरीरं योनिस्थ पात्यते यन्त्र पीडनात्।
अस्थिमद्वर्तुलाकारं स्नायुबन्धन वेष्टितम् ॥५३॥
रक्तमास वसालिप्तं विण्मूत्रद्रव्य भाजनम्।
केशलोम नखाच्छन्नं रोगायतनमुत्तमम् ॥५४॥
वदनैक महाद्वारं गवाक्षाष्टक भूषितम्।
ओष्ठद्वयकपाटं तु दन्तजिह्वागलान्वितम् ॥५५॥
नाडीस्वेद प्रवाह च कफपित्तपरिप्लुतम्।
जराशोकसमाविष्टं कालवक्त्रानले स्थितम् ॥५६॥

ईख के दण्ड की भाँति वह पीड्यमान होता है। जिस समय मे ईख के गन्ने का रस निकालने के लिये चरखी मे दिया जाता है पिचर कर रह जाता है उसीभाँति पाप के मुद्गर से उसका पेषण होता है। प्रसव कालकी वायु बहुत प्रबल होती है जो उसे गर्भ से बरवश बाहिर निकाल कर फेंका करती है। ५१॥ गर्भवास से निष्क्रमण करने वाले प्राणी को उस काल में महान् दु.ख होता है और वहां किसी प्रकार का भी परित्राण नही होता है क्योंकि बाहिर आना परमावश्यक तथा बलात् किया

जाता है जिस तरह रस निकालने के यजज से पीड्यमान ईख का गन्ना निचुडकर बिना सार वाला होजाया करता है वैसी ही यह उत्पन्न होन के समय म इस प्राणी की दशा होती है । ॥५२॥ योनि मे जब यही देह धारी स्थित होता है और यन्त्र पीडन से गिराया जाता है । अस्थियो वाला गोल आकारमे स्थित स्नायु बन्धन से एक दम वेष्टित हुआ करता है ।५३। यह खून-मास और वसा (चर्वी) से लिपटा होता है तथा मल और मूत्र द्रव्य का पात्र रहा करता है । केश लोम और नखो से आच्छन्न तथा रोगो का उत्तम घर जैमा इसका रूप उस समय मे रहता है ॥५४॥ घर का जैसे द्वार होता है वैसा मुखही इसका दरवाजा होता है जो आठ झरोखो से भूषित होता है । दोनो होट ही इस फाटक के दो किवाड है जो दाँत, जीभ ओर गले से युक्त होते हैं ॥५५॥ नाडियो से स्वेद का प्रवाह होता है जिसमे कफ पित्त की परिप्लुति हुआ करती है । जरा (बुढापा) और शोक से यह समाविष्ट होता है तथा काल के मुख की अग्नि मे सदा स्थित रहा करता है ॥५६॥

कामक्रोधसमाक्रान्त श्वसनै श्चोपमर्दितम् ।
भोगतृष्णातुर गूढ रागद्वेषवशानुगम् ॥५७॥
सर्वाङ्गताङ्ग प्रत्यगं जरायुपरिवेष्टितम् ।
सङ्कटेनाविविक्तेन योनिमार्गेण निर्गतम् ॥५८॥
विण्मूत्ररक्तसिक्ताङ्ग पट्कौशिक समुद्भवम् ।
अस्थिपञ्जरसङ्घात यज्ञमस्मिन्कलेवरे ॥५९॥
शतत्रय षष्ट्यधिक पञ्च पेशी शतानि च ।
सार्धाभिस्तिसृभिश्छन्न समन्ताद्रोमकोटिभि ॥६०॥
शरीर स्थूलसूक्ष्माभिर्दृश्यादृश्याभिरन्तत ।
एताभिर्मांसनाडीभि कोटिभिस्तत्समन्वितम् ॥६१॥
प्रस्वेदमशुचिं ताभिरन्तरस्थ च ते नहि ।
द्वात्रिंशद् दना प्रोक्ता विंशतिश्च नखा स्मृता ॥६२॥

पित्तस्य कुडम ज्ञेय कफस्यार्धाढक तथा ।
वसायाश्च पलत्रिंशत्तदर्धं कललस्य वा ॥६३॥

यह काम तथा क्रोध से अच्छी तरह आक्रान्त होता है और श्वासो से उपमर्दित हुआ करता है । भोगो के भोगन की तृष्णा हर समय इसे घेरे रहती है जिसके कारण आदर रहता है । मूढ एव राग तथा द्वेष के वशमे होकर उनका ही अनुयायी रहता है ॥५७॥ इस का प्रत्येक अङ्ग सर्वाणत एव जरायु से ढका रहता है । उस समय का सङ्कट विविक्त मार्ग होता है जिस समय म यह योनिके गर्भ से निकल कर बाहिर आता है । इनको होन के कष्ट का ध्यान अन्य किसी को लेशमात्रभी नही होता है ॥५८॥ विष्ठा और मूत्र से इसके सभी अङ्ग सिक्त होते हे और पद् कोशीक स ममुद्भव वाना होता है । अस्थि के पञ्जर का सङ्घात ही इस कलेवर म यह होता है। चारसौ साढे अडसठ रोम कोटि तथा पेशियाँ इम म होती है ॥५६॥ स्थूल और सूक्ष्म देखने के योग्य तथा अद्रश्य इन मास की नाडियो से जो करोडो की सख्या म इस शरीर म होती है यह प्राणी का देह समन्वित होता है ॥६१॥ उनसे प्रकृष्ट स्वेद वाला और अशचिय ह अन्दर से शरीर रहा करता है । इस शरीर म बत्तीसदाँत बनाये गय है और बीस नाखून कहे जाते है ।६२। यह शरीर पित्त का कुडव समझना चाहिए तथा इस शरीर को कफका आधा ढक्न मानना चाहिए । उसम तीस पल बसा होती है और इसका आधा भाग कलल हुआ करता है ॥६३॥

वातार्बुदपल ज्ञेय पलानि दशमेदस ।
पलत्रय महारक्त मज्जारक्ताश्चतुर्गुणा ॥६४॥
शुक्रार्धं कुडव ज्ञेय तदर्ध देहिना बलम् ।
मासस्य चैक पिण्डेन पलसाहस्रमुच्यते ॥६५॥
रक्त पलशत ज्ञेय विण्मूत्र चा प्रमाणत ।
इति देह गृहे राजन्वास स्यान्नित्यमात्मन ॥६६॥

अशुद्धं च विशुद्धस्य कर्मबन्ध विनिर्मितम् ।
शुक्रशोणित सयोगाद्दे ह. सञ्जायते क्वचित् ॥६७॥
नित्यं विण्मूत्रसयुक्तस्तेनायमशुचिः स्मृतः ।
यथा वै विष्ठया पूर्णं शुचिः सान्तर्बहिर्घटः ॥६८॥
शौचेन शोध्यमानोऽपि देहोऽयमशुचिर्भवेत् ।
यं प्राप्याति पवित्राणि पञ्चगव्य हवींषि च ॥६९॥
अशुचित्वं प्रयान्त्याशु देहोऽमयशुचिस्ततः ।
हृद्यान्यप्यन्नपानानि यं प्राप्य सुरभीणि च ॥७०॥
अशुचित्वं प्रयान्त्याशु कोऽन्य.स्यादशुचिस्ततः ।
हे जना' किं न पश्यध्वं यन्निर्याति दिने दिने ॥७१॥

इसमे अबुदं परा बात दश पल मेद होता है । तीन पल महा रक्त होता है और इससे चौगुनी मज्जा तथा रक्त होता है ॥ ६४ ॥ आधा कुटुव शुक्र समझना चाहिए । इसमे आधा बल इस शरीर मे होता है । मास का एक पिण्ड के साथ सहस्र पल कहा जाता है ॥ ६५ ॥ सौ मल रक्त होता है तथा विष्ठा और मूत्र प्रमाण के अनुसार रहा करता है इस प्रकार का यह देहरूपी घर होता है जिसमे हे राजन् ! नित्य ही आत्मा का निवास होता है ॥ ६६ ॥ इस परम विशुद्ध आत्मा का यह आवास गृह शरीर महान् अशुद्ध होता है तथा कर्मों के बन्धनो से ही इसका निर्माण हुआ करता है । शुक्र और शोणित (रज) के सयोग होने पर ही किसी समय मे इस देह की समुत्पत्तिहुआ करती है ॥ ६७ ॥ यह नित्य ही विष्ठा और मूत्र से सयुक्त रहता है इसी कारण से यह अ-त्यन्त अशुचि कहा गया है । जिस प्रकार से कोई घट (घड़ा) भीतर विष्ठा से परिपूर्ण होता है तो वह बाहिर से शुचि मालूम होता है वैसा ही यह शरीर होता है ॥ ६८ ॥ चाहे शौच के द्वारा इसे शुद्ध भी किया जावे तो भी यह देह अशुचि (अपवित्र) ही रहता है । जिस शरीर में अत्यन्त पवित्र पञ्चगव्य और हवियाँ प्राप्त होती हैं वे भी शीघ्र वहा पहुँच

कर अशुचिता प्राप्त कर लिया करते हैं। यह देह फिर भी अशुचि ही रहा करता है। परम सुन्दर अन्न-पान और सुरभित पदार्थ भी जिस समय इस शरीर मे पहुँचते है तो वे सभी तुरन्त ही अशुचिता को प्राप्त कर लिया करते हैं सो फिर बतलाइये ऐसा अशुचि अन्य कौन होगा ? हे मानवो ! क्या आप लोग यह नही देखा करते है कि जो दिन प्रति दिन इस शरीर से निकला करता है ॥ ६६ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

देहानुगो मलः पूतिस्तदाधारःकथं शुचिः ।
देहःसशोध्यमानोऽपि पञ्चगव्य कुशाम्बुभिः ॥७२॥
घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति ।
स्रोतांसि यस्य सतत प्रवहन्ति गिरेरिव ॥७३॥
कफमूत्राद्यमशुचिः सदेहः शुध्यते कथम् ।
सर्वाशुचि निधानस्य शरीरस्य न विद्यते ॥७४॥
शुचिरेक प्रदेशोऽपि शुचिर्नस्याद्दतेऽपि वा ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ मृत्तोयं.शोध्यते करः ॥७५॥
तथापि शुचिभाङ् न स्यान्न विरज्यन्ति ते नरा. ।
कायोऽयमग्रचधूपाद्यैर्यत्नेनापि सुसंस्कृतः ॥७६॥
न जहाति स्वभाव हि श्वपुच्छमिव नामितम् ।
तथा जात्यैव कृष्णोर्णा न शुक्लोर्णा तु जायते ॥७७॥

इस देह का अनुग मल पूति दुर्गन्ध वाला होता है तो उस मलवा आधार स्वरूप यह देह किस तरह से शुचि एवं पवित्र हो सकता है ? अर्थात् नही हो सकता है यह शरीर, पचगव्य का और कुशाओ के जल से भली-भाँति सशोधित भी किया जावे तो भी यह घिसे हुए अङ्गार की भाँति किसी प्रकार से निर्मलता को प्राप्त नही होता है। क्यो कि इसके सभी स्रोत-ऐसे हैं जो पर्वत के सोतो की तरह बराबर प्रवाहित होते ही रहा करते है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ कफ-मूत्र-मल आदि से अशुचि यह देह किस तरह शुद्ध हो सकता है। सभी अशुचि पदार्थो का घर यह देह

है, फिर इसकी शुचिता हो ही नहीं सकती है ॥ ७४ ॥ इस सर्वदा अशुचि रहने वाले देह का एक भी कोई सा भाग शुचि नहीं है। दिन या रात्रि म मिट्टी और जल से हाथ शुद्ध किया जाता है तो भी वह शुचिता वाला नहीं होता है और वे मनुष्य विराजित नहीं होते है। यह शरीर बहुत बढ़िया धूप आदि उत्तम एवं परम सुगन्धित पदार्थों के द्वारा अनक यत्नों से अच्छी तरह सस्कार वाला भी किया जावे तो भी यह अपना स्वभाव का त्याग नहीं किया करता है जिह प्रकार से कुत्ते की पूँछ का स्वभाव टेढा रहना ही होता है तो चाहे कितने ही समय तक किसी से भी उसे दबा कर रख दिया जावे परन्तु उसे छोडते ही वह फिर टेडी हो जायगी वैसी दशा इस देह की भी होती है। जो जाति से ही कृष्ण वर्ण वाली ऊनकी बकरी या भेड़ा होती है वह किसी की उत्तमोत्तम उपाय से शुक्ल वर्ण की नहीं हो सकती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

सशोध्यमानापि तथा भवेन्मूर्तिर्न निर्मला ।
जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्धं पश्यन्नपि मलं स्वकम् ॥७८॥
न विरज्यंतिलोकोऽय पीडयन्नपि नासिकाम् ।
अहो मोहस्यमाहात्म्य येन व्यामोहित जगत्॥७९॥
जिघ्रन्पश्यन्स्वकान्दोषान्कायस्य न विरज्यते ।
स्वदेहस्य विगन्धेन विरज्येत नयो नर ॥८०॥
विरागकारण तस्य किमन्यदुपदिश्यते ।
सर्वमेव जगत् पूत देहमेवाशुचि परम् ॥८१॥
यन्मलावयवस्पर्शाच्छुचिरप्यशुचिर्भवेत् ।
गन्धलेपापनोदाय शौच देहस्य कीर्तितम् ॥८२॥
द्वयस्यापामात्यश्चाद्भावशुद्धया विशुद्धयति ।
गङ्गातोयेन सर्वेण मृद्भारैर्गोत्रलेपनै. ॥८३॥

भली भाँति से शोधित की हुई भी यह मूर्त्ति कभी भी निर्मल नहीं होती है। अपनी दुर्गन्ध को सूँघता हुआ भी तथा अपने मल को स्वयं

देखकर भी अपनी नासिका को पीड़ा देता हुआ भी यह लोक विरक्त नहीं होता है और उसी शरीर में इतना अधिक आसक्त बना हुआ रहता है—यही इस मोह की बड़ी महिमा है कि सम्पूर्ण जगत् इसके कारण व्यामोहित हो रहा है ॥७८॥७९॥ अपने मल दोषों को सूंघते और देखते हुए भी शरीर से वैराग्य नही होता है। जो अपनी देह की दूषित गन्ध से भी विरक्त नही होता है उसके वैराग्य होने का अन्य क्या कारण उपदिष्ट किया जावे। यह सम्पूर्ण जगत् पवित्र है किन्तु केवल यह शरीर ही परम अशुचि होता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥ जिस शरीर के मल के अवयव के स्पर्श से जो शुचि भी होता है वह भी अशुचि हो जाया करता है, गन्ध के लेपन को दूर करने के लिए इस देह का शौच बतलाया गया है ॥ ८२ ॥ दो के अपगम के पश्चात् भाव की शुद्धि से विशुद्ध होता है। मिट्टी के भार से गात्र पर लेपन से और गङ्गा के जल से शुद्धि करे ॥ ८३ ॥

मर्त्यो दुर्गन्धदेहोऽसौ भावदुष्टो न शुध्यति ।
तीर्थस्नानैस्तपोभिश्च दुष्टात्मा न च शुध्यति ॥८४॥
स्वमूर्तिः क्षालिता तीर्थे न शुद्धिमधिगच्छति ।
अन्तर्भाव प्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम् ॥८५॥
न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्दहनं परम् ।
भावशुद्धिः परं शौचं प्रमाणं सर्वकर्मसु ॥८६॥
अन्यथालिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा ।
मनसा भिद्यते वृत्तिरभिन्नेष्वपि वस्तुषु ॥८७॥
अन्यथैव सती पुत्रं चिन्तयेदन्यथा पतिम् ।
यथा यथा स्वभावस्य महाभाग उदाहृतम् ॥८८॥
परिष्वक्तोऽपि यद्भार्यां भावहीनां न कारयेत् ।
नाद्याद्विविधमन्नाद्यं रस्यानि सुरभीणि च ॥८९॥
अभावेन नरस्तस्माद्भावः सर्वत्र कारणम्

चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्वाह्यशोधनैः ॥६०॥
भावतः शुचि शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्ष च विन्दति ।
ज्ञानमाम्भसा पुंसः सवैराग्यमृदा पुनः ॥६१॥

दुर्गन्ध पूर्ण देह वाला यह मानव जो भाव से भी दुष्ट हो तो वह कभी भी विशुद्ध नहीं होता है । जो दुष्ट आत्मा वाला मनुष्य है वह कितने ही तीर्थों को अटन करे और उन मे स्नान भी भले ही करे और चाहे वह कितनी ही तपश्चर्या करे किन्तु क्योंकि उसमें दुष्टता भरी हुई है अतः कभी शुद्ध हो ही नहीं सकता है ॥ ८४ ॥ तीर्थों के जल मे उसने अपनी मूर्ति अर्थात् शरीर को ही तो धो लिया मे उसके मलमूत्र के क्षालन करने मे शुद्धि नहीं होती है । जिस मानव का अन्तर्भाव दूषित होता है वह चाहे अग्नि को भी अन्दर क्यो न जलावे या स्वयं ही अग्नि मे प्रवेश कर जावे तो भी उसकी शुद्धि नहीं होती है । इस देह के निर्दहन करने मे स्वर्ग और अपवर्ग भी प्रमुखता नहीं रखते हैं । समस्त धर्मों मे भाव की शुद्धि ही सब से प्रधान एवं प्रमाण शौच होता है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ भाव की महिमा बतलाते हुए कहते हैं कि संसार मे पुरुष। अपनी स्त्री और पुत्री दोनो से ही छाती मिलाकर आलिङ्गन किया करता है किन्तु दोनों के आलिङ्गन मे भाव भिन्न होता है । अभिन्न वस्तुओं में भी मन के द्वारा भेद मान लिया जाता है यह दृत्ति प्रभाव होता है ॥ ८७ ॥ सती साध्वी स्त्री भी अपने हृदय से लगाती हुई अपने पुत्र को दूसरे स्नेह पूर्ण भाव से आलिङ्गन किया करती है और अपने पति को प्रणय पूर्ण भाव से आलिङ्गन किया करती है । हे महाभाग ! यह स्वभाव का ही परम माहात्म्य होता है । जिसके विषय मे मैंने उदाहरण दिया है ॥ ८८ ॥ अपनी माया मे परिरक्त होता हुआ भी उसे भाव हीन नहीं करना चाहिए । विविध प्रकार के अन्न आदि पदार्थों को तथा परम सुगन्धित एव रस युक्त पदार्थों का अशन नहीं करना चाहिए ॥ ८९ ॥ भाव के बिना मनुष्य की शुद्धि नहीं होती है अतएव सब का निष्कर्ष होता है कि सर्वत्र भाव ही एक परम

प्रमुख कारण होता है। इसी भाव के द्वारा अपने चित्त का यत्न से शोधन करना चाहिए और ये अन्य जो बाहिरी शोधन के प्रकार होते हैं वे सब व्यर्थ है उनसे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। जिस की भावना पूर्णतया विशुद्ध होगी वह शुद्ध आत्मा वाला पुरुष स्वर्ग तथा मोक्ष दोनो की प्राप्ति किया करते है। ज्ञान ही उसके लिए जल होता है और वैराग्य ही मिट्टी मौजूद होती है। इन ही वस्तुओ से वह शुद्ध भाव वाला पुरुष अपनी आत्मा को ऐसा शुद्ध कर लिया करता है कि फिर उसे शेष करना ही नही रहा करता है ॥ ६० ॥ ॥ ६१ ॥

संसारे क्लिश्यते येन नरो लोभवशानुगः ।
गर्भस्मृतेरभावे च शास्त्रमुक्तं शिवेन च ॥६२॥
तद्दुःखकथनार्थाय स्वर्गमोक्ष प्रसाधकम् ।
येन तस्मिञ्छिवे ज्ञाते धर्मकामार्थसाधने ॥६३॥
न कुर्वन्त्यात्मनःश्रेयस्तदत्र महदद्भुतम् ।
अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्वाल्ये दुःखं महत्पुन ॥६४॥
इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं न सत्कृती ।
दन्तजन्ममहद् दुःखं लौल्येन वायुना तथा
बालरोगैश्च विविधैःपीडा बालग्रहैरपि ।
तृड्बुभुक्षा परीताङ्ग क्वचित्तिष्ठति गच्छति ॥६५॥
विण्मूत्र भक्षणाद्यं च मोहाद्बालः समाचरेत् ।
कौमारःकर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनैः ॥६६॥
अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखं गुर्वादि शासनात् ।
प्रमत्तेन्द्रियवृत्तेश्च कामराग प्रपीडिनः ॥६७॥
रोगार्दितस्य सततं कुतः सौख्यं हि यौवने ।
ईर्ष्यया सुमहद्दुखं मोहाद्दुःखं प्रजायते ॥६८॥
तत्रस्यात्कुपितस्यैव रागो दुःखाय केवलम् ।

रात्रौ न विन्दते निन्द्रा कामाग्निपरिखेदित ॥९९॥
दिवाचापि कुत सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया ।
व्यवायाश्रितदेहस्य ये पुस शुक्रविन्दव ॥१००॥

इस ससार मे मानव लोभ के वश मे पड कर उसी का अनुयायी सदा रहता है और अहर्निश क्लेश भोगता रहता है। गर्भ की स्मृति का अभाव हो जाया करता है कि उस दशा मे कितने घोर कष्ट प्राप्त किये थे और उससे यहीं उद्धार होने का समय भी है—यही इन तीर्थों का माहात्म्य होता है। भगवान् शिव ने यह शास्त्र कहा है ॥ ९२ ॥ उस दुख के कथन के लिए ही ये स्वर्ग और मोक्ष प्रसाधक होते हैं जिसके द्वारा उसमे धर्म-अर्थ और काम के साधन स्वरूप शिव का ज्ञान हो जाता है। ऐसा हो जाने पर भी जो प्राणी अपनी आत्मार्थ्येय के का सम्पादन नही किया करते हैं—यह ही यहाँ पर एक बहुत अद्भुत बात है इन्द्रियों की वृत्ति अव्यक्त होने के कारण ही बाल्यकाल मे उसे महान् दुख हुआ करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ छोटा बच्चा यदि हृदय से चाहता है तो वह कुछ भी करने मे समर्थ नही होता है और न वह सस्कृती कुछ बोल ही सकता है। अति चचल वायु के द्वारा दाँतो के निकलने के समय मे उसे महान् पीडा का अनुभव होता है ॥ ९५ ॥ अनेक प्रकार के बाल रोग हुआ करते है उनसे भी उसे बहुत भारी पीडा होती है। अनेक बालग्रह हैं उन से भी उसे महान् दुख हुआ करता है। भूख और पिपासा से परीत अङ्ग वाला वह किसी जगह पर स्थित होता है तो कही पर गमन किया करता है। वह बालक मोह से आरम्भ मे विट और मूत्र का भक्षण किया करता है। उस दशा मे इसका ऐसा ही समाचरण होता है। जिस समय मे कुमार होता है तो उसके कान छिदाये जाते हैं उससे भी उसे पीडा होती है और माता पिता की ताडनायें भी उसे सताती हैं ॥९६॥ जब उसे पढने को बिठाया जाता है तो अक्षरो के

अध्ययन करने मे कष्ट होता है तथा गुरु वर्ग के शासन से भी पीडा का अनुभव हुआ करता है। फिर जब कुछ और बडा हो जाता है तो उसको इन्द्रियो का प्रमाद उसे घेर लेता है और प्रमत्त इन्द्रियो की वृत्ति से मनमानी किया करता है और प्रपीडित होता रहता है ॥९७॥ यौवन मे आँखो के सामने अँधेरा-सा छा जाता है। बहुत-से ऊट पटाँग कार्य किया करता है जिनका परिणाम उसे अनेक रोगो से ग्रस्त हो जाना ही होता है। युवावस्था मे भी उसे सुख नही मिलता है। ईर्ष्या से और मोह से महान् कष्ट होता है जो कि उस अवस्था मे उसे घेरे हुए रहते हैं ॥९८॥ वह अत्यन्त क्रोध मे भर जाया करता है जबकि उसके मन के विपरीत कुछ भी होता है क्योकि उस समय मे औचित्य-अनौचित्य का विचार तो बिल्कुल होता ही नही है। बहुत से रोगो की उत्पत्ति हो जाने पर दु ख ही दु ख होते है क्योकि रोग तो केवल दु ख ही के कारण हुआ करते हैं। काम वासना की अग्नि धधकती रहा करती है इस कारण यौवन मे रात्रि मे भी उसे निद्रा नही होती है ॥९९॥ दिन के समय मे तो चैन मिल ही नही सकता है क्योकि धन के कमाने की चिन्ता मे वह सदा व्यस्त रहता है। स्त्री के प्रसङ्ग मे ही रात-दिन मन को लगाये रखने वाले पुरुष के शरीर से शुक्र की बिन्दुओ का जो पात होता है उससे वह आनन्द का अनुभव किया करता है किन्तु उससे वास्तव मे कुछ भी सुख नही होता प्रत्युत मौत को निकट ही मे न्यौता देना ही है ॥१००॥

गर्भवासे महद्दुख जन्मदु ख तथा नृणाम् ।
सुबाल्यदु ख चाज्ञान कौमारे गुरुशासनम् ॥१०१॥
यौवने कामरागाभ्या दु ख चैवेर्ष्यया पुन ।
कृषिवाणिज्य सेवाद्यै र्गोरक्षादिक कर्मभि ॥१०२॥
वृद्धभावे च जरया व्याधिभिश्च प्रपीडनात् ।
मरणे च महद्दुख प्रार्थनाया ततोऽधिकम् ॥१०३॥

राजाग्नि जलदाघात चौरशत्रुभयं महत् ।
अर्थ स्यार्जन रक्षायां भय नाशे व्यये पुनः ॥१०४॥
कार्पण्य मत्सरो दम्भो धनाधिक्ये भय महत् ।
अकार्यं सम्प्रवृत्तिश्च दुःखानि धनिनां सदा ॥१०५॥

जिस समय मे यह प्राणी गर्भवास करता है तभी से इसको दु ख भोगना पडता है और गर्भवास मे इसे महान् पीडा होती है किन्तु जन्म ग्रहण करने पर एकदम भूल जाता है। फिर जब यह जन्म लेता है तो बाहर निकलने में भी इसको घोर वेदना होती है। बचपन मे पूर्णतया अशक्त एव अबोध दशा रहती है उससे भी इसको दु ख होता है। कुमारावस्था मे गुरुओं के शासन मे रहने पर बडा कष्ट होता है ॥१०१॥ जब यौवन की अवस्था आती है तो इसको काम और राग सताता है, आँखें चौंधिया जाती हैं और कामवासना मे डूब जाता है तथा सासारिक भोगो से बहुत अधिक आसक्ति होती है और ईर्ष्या भी उत्पन्न हो जाती है इनसे भी इसे दु ख होता है उसे मिथ्या सुख का आभास मात्र होता है। फिर उपार्जन के कर्मो मे कृषि-व्यवसाय-सेवा गोपालन आदि मे व्यस्तता से कष्टो का अनुभव होता है ॥१०२॥ बुढापा तो दु खो के भोगो के लिय प्रसिद्ध ही है। जरा से शरीर-इन्द्रियाँ सभी अशक्त होती हैं, पराधीनता भोगनी पडती है—बहुत सी व्याधियाँ घेर लेती हैं ऐसी दशा मे दु ख ही दु ख होता है। मौत के समय मे जब यह प्राणी इस शरीर को छोडता है बडा कष्ट उसे होता है। प्रार्थना मे उससे भी अधिक दु ख होता है ॥१०३॥ इस मानव जीवन मे सुख तो कभी होता ही नही है। राजा,अग्नि जलद इनके आघातो का दु ख होता है। चोर-शत्रु आदि का भय बराबर बना रहता है। धन भी सुख का साधन नही है जिसे सभी समझा करते हैं। धन के पहिले तो कमाने मे ही दु ख होता है क्योंकि कष्ट उठाये बिना धन की कमाई कभी नही हुआ

करती है। जब कुछ कमाकर धन सञ्चित कर लिया जाता है फिर उसकी रक्षा करने मे बहुत कष्ट उत्पन्न होता है। सर्वदा उसके नष्ट होने का भय मन मे लगा रहता है। व्यय करने मे भी सञ्चित धन को निकलते देखकर जी टूटता है इससे भी दुःख होता है ॥१०४॥ मनुष्य मे धन के एकत्रित हो जाने पर बडी कजूसी आ जाती है। कृपणता के साथ उसमे मत्सरता और दम्भ भी भर जाया करते है। धन की अधिकता मे सुख नही बल्कि बडा भारी भय उत्पन्न हो जाता है। धनी लोग धन का व्यय करना नही जानते हैं। जो काम नही करने योग्य होते हैं उनमे ही उनकी प्रवृत्ति हुआ करती है और उन्ही मे धन खर्च किया करते है अतएव निर्धन यह समझते हैं कि धनी सुख-सम्पन्न है किन्तु धनियो को सदा दुःख ही दुःख रहा करते हैं ॥ १०५

भृत्यवृत्ति कुसीद च दासत्व परतन्त्रता ।
इष्टानिष्टाभियोगश्च सयोगाश्च सहस्रश ॥१०६॥
दुर्भिक्ष दुर्भगत्व च मूर्खत्व च दरिद्रता ।
अधरोत्तरभागश्च नारक राजविक्रमम् ॥१०७॥
अन्योन्याभिभव दुःखमन्योन्यतो भय महत् ।
अन्योन्याच्च प्रकोपश्च राज्ञो दुःख महीभृताम् ॥१०८॥
अनिश्चतान भावाना कृतकाम्यस्य देहिन ।
अन्योन्य मर्मभेदाच्च अन्योन्यकरपीडनात् ॥१०९॥
लुब्धाश्च पापभेदेन अन्योन्यस्य च भक्षणम् ।
इत्येवमादिभिर्दुःखैर्यस्माद् भीत चराचरम् ॥११०॥
क्रोधेन च जया देवी योगजा शाश्वतान्प्रभु ।
कामक्रोधौ स्थितौ यत्र तत्र दोषास्तदात्मका ॥१११॥
दुःखैराकुलित ज्ञात्वा निर्वेद परम व्रजेत् ।
निर्वेदाच्च विराग स्याद्विरागाज्ज्ञानसम्भव. ॥११२॥
ज्ञानेन तत्पर ज्ञान शिवमुक्तिमवाप्नुयात् ।

समस्तदु ख निर्मुक्त. स्वस्थात्मा स सुखी तदा ।
सर्वज्ञ. परिपूर्णश्च मुक्त इत्यभिधीयते ॥११३॥

इस ससार की यात्रा मे मानव अनेक प्रकार के कर्मों मे व्यस्त रहा करता है । कोई भृत्य वृत्ति करता है तो कोई रुपया ऋण रूप मे देकर उसका ब्याज खाता है । किसी को दासता से पेट पालन करना होता है तो कोई जीवन भर किसी की पराधीनता मे ही पडा रहा करता है । यहाँ पर बहुत से कष्ट और जो नही अभीष्ट होते हैं ऐसे अनिष्ट योगों का सयोग एव सम्पर्क भी होता रहता है जो कि सहस्रों ही होते हैं ॥१०६॥ कभी अकाल पड जाता है, कभी दुर्भाग्य जनित पीडा होती है । ससार मे मूर्ख रह जाना—गरीबी का आना—कभी एक दम निम्न दशा मे पड जाना—कभी कुछ अच्छी स्थिति बनना—नरक और राजा का—सांक्रम होना ये सब अनेक दशाऐं आया करती हैं । इनमे एक दूसरे का तिरस्कार करते हैं तो दु ख होता है और एक दूसरे से भयभीत रहता है—यह भी दु ख है । एक दूसरे पर महान् कोप किया करता है । राजाओं को अन्य राजाओ से पीडा होती है ॥१०७॥१०८॥ यहाँ पर संसार में कृत काम्य इस देहधारी के भावों की भी नित्यता नहीं होती है । ये अन्य अन्य के परस्पर मर्म भेदन करने वाले होते हैं और एक का दूसरे के हाथ से उत्पीडन भी होता है ॥१०९॥ जो लुब्धक होते हैं वे पापो के भेद से अन्योन्य परस्पर मे एक दूसरे का भक्षण करने वाले हुआ करते हैं । इस प्रकार के बहुत–से दु खो का समुदाय है जिनसे यह चराचर जगत् भयभीत रहता है ॥११०॥ प्रभु ने क्रोध से ही योग की ज्ञाता जया देवी को शाप दे दिया था । जहाँ पर काम और क्रोध स्थित हैं वहाँ पर उसी के स्वरूप वाले दोषी भी हुआ करते हैं ॥११॥ इस प्रकार के बहुत – से दु खो से अपने आपको व्याकुल समझ करके परम निर्वेद को प्राप्त करना चाहिए । अर्थात् उत्पीडित होकर

वैराग्य होना चाहिए। संसार में कुछ भी सार नहीं है—इस प्रकार का ज्ञान ही निर्वेद कहा जाता है। जब ऐसा निर्वेद हो जाता है तो फिर सभी सासारिक पदार्थों के उपभोग से विरक्तता आ जाया करती है और वैराग्य हो जाने पर पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है ॥११२॥ ज्ञान के द्वारा सर्वोपरि तत्त्व का भी ज्ञान होता है जो कि परम ज्ञान है और शिव स्वरूप है। इसके होने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। जब सब प्रकार के दु:खों से निवृत्ति हो जाती है तो वह स्वस्थात्मा होता है और सभी सुखी भी होता है। वह फिर सर्वज्ञ एव परिपूर्ण तथा मुक्त कहा जाता है ॥११३॥



३—स्वर्ग-खण्डम्

।। महर्षि शौनक की जिज्ञासा ।।

नमामि गोविन्दपदारविन्दं सदेन्दिरावन्दितमुत्तमाढ्यम् ।
जगज्जनानां हृदि संनिविष्टं महाजनैकायनमुत्तमोत्तमम् ।।१।।

एकदा मुनयः सर्वे ज्वलज्ज्वलनसन्निभाः ।
हिमवद्वासिनो वेदवेदाङ्गपरिनिष्ठिताः ।।२।।
त्रिकालज्ञा महात्मानो नानापुण्याश्रमाश्रयाः ।
महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः ।।३।।
येऽर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः ।
श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ।।४।।
धर्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
जम्बूमार्गरता ये च ये च सत्यनिवासिनः ।।५।।
एते चान्ये च बहवः सशिष्या मुनयोऽमलाः ।
नैमिषं समुपायाताः शौनकं द्रष्टुमुत्सुकाः ।।६।।

सर्व प्रथम द्वितीय खण्ड के आरम्भ मे शिष्टाचार के अनुसार मङ्गलाचरण किया जाता है, और जो नमस्कारात्मक है। पुराण का रचयिता मुनि कहता है कि मैं श्री गोविन्द के चरणारविन्दो मे अपना प्रणाम समर्पित करता हूँ। प्रभु के चरण कमलो की वन्दना सर्वदा महा लक्ष्मी किया करती है। यह चरण उत्तम सुलक्षणों से सुसम्पन्न हैं। जगत् के समस्त जनो मे हृदय म सन्निविष्ट रहा करते हैं अर्थात् अन्तर्यामी के स्वरूप से प्रभु सभी के अन्दर

विराजमान रहते है । जो महा पुरुष होते है उनका हृदय विशुद्ध निर्मल होने के कारण इनका एक मात्र आवास गृह रहता है। प्रभु के चरणारविन्द सर्वोत्तम हैं उन्ही को मेरा प्रणाम है ॥ १ ॥ एक समय म जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी , वेदों तथा वेदो के समस्त अङ्ग शास्त्रो मे पूर्णतया परिनिष्ठित, हिमालय पर्वत मे निवास करने वाले समस्त मुनिगण जो कि त्रिकाल की बात के ज्ञाता थे महान् उच्च आत्मा वाले थे और उनके परम पवित्र आश्रयो का आश्रय ग्रहण करने वाले थे नैमिषक्षेत्र में शौनक मुनि के दर्शन प्राप्त करने की उत्सुकता से वहाँ आये थे। जो महेन्द्र आदि पर्वतो मे रहते थे और विन्ध्याचल मे निवास किया करते थे वे सब भी नैमिष क्षेत्र मे शौनक जी से मिलने को आये थे । ॥ २ ॥ ३ ॥ जो अर्बुद पर्वत के अरण्य म निवास किया करते थे, जो पुष्कर वन म आवास बनाये हुए थे जो, श्री शैल पर्वत पर विराजमान रहते थे जो कुरुक्षेत्र म रहा करते थे, जो धर्मारण्य के निवासी थे , जो दण्डकारण्य मे अपना आवास किया करते थे और जो जम्बूमार्ग के रहने वाले थे तथा जो सत्य के निवास करने वाले थे एव अन्य जो बहुत से विमल मुनिगण अपने शिष्यो क सहित थे वहाँ पर नैमिष क्षेत्र से उपस्थित हुए थे और शौनक ऋषि के दर्शन करने की इच्छा वाले थे ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

त पूजयित्वा विधिवत्तेन ते च सुपूजिता ।
आसनेषु विचित्रेषु वृस्यादिषु यथाकृतम् ॥७॥
शौनकेन प्रदत्तेषु आसीनास्ते तपोधना ।
कृष्णाश्रिता कथा पुण्या परस्परमथाब्रुवन् ॥८॥
कथान्ते ततस्तेषा मुनीना भावितात्मनाम् ।
आजगाम महातेजा सूतस्तत्र महाद्युति ॥९॥

व्यासशिष्यः पुराणज्ञो रोमहर्षणसंज्ञकः ।
तान्प्रणम्य यथान्यायं स तैश्चैवाऽभिपूजितः ।।१०।।
उपविष्टं यथायोग्यं शौनकाद्या महर्षयः ।
व्यासशिष्य सुखासीनं सूतं वै रोमहर्षणम् ।
त पप्रच्छुर्महाभागाः शौनकाद्यास्तपोधनाः ।।११।।

उन समस्त मुनिगण ने वहा शौनक ऋषि का अर्चन किया था और उन शौनक ने भी विधिपूर्वक उन सामागत मुनियो का पूजन किया था । वृष्यादि विचित्र आसनो पर जो कि शौनक महर्षि के द्वारा दिये गये थे वे मुनिगण सभी स्थित हो गये थे । वहाँ पर बैठकर उन सब ने आपस मे भगवान् कृष्ण के समाश्रय वाली परम पुण्यमयी कथाऐं बोलना आरम्भ कर दिया था ।। ७ ।। ।। ८ ।। जिस समय मे उन भावित आत्मा वाले मुनियो की कथा की समाप्ति हुई थी उसी समय मे महान् श्रुति वाले और अत्यधिक तेजस्वी सूत जी वहाँ पर आ गये थे ।। ९ ।। सूत जी वेद व्यास जी के प्रमुख शिष्य थे और समस्त पुण्यो के प्रखर पण्डित थे । इनका शुभ नाम रोमहर्षण था । सूत जी ने वहाँ आकर उन समस्त एकत्रित हुए मुनिगण को प्रणाम किया था और फिर न्यायानुसार उन सब मुनियो ने भी सूत जी का अभिपूजन किया था ।। १० ।। जिस समय मे सभी लोगो के निवेदन पर व्यासजी के शिष्य रोमहर्षण जी सुखपूर्वक वहा बैठ गये तो तप के धर्म वाले महान् भाग से सुसम्पन्न शौनक आदि महर्षियो ने सूत जी से पूछा था ।। ११ ।।

पौराणिक ! महाबुद्धे ! रोमहर्षण ! सुव्रत ! ।
त्वत्तः श्रुता महापुण्याः पौराणिक्यः कथाः पुरा ।।१२।।
साम्प्रत च प्रवृत्ताः स्म कथाया सक्षणा हरे. ।।
स वै पुंसा परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।।१३।।

पुन पुराणमाचक्ष्व हरिवार्तासमन्वितम् ।
हरेरन्या कथा सूत श्मशानसदृशी स्मृता ॥१४॥
हरिस्तीर्थस्वरूपेण स्वय तिष्ठति तच्छ्रुतम् ।
तीर्थाना पुण्यदातृणा नामानि किल कीर्तय ॥१५॥
कुत एतत्समुत्पन्न केन वा परिपाल्यते ।
कस्मिन्विलयमभ्येति जगदेतच्चराचरम् ॥१६॥
क्षेत्राणि कानि पुण्यानि के च पूज्या द्विजोत्तमा ।
नद्यश्च का परा पुण्या नृणा पापहरा शुभा ॥१७॥
एतत्सर्वं महाभाग कथयस्व यथाक्रमम् ॥१८॥

ऋषियो ने कहा — हे रोमहर्षण जी ! आपके व्रत त परम सुन्दर है , आप पुराणो मे महान् मनीषी हैं तथा आप महान् बुद्धि वाले है। पहिले आपसे हमने पुराणो की महान् पुण्य मयी कथाऐ सुनी हैं । इस समय मे भी हम लोग सब यहा पर भगवान् की कथाओ के श्रवण करने के लिये उत्सुक होकर प्रवृत्त वाले हैं क्योकि इस ससार मे मनुष्यो का वही सबसे श्रेष्ठ धर्म एव कर्तव्य होता है कि जिसमे भगवान मे उनकी भक्ति होवे ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! अब आप कृपा करके फिर पुराणो की कथाऐ हम सबको श्रवण कराइये जिनमे भगवान् हरि की वार्ताऐ होवें । हे सूत जी ! भगवान् हरि की कथा के अतिरिक्त जो भी कथा हैं वे सब तो श्मशान के ही समान हुआ करती हैं । भगवान् हरि तो स्वय ही तीर्थ के स्वरूप म स्थित होते हैं— ऐसा सुना है । कृपा करके जो पुण्य के प्रदान करने वाले तीर्थ होते हैं उनके भी सुन्दर नामो का श्रवण कराइये ॥१४ ॥ १५ ॥ यह कहाँ से सम्पूर्ण चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है ? किसके द्वारा इसका पालन किया जाता है और इसका विलय किसमे होता है ? ॥ १६ ॥ कौन से पुण्य क्षेत्र हैं और कौन

से शिलोच्चय (गिरिवर) पूज्य होते हैं ? नदियों मे, कौन-सी नदियाँ प्रधान होती हैं और पुण्यमयी होती हैं जो कि पापो के हरण करने वाली शुभ मानी गयी है ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! यह सब क्रम के अनुसार आप हमको बतलाइये ॥ १८ ॥

साधु साधु महाभागा साधु पृष्ट तपोवना ।
त प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराण पद्मसञ्ज्ञकम् ॥१९॥
पाराशर्य परमपुरुष विश्ववेदैकयोनि ।
विद्याधार विपुलमतिद वेदवेदान्तवेद्यम् ॥२०॥
शश्वच्छान्त स्वमतिविषय शुद्धतेजो विशाल ।
वेदव्यास विततयशस सर्वदाऽह नमामि ॥२१॥
तत्राऽऽदौ सृष्टिखण्ड स्याद् भूमिखण्ड तत परम् ।
तृतीय स्वर्गखण्ड च चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम् ॥२२॥
पाताल पञ्चम खण्ड पष्ठमुत्तरमेव च ।
क्रियाखण्ड सप्तम स्यादित्येव खण्डसप्तकम् ॥२३॥
यस्मात्सर्वप्रयत्नेन पाद्म श्रृणुत मन्मुखात् ।
तत्रा दिखण्ड वक्ष्यामि पुण्य पापविनाशनम् ।
श्रृण्वन्तु मुनय सर्वे सशिष्यास्त्वत्र ये स्थिता ॥२४॥

सूत जी ने कहा—हे महा भागो ! आप लोग तो परम तपस्वी हैं आपने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न पूछा है । उनको प्रणाम करके अब हम पद्म नाम वाला पुराण आप लोगो को बतलाता हूँ ॥ १९ ॥ पराशर मुनि के पुत्र , परम पुरुष , विश्व वेद के एक योनि अर्थात् समुत्पत्ति स्थान , विद्या के आधार , विपुल बुद्धि प्रदान करने वाले , वेदो और वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य निरन्तर शान्त स्वरूप वाले , अपनी मति के अनुसार विषय वाले , शुद्ध तेज से विशाल , वितत यश वाले श्री वेद व्यास भगवान् को मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ इस पद्म पुराण म सबसे

आदि मे जो खण्ड है उसका नाम सृष्टि खण्ड है। इसके पश्चात् दूसरा खण्ड भूमि खण्ड नाम से विख्यात है। तृतीय खणु का नाभ स्वर्ग खण्ड है तथा चौथा खण्ड ब्रह्म-खण्ड नाम से प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ पञ्चम खण्ड का नाम पाताल खण्ड है। छठा उत्तर खण्ड है सातवें खण्ड का नाम क्रिया खण्ड है। इस प्रकार से कुल सात खण्ड हैं ॥ २३ ॥ इस लिये सब प्रयत्नों से मेरे मुख में द्वारा इस पद्म पुराण का आप सब लोग अब श्रवण करें। अब सब से पूर्व में आदि खण्ड को बतलाता हूँ जो परम पुण्यमय तथा सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाला है। हे मुनिगण ! आप सभी लोग जो शिष्यों के सहित यहाँ पर स्थित है इस पद्म पुराण को सुनो ॥ २४ ॥

—※※—

॥ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ॥

आदिसर्गमहं तावत्कथयामि द्विजोत्तमा ।
ज्ञायते तेन भगवान्परमात्मा सनातन. ॥१॥
जगत प्रलयादूर्ध्वंनासीत्किञ्चिद् द्विजोत्तमा ।
ब्रह्मसज्ञमभूदेक ज्योतिर्वै सर्वकारणम् ॥२॥
नित्य निरञ्जन शान्त निर्मल नित्य निर्मलम् ।
आनन्दसागर स्वच्छ यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षव ॥३॥
सर्वज्ञ ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम् ।
अविनाशि सदास्वच्छमच्युत व्यापक महत् ॥४॥
सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वा तज्ज्ञानरूपकम् ।
आत्मलीन विकार च तत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥५॥
तस्मात्प्रधानमुद्भूत ततश्चापि महानभूत् ।
सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥६॥

से शिलोच्चय (गिरिवर) पूज्य होते हैं ? नदियों मे, कौन सी नदियाँ प्रधान होती हैं और पुण्यमयी होती हैं जो कि पापों के हरण करने वाली शुभ मानी गयी है ॥ १७ ॥ हे महाभाग ! यह सब क्रम के अनुसार आप हमको बतलाइए ॥ १८ ॥

साधु साधु महाभागा साधु पृष्टं तपोधना ।
तं प्रणम्य प्रवक्ष्यामि पुराणं पद्मसंज्ञकम् ॥१९॥
पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं ।
विद्याधारं विपुलमतिदं वेदवेदान्तवेद्यम् ॥२०॥
शश्वच्छान्तं स्वमतिविषयं शुद्धतेजो विशालं ।
वेदव्यासं विततयशसं सर्वदाऽहं नमामि ॥२१॥
तत्राऽऽदौ सृष्टिखण्डं स्याद् भूमिखण्डं ततः परम् ।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च चतुर्थं ब्रह्मखण्डकम् ॥२२॥
पातालं पञ्चमं खण्डं षष्ठमुत्तरमेव च ।
क्रियाखण्डं सप्तमं स्यादित्येवं खण्डसप्तकम् ॥२३॥
यस्मात्सर्वप्रयत्नेन पाद्मं शृणुत मन्मुखात् ।
तत्रा दिखण्डं वक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ।
शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सशिष्यास्त्वत्र ये स्थिताः ॥२४॥

सूत जी ने कहा—हे महा भागो ! आप लोग तो परम तपस्वी हैं आपने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न पूछा है । उसको प्रणाम करके अब हम पद्म नाम वाला पुराण आप लोगों को बतलाता हूँ ॥ १९ ॥ पराशर मुनि के पुत्र, परम पुरुष विश्व वेद के एक योनि अर्थात् समुत्पत्ति स्थान, विद्या के आधार, विपुल बुद्धि प्रदान करने वाले, वेदों और वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य निरन्तर शान्त स्वरूप वाले, अपनी मति के अनुसार विषय वाले, शुद्ध तेज से विशाल, वितत यश वाले श्री वेद व्यास भगवान् को मैं सर्वदा प्रणाम करता हूँ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ इस पद्म पुराण में सबसे

आदि मे जो खण्ड है उसका नाम सृष्टि खण्ड है। इसके पश्चात् दूसरा खण्ड भूमि खण्ड नाम से विख्यात है। तृतीय खण्ड का नाम स्वर्ग खण्ड है तथा चौथा खण्ड ब्रह्म-खण्ड नाम से प्रसिद्ध है॥ २२॥ पञ्चम खण्ड का नाम पाताल खण्ड है। छठा उत्तर खण्ड है सातवें खण्ड का नाम क्रिया खण्ड है। इस प्रकार से कुल सात खण्ड है॥ २३॥ इस लिये सब प्रयत्नों से मेरे मुख के द्वारा इस पद्म पुराण का आप सब लोग अब श्रवण करें। अब सब से पूर्व मैं आदि खण्ड को बतलाता हूँ जो परम पुण्यमय तथा सम्पूर्ण पापो का नाश करने वाला है। हे मुनिगण! आप सभी लोग जो शिष्यों के सहित यहाँ पर स्थित है इस पद्म पुराण को सुनो॥ २४॥

—:※※:—

॥ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति ॥

आदिसर्गमहं तावत्कथयामि द्विजोत्तमा। ।
ज्ञायते तेन भगवान्परमात्मा सनातनः ॥१॥
जगत प्रलयादूर्ध्वंनासीत्किञ्चिद् द्विजोत्तमाः।
ब्रह्मसन्नमभूदेक ज्योतिर्वै सर्वकारकम् ॥२॥
नित्य निरञ्जनं शान्तं निर्मलं नित्य निर्मलम्।
आनन्दसागरं स्वच्छ यत्काङ्क्षन्ति मुमुक्षवः ॥३॥
सर्वज्ञं ज्ञानरूपत्वादनन्तमजमव्ययम्।
अविनाशि सदास्वच्छमच्युतं व्यापकं महत् ॥४॥
सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वा तज्ज्ञानरूपकम्।
आत्मलीनं विकारं च तत्स्रष्टुमुपचक्रमे ॥५॥
तस्मात्प्रधानमुद्भूत ततश्चाऽपि महानभूत्।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ॥६॥

श्री सूत जी ने कहा— हे द्विजोत्तमो ! मैं अब आदि सर्ग का वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा सनातन भगवान् परमात्मा का ज्ञान होता है ॥ १ ॥ हे श्रेष्ठ द्विजगण ! इस जगत् के प्रलय के पूर्व कुछ भी नहीं था । केवल एक ब्रह्म संज्ञा वाली सब कुछ को करने वाली ज्योति ही थी ॥ २ ॥ वह ब्रह्मात्मक ज्योति नित्य थी, निरञ्जन, परम शान्त, निर्मल और सर्वदा निर्मल आनन्द सागर अर्थात् आनन्द से पूर्णत परिपूर्ण और नितान्त स्वच्छ थी, जिसकी मोक्ष की कामना रखने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते है ॥ ३ ॥ उस ब्रह्म नामक ज्योति के स्वरूप को बतलाते हुए कहते है कि वे सर्वज्ञ हैं, उनका स्वरूप ज्ञान रूप है, वह ऐसा है जिसका कभी भी अन्त ही नहीं होता है । अजन्मा है और अव्यय है अर्थात न तो उसका जन्म ही हुआ और न उसका नाश का क्षण ही होता है विनाश रहित है । सदा सर्वदा स्वच्छ है और च्युति से शून्य है । सर्व व्यापक है एव महान है ॥ ४ ॥ जिस समय मे इस विशाल विश्व का सृजन करने का समय उपस्थित होता है अर्थात जब भी उसकी इच्छा ऐसी होती है कि विश्व जगत् को समुत्पन्न किया जावे तो वही ब्रह्मात्मक ज्योति जिसका कि केवल ज्ञान ही स्वरूप है अपने आपमे लीन विकारो को जानकर इस विश्व की रचना करने का उपक्रम किया करती है ॥ ५ ॥ उस समय में उस ब्रह्म से प्रधान उत्पन्न होता है, उस अव्यक्त प्रधान से महत् होता है जो महत् तीन प्रकार का होता है—सात्विक, राजस और तामस ये तीन उसके भेद हैं । जिसमें सत्वगुण होता है वह सात्विक, रजोगुण होता है वह राजस और तमोगुण होता है वह तामस कहा जाता है । इसी का नाम त्रिगुणात्मिका प्रकृति कहा जाता है ॥ ६ ॥

प्रधानेनावृतो ह्येव त्वचाबीजमिवावृतम् ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ॥७॥

त्रिविधोऽयमहङ्कारो महत्तत्त्वादजायत ।
यथाप्रधानेन महान्महता स तथावृत. ॥८
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रक ततः ।
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाश शब्दलक्षणम् ॥६
शब्दमात्रं तथाकाश भूतादिः सममावृणोत् ।
शब्दमात्रं तथाऽऽकाश स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥१०
वलवानभवद्वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ।
आकाश शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥११
ततोवायुर्विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह ।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥१२
स्पर्शमात्रस्तु वै वायूरूपमात्र समावृणोत् ।
ज्योतिश्चापि विकुर्वाण रसमात्र ससर्ज ह ॥१३
सम्भवन्ति ततोऽम्भासि रसमात्राणि तानि तु ।
रसमात्राणि चाम्भासि रूपमात्र समावृणोत् ॥१४

इस रीति से यह अहकार तीन प्रकार का है जो उस महत्तत्व से समुत्पन्न होता है । ब्रह्म से प्रधान, प्रधान से महत्, महत् से अहंकार की उत्पत्ति उस सृजन के समय मे हुआ करती है । जिस तरह प्रधान से महत् आवृत होता है वैसे ही महत् से अहङ्कार समावृत हुआ करता है ॥८॥ यह फिर भूतादि की विकृति को करता हुआ सबसे पूर्व शब्द-तन्मात्रा को उत्पन्न किया करता है । शब्दतन्मात्रा से शब्द ही जिसका गुण या लक्षण है उस आकाश का सृजन करता है ॥६॥ भूतादि शब्द तन्मात्रा तथा आकाश को समावृत करता है । शब्दतन्मात्रा तथा आकाश स्पर्श तन्मात्रा का सृजन करते हैं ॥१०॥ वायु बहुत बलवान् है और स्पर्श ही प्रधान गुण होता है—ऐसा माना गया है । आकाश,शब्दतन्मात्रा को समावृत करता है ॥११॥ फिर विकार को प्राप्त हुआ वायु रूप तन्मात्रा का सृजन किया करता है । उस वायु मे ज्योति की समुत्पत्ति होती है जिसमे गुण रूप ही होता है ॥१२॥ स्पर्श तन्मात्रा और वायु रूप तन्मात्रा को समावृत्त किया करता है । फिर ज्योति विकृत होता

हुआ रसतन्मात्रा का सृजन किया करता है। इसके अनन्तर जल की समुत्पत्ति होती है। जिस का गुण केवल रस ही होता है। रस तन्मात्रा और जल रूप तन्मात्रा को समावृत किया करते हैं ॥१३-१४॥

विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे।
तस्माज्जाता मही चेयं सर्वभूतगुणाधिका ॥१५
ससघातोयतस्तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः।
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रात्तेन तन्मात्रता स्मृता ॥१६
तन्मात्राण्यविशेषाणि विशेषाः क्रमशोऽपराः।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् ॥१७
कीर्तितस्तुसमासेन मुनिवर्यास्तपोधनाः।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥१८
एकादशं मनश्चात्र कीर्तितं तत्वचिन्तकैः।
ज्ञानेन्द्रियाणिपञ्चाऽत्रपञ्चकर्मेन्द्रियाणि च ॥१९
तानि वक्ष्यामि तेषां च कर्माणि कुलपावनाः।
श्रवणं त्वक्चक्षुर्जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ॥२०

विकार को प्राप्त होता हुआ जल गन्ध तन्मात्रा का सृजन करता है उस गन्धतन्मात्रा से इस पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। यह सब भूतों के गुणों वाली अधिक होती है। जिससे यह सघात होता है उसका गुण गंध ही बतलाया गया है। उस-उसमें जो तन्मात्राऐं होती हैं वे उस-उसी से समावृत हुआ करती हैं ॥१५-१६॥ ये तन्मात्राऐं अविशेष हैं और विशेष दूसरे क्रम से होते हैं। यह भूत तन्मात्राओं का सर्ग तामस अहंकार से बताया गया है ॥१७॥ हे मुनिवरो! आप तो तप के ही धन वाले परम तपस्वीजन हैं मैं संक्षेप में बतलाता हूँ कि ये इन्द्रिया तैजस होती हैं और इनके वैकारिक दश अधिष्ठातृ देवता होते हैं ॥१८॥ जो तत्वों के चिंतन करने वाले महा पुरुष विद्वज्जन हैं वे यहा पर दश इन्द्रियों के अतिरिक्त ग्यारहवा मन बतलाया गया है। इन दश इन्द्रियों में पाँच इन्द्रियों को ज्ञानेद्रियाँ कहा जाता है क्योंकि उनके द्वारा भिन्न ज्ञान का अनुभव होता है और पाँच कर्मेंद्रियाँ

कही जाती है क्योकि उन से केवल कर्म्म ही किया जाता है ॥१९॥ अब हम उन सम्पूर्ण इन्द्रियो को बतलाते हैं तथा उनके हे कुल पावनो ! कर्म्मों को भी बतलाया जाता है। श्रवण-त्वचा-चक्षु-और नासिका ये पाच ज्ञानेन्द्रियां होती है ॥२०॥

शब्दादिज्ञानसिद्धयर्थं बुद्धियुक्तानि पञ्च वै ।
पायूपस्थ हस्तपादौ कीर्तिता वाक्चपंचमी ॥२१
विसर्गानन्दनादानगत्युक्तिकर्म तत्स्मृतम् ।
आकाशवायुतेजासि सलिल पृथिवी तथा ॥२२
शब्दादिभिगुर्णैविप्राः सयुक्ता उत्तरोत्तरैः ।
नानावीर्या. पृथग्भूतास्ततस्ते सहति विना ॥२३
नाशक्नुवन्प्रजा. स्रष्टुमसमागत्य कृत्स्नशः ।
समेत्यान्योऽन्य सयोगपरस्परमथाश्रयात् ॥२४
एकसङ्घातलक्ष्याश्च सम्प्राप्ययमशेषत: ।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानाऽनुग्रहेण च ॥२५
महदादयो विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ।
तत्क्रमेण विवृद्ध तु जलबुद्बुदवत्सदा ॥२६
भूतेभ्योऽण्ड महाप्राज्ञा वृद्ध तदुदकेशयम् ।
प्राकृत ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम् ॥२७
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः ।
ब्रह्मरूप समास्थाय स्वयमेव व्यवस्थितः ॥२८

शब्द आदि के ज्ञान की सिद्धि के लिये ही ये बुद्धि से युक्त पाँच ज्ञानेन्द्रिया होती हैं अब पाँच कर्मेन्द्रियो के नाम बताते हैं—पायु (गुदा)-उपस्थ (जननेन्द्रिय)—हाथ—पैर और पाँचवी कर्मेंद्रिय वाणी है ॥२१॥ इन पाँचो के भिन्न २ कर्म हैं। पायु का कर्म है मल का त्याग करना, उपस्थ का कर्म है आनद प्राप्त करना, हाथो का कर्म्म वस्तुओ का आदान करना, पैरो का कर्म गमन करना और वाक् कर्मेन्द्रिय का कर्म बोल कर हृदय के भावनाओं को व्यक्त करना होता है। आकाश वायु तेज, जल और पृथ्वी ये पाँचो हे विप्रगण! शब्दादि उत्तरोत्तर गुणों

ये संयुक्त हुआ करते हैं। जब ये पृथक्स्वरूप वाले होते हैं तो संहति के बिना अनेक प्रकार के वीर्य वाले हुआ करते हैं। पूर्णतया ये यहा समुत्पन्न होकर भी प्रजा का सृजन करने में समर्थ नहीं होते हैं। सब आपस में मिलकर एक दूसरे के साथ संयोग प्राप्त करके आश्रय ग्रहण किया करते हैं और एक संघ वाले तथा एक ही लक्ष्य वाले पूर्ण तथा प्राप्त होकर ही पुरुष के अधिष्ठाता होने पर तथा प्रधान के अनुग्रह को प्राप्त कर महत् आदि विशेष पर्यन्त ये सब अण्ड की उत्पत्ति किया करते हैं। तात्पर्य यह है कि केवल प्रधान, महत्, अहङ्कार, पाचतन्मात्रा, पाँच भूत कुछ भी सृजन की सामर्थ्य नहीं रखते हैं जब सब का सघ बन जाता है और पुरुष सब पर अधिष्ठाता होता है तभी इस जगत् का सृजन होता है, वह अण्ड जो आरम्भ में उत्पन्न हुआ है वह सदा जल के बुदबुदे के समान विशेष वृद्ध होता है ॥२२-२६॥ हे महाप्राज्ञो ! भूतों से वह अण्ड वृद्ध होता है और उदक में उसका आश्रय रहता है। ब्रह्म के स्वरूप वाले भगवान् विष्णु का यह अत्युत्तम प्राकृत स्थान है ॥२७॥ वहा पर अव्यक्त स्वरूप वाला यह विष्णु विश्व का स्वामी प्रभु ब्रह्मा रूप मे समास्थित होकर स्वय ही उसमें व्यवस्थित होते हैं ॥२८॥

स्वेदजाण्डमभूत्तस्य जरायुश्च महीधराः ।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्याभून्महदात्मनः ॥२९
साद्रिद्वीपसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसङ्ग्रहः ।
तस्मिन्नण्डेऽभवत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३०
अनादिनिधनस्यैव विष्णोर्नाभेः समुत्थितम् ।
यत्पद्मं तद्धैममण्डमभूच्छ्रीकेशवेच्छया ॥३१
रजोगुणधरो देवः स्वयमेव हरि परः ।
ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्स्रष्टुं प्रवर्तते ॥३२
सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना ।
नारसिंहादिरूपेण रुद्ररूपेण संहरेत् ॥३३
स ब्रह्मरूपं विसृजन्महात्मा जगत्समस्तं परिपातुमिच्छन् ।
रामादिरूपं स तु गृह्य पाति बभूव रुद्रो जगदेतदत्तुम् ॥३४

उसके स्नेहज अण्ड हुए थे और जरायु महीधर थे। समुद्र गर्भोदक थे इस प्रकार से महत् के स्वरूप वाले उसके ये सब हुए थे ॥२९॥ अद्रि–द्वीप और समद्र के सहित वह ज्योति लोको का संग्रह था और उस अण्ड में ही देव-असुर तथा मानव सभी हुए थे ॥३०॥ जिसका न तो कोई आदि अर्थात् आरम्भ काल है और न जिसका कभी निधन अर्थात् अन्त काल ही होता है। तात्पर्य यह है कि वह सर्वदा एक रस एवं नित्य है उस भगवान् विष्णु के नाभि से उसे हुआ जो पद्म है वही भगवान् केशव की इच्छा से हैम पिण्ड होगया था ॥३१॥ रजोगुण धारक परात्पर हरि स्वयं ही ब्रह्म का स्वरूप धारण करके उस समय में समास्थित और सृजन में प्रवृत्त हुए थे।३२। उन्होंने इसका सृजन किया था और जब तक कल्पों की विकल्पना रही युगों के अनुरूप इसका पालन आदि सब क्रिया किया करते हैं। जब इच्छा होती है तो नारसिंह स्वरूप से या रुद्र रूप से वही इसका संहार भी कर दिया करते है ॥३३॥ वही महान् आत्मा वाले प्रभु ब्रह्मरूप का विसर्जन करते हुए इस सम्पूर्ण जगत् का परिपालन करने की इच्छा किया करते हैं तो वही श्रीराम आदि का स्वरूप ग्रहण करके इसका संरक्षण एवं पोषण किया करते हैं। इसको समाप्त करने के लिये वह ही रुद्र रूप वाले होगये थे ॥३४॥

॥ द्वीप-विभाग वर्णन ॥

नदीना पर्वतानां च नामधेयानि सर्वशः ।
तथा जनपदाना च ये चान्ये भूमिमाश्रिताः ॥१

प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्याः किल सर्वतः ।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सत्तम ॥२

पञ्चेमानि महाप्राज्ञ महाभूतानि सङ्ग्रहात् ।
जगतीस्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥३

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषा भूमिः प्रधानतः ॥४
शब्दः स्पर्शश्च रूप च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥५
चत्वारोऽप्सु गुणा विप्रा गन्धस्तत्र न विद्यते ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ॥६
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव च ।
एते पञ्च गुणा विप्रा महाभूतेषु पञ्चसु ॥७

ऋषियो ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आप तो सभी का प्रमाण जानते हैं अतएव नदियो का, पर्वतो का सब का नाम तथा जन पदों के नाम और जो भी अन्य इस भूमि पर समाश्रित हैं उनके नाम तथा उन सबका प्रमाण एव जो भी इस भूमि पर कानन हैं उनके नाम सभी कुछ पूर्णतया वर्णन करने की कृपा करें ॥१-२॥ श्री सूतजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! ये पाच महाभूत हैं । इनके सग्रह से मनीषीगण जगत् मे जो भी कुछ स्थित है उन सभी को समान कहा करते हैं ॥३॥ पृथ्वी-जल-वायु अग्नि और आकाश ये ही पाच महाभूत है । ये सब गुणोत्तर हैं । उनमे भूमि प्रमुख है ॥४॥ तत्वो के वेत्ता ऋषि वृन्द ने शब्द-स्पर्श-रस-रूप और पाँचवाँ गन्ध ये गुण भूमि के बतलाये हैं ॥५॥ इन उपर्युक्त गुणो मे चार गुण जल मे भी होते है किन्तु हे विप्रगण ! उस जल मे गन्ध (गुण) नही होता है । तेज मे शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण होते हैं । वायु मे शब्द और स्पर्श ये दो ही गुण होते हैं रूप-रस और गन्ध ये तीन गुण नहीं होते हैं । आकाश मे तो इन पाँच गुणो मे से केवल एक ही शब्द गुण हुआ करता है । इस तरह से इन पाच महाभूतो में ये पाच गुण हे विप्रवृन्द ! रहा करते हैं ॥६-७॥

वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ।
अन्योन्य नातिवर्तन्ते साम्य भवति वै तदा ॥८
यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम् ।
तदादेहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा ॥९

आनुपूर्व्या विनिश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वश. ।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषा रूपमैश्वरम् ॥१०
यत्र यत्र हि दृश्यन्ते धावन्ति पाञ्चभौतिका: ।
तेषामनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥११
अचिन्त्याः खलु ये भावास्तान्न तर्केण साधयेत् ।
सुदर्शन प्रवक्ष्यामि द्वीप तु मुनिपुङ्गवा ॥१२
परिमण्डलो महाभागा द्वीपोऽसौ चक्रसस्थित: ।
नदीजलपरिच्छिन्न. पर्वतैश्चाब्धिसन्निभैः ॥१३
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ।
वृक्षै पुष्पफलोपेतै. सम्पन्नो धनधान्यवान् ॥१४
लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारित ।
यथा हि पुरुष पश्येदादर्शे मुखमात्मनः ।१५
एव सुदर्शनो द्वीपो दृश्यते चक्रमण्डल ।
द्विरशे पिप्पलस्तस्य द्विरशे च शशो महान् ॥१६
सर्वौषधी समादाय सर्वत परिवारित. ।
आपस्ततोऽन्या विज्ञेया शेप: सक्षेप उच्यते ॥१७

जिन समस्त लोकों मे ये महाभूत प्रतिष्ठित रहते हैं जब ये अन्योन्य का अतिवर्त्तन किया करते हैं उस समय मे साम्य होता है। और जब ये परस्पर मे विषयी भाव मे आविष्ट होते हैं उस समय मे देह वाले देहों के द्वारा व्यतिरोहण किया करते हैं इससे अन्यथा नहीं किया करते हैं ॥ ८-६ ॥ ये आनुपूर्वी से विनष्ट होते हैं और आनु पूर्वश ही समुत्पन्न हुआ करते हैं। ये सभी अपरिमेय होते हैं जो इनका ईश्वरीय रूप ही होता है ॥१०॥ जहाँ-जहाँ पर ये दिखलाई दिया करते हैं वहा पर ही पञ्च (भूत) भौतिक दौड़ा करते हैं अतएव मनुष्य उनका तर्क से ही प्रमाण कहा करते हैं ॥११॥ वस्तुत ये समस्त भाव ऐसे हैं जिनका चिन्तन नहीं किया सकता है अतएव ऐसे अचिन्त-नीय भावों को तर्क से कभी भी सिद्ध नहीं करना चाहिए। हे मुनियों मे परमश्रेष्ठो! अब मैं आप लोगों के सामने सुदर्शन द्वीप के विषय

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च ।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥४
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
भूमेरेते गुणा प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥५
चत्वारोऽप्सु गुणा विप्रा गन्धस्तत्र न विद्यते ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः ॥६
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव च ।
एते पञ्च गुणा विप्रा महाभूतेषु पञ्चसु ॥७

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आप तो सभी का प्रमाण जानते हैं अतएव नदियों का, पर्वतों का सब का नाम तथा जनपदों के नाम और जो भी अन्य इस भूमि पर समाश्रित हैं उनके नाम तथा उन सबका प्रमाण एवं जो भी इस भूमि पर कानन हैं उनके नाम सभी कुछ पूर्ण-तया वर्णन करने की कृपा करें ॥१-२॥ श्री सूतजी ने कहा—हे महा-प्राज्ञ ! ये पाँच महाभूत हैं। इनके संग्रह से मनीषीगण जगत् में जो भी कुछ स्थित हैं उन सभी को समान कहा करते हैं ॥३॥ पृथ्वी-जल-वायु अग्नि और आकाश ये ही पाँच महाभूत हैं। ये सब गुणोत्तर हैं। उनमें भूमि प्रमुख है ॥४॥ तत्त्वों के वेत्ता ऋषि वृन्द ने शब्द-स्पर्श-रस-रूप और पाँचवाँ गन्ध ये गुण भूमि के बतलाये हैं ॥५॥ इन उपर्युक्त गुणों में चार गुण जल में भी होते है किन्तु हे विप्रगण ! उस जल में गन्ध (गुण) नहीं होता है। तेज में शब्द, स्पर्श और रूप ये तीन गुण होते हैं। वायु में शब्द और स्पर्श ये दो ही गुण होते हैं रूप-रस और गन्ध ये तीन गुण नहीं होते हैं। आकाश में तो इन पाँच गुणों में से केवल एक ही शब्द गुण हुआ करता है। इस तरह से इन पाँच महाभूतों में ये पाँच गुण हे विप्रवृन्द ! रहा करते हैं ॥६-७॥

वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ।
अन्योन्यं नातिवर्तन्ते साम्यं भवति वै तदा ॥८
यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम् ।
तदादेहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा ॥९

आनुपूर्व्या विनिश्यन्ति जायन्ते चानुपूर्वश ।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषा रूपमैश्वरम् ।।१०
यत्र यत्र हि दृश्यन्ते धावन्ति पाञ्चभौतिका ।
तेषामनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ।।११
अचिन्त्या खलु ये भावास्तान्न तर्केण साधयेत् ।
सुदर्शन प्रवक्ष्यामि द्वीप तु मुनिपुङ्गवा ।।१२
परिमण्डलो महाभागा द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थित ।
नदीजलपरिच्छिन्न पर्वतैश्चाब्धिसन्निभैः ।।१३
पुरैश्चविविधाकारैरम्यैर्जनपदैस्तथा ।
वृक्षै पुष्पफलोपेतै सम्पन्ना धनधान्यवान् ।।१४
लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारित ।
यथा हि पुरुप पश्येदादर्शे मुखमात्मन ।१५
एव सुदशनो द्वीपो दृश्यते चक्रमण्डल ।
द्विरशे पिप्पलस्तस्य द्विरशे च शशो महान् ।।१६
सर्वौषधी समादाय सर्वत परिवारित ।
आपस्ततोऽन्या विज्ञेया शेष सक्षेप उच्यते ।।१७

जिन समस्त लोको मे ये महाभूत प्रतिष्ठित रहते हैं जब ये अन्योन्य का अतिवर्तन किया करते हैं उस समय मे साम्य होता है। और जब ये परस्पर म विषयी भाव मे आविष्ट होते हैं उस समय मे देह वाले देहो के द्वारा व्यतिरोहण किया करते हैं इससे अन्यथा नही किया करते हैं ॥ ८ ९ ॥ ये आनुपूर्वी से विनष्ट होते हैं और आनु पूवश ही समुत्पन्न हुआ करते हैं। ये सभी अपरिमेय होते हैं सो इनका ईश्वरीय रूप ही होता है ।।१०।। जहा–जहा पर ये दिखलाई दिया करते हैं वहा पर ही पञ्च (भूत) भौतिक दौडा करते हैं अतएव मनुष्य उनका तर्क से ही प्रमाण कहा करते हैं ।।११।। वस्तुत ये समस्त भाव ऐसे हैं जिनका चिन्तन नहीं किया सकता है अतएव ऐसे अचिन्त- नीय भावो को तर्क से कभी भी सिद्ध नहीं करना चाहिए। हे मुनियो मे परमश्रेष्ठो ! अब मैं आप लोगो के सामने सुदर्शन द्वीप के विषय

मे बतलाता हूँ। हे महान् भागवालो ! यह द्वीप परिमण्डल स्वरूप होती है और चक्र मे संस्थित है। यह नदियों के जल से परिच्छिन्न होता है तथा अब्धि के सदृश पर्वतो से एव विविध भाति के आकार प्रकार वाले नगरो से और परम सुन्दर जनपदो से, पुष्पो एव फलो से युक्त वृक्षो से यह द्वीप भली भाँति युक्त होता है एव धन और धान्य वाला होता है ॥१२-१४॥ क्षार समुद्र से चारो ओर से यह द्वीप घिरा हुआ है जिस प्रकार से कोई पुरुष शीशा मे अपना मुख देखता है इसी प्रकार का यह सुदर्शन द्वीप चक्रमण्डल दिखलाई दिया करता है। इसके दो अशो मे पिप्पल है और दो अशो मे महान् शश होता है। सर्वोषधी को लाकर सभी ओर यह परिवारित रहता है। इससे अन्य जल जानना चाहिए ॥१५-१७॥

—————

॥ भारतवर्ष के पर्वत और नदी ॥

यदिद भारत वर्ष पुण्य पुण्यविधायकम् ।
ततसर्व न समाचक्ष्व त्व हि नो बुद्धिमान्मतः ॥१
अत्र वः कीर्त्तयिष्यामि वर्ष भारतमुत्तमम् ।
प्रियमित्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ॥२
पृथोश्च प्राज्ञो वै न्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मन. ।
ययातेरम्बरीपस्य मान्धातुर्नहुपस्य च ॥३
तथैव मुचुकुन्दस्य कुबेरोशीनरस्य च ।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥४
कुशिकस्यैव राजर्षेर्गाधेश्चैव महात्मन ।
सोमस्य चैव राजर्षेर्दिलीपस्य तथैव च ॥५
अन्येपा च महाभागाः क्षत्रियाणा बलीयसाम् ।
सर्वेपामेव भूताना प्रिय भारतमुत्तमम् ॥६

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप तो हम सब के द्वारा परम बुद्धिमान् माने गये हैं। जो यह भारत वर्ष परम पुण्यमय माना गया है

और पुण्य का करने वाला भी है तो आप कृपा कर यह सब को बतला देने का कष्ट करें ॥१॥ सूतजी ने कहा—अब मैं इस भारत वर्ष के विषय में आपको सुनाता हूँ। यह भारत परम उत्तम वर्ष है। प्रियमित्र देव-वैवस्वत मनु-पृथु-इक्ष्वाकु जो महान् आत्मा वाला एवं प्राज्ञ था-ययाति अम्बरीष- मान्धाता-नहुष-मुचुकुन्द-कुबेर-उशीनर-ऋषभ-ऐल-नृग नृपति-राजर्षि कुशिक-गाधि महात्मा-सोम-राजर्षि दिलीप इनके अतिरिक्त महान् बलशाली अन्य क्षत्रियगण हैं महान् भाग्य वाले ! यह भारत वर्ष सभी का परम प्रिय एवं उत्तम है ॥२-६॥

ततो वर्षं प्रवक्ष्यामि यथाश्रुतमहो द्विजाः।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षवानपि ॥७
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः।
तेषां सहस्रशो विप्राः पर्वतास्ते समीपतः ॥८
अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रमानवः।
अन्ये तु ये परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ॥९
आर्यम्लेच्छसधर्माणस्ते मिश्राः पुरुषद्विजाः।
नदीं पिबन्ति विमलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ॥१०
गोदावरी नर्मदां च वहुदां च महानदीम्।
शतद्रु चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ॥११
दृषद्वतीं विपाशां च विपाशां स्वच्छवालुकाम्।
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णां वेणीं च निम्नगाम् ॥१२
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि।
वेदस्मृतिं वेदशिरां त्रिदिवां सिन्धुलाकृमिम् ॥१३
करीषिणीं चित्ररहां त्रिसेनां चैव निम्नगाम्।
गोमतीधूतपापां च चन्दनां च महानदीम् ॥१४

हे द्विजवृन्द ! इसलिये मैं अब भारत वर्ष के विषय में वर्णन करूँगा और यही बातें इस सम्बन्ध में आप लोगों को बताता हूँ जैसा मैंने श्रवण किया है। महेन्द्र-मलय-सह्य-शक्तिमान्-ऋक्षवान्-विन्ध्य-पारियात्र-ये सात यहाँ पर कुल पर्वत हैं। हे विप्रो ! उन पर्वतों के समीप में और भी

सहस्रो पर्वत हैं ॥७-८॥ ऐसे बहुल से पर्वत भी हैं जो ज्ञात नहीं हैं किन्तु सार वाले हैं और जिनकी चोटियां अद्भुत प्रकार की हैं। और दूसरे जो परिज्ञात भी हैं वे छोटे हैं तथा ह्रस्वोपजीवी हैं ॥९॥ आर्य, म्लेच्छ सधर्मा वे हैं तथा पुरुष एवं द्विज मिश्र हैं जो विमला गंगा का पान किया करते हैं। नदियों के शुभ नाम बतलाये जाते हैं—गंगा-सिन्धु-सरस्वती-गोदावरी नर्मदा ये बहुत प्रदान वाली महानदी हैं। शतद्रु-चन्द्रभागा-यमुना-ये भी महानदी हैं ॥९-११॥ दृषद्वती वितस्ता-विपाशा- इनकी वालुकायें बहुत ही स्वच्छ हैं। वेत्रवती-कृष्णा-वेणी ये नदियाँ बहुत गहरी बहने वाली हैं ॥१२॥ इरावती-वितस्ता-पयोष्णी देविका-वेदस्मृति- वेदशरा-त्रिदिवा- सिन्धुलाकृमि- करीषिणी- चित्रवहा-त्रिसेना-गोमती-धूतपापा और चन्दना ये भी महानदियां हैं ॥१३-१४॥

कौशिकी त्रिदिवा हृद्या नाचिता रोहितारणीम ।
रहस्या शतकुम्भा च सरयू च द्विजोत्तमा ॥१५
चर्मण्वती वेत्रवती हस्तिसोमा दिश तथा ।
शरावती पयोष्णी च भीमा भीमरथीमपि ॥१६
कावेरी चुलुका चापि तापी शतमलामपि ।
नीवारा महिला चापि सुप्रयोगा तथा नदीम् ॥१७
पवित्रा कृष्णला सिन्धु वाजिनी पुरमालिनीम् ।
पूर्वाभिरामा वीरा च भीमा मालावती तथा ॥१८
पलाशिनी पापहरा महेन्द्रा पाटलावतीम् ।
करिषिणीमसिक्नी च कुशचीरों महानदीम् ॥१९
मरता प्रवरा मेना हेमा घृतवती तथा ।
अनावतीमनुष्णा च सैव्या कापी च सत्तमाः ॥२०
सदावीरामधृष्या च कुशचीरा महानदीम् ।
रथचित्रा ज्योतिरथा विश्वामित्रा कपिञ्जलाम् ॥२१

कौशिकी-त्रिदिवा-नाचिता-हृद्या-रोहितारणी-रहस्या-शतकुम्भा-सरयु चर्मण्वती -वेत्रवती-हस्तिसोमादिशा-शरावती- पयोष्णी-भीमा -भीमरथी-कावेरी-चुलुका-तापी-शतमला-नीवारा-महिला-सुप्रयोगा-पवित्रा- कृष्णला-

सिन्धु-वाजिनी-पुरमालिनी-पूर्वाभिरामा-वीरा-भीमा-मालावती-पलाशिनी-पापहरा-महेन्द्रा पाटलावती-करिषिणी-असिक्नी-कुशचीरी-मरुता-महानदी प्रवरा-मेना-हेमा-घृतवती-अनावती-अनुष्णा-सेव्या-कापी-सदावीरा-अघृष्या कुशचीरा- रथचित्रा-ज्योतिरथा-विश्वमित्रा-कपिञ्जला ये सब नदियाँ हैं ॥१५-२१॥

उपेन्द्रा बहुला चैव कुचीरामम्बुवाहिनीम् ।
वैनन्दी पिङ्गला वेणा तुङ्गवेगा महानदीम् ॥२२
विदिशा कृष्णवेणा च ताम्रा च कपिलामपि ।
धेनुं सकामा वेदस्वा हविःस्रावा महापथाम् ॥२३
क्षिप्रा च पिच्छला चैव भारद्वाजी च निम्नगाम् ।
कौशिकी निम्नगा शोणा बाहुदामथ चन्द्रमाम् ॥२४
दुर्गामन्तः शिला चैव ब्रह्ममेध्या दृषद्वतीम् ।
परोक्षामथरोही च तथा जम्बूनदीमपि ॥२५
सुनासा तमसा दासी सामान्या वरणामसिम् ।
नीला धृतिकरी चैव पर्णाशा च महानदीम् ॥२६
मानवी वृषभा भासा ब्रह्ममेध्या दृषद्वतीम् ।
एताश्चान्याश्च बहुला महानद्यो द्विजर्षभा ॥२७
सदा निरामया कृष्णा मन्दगा मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणी च महागौरी दुर्गामपि च सत्तमाः ॥२८

उपेन्द्रा-बहुला- कुचीरा- अम्बुवाहिनी-वैनन्दी- पिंगला-वेणा-तुंगवेगा महानदी-विदिशा-कृष्णवेणा- ताम्रा-कपिला- धेनु-सकामा- वेदस्वा -हविः स्रावा-महापथा-क्षिप्रा-पिच्छला-भारद्वाजी-कौशिकी-शोणा-बाहुदा-चन्द्रमा दुर्गा-अन्तःशिला-ब्रह्ममेध्या-दृषद्वती-परोक्षा-अथरोही -जम्बूनदी-सुनासा-तमसा-दासी-सामान्या-वरणामसि-नीला-धृतकरी-पर्णाशा-मानवी-वृषभा-भासा-ब्रह्ममेध्या-दृषद्वती-ये नदियां हैं तथा हे द्विजश्रेष्ठो ! इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सी नदियां हैं जोकि बहुत विशाल हैं ॥२२-२७॥ सदा निरामया-कृष्णा-मन्दगा-मन्दवाहिनी-ब्राह्मणी-महागौरी और दुर्गा ये भी नदियाँ हैं ॥२८॥

चित्रोत्पला चित्ररथामतुलां रोहिणी तथा ।
मन्दाकिनी वैतरणी कोका चापि महानदीम् ॥२९
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृपसाह्वयाम् ।
लोहित्या करतोया च तथैव वृपकाह्वयाम् ॥३०
कुमारीमृपितुल्या च मारिया च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनी सुपुण्यां च सर्वा गङ्गा च सत्तमाः ॥३१
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा न नद्यः सुप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥३२
इत्येतास्सरितो विप्राः समाख्याता यथास्मृति ।
अतऊर्द्ध्वं जनपदान्निबोधत वदाम्यहम् ॥३३
तत्रेमे कुरुपाञ्चलाः शाल्वमात्रेयजाङ्गलाः ।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च वौधा मालास्तथैव च ॥३४
मत्स्याः कुशट्टाः सोगन्ध्याः कुत्सपा काशिकोशलाः ।
चेदिमत्स्यकरूपाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥३५

चित्रोपला-चित्ररथा-अतुला-रोहिणी-मन्दाकिनी-वैतरणी-कोका-ये भी महानदियां हैं । शुक्तिमती-अनगा-वृपसाह्वया-लोहित्या-करतोया-वृपकाह्वया-कुमारी-ऋपितुल्या-मारिया-सरस्वती-मन्दाकिनी- सुपुण्या-सर्वा गंगा है श्रेष्ठगण । ये सब नदियाँ इस विश्व की माता हैं और इन समस्त नदियो के महान् फल होते है । कुछ ऐसी नदियाँ भी हैं जिनका भली भाँति प्रकाश ही नही है । ऐसी एक ही नही सैकडो और सहस्रों ही नदियां हैं ॥२९-३२॥ हे विप्रगण ! ये इतनी नदियाँ जो मैंने आप लोगो के सामने बताई हैं वे सभी जैसा भी मुझे स्मरण हो गया है उसी के अनुसार मैंने तुम्हे बता दिया है । अब इसके उपरान्त मैं जनपदो को बतलाता हूँ उनको आप लोग सभी समझलो ॥३३॥ उन जनपदो मे ये नाम हैं—कुरु-पाञ्चाल-शाल्व-आत्रेय-जागल-शूरसेन-पुलिन्द-वोध-माला-मत्स्य-कुशट्ट-सोगन्ध्य-कुत्सप-काशिकोशल-चेदि-मत्स्य-करूप-भोज-सिंधु पुलिन्दका ये जनपदो के नाम हैं ॥३४-३५॥

उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
पञ्चालाः कोशलाश्चैव नैकपृष्ठयुगन्धराः ॥३६

बोधमद्राः कलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः ।
जठराः कुकुराश्चैव सुदशार्णाः सुसत्तमाः ॥३७

कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवापरकुन्तयः ।
गोमन्तामल्लकाः पुण्ड्रा विदर्भा नृपवाहिकाः ॥३८

अश्मकाः सोत्तराश्चैव गोपराष्ट्राः कनीयसः ।
अधिराज्य कुशट्टाश्च मल्लराष्ट्रश्च केरलाः ॥३९

मालवाश्चाह्वास्याश्च चक्रावावत्तालयाः शकाः ।
विदेहा मागधाः सद्मा मलजाविजयास्तथा ॥४०
अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा महिषाः शशकास्तथा ॥४१
बाह्लिकावाटधानाश्च अभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पङ्कुलाश्चर्मचण्डिकाः ॥४२

उत्कल के सहित दशार्ण और मेकल जनपद उत्तम हैं पञ्चाल-कोशल-नैकपृष्ठ-युगन्धर-बोधमद्र-कलिंग-काशि-अपरकाशी-जठर-कुकुर- सुदशार्ण-सुसत्तम-कुन्ति-अवन्ती-अपरकुन्ती-गोमन्त- मल्लक-पुण्ड-विदर्भ-नृप वाहिक ये जनपदो के शुभ नाम हैं।।३६-३८।।अश्मक-सोत्तर-गोपराष्ट्र-कनीयस-अधिराज्य-कुशट्ट- मल्लराष्ट्र-केरल-मालव-अपवास्य-चक्र-वावत्रालय-शक विदेह-मगध- सद्म-मलज- विजय-अ ग-वग- कलिंग- यकृल्लोमान्-मल्ल-सुदेष्ण-प्रह्लाद-महिष- शशक-बाह्लिक-वाटधान-आभीर-कालतोयक–अप-रान्त–परान्त पंकल–चर्मचण्डिक यह सब विभिन्न जनपदो के नाम हैं ॥३९-४२॥

अटवीशेखराश्चैव मेरुभूताश्च सत्तमाः ।
उपावृत्तानुपावृत्ताः सुराष्ट्राः केकयास्तथा ॥४३
कुट्टापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्धाश्च बहवो विप्रा अन्तर्गिर्यस्तथैव च ॥४४

बहिर्गिर्य्योऽङ्गमलदा मगधामालवार्घटाः ।
सत्वतराः प्रावृषेया भार्गवाश्च द्विजर्षभाः ।।४५

पुण्ड्राभार्गाःकिराताश्च सुदेष्णा भासुरास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवानर्तनैर्ऋताः ।।४६

पूर्णलाः पूतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कुषकास्तथा ।
तरिग्रहाश्शूरसेना ईजिकाः कल्पकारणाः ।।४७
तिलभागामसाराश्च मधुमत्ताः ककुन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथाः ।।४८
अभीसाराः कुद्रुताश्च सौरिला वाह्लिकास्था ।
दर्वी च मालवादर्वावातजामरथोरगाः ।।४९

अटवी शेखार–मेरुभूत–उपावृत्त–अनुपावृत्त–सुराष्ट्र–केकय–कुट्टापरान्त–माहेय–कक्ष–सामुद्र–निष्कुट–यह सभी जनपदों के नाम हैं जो प्राचीन काल में इन नामों से विख्यात थे। हे विप्रगण! जो अन्तर्गिरि हैं वे बहुत से अन्धे होते हैं। वहिर्गिरि अंगमलद हैं। मागध मालवार्घट हैं। प्रावृषेय और भार्गव सत्वतर होते है। अर्थात् अधिक सत्व गुण वाले होते हैं।।४३-४५।। पुण्ड्र और भार्ग किरात हैं। सुदेष्ण भासुर होते हैं। शकलोक निषाद होते हैं। निषध लोग आनर्त नैर्ऋत होते हैं। कुन्तल और कुशक पूर्णल तथा पूतिमत्स्य होते हैं। शूरसेन लोग तरिग्रह ईजिक कल्प कारण हैं। ककुन्दक तिलभाग–असार और मधुमत्त होते हैं। काश्मीर-सिन्धु, सौवीर तथा गान्धार दर्शक आभीसार और कुद्रुत हैं। वाह्लिक सौरिल हैं, मालव दर्वावातज और रथोरग हैं।।४६-४९।।

वलरट्टास्तथा विप्राः सुदामानः सुमल्लिकाः ।
वन्धा करीकषाश्चैव कुलिन्दा गन्धिकास्तथा ।।५०
वना यवोदशाः पार्श्वरोमाणः कुशविन्दवः ।
काच्छा गोपालकच्छाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णका ।।५१
किराता बर्बराः सिद्धाःवैदेहास्ताम्रलिप्तिकाः ।
ओड्रम्लेच्छाः ससैरिन्ध्रा पार्वतीयाश्च सत्तमाः ।।५२

अथऽपरे जनपदा दक्षिणा मुनिपुङ्गवाः ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्यामूपिकावालमूविकाः ।।५३
कर्णाटका माहिषका विकन्धा मूषिकास्तथा ।
झल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदानलकानना ।।५४
कौक्कुटकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मणिवालकाः ।
समङ्गाः कनकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिपाः ।।५५
ध्वजिन्युत्सवसङ्केतास्त्रिवर्गा माल्यसेनयः ।
व्यूढकाः कोरकाः प्रोष्ठाः सङ्गवेगधरास्तथा ।।५६

हे विप्रगण ! ये बलरट्ट, सुदामा, सुमल्लिक, बन्ध करीकष, कुलिन्द तथा गन्धिक होते हैं ।।५०।। वन, यवोदश, पार्श्वों मे रोमों वाले और कुशबिन्दु होते है। कच्छ के निवासी काच्छ लोग गोपाल कच्छ होते है। जागल और कुरुवर्णक होते हैं ।।५१।। किरात बर्बर होते हैं। सिद्ध और ताम्र लिप्तिक वैदेह होते हैं। ओड्रम्लेच्छ सैरिन्ध्र के सहित हैं और पर्वतीय अर्थात् पहाड़ो पर निवास करने वाले होते हैं ।।५२।। हे मुनिवर ! अन्य जनपद दक्षिण मे हैं जिनके नाम द्रविड– केरल, प्राच्य मूषिक, बाल मूषिक, कर्णाटक, माहिषिका, विकन्ध, मूषिक, झल्लिक, कुन्तल, सौहृद, अनल कानन, कौक्कुट, चोल, कोकण, मणिवालक, समग, कनक, कुक्कुर-अंगार, मारिष है।।५३-५५।। ध्वजिनी और उत्सवो के सकेत वाले, त्रिवर्ग, माल्यसेनी–व्यूढक-कोरक–प्रोष्ठ तथा सग वेगधारी थे ।।५६।।

तथैव विन्ध्यकलिकाः पुलिन्दा वल्वलैः सह ।
मालवामलराश्चैव तथैवापरवर्तकाः ।।५७
कुलिन्दा कालदाश्चैव चण्डकाकुरटास्तथा ।
मुशलास्तनवालाश्च सतीर्थाः पूतिसृञ्जयाः ।।५८
अनिदायाः शिवाटाश्च तपनाः सूतपास्तथा ।
ऋषिकाश्च विदर्भाश्च स्तङ्गनापरतङ्गकाः ।।५९
उत्तराश्चपरे म्लेच्छा जना हि मुनिपुङ्गवा ।
जवनाश्च सकाङ्गोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ।।६०

सङ्गघृहाः कुलटयाश्च हूणाः पारिसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चान्यास्तथा च दशमालिकाः ॥६१
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।
शूराभीराश्च दरदाः काश्मीराः पशुभिः सह ॥६२
खाण्डीकाश्चतुपाराश्च पचगा गिरिगह्वराः ।
आद्रेयाः सभिरादाजास्तथैव स्तनपोपकाः ॥६३
द्रोपकाश्च कलिङ्गाश्च किराताना च जातयः ।
तोमराहन्यमानाश्च तथैव करभञ्जकाः ॥६४
एते चान्ये जनपदाः प्राच्योदीच्यास्तथैव च ।
उद्देशमात्रेण मया देशाः सङ्कीर्तिता द्विजाः ॥६५
यथागुणबलं चापि त्रिवर्गस्य महाफलम् ॥६६

इस भाँति विन्ध्य कलिक, पुलिन्द, वल्वल, मालव, मलर, और अपर वर्त्तक थे ॥५७॥ कुलिन्द, कालद, चण्डक, कुरट, मुशल, तनवाल मतीर्थ, पूति सृञ्जय, अनिदाय, शिवाट, तपन, सूतप, ऋषिक, विदर्भ, स्तगन, पर तगक हे मुनिश्रेष्ठो ! ये उत्तर थे और दूसरे म्लेच्छ जन थे। उन म्लेच्छ जातियो के नाम ये हैं—यवन और सकाङ्गोज। ये म्लेच्छ अत्यन्त ही दारुण जातियाँ थी ॥५८-६०॥ मङ्गघृह, कुलटय, हूण, पारिसिक, रमण और दश मालिक थे ॥६१॥ क्षत्रियों के उपनिवेश वाले, वैश्य तथा शूद्र कुल थे। शूर, आभीर, दरद, काश्मीर, पशुओ के साथ रहने वाले थे। खाण्डीक, तुपार, पचग, गिरिगह्वर, आद्रेय, सभिरादाज, स्तन पोपक, द्रोपक, कलिङ्ग और किरातो की जातियों वाले थे। तोमर, हन्यमान, कर भञ्जक ये सब जनपद थे जो प्राच्य (पूर्व मे रहने वाले) और उदीच्य (उत्तर दिशा वाले) थे। हे द्विजगण ! मैंने इन देशो तथा उनमे रहने वालो के नाम केवल उद्देश रूप से आप लोगो के समक्ष मे वतला दिये हैं। गुण और बल के अनुसार त्रिवर्ग का महाफल होना है ॥६२-६६॥

।। काल और लोक स्थिति निर्णय ।।

भारतस्यास्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च ।
प्रमाणमायुषः सूत वलं चापि शुभाशुभम् ।।१
अनागतमतिक्रान्तं वर्तमानं च सत्तम ।
आचक्ष्व नो विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ।।२
चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनिपुङ्गवाः ।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च द्विजसत्तमाः ।।३
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं द्विजाः ।
तत्पश्चाद्द्वापरं चाथ ततस्तिष्यः प्रवर्तते ।।४
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मुनिपुङ्गवाः ।
आयुः सङ्ख्या कृतयुगे सङ्ख्याता हि तपोधनाः ।।५
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायामायुषो विदुः ।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ।।६
तत्प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्ये तु मुनिपुङ्गवाः ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ।।७

ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! इस भारत वर्ष का तथा हिमालय का आयु का प्रमाण और बल जो भी शुभ तथा अशुभ हो वह भूत-वर्त्तमान और अनागत हम लोगो को बतलाइये और इसी भाँति हरि वर्ष को भी बतलाइये ।।१-२।। सूतजी ने कहा—इस भारत वर्ष मे हे मुनि-पुगवो ! चार युग होते हैं । उन चारो युगो के नाम—कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये होते है ।।३।। सबसे पहिले कृतयुग (सतयुग) होता है । इसके अनन्तर त्रेता होता । त्रेता की समाप्ति हो जाने पर द्वापर युग आता है फिर इन तीनो के अन्त मे यह तिष्य (कलियुग) आया करता है ।।४।। हे श्रेष्ठ मुनिगण ! कृतयुग मे चार सहस्र वर्ष आयु सख्यात की गई है । तीन सहस्र वर्ष त्रेता मे आयु होती है । द्वापर में दो सहस्र वर्ष की आयु होती है । इस प्रकार से आयु प्राप्त कर इन उपर्युक्त युगों मे इस भूमण्डल मे स्थिति किया करते है । अब आया

चौथा तिष्य (कलियुग) युग इसमे तो हे मुनिवृन्द ! तत्प्रमाण ही स्थिति होती है। इसमे तो गर्भ मे ही मृत्यु हो जाया करती है और उत्पन्न होते ही मर जाते हैं ॥५-७॥

महाबला महासत्त्वाः प्रज्ञागुणसमन्विताः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥८
द्विजाः कृतयुगे विप्रा बलिनः प्रियदर्शनाः ।
प्रजायन्ते च जाताश्च मुनियो वै तपोधनाः ॥९
महोत्साहा महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः ।
प्रियदर्शा वपुष्मन्तो महावीर्य्या धनुर्धराः ॥१०
वीरा हि युधि जायन्ते क्षत्रियाः शूरसंमताः ।
त्रेतायां क्षत्रियास्तावत्सर्वे वै चक्रवर्तिनः ॥११
सर्ववर्णाश्च जायन्ते सदैव द्वापरे युगे ।
महोत्साहा वीर्यवन्तः परस्परवधैषिणः ॥१२
तेजसान्धेन संयुक्ताः क्रोधनाः पुरुषाःकिलः ।
लुब्धाश्चानृतकाश्च व तिष्ये जायन्ति भो द्विजाः ! ॥१३
ईर्ष्या मानस्तथा क्रोधो मायाऽसूया तथैव च ।
तिष्ये भवन्ति भूतानां रागोलोभश्च सत्तमाः ॥१४
संक्षेपो वर्तते विप्रा द्वापरे युगमध्यगे ।
गुणोत्तरं हैमवतं हरिवर्षं ततः परम् ॥१५

महान् बल शाली—विशाल सत्व से सम्पन्न, प्रज्ञा और अनेक गुणो से युक्त सैकड़ो और सहस्रों द्विज कृतयुग मे उत्पन्न हुए और होते हैं,कृतयुग मे विप्र बली,परम प्रिय तथा तप को ही सर्वोत्तम धन मानने वाले मुनिगण उत्पन्न हुए थे तथा समुत्पन्न हुआ करते हैं॥८-९॥यह तो विप्रगण एव मुनि लोगो की उत्पत्ति होती थी इसी भाँति जो क्षत्रिय उत्पन्न होते है वे भी महान् उत्साह से सम्पन्न, महान् उच्च आत्मा वाले, परम धर्म के मानने वाले, सर्वदा सत्य भाषण करने वाले, देखने मे प्रिय लगने वाले, विशाल वपुधारी, महान् वीर्य-पराक्रम से समन्वित, धनुषधारी, शूरों में माने हुए और युद्ध मे परमवीर थे। त्रेतायुग मे जो क्षत्रिय राजा हुए

थे वे सभी चक्रवर्ती राजा थे ॥१०-११॥ द्वापर युग मे सर्वदा ही सब वर्णं वाले समुत्पन्न हुआ करते हैं इनमे बडा भारी उत्साह होता है और ये वीर्य पराक्रम वाले भी हुआ करते हैं किन्तु इनकी मनोवृत्ति ऐसी होती है कि ये परस्पर मे एक दूसरे के वध कर डालने की इच्छा रखा करते हैं ॥१२॥ हे द्विजगण ! इस तिष्य (कलियुग) मे जो पुरुष समुत्पन्न होते हैं वे अन्धे तेज से युक्त होते हैं और बहुत ही अधिक क्रोध वाले होते हैं। ये लोग बहुत अधिक लोभी,मिथ्याभापी हुआ करते हैं ॥१३॥ ईर्ष्या-मान-क्रोध-माया-असूया-राग और लोभ ये अवगुण प्राणियों मे बहुधा कलियुग मे हुआ करते हैं। हे विप्रगण ! युगमध्य मे रहने वाले द्वापर मे सक्षेप होता है ॥गुणोत्तर हैमवत और इसके आगे हरिवर्ष होता है ॥१४-१५॥

॥ पुष्कर तीर्थ माहात्म्य ॥

अनेन तव धर्मज्ञ ! प्रश्रयेण दमेन च ।
सत्येन च महाभाग ! तुष्टोऽस्मि तव सर्वशः ॥१
यस्येदृशस्ते धर्मोऽय पितरस्तारितास्त्वया ।
तेन पश्यसि मा पुत्र याज्यश्चासि ममानघ ॥२
प्रीतिम वर्द्धते तेऽद्य ब्रूहि किं करवाणि ते ।
यद्वदयसि नरश्रेष्ठ ! तस्य दाताऽस्मि तेऽनघ ॥३
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञ सर्वलोकाभिपूजित ।
कृतमित्यव मन्ये हि यदह दृष्टवान्प्रभुम् ॥४
यदित्वहमनुग्राह्यस्तव धर्मभृता वर ।
प्रक्ष्यामि हृत्स्य सन्देह तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥५
अस्ति मे भगवन्कश्चित्तीर्थे यो धर्मसशयः ।
तदह श्रोतुमिच्छामि पृथक्सङ्कीर्तन त्वया ॥६
प्रदक्षिणा यः पृथिवी करोति द्विजसत्तम ! ।
किं फलं तस्य विप्रर्षे ! तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥७

वसिष्ठ महर्षि ने कहा—हे धर्म के ज्ञाता ! हे महान् भाग्य वाले ! आपके इस प्रकार के प्रश्रय-दम और सत्य से मैं सभी तरह से अत्यन्त ही सन्तुष्ट हो गया हूँ ॥१॥ जिस तुम्हारा यह इस तरह का धर्म है तभी तो आपने अपने पितृगण का उद्धार कर दिया है । हे पुत्र ! इसी से तुम मुझे देख रहे हो । तुम तो बिल्कुल ही निष्पाप हो और मेरे भी माज्य हो ॥२॥ तुम मेरी प्रीति को बढ़ा रहे हो अर्थात् मुझे तुम से अत्यधिक प्रेम हो रहा है । अब तुम बोलो कि मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ ? हे नरों में श्रेष्ठ ! तुम जो भी इस समय में बोलोगे अर्थात् मुझसे चाहोगे उसे ही मैं तुमको दूँगा क्यों कि तुम इस समय में पापों से रहित और शुद्धात्मा हो ॥३॥ राजा दिलीप ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो समस्त वेदों और वेदों के अंग शास्त्रों के तत्वों के पूर्ण ज्ञाता हैं । समस्त लोक आपकी अर्चना किया करते हैं । मैंने आपके दर्शन प्राप्त कर लिये हैं—इसी से मैं तो समझता हूँ कि मैंने सभी कुछ प्राप्त कर लिया है ॥४॥ हे धर्म धारियों में परमश्रेष्ठ ! यदि आप मेरे ऊपर अनुग्रह ही करना चाहते हैं तो मैं आपसे एक मेरे हृदय में रहने वाले सन्देह के विषय में आपसे पूछता हूँ । उसे आप मुझे बता देने की कृपा करें क्यों कि आप परम योग्य हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मुझे किसी एक तीर्थ के विषय में धर्म संशय है उसी के सम्बन्ध में मैं श्रवण करना चाहता हूँ सो आप कृपया पृथक् सङ्कीर्तन करिये । हे द्विजसत्तम ! जो इस पृथ्वी की परिक्रमा करता है उसका क्या फल होता है ? हे विप्रर्षे ! आपका तो तपश्चर्या ही धन है । कृपा कर यह मुझे बतलाइये ॥६-७॥

कथयिष्यामि तदहमृषीणां मत्परायणम् ।
तदेकाग्रमनास्तात शृणु तीर्थेषु यत्फलम् ॥८

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयुतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥९

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो नियतः शुचिः ।
अहङ्कारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥१०

अकल्किको निराहारोऽलब्धाहारो जितेन्द्रियः ।
विमुक्तः सर्वदोषैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥११
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥१२
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवेष्वपि यथाक्रमम् ।
फल चैव यथातत्त्व प्रेत्य चेह च सर्वशः ॥१३
न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तु महीपते ।
बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भरविस्तराः ॥१४

महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा—समस्त ऋषियो मे मेरी ही सेवा-शुश्रूषा मे तत्पर रहने वाले आपसे मैं इसको अभी बतलाता हूँ आप अपने चित्त को एकाग्र करके यह श्रवण करो कि तीर्थों मे क्या क्या फल प्राप्त होता है ॥८॥ सबसे प्रथम बात तो समझ लेने की यह है कि जिसके हाथ-पैर और मन सुसंयत होते हैं तथा जिसमे विद्या-कीर्ति और तपश्चर्या होते है वही मनुष्य तीर्थों के फल को प्राप्त करने का अधिकारी होता है । इनके अभाव मे किसी को भी तीर्थ का फल नही मिला करता है ॥९॥ जो व्यक्ति तीर्थों का फल प्राप्त करना चाहता है उसे किसी का भी प्रतिग्रह ग्रहण नही करना चाहिए । जो भी कुछ प्राप्त हो उसी मे परम सन्तोष धारण करे,नियतात्मा होकर रहे, पवित्र रहे तथा अहकार से सर्वदा एव सर्वथा निवृत्त रहना चाहिए । इस तरह की वृत्ति वाला पुरुष ही तीर्थ का फल प्राप्त किया करता है ॥१०॥ जो कलह से रहित हो बिना आहार वाला हो-आहार को प्राप्त न करने वाला हो-इन्द्रियो को जीत कर वश मे रखने वाला हो और सभी दुर्गुण तथा दोषो से जो विमुक्त होता है वही पुरुष तीर्थों के फल को पाता है ॥११॥ हे राजेन्द्र ! जो क्रोध से रहित होता है और सत्य भाषण एव व्यवहार करने वाला होता है तथा अपने ग्रहण किये हुए व्रतो मे सुदृढ होता है एव समस्त प्राणियो मे अपने ही समान भावना रखने वाला होता है वही पुरुष तीर्थों के फल को प्राप्त करने का अधिकारी हुआ करता है ॥१२॥ ऋषियो ने बहुत से यज्ञ बताये हैं । और देवो के विषय मे भी क्रमानु-

सार बहुत कुछ बतलाया है। उन सबका फल यथा तत्त्व मरने के पश्चात् मिलता है एवं यहाँ पद भी कुछ मिलता है किन्तु उन यज्ञादि करने की शक्ति तो हर एक मे नही होती है। जो दरिद्र है वह इनको कदापि कर ही नही सकता है। हे राजन्! यज्ञों का करना कोई आसान कार्य नही है। इनके करने मे तो बहुत से उपकरण हुआ करते हैं जो बिना विपुल धन के हो ही नही सकते है। यज्ञों मे तो अनेक प्रकार के सामान की आवश्यकता होती है जिनका बहुत अधिक विस्तार होता है धनहीन साधारण श्रेणी के मनुष्य यज्ञादि का कर्म किसी भी प्रकार से कर ही नही सकते हैं ॥१३-१४॥

प्राप्यन्ते पार्थिवैरेते समृद्धैर्वा नरैःक्वचित् ।
न निर्धनैर्नरगणैरेकात्मभिरसाधनैः ॥१५
यो दरिद्रै रपि विधिः शक्यः प्राप्तुं जनेश्वर ! ।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तं निबोध महीपते ! ॥१६
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं धर्म्मभृतां वर ! ।
तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ॥१७
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थाभिगमनेन च ।
अदत्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ॥१८
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥१९
नृलोके देवलोकस्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
पुष्करं तीर्थमासाद्य देवदेवसमो भवेत् ॥२०
दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां वै महीपते ! ।
सान्निध्यं पुष्करे येषां त्रिसन्ध्यं सूर्यवंशज ! ॥२१

इन यज्ञ कर्म्मों को तो करके उनके महान् फलो को जो सम्पत्ति मे समृद्ध मनुष्य होते हैं वे या राजा लोग जो भूमि के अधिपति होते हैं वे ही प्राप्त कर सकते हैं। उनमे भी कोई कभी इन को किया करते हैं। जो बिचारे निर्धन और साधनहीन मनुष्य हैं वे अकेले इनको किसी प्रकार भी नही कर पाते हैं और इनके फल से वञ्चित ही रहते हैं

।।१५।। हे जनेश्वर ! जिस विधि-विधान को धनहीन दरिद्र लोग भी प्राप्त कर सकें और उसका पुण्य फल यज्ञो के पुण्य-फल के ही समान हो हे महीपते ! आप उसे ही अब जान कर भली भाँति समझलो ।।१६।। हे राजन् ! आप तो धार्मिक मनुष्यो मे परम श्रेष्ठ हैं। तीर्थों की यात्रा का जो पुण्य होता है वह यज्ञो से समुत्पन्न पुण्य मे भी विशेष होता है और ऋषियो के यहा यह बहुत ही गोपनीय होता है ।।१७।। तीन रात्रि तक उपवास न करके जो तीर्थों का अभिगमन किया करते हैं और सुवर्ण तथा गौओ का दान न करके जो तीर्थाटन करता है वह मनुष्य दरिद्र हो जाता है ।।१८।। वैसे तीर्थाभिगमन का ऐसा विशाल पुण्य फल होता है कि बहुत बड़ी दक्षिणा वाले अग्नि होम आदि यज्ञो के द्वारा यजन करके भी उतना फल नहीं प्राप्त किया जा सकता है ।।१९।। इस मनुष्य लोक मे तीनो लोको मे विख्यात देवलोक का तीर्थ पुष्कर है जिसे प्राप्त करके मनुष्य देवो के देव के समान ही हो जाया करता है ।।२०।। हे मही के स्वामिन् ! दश सहस्र करोड तीर्थों का सान्निध्य पुष्कर तीर्थ मे होता है। पुष्कर तीर्थ का सान्निध्य तीनो सन्ध्याओ के सहित होना चाहिए तभी समस्त तीर्थों के निवास उसमे प्राप्त होने का पुण्य फल मनुष्यो को मिला करता है ।।२१।।

आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च समरुद्गणाः ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव तत्र सन्निहिताः प्रभो ! ।।२२

यत्र देवास्तपस्तप्त्वा दैत्या ब्रह्मर्षयस्तथा ।
दिव्ययोगा महाराज पुण्येन महता द्विजाः ।।२३

मनसाऽप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनीषिण ।
पूयन्ते सर्वपापानि नाकपृष्ठे च पूज्यते ।।२४

अस्मिस्तीर्थे महाभाग ? नित्यमेव पितामहः ।
उवास परमप्रीतो देवदानवसमतः ।।२५

पुष्करेषु महाभाग ? देवाः सर्पिपुरोगमाः ।
सिद्धिं परमिकां प्राप्ता- पुण्येन महताऽन्विताः ।।२६

तत्राभिषेकं यः कुर्यात्पितृदेवार्चने रतः ।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२७
अप्येकं भोजयेद्विप्रं पुष्करारण्यमाश्रितः ।
तेनैति पूजितांल्लोकान्ब्रह्मणः सदने स्थितान् ॥२८

हे प्रभो ! आदित्य-वसुगण-रुद्र-साध्य-मरुत्-समस्त गन्धर्व-अप्सराऐं ये सब वहां पुष्कर तीर्थ में निवास किया करते हैं ॥२२॥ हे महाराज ! जिस परम पुण्य तीर्थ पर देवगण–दैत्य वर्ग और ब्रह्मर्षि तपश्चर्या करके महान् पुण्य के द्वारा दिव्य योग वाले हो जाया करते हैं ॥२३॥ पुष्कर तीर्थ की ऐसी महान् महिमा है कि यदि मन से भी कोई पाप सोचा जावे तो मनीषी पुरुष के उस मानसिक पापों को भी दूर कर देता है और केवल पापों से ही छुटकारा नहीं देता बल्कि स्वर्गलोक में भी उसकी पूजा की जाती है ॥२४॥ हे महाभाग ! इस तीर्थ में भगवान् पितामह देवगण और दानवों से समेत होकर नित्य ही परम प्रसन्न होते हुए निवास किया करते थे ॥२५॥ हे महाभाग ! पुष्कर तीर्थों में ऋषिवृन्द के सहित और ऋषियों को अपने आगे लेकर देवगणों ने परम सिद्धि को प्राप्त किया है और महान् पुण्य से सम्पन्न हुए हैं ॥२६॥ पुष्कर तीर्थों में जो कोई भी पुरुष अभिषेक किया करता है और पितृगण तथा देववृन्द के अर्चना में रति रखने वाला होता है उसका जो महान् पुण्य होता है उसे महा मनीषी लोग अश्वमेध यज्ञ से दशगुना बतलाया करते हैं ॥२७॥ जो पुष्कर तीर्थ के समीपस्थ अरण्य में निवास करने वाला श्रेष्ठ ब्राह्मण हो और वहां पर स्थित रह कर ही तपश्चर्या करता हो उसे यदि एक को भी भोजन तृप्ति पूर्वक कोई कराता है तो उसका महान् पुण्य होता है यो समझिये कि उसने ब्रह्मलोक में स्थित लोकों को सब को पूजित कर लिया है ॥२८॥

सायं प्रातः स्मरेद्यस्तु पुष्कराणि कृताञ्जलिः ।
उपस्पृष्टं भवेत्ते न सर्वतीर्थेषु पार्थिव ॥२९
जन्मप्रभृति यत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
पुष्करे गतमात्रस्य सर्वमेव प्रणश्यति ॥३०

यथा सुराणा सर्वेपामादिस्तु मधुसूदनः ।
तथैव पुष्करो राजस्तीर्थानामादिरुच्यते ।।३१
ऊष्ट्वा द्वादशवर्षाणि पुष्करे नियतः शुचिः ।
क्रतून्सर्वानवाप्नोति ब्रह्मलोकं च गच्छति ।।३२
यस्तु वर्षशत पूर्णमग्निमहोत्रमुपाचरेत् ।
कार्तिकी वा वसेदेका पुष्करे सममेव तत् ।।३३
दुष्करं पुष्करे गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः ।
पुष्कर पुष्करे दान वस्तु चैव सुदुष्करम् ।।३४
त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्कराण्यादितीर्थानि न विद्मस्तत्र कारकम् ।।३५
उष्ट्वा द्वादशवर्षाणि नियतो नियताशनः ।
समुक्त सर्वपापेभ्य. सर्वक्रतुफल लभेत् ।।३६

सायकाल और प्रातःकाल मे दोनो समय मे जो भी कोई पुरुष दोनो हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थों का स्मरण किया करता है जैसे उसने सम्पूर्ण तीर्थों मे उपस्पर्शन कर लिया हो ।।२८।। कोई स्त्री हो या पुरुष हो जन्म से लेकर उसने जो भी कुछ पापकर्म किये हैं वे समस्त पाप पुष्कर तीर्थ मे केवल पहुँच जाने से ही नष्ट हो जाया करते हैं ।।३०।। जैसे समस्त देवगणो मे भगवान् मधुसूदन सर्वोपरि विराजमान और सर्व शिरोमणि आदि देव हैं उसी भांति हे राजन् ! समस्त तीर्थों मे पुष्कर राज से आदि एव सब मे परम प्रधान तथा महान् तीर्थ है ऐसा कहा जाता है ।।३१।। पुष्कर तीर्थ मे जो परम नियत होकर एव अति शुचिता के साथ निरन्तर बारह वर्ष पर्यन्त निवास कर लेता है वह समस्त प्रकार के क्रतुओ के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है और अन्त म उस पुरुष का ब्रह्मलोक मे नित्य निवास हुआ करता है ।।३२।। जो कोई पुरुष सौ वर्ष तक पूर्ण अग्निहोत्र किया करता है और एक रात्रि कार्तिकी पूर्णिमा के दिन मे पुष्कर तीर्थ मे निवास किया करता है इन दोनो का समान ही पुण्य-फल होना है ।।३३।। पुष्कर राज तीर्थ मे गमन करना ही बहुत कठिन है अर्थात् किसी महान् पुण्योदय होने से ही

यह प्राप्त हुआ करता है फिर पुष्कर तीर्थ में तपश्चर्या करना यह उससे भी अत्यन्त कठिन है तथा पुष्कर तीर्थ मे दान करना और वहा निवास करना ये सब बडे भाग्य से प्राप्त हो नही हो सकता है ।।३४।। वहा पर तीन तो शुभ्र शृंग हैं और तीन ही प्रस्रवण हैं। ये पुष्कर आदि तीर्थ हैं। इनके करने वाला कौन है—यह नही जानते हैं ।।३५।। बारह वर्ष पर्यन्त वहा नियत और नियत आहार वाला होकर जो निवास करता है वह अपने किये हुए समस्त पापो से छुटकारा पा जाता है और उसे सभी ऋतुओ के सग सम्पन्न करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाता है ।।३६।।

———

।। तीर्थाश्रम माहात्म्य ।।

प्रदक्षिणमुपावृत्तो जम्बूमार्गं समाविशेत् ।
जम्बूमार्गं समाविश्य पितृदेवर्षिपूजितम् ।।१
अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकं च गच्छति ।
तत्रोष्य रजनीः पञ्च षष्ठे कालेऽश्नुवन्नरः ।।२
न दुर्गतिमवाप्नोति सिद्धिचाऽऽप्नोत्यनुत्तमाम् ।
जम्बूमार्गादुपावृत्तो गच्छेत्तु दुलिकाश्रमम् ।।३
न दुर्गतिमवाप्नोति स्वर्गलोके च पूज्यते ।
अगस्त्याश्रममासाद्य पितृदेवार्चने रतः ।।४
त्रिरात्रोपोषितो राजन्नग्निष्टोमफलं लभेत् ।
शाकवृत्तिः फलैर्वापि कौमार विन्दते परम् ।।५
कन्याश्रम समासाद्य श्रीपुष्टं लोकपूजितम् ।
धर्मारण्य हि तत्पुण्यमाद्य च पार्थिवर्षभ ।।६

वसिष्ठ महर्षि ने कहा—प्रदक्षिण मे उपावृत्त होकर जम्बूमार्ग मे समाविष्ट होकर वहाँ पर अपने पितृगण तथा देवगण की अर्चना करे। ऐसा पुरुष जो किया करता है वह अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्य प्राप्त किया करता है और विष्णुलोक मे नित्य निवास प्राप्त करता है। वहा पर पांच रात्रि तक उपवास करे और छटवें दिन जो अशन करता है उसका अति महान् पुण्य होता है ।।१-२।। ऐसी रीति से उपवास

करने वाले पुरुष की कभी भी कोई दुर्गति नही होती है और वह परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। जम्बूमार्ग से उपावृन होकर फिर जो दुलिकाश्रम को जाता है वह पुरुष भी दुर्गति को नहीं पाता है और स्वर्ग लोक मे निवास प्राप्त कर पूजित होता है। इसके अनन्तर अगस्त्य मुनि का आश्रम है। वहा पहुंच कर जो पितृ-देवो के यजनार्चना मे रत रहता है और तीन रात्रि तक उपवास किया करता है उसे अग्निष्टोम के करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है। शाक से अपनी वृत्ति करने वाला अर्थात् शाकाहार करके रहने वाला अथवा फलो का ही आहार करके जीवन यापन करने वाला पुरुष जो इस रीति से वहा निवास किया करता है वह कौमार पद को प्राप्त कर लेता है ॥३-५॥ जो कोई पुरुष कन्याश्रम मे पहुंच कर निवास किया करता है वह श्री से पुष्ट होता है और लोको के द्वारा पूजित होता है। हे पार्थिवो मे परम श्रेष्ठतम ! वह धर्मारण्य है,महान् पवित्र स्थल है और सब से आद्यस्थान है ॥६॥

यत्र प्रविष्टमात्रो वै पापेभ्यो विप्र ! मुच्यते ।
अर्चयित्वापि तन्देवान्प्रयतो नियताशन ॥७
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।
प्रादक्षिण्य ततः कृत्वा ययातिपतनं व्रजेत् ॥८
हयमेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति तत्र वै: ।
महाकालमतो गच्छेन्नियतो नियताशन ॥९
कोटितीर्थमुपस्पृश्य हयमेधफल लभेत् ।
ततो गच्छेत् धर्मज्ञ स्थान तीर्थमुमापते ॥१०
नाम्ना भद्रवट नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्राभिगम्य चेशान गोसहस्रफल लभेत् ॥११
महादेवप्रसादाच्च गाणपत्यमवाप्नुयात् ।
समृद्धमसपत्नं तु श्रिया युक्तं नरोत्तम ॥१२
नर्मदा तु समासाद्य नदी त्रैलोक्यविश्रुताम् ।
तर्पयित्वा पितृन्देवानग्निष्टोमफल लभेत् ॥१३

हे विप्र ! इस कन्याश्रम की ऐसी महिमा है कि उस आश्रम में केवल प्रवेश ही कर लेवे तो उसका इतना अद्‌भुत पुण्य-फल होता है कि वह प्राणी समस्त पापों से मुक्ति पाजाया करता है। यदि वहा पर स्थित होकर देवगण का अर्चन करे और नियत होकर नियताहार वाला रहे तो वह सभी प्रकार की कामनाओं से समृद्ध हो जाया करता है तथा यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है। इसके उपरान्त प्रादक्षिणा को पूर्ण करके फिर ययाति पतन नामक आश्रम मे जाना चाहिए। वहा पर पहुंचने से हयमेध यज्ञ के फल का लाभ किया करता है, इसके अनन्तर महाकाल नामक स्थान मे जाना चाहिए वहा पर भी नियत रहे तथा अपना आहार भी नियत ही रक्खे ॥७-९॥ तो करोडों तीर्थो के उप स्पर्शन करने का तथा अश्वमेध याग करने का जो पुण्य-फल होता है वह उसे मिल जाया करता है। हे धर्म के ज्ञाता ! इसके अनन्तर फिर भगवान् उमापति के तीर्थ स्थान पर जाना चाहिए ॥१०॥ वहा पर एक भद्रवट नाम वाला वट है जोकि तीनो लोको मे परम विख्यात है। वहां पर भगवान् ईशान का दर्शन तथा यजन करने से एक सहस्र गोदान करने का फल प्राप्त होता है ॥११॥ भगवान् महादेव के प्रसाद से गाणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है जोकि परम समृद्धि सम्पन्न है, श्री से समन्वित है और जिसका कोई भी सपत्नहक चाहने वाला शत्रु नही है। हे नरो में अत्युत्तम ! तीनो लोको मे परम प्रसिद्ध नर्मदा नाम वाली नदी पर पहुंचकर जो पुरुष अपने पितरो का तर्पण किया करता है और अपने अभीष्ट उपास्य देवों का समर्चन करता है वह मनुष्य अग्निष्टोम याग करने का पुण्य फल प्राप्त किया करता है ॥१२-१३॥

॥ नर्मदा माहात्म्य वर्णन ॥

वसिष्ठेन दिलीपाय कथितं तीर्थमुत्तमम् ।
नर्मदेति च विख्यातं पापपर्वतदारणम् ॥१
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय नारद ।
नर्मदायाश्च माहात्म्यं वसिष्ठोक्तं द्विजोत्तम ॥२

कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता ।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मम ब्रूहि नारद ॥३

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥४

नर्मदायास्तु माहात्म्यं वसिष्ठोक्तं मया श्रुतम् ।
तदेतद्धि महाराज ! सर्वं हि कथयामि ते ॥५

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती ।
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्म्मदा ॥६

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन यामुनम् ।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम् ॥७

राजा युधिष्ठर ने कहा—हे देवर्षिवर ! महर्षि वसिष्ठ ने राजा दिलीप को उत्तम तीर्थ बतलाया था । नर्मदा—इस नाम से जो परम प्रसिद्ध है और पापों के पहाड़ों को तोड़ने वाली है । हे नारदजी ! मैं उसे पुनः श्रवण करना चाहता हूँ सो आप उसे मुझे बतलाइये । हे द्विजोत्तम ! नर्मदा नदी का माहात्म्य वसिष्ठ मुनि के द्वारा कथित है ॥१-२॥ यह नर्मदा महान् पुण्यों वाली किस लिये है और किस कारण से इस नदी की सर्वत्र प्रसिद्धि भी है ? हे नारदजी ! 'नर्मदा'—यह नाम कैसे प्रसिद्ध हुआ—आप कृपा कर मुझे यह सब विस्तार सहित बतलाइये ॥३॥ नारदजी ने कहा—यह नर्मदा नदी समस्त नदियों में परम श्रेष्ठ नदी है और यह सब पापों के नाश करने वाली है । यह सब स्थावर और चर प्राणियों को तार दिया करती है ॥४॥ नर्मदा नदी का माहात्म्य जोकि महर्षि वसिष्ठ जी ने कहा था, मैंने श्रवण किया है । हे महाराज ! वह सब मैं अब तुमको बतलाता हूँ ॥५॥ भागीरथी गंगा कनखल में परम पुण्यमयी होती है, कुरुक्षेत्र में सरस्वती पुण्य पूर्ण होती है किन्तु नर्मदा नदी तो चाहे ग्राम हो या अरण्य हो सर्वत्र पुण्य मयी होती है ॥६॥ सरस्वती नदी का जल तीन दिन में, यमुना नदी

का जल सात दिन मे, गंगा का जल तुरन्त पवित्र कर देता है, किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शन मात्र से ही पुनीत कर देता है ॥७॥

कलिङ्गदेशे पश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके ।
पुण्या च त्रिपुलोकेषु रमणीया मनोरमा ॥८

सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधना. ।
तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धि च परमा गताः ॥९

तत्र स्नात्वा महाराज नियमस्थो जितेन्द्रिय ।
उपोष्य रजनीमेका कुलाना तारयेच्छतम् ॥१०

जनेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्ड दत्त्वा यथाविधि ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥११

पर्वतस्य समन्तात्तु रुद्रकोटि प्रतिष्ठिता ।
स्नान य. कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनम् ॥१२

प्रीता तस्य भवेत्सर्वा रुद्रकोटिर्न सशय· ।
पर्वते पश्चिमस्यान्ते स्वय देवो महेश्वरः ॥१३

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
पितृकार्यं तु कुर्वीत विधिदृष्टेन कर्मणा ॥१४

कलिंग देश मे, पश्चार्द्ध मे और अमर कण्टक पर्वत मे और तीनो लोको मे यह नर्मदा पुण्यमयी है अत्यन्त रमणीय और मनोरम है ॥८॥ हे महाराज ! देव-असुर-गन्धर्व और तप को ही परम धन समझने वाले ऋषिगण यहाँ पर तपस्या करके परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥९॥ हे महाराज ! उस नर्मदा नदी मे स्नान करके जो कोई मनुष्य नियमो मे स्थित रहता है और अपनी इन्द्रियो को वश मे कर जीत लेता है वह एक रात्रि उपवास करके अपने सौ कुलो का उद्धार कर दिया करता है ॥१०॥ मनुष्य जनेश्वर मे स्नान करके विधि पूर्वक जो पिण्ड दान किया करता है उसके सब पितृगण तृप्त हो जाया करते हैं जब तक भूत सम्प्लव होता है अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त पितरो की तृप्ति रहा करती

है ॥११॥ पर्वत के चारो ओर रुद्र कोटि प्रतिष्ठत है । वहाँ पर जो भी कोई स्नान किया करता है और गन्धमाल्य का अनलेपन करता है उस पर समस्त रुद्र कोटि परम प्रसन्न हो जाती है—इसमे लेश मात्र भी सशय नही है । उस पर्वत के पश्चिम भाग मे अ त मे स्वम महेश्वर देव स्थित है ।१२-१३।वहा पर स्नान करके और परम पवित्र होकर ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने वाला जितन्द्रिय (इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाला) पुरुष विधि-विधान पूर्वक कर्म्म से पितृ-कार्य्य करता है उसके पितरो का उद्धार हो जाता है और करने वाला भी विमुक्त हो जाता है ॥१४॥

॥ वर्णाश्रम का सामान्य धर्म ॥

कर्मयोग. कथ सूत ! येन चाराधितो हरि ।
प्रसीदति महाभाग ! वद नो वदतावर ! ॥१
येनासौ भगवानीश समाराध्यो मुमुक्षुभि ।
तद्वदाखिललोकाना रक्षण धर्मसङ्ग्रहम् ॥२
त कर्मयोग वद न सूतमूर्तिमयस्तु य ।
इति शुश्रूषवो विप्रा भवदग्रे व्यवस्थिता ॥३
एवमेव पुरा पृष्टो व्यास सत्यवतीमुत ।
ऋषिभिरग्निसङ्काशैर्व्यासस्तानाह तच्छृणु ॥४
शृणुध्वमृषय सर्वे वक्ष्यमाण सनातनम् ।
कर्मयोग ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम् ॥५
आम्नायसिद्धमखिल ब्राह्मणार्थ प्रदर्शितम् ।
ऋषिणा शृण्वता पूर्व मनुराह प्रजापति ॥६
सर्वव्याधिहर पुण्यमृपिसङ्घैर्निपेवितम् ।
समाहितधियो यूय शृणुध्व गदतो मम ॥७

ऋषियो न कहा—हे सूतजी ! आप बोलने वालो मे परम श्रेष्ठ हैं । हे महान् भाग्य वाले ! आप कृपा कर हम को यह बताइये कि वह कर्मयोग किस प्रकार का होता है जिसके द्वारा आराधना करने पर

भगवान् हरि प्रसन्न हो जाया करते हैं ? यह भी बताइये कि जिसके द्वारा मुक्ति के इच्छुक लोग भगवान् ईश्वर की समाराधना किया करते हैं। यह सभी कुछ हमको बतलाइये। यह धर्म के संगत है और समस्त लोकों की रक्षा करने वाला भी है ॥१-२॥ हे सूतजी ! अब उसी कर्म योग का वर्णन कीजिए जो मूर्तिमय हो। ये सब श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा लेकर विप्र वृन्द आपके समक्ष में उपस्थित हैं ॥३॥ सूतजी ने कहा—पहिले बहुत पुराने समय में एक बार ऐसा ही प्रश्न अग्नि के सदृश परम तेजस्वी ऋषियों ने सत्यवती के पुत्र व्यास देवजी से किया था अर्थात् इसी प्रकार से यही बात पूछी थी उस समय में जो वेद व्यास कृष्ण द्वैपायन ने जो उनको उत्तर दिया था वही मैं आप लोगों को बताता हूँ उसका आप लोग श्रवण करें ॥४॥ व्यासजी ने कहा था—हे ऋषिगण आप लोग सुनिये, जो मैं परम सनातन कर्मयोग अभी आपको बतलाता हूँ। यह कर्मयोग ब्राह्मणों के लिये आत्यन्तिक फल प्रदान करने वाला होता है ॥५॥ यह सम्पूर्ण आम्नाय से सिद्ध एवं प्रमाणित है और ब्राह्मणों के लिए ही प्रदर्शित किया गया है। सुनते हुए ऋषियों के समक्ष में पहले प्रजापति मनु ने कहा था ॥६॥ यह कर्म योग ऐसा है जो सब प्रकार की व्याधियों को हरण करने वाला है तथा अति पुण्यमय पवित्र है और ऋषियों के समुदायों के द्वारा सेवित किया हुआ है। अब मैं आपको बताता हूँ। मुझसे आप लोग सावधान बुद्धि वाले होकर अच्छी तरह से श्रवण कीजिये ॥७॥

कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमः।
गर्भाष्टमेऽष्टमेवाऽब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥८
दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः।
भिक्षाहारो गुरुहितो वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥९
कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा।
ब्राह्मणाना त्रिवृत्सूत्रं कौश वा वस्त्रमेव वा ॥१०
सदोपवीती चैव स्यात्सदाबद्धशिखो द्विजः।
अन्यथा यत्कृतं कर्म तद्भवत्ययथाकृतम् ॥११

वसीताविकृत वासः कार्पासं वा कपायकम् ।
तदेव परिधानीय शुक्ल तान्तवमुत्तमम् ॥१२
उत्तर तु समाम्नात वासः कृष्णाजिन शुभम् ।
अभावे गाव्यमपि रौरव वा विधीयते ॥१३
उद्धृत्य दक्षिणबाहु सव्यबाहो समर्पितम् ।
उपवीत भवेन्नित्य निवीत कण्ठसज्जने ॥१४

जिस ब्राह्मण का उपनयन सस्कार हो गया हो और द्विजत्व की प्राप्ति जिसने करली हो उसे सर्व प्रथम वेदो का अध्ययन करना चाहिए। उपनयन सस्कार करने का समुचित शास्त्रोक्त समय गर्भ धारण करने से आठवा वर्ष होता है जोकि अपने सूत्र मे कथित विधान से अनुकूल है ॥८॥ जिसका उपनयन सस्कार हो गया है उसे दण्ड धारण करने वाला-मेखलाधारी, सूत्र (यज्ञोपवीत) पहिनने वाला तथा कृष्ण वर्ण के मृग का चर्म रख कर मुनि के स्वरूप मे रहना चाहिए। भिक्षाटन के द्वारा अपना आहार करे, सर्वदा अपने दीक्षा देने वाले और वेदाध्यापन करने वाले गुरु की भलाई करे अर्थात् शुश्रूषा करता रहे और गुरु के मुख को ही सदा देखता रहे अर्थात् जो भी गुरु के मुख से आदेश प्राप्त हो उसका पूर्ण पालन सदा करे ॥६॥ ब्रह्माजी ने पहिले समय मे उपवीत के लिये कपास से बने हुए सूत का ही निर्माण बताया था। ब्राह्मणो का सूत्र त्रिवृत अर्थात् तीन लडो वाला होता है। कौश अथवा वस्त्र स्वरूप होता है ॥१०॥ द्विज को सदा ही उपवीत धारण करके ही रहना चाहिए। द्विज की चोटी मे भी सर्वदा ग्रन्थि लगी रहनी चाहिए। बिना उपवीत धारण किये और चोटी मे गाठ लगाये हुए द्विज जो भी कर्म किया करता है वह अयथा कृत अर्थात् फलशून्य व्यर्थ ही होजाया करता है ॥११॥ वस्त्र भी द्विज ब्रह्मचारी को विकार से रहित ही पहिनना चाहिए। वह वस्त्र चाहे कपास का सूती हो या कपायक हो। ऐसा ही वस्त्र धारण करना चाहिए जिसका वर्ण शुक्ल हो और उत्तम तन्तुओ से निर्मित किया हुआ हो ॥१२॥ उत्तरीय वस्त्र के स्थान मे तो ब्रह्मचारी के लिये कृष्णाजिन (काला मृग

चर्म) ही परम शुभ वस्त्र बताया गया है । अर्थात् वेद ने ऐसी ही आज्ञा दी है। यदि कृष्णाजिन न प्राप्त हो सके तो उसके अभाव में गावय एव रौरव चर्म का भी विधान है ॥१३॥ दक्षिण बाहु को उद्धृत कर के सव्य (बायें) बाहु में उसे (उपवीत को) समर्पित करे। नित्य ही द्विज ब्रह्मचारी को उपवीत धारण करने वाला रहना चाहिए जिस समय मे उपवीत को कण्ठ मे सज्जित किया जाता है तो उसे निवीत कहा जाता है ॥१४॥

सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि योजयेत् ॥१५
अग्न्यगारे गवां गोष्ठे होमे तर्प्ये तथैव च ।
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥१६
देवताभ्यर्चनं कुर्यात्पुष्पैः पत्रैर्यवाम्बुभिः ।
अभिवादनशीलः स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मतः ॥१७
असावहं भोनामेति सम्यक्प्रणतिपूर्वकम् ।
आयुरारोग्यसिद्धयर्थं तन्द्रादिपरिवर्जितः ॥१८
आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
आकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरं प्लुतः ॥१९
यो नवेत्त्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥२०
व्यत्यस्तपाणिना कार्यं पादसङ्ग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणे न तु दक्षिणः ॥२१

सव्य बाहु को समुद्धृत करके हे द्विजगण ! जब दक्षिण बाहु मे इसे धारण किया जाता है तो उसे प्राचीनावीत, ऐसा कहा गया है जोकि पितृगण के श्राद्ध-तर्पण आदि कृत्यो मे योजित करना चाहिए ॥१५॥ अग्नि गृह मे, गौओ के गोष्ठ मे, होम करने के अवसर पर, तर्पण के समय मे, वेदो का स्वाध्याय करने के अवसर पर, भोजन करने के समय मे और ब्राह्मणो की सन्निधि मे उपस्थित रहने पर सदा उपवीती रहना चाहिए ॥१६॥ ब्रह्मचारी को सदा देवगण का अभ्यर्चन करना चाहिए

और पुष्पो के द्वारा पत्रो से तथा यवाम्बु से करे। ब्रह्मचारी द्विज को सदा अभिवादन करने के स्वभाव वाला होना चाहिए। जो वृद्ध पुरुष है अर्थात् अपने से बडे हैं उनको नित्य ही धर्मानुसार प्रणाम करना चाहिए ॥१७॥ प्रणाम करने की विधि यह है कि जब अपने से किसी बडे को प्रणाम करे तो पहिले इस तरह कहते हुए प्रणाम करे—'भो गुरु चरण ! मैं अमुक गोत्र मे समुत्पन्न, अमुक नाम वाला आपके चरणो मे प्रणाम करता हूं। चरणस्पर्श करना हो तो अपने हाथो को ऊपर-नीचे कर दक्षिण हाथ से दाहिना चरण और बांये हाथ से वाम चरण छुये। आयु और आरोग्य की सिद्धि के लिये तन्द्रा-आलस्य आदि दोषो से रहित होकर ही प्रणाम करे ॥१८॥ जब कोई अभिवादन (प्रणाम) करता है तो विप्र का कर्त्तव्य है कि उसे—"भो सौम्य ! आयुष्मान् होओ कह कर आशीर्वाद अवश्य ही अभिवादन का देना चाहिए इसके नाम के अन्त मे आकार अवश्य बोलना चाहिए और पूर्वाक्षर प्लुत होना चाहिए ॥१९॥जो विप्र अभिवादन का कुछ भी ज्ञान नही करता है तथा प्रत्यभिवादन नही करता है विद्वान् पुरुष को ऐसे विप्र के लिए कभी भी अभिवादन नही करना चाहिए। क्योंकि जो प्रणाम का कोई आशीर्वाद हो देता है और न प्रत्यभिवादन ही करता है वह तो शूद्र जैसा हीहोता है ॥२०॥ गुरु के चरणो को व्यस्यस्त पाणि होकर ही पाद सग्रहण (चरण स्पर्श) करना चाहिए। दाहिन से दाहिना चरण और बांये से बांया चरण स्पर्श करे ॥२१॥

लौकिक वैदिक वाऽपि तथाऽऽध्यात्मिकमेव वा ।
अवाप्य प्रयतो ज्ञान त पूर्वमभिवादयेत् ॥२२
नादद्य धारयेद्भैक्ष्य पुष्पाणि समिधस्तथा ।
एव विधानि चान्यानि नदेवार्थेपु कर्मसु ॥२३
ब्राह्मण कुशल पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम् ।
वैश्य क्षेम समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥२४
उपाध्याय. पिता ज्येष्ठो भ्राता माता च भीतित ।
मातुल. श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ ॥२५

वर्णश्रेष्ठः पितृव्यश्च पुंसोऽत्र गुरवः स्मृताः ।
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः ॥२६
श्वश्रू पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः ।
ज्ञेयस्तु गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतो द्विजाः ॥२७
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता ।
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते ॥२८
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः ।
आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः ॥२९

जिस किसी से लौकिक-वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति करे उसको परम प्रयत होकर पहिले स्वयं प्रणाम करे ॥२२॥ इस प्रकार के कर्मों मे तथा ऐसे ही अन्य कर्मों के समय मे उदक-भैक्ष्य-पुष्प और समिधाऐं धारण न करे । जो देवार्थ कर्म्म हों उनमें भी इन उपर्युक्त वस्तुओ को धारण न करे ॥२३॥ ब्राह्मण से भेंट हो तो उनसे कुशल पूछना चाहिए अर्थात् 'कुशल'—इस शब्द का प्रयोग ही करना चाहिए । क्षत्रिय से भेंट हो तो उनसे 'अनामय'—इस शब्द का प्रयोग कर नीरोगता पूछनी चाहिए । वैश्य से भेंट हो और जब अभिवादन आदि की क्रिया समाप्त हो जावे तो उससे (क्षेम) इस शब्द का प्रयोग करके पूछना चाहिए । शूद्र से भेंट हो तो उससे 'आरोग्य'—इस शब्द का प्रयोग कर उसकी स्वस्थता पूछनी चाहिए। यद्यपि सभी शब्दों का तात्पर्य कुशल पूछना ही होता है किन्तु भिन्न २ वर्णों के लिए भिन्न शब्दों के प्रयोग करने का शास्त्रीय विधान है ॥२४॥ अब यह बताया जाता है कि गुरु वर्ग में कौन से व्यक्ति आते हैं—उपाध्याय जोकि विद्या पढ़ाता है—पिता जिसने जन्म ग्रहण कराया है—ज्येष्ठ भाई जो कि पिता के ही तुल्य मान्य होता है—भय से रक्षा करने वाला जिसने प्राणों का त्राण किया है । मातुल जो माता का भाई है—श्वशुर जिसने अपनी कन्या प्रदान करदी है—मातामह (नाना) और पितामह (पिता के भी पिता)—वर्ण में जो श्रेष्ठ अर्थात् बड़ा एवं पूज्य हो—पितृव्य जो पिता

का भाई हो ये सब लोग गुरु वर्ग में बताये गये हैं। इसी प्रकार से स्त्रियों में भी गुरु वर्ग का कथन है—माता जिसने उदर में धारण कर जन्म दिया है सर्व प्रथम है—मातामही माता की माता (नानी)—गुरु पत्नी—पिता की तथा माता की (भूआ-मौसी) सगी बहिन-श्वश्रू (सास) पिता की माता—ज्येष्ठा अर्थात् बड़ी बहिन और जो अवस्था में बड़ी हो, धात्री जो स्तन का दूध पिला कर बाल्यावस्था मे पोषण किया करती है ये सब स्त्रियाँ गुरुवर्ग में मानी जाती हैं ॥२५-२७॥ इन स्त्रियों में जिनको ऊपर गुरु वर्ग में बताया गया है पहिली तीन श्रेष्ठ मानी गयी हैं। उन तीनों में भी माता सबसे अधिक पूजित मानी गयी है जो सच्चा हार्दिक प्रेम करती है जन्म देती है और जिसके द्वारा ज्ञान का उपदेश दिया जाता है ॥२८॥ तीनों ये स्त्रियाँ और ज्येष्ठ भाई तथा भर्ता भरण करने वाला ये पांच प्रमुख गुरु बताये गये हैं। इन की पूजा अपने सर्व भाव से और सभी प्रयत्नों के द्वारा तथा प्राण पन से इनकी पूजा अवश्य ही करनी चाहिए ॥२९॥

भोभवत्पूर्वकं त्वेनमभिभाषेत धर्मवित् ।
अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा नम्य एव च ॥३०
ब्राह्मणक्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा ।
नाभिवाद्याश्च विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन ॥३१
ज्ञानकर्मगुणोपेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ।
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः ॥३२
सवर्णेन सवर्णानां कार्यमेवाभिवादनम् ।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ॥३३
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वत्राभ्यागतो गुरुः ।
विद्याकर्मवयोबन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम् ॥३४
मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात् ।
पञ्चानां त्रिषुवर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च ॥३५

जो धर्म का ज्ञान रखने वाला पुरुष है उसे चाहिए कि उक्त गुरुजनों से सर्वदा भोभवत्पूर्वक भाषण करना चाहिए। अर्थात् भवत् शब्द का

(आपका) प्रयोग ही सदा करे। ये सभी अभिवादन करने के योग्य होते हैं—पूजा करने के योग्य होते हैं और शिर चरणो मे टेक कर ही प्रणाम करने के योग्य होते हैं ॥३०॥ जो श्री प्राप्त करने की कामना रखते हैं ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि के द्वारा आदर के सहित सदा अभिवादन नही करना चाहिए विशेष रूप से क्षत्रिय वैश्यादि को तो किसी प्रकार से भी अभिवादन नही करना चाहिए ॥३१॥ यद्यपि ये लोग ज्ञान—कर्म्म और गुणो से सम्पन्न भी हो और बहुश्रुत भी हो अर्थात् विविध विषयों एव शास्त्रों का बहुत कुछ भाग जिन्होने सुन रक्खा हो तो भी ब्राह्मण को प्रणाम न करके 'स्वस्ति'—ऐसा ही कहना चाहिए-यही श्रुति का आदेश हैं ॥३२॥ जो समान वर्ण वाले हो उनको अपने सवर्णों को अवश्य ही प्रणाम करना चाहिए। द्विजातियो के अग्नि-गुरु और ब्राह्मण सभी वर्णों के गुरु होते हैं ॥३३॥ स्त्रियो का गुरु एक मात्र उसका पति ही होता है। जो अभ्यागत (अतिथि) होता है वह सर्वत्र सब का गुरु माना जाता है। अब मान्य स्थान कितने होते है—यह बताया जाता है। विद्या—कर्म्म—वय—बन्धु और पाँचवाँ धन ये मान्य स्थान हुआ करते हैं किन्तु इनमे भी जो पूर्व-पूर्व होता है वह उत्तर-उत्तर से अधिक मान्य माना जाता है। इन पाचो की तीनो वर्णों मे बहुत सी बलवत्तरा-हुआ करती हैं ॥३४-३५॥

यत्र स्यु. सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमी गतः।
पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे विचक्षुषे ॥३६
वृद्धाय भारभग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च।
भिक्षामाहृत्य शिष्टाना गृहेभ्य प्रयतोऽन्वहम् ॥३७
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया।
भवत्पूर्वंचरेद्भैक्ष्यमुपवीती द्विजोत्तमः ॥३८
भवन्मध्य तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्।
मातर वा स्वसार वा मातुर्वा भगिनी निजाम् ॥३९
भिक्षेत भिक्षा प्रथम या चैन न विमानयेत्।
सजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा ॥४०

भक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं पतितादिविवर्जितम् ।
वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु ॥४१
ब्रह्मचार्य्याहरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ।
गुरोः कुलेन भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु ॥४२

जहाँ पर ये पाचों ही हों वह मान करने के योग्य होता है। और दशमी को गया हुआ शूद्र भी मान्यार्ह होता है। मार्ग में जाते हुए यदि कोई ब्राह्मण आजावे तो उसके लिये स्वयं अलग हटकर मार्ग खुला छोड देना चाहिए। इसी भाँति स्त्री के लिए-राजा के लिए और अन्धे पुरुष के लिए भी मार्ग खाली कर उन्हे पहिले जाने देना चाहिए ॥३६॥ कोई वृद्ध पुरुष हो-किसी के शिर पर भार रक्खा हुआ हो—कोई रोग ग्रस्त हो और कोई दुर्बल हो तो इन सब के लिए मार्ग पहिले दे देना चाहिए और स्वय हटकर स्थित हो जाना चाहिए। ब्रह्मचारी द्विज का कर्त्तव्य है कि शिष्टों के यहा घरों से भिक्षा लाकर प्रयत होता हुआ प्रतिदिन सब अपने गुरु की सेवा में समर्पित करे। जब गुरु की आज्ञा प्राप्त हो जावे तो मौन व्रत धारण कर उसका अशन करे जो उपवीत धारण करने वाला ब्रह्मचारी है वह जब भिक्षा ग्रहण करने के लिए जावे तो द्विजोत्तम को ब्राह्मण के लिए भवत् शब्द का प्रयोग प्रथम करना चाहिए अर्थात् भवती भिक्षां देहि—ऐसा कहना चाहिए ॥३७-३८॥ राजन्य अर्थात् क्षत्रिय के लिए भवत् शब्द का प्रयोग मध्य मे करना चाहिए और वैश्य को अन्त मे भवत् शब्द का प्रयोग करना चाहिए सबसे प्रथम अपनी माता से, माता की बहिन से अथवा अपनी भगिनी से भिक्षा की याचना करनी चाहिए क्योंकि इनमे से कोई भी ब्रह्मचारी की भिक्षा-याचना करने पर उसे विमानित नहीं करेगी। फिर सजातीय गृहो में ही भिक्षा की याचना करे अथवा सभी वर्णों के घरों में करे ॥३९-४०॥ पतित आदि से रहित ही भक्ष्य का समाचरण बताया गया है। जो पुरुष वेदो से और यज्ञादि से हीन न हों तथा जो पुरुष अपने कर्त्तव्य कर्मों मे परम श्रेष्ठ हों उन्ही के घरों से ब्रह्मचारी को भिक्षा का आपहरण करना चाहिए और प्रतिदिन प्रयत होकर भिक्षाटन करे।

गुरु का जो कुल हो वहां से भिक्षा का आहरण करे किन्तु ज्ञाति-कुल और बन्धुओं के यहा से कभी आहरण न करे ॥४१-४२॥

भैक्ष्येण वर्त्तिनो वृत्तिरुपवास समास्मृता ।
पूजयेदशनं नित्यं मदाच्चैनमकुत्सयन ॥४३
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ।
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम् ॥४४
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।
प्राङ्मुखोन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुखमेव वा ॥४५
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः ।
प्रक्षाल्यः पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत् ।
शुद्ध देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत् ॥४६

भैक्ष्य द्वारा जो अपनी जीवन वृत्ति चलाता है वह वृत्ति एक प्रकार से उपवास के ही समान बताई गई है । जो भी भिक्षा में भोज्य पदार्थ प्राप्त हो उसका नित्य पूजन करे और मद से कभी भी उसकी बुराई नही करनी चाहिए । भोज्य पदार्थ को देख कर परम प्रसन्नता करनी चाहिए और अत्यन्त हर्षित होवे और सब प्रकार से उसकी प्रशसा करे । अतिभोजन जो होता है वह आरोग्य देने वाला नहीं होता है—आयुष्य व स्वर्ग प्रदान करने वाला भी नही होता है । तात्पर्य सुखकर नही है, जो अपुण्य और लोक विद्विष्ट होता है उस भोजन का त्याग कर देना चाहिए पूर्व की ओर मुख करके अन्न का उपभोग करे अथवा सूर्य की ओर मुख करके भोजन करना चाहिए ॥४३-४५॥ उत्तर दिशा की ओर मुख करके नित्य भोजन नहीं करे—यही सदा से चली आई भोजन की विधि है । अपने दोनों हाथो और दोनो पैरों को धोकर ही भोजन करे तथा दो बार आचमन करे । भोजन करने का स्थान भी परम विशुद्ध होना चाहिए ऐसे अति शुद्ध स्थान मे स्थित होकर मौनी हो भोजन करे और भोजन करने के पश्चात् भी दो बार आचमन करना चाहिए ॥४६॥

॥ निषिद्ध कर्म कथन ॥

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे ।
ओष्ठावलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च ॥१
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽनृतभाषणे ।
ष्ठीवित्वाऽध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा ॥२
चत्वरं वा श्मशानं वा समाक्रम्य द्विजोत्तमः ।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुनः ॥३
चाण्डालम्लेच्छसम्भाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे ।
उच्छिष्टं पुरुषं दृष्ट्वा भोज्यं चापि तथाविधम् ॥४
आचामेदश्रुपाते वालोहितस्य तथैव च ।
भोजने सन्ध्ययोः स्नात्वा पीत्वा मूत्रपुरीषयोः ॥५
आगतो वाऽऽचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यतः ।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव वा ॥६
स्त्रीणामथात्मनः स्पर्शे नीली वा परिधाय च ।
उपस्पृशेज्जलं वार्तं तृणं वा भूमिमेव च ॥७

कृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास देवजी ने कहा—भोजन करके-पेय पदार्थ दूध आदि का पान करके-शयन करके अर्थात् निद्रा लेकर-स्नान करके-रथ्या अर्थात् गली से उपसर्पण कर के-बिना लोम वाले ओष्ठों का स्पर्श करके-वस्त्र का विपरिधान करके-रेत (वीर्य), मूत्र और पुरीष का उत्सर्ग करके -अनृतभाषण करके-थूककर-अध्ययन के आरम्भ में खाँसी और श्वास के आगम होने पर-चत्वर अथवा श्मशान भूमि का समाक्रमण करके द्विज श्रेष्ठ को दोनो सन्ध्याओं की भाँति आचान्त होते हुए भी पुनः आचमन करना चाहिए ॥१-३॥ किसी चाण्डाल जाति वाले पुरुष से तथा म्लेच्छ से सम्भाषण करने पर, स्त्री तथा शूद्र के साथ भाषण करने पर एवं उच्छिष्ट पुरुष का दर्शन करके तथा उसी प्रकार का उच्छिष्ट भोज्य पदार्थ को देखकर आचमन करना चाहिए । अश्रुपात करने पर तथा लोहित का पात करने पर-भोजन करने पर

दोनों सन्ध्याओं में-स्नान-पान करके एवं मूत्र-मल का त्याग करके-वहीं से आकर आचमन करना चाहिए। सोकर एक-एकबार आचमन करे। अग्नि का स्पर्श करके, गौओं के आलम्भन और स्त्रियों का स्पर्श करके आत्मा का स्पर्श करने पर, नीले वस्त्र का परिधान करके जल का उपस्पर्शन करे, तृण अथवा भूमि का उपस्पर्श न करे ॥४-७॥

केशानां चात्मनः स्पर्शे वाससः स्खलितस्य च।
अनुष्णाभिरकेशाभिरदुष्टाभिश्च धर्मतः ॥८
शौचेप्सुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुदङ् मुखः।
शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकेशशिखोऽपि वा ॥९
अकृत्वा पादयोः शौचं मार्गतो न शुचिर्भवेत्।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाचमेद् बुधः ॥१०
न चैव वर्षं धाराभिर्नतिष्ठन्नुद्धृतोदकैः।
नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः ॥११
न पादुकासनस्थो वा वहिर्जानुरथापि वा।
न जल्पन्नहसन्प्रेक्षन्छयानस्तल्प एव च ॥१२
नाविक्षिताभिः फेनाद्यैरुपेताभिरथापि वा।
शूद्राशुचिकरोन्मुक्तैर्नक्षाराभिस्तथैव च ॥१३
न चैवाङ्गुलिभिः शब्दं न कुर्यान्नान्यमानसः।
न वर्णरसदुष्टाभिर्नचैव प्रदरोदकैः ॥१४

अपने ही केशों के स्पर्श करने पर तथा स्खलित वस्त्र का स्पर्श करने पर, अनुष्णाओं से अकेशाओं से और धर्म से अदुष्टाओं से सम्पर्क करके शौच की ही इच्छा वाले पुरुष को सर्वदा आचमन करना चाहिए और पूर्व दिशा की ओर मुख करके अथवा उत्तर की ओर मुख करके बैठ जावे और फिर आचमन करे। सिर को ढककर अथवा कण्ठ को ढक कर, केशों को तथा शिखा को खोल करके, दोनों पैरों की शुद्धि न करके मार्ग से कभी शुचि नहीं होता है। बुध पुरुष को जूते पहिने हुए जल में स्थित होकर, उष्णीष (पाग) पहिने हुए कभी भी आचमन नहीं करना चाहिए ॥८-१०॥ वर्षा की धारा से आचमन नहीं

विप्र हृदयगत जल से शुचि होता है, क्षत्रिय कण्ठ गत से पवित्र होता है, वैश्य प्राशित किये हुए जल से शुचि होता है और शूद्र तथा स्त्री केवल अन्तत: स्पर्श करने ही से शुचि हो जाया करते हैं। हाथ के अंगुष्ठ के मूल मे मध्य मे जो रेखा होती है उसमे ब्राह्म स्थान बताया जाता है ।।१५-१६।। जल का तीन बार आचमन करे इसके करने से देवगण प्रसन्न होते हैं। ऐसा करने से ब्रह्मा-विष्णु और महेश सभी प्रसन्न होते हैं–ऐसा अनुश्रवण किया जाता है ।।१७।। भागीरथी गगा और यमुना ये दोनो पुण्यमयी नदियाँ परिमार्जन करने से प्रसन्न होती हैं, शशि और भुवन भास्कर सूर्यदेव तो लोचनो से सस्पर्श वाले होते ही प्रसन्नता प्रदान करते हैं–हृदय मे सस्पर्श होने पर सभी देवता प्रसन्नता दिया करते हैं–मस्तक मे सस्पर्श होने से एक प्रसन्न होता है वह पुरुष होता है ।।१८-२०।। जो जलकण अङ्ग मे लग जाया करते है वे उच्छिष्ट नही बनाते है। दन्तो की भांति दन्त लग्नो मे जिह्वा का स्पर्श हो जाने पर अशुचि हो जाता है ।।२१।। दूसरो के आचमन करते हुए जो जल बिन्दु पैरो का स्पर्श किया करती हैं वे भूमि के रजकण के ही समान समझनी चाहिए और उनके स्पर्श करने से अस्पृश्यता होती है ।।२२।।

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फलमूले चेक्षुदण्डे न दोषं प्राह वै मनुः ।।२३
प्रचरन्नान्नपानेषु द्रव्यहस्तो भवेन्नरः।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तु तत् ।।२४
तैंजस व समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षयेत्तुतत् ।।२५
यद्यद्द्रव्य समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः।
अनिधायैव तद्द्रव्य भूमौ त्वशुचितामियात् ।।२६
वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात्तत्सस्पृश्याचमेदिह।
अरण्ये निर्जने रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि ।।२७

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति ।
निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ् मुखः ॥२८

महाराज मनु ने मधुपर्क मे—सोमपान मे और ताम्बूल के चर्वण मे फल तथा मूल के भक्षण मे एवं ईख के दण्डे के चूसने मे कोई भी दोष नही बतलाया है ॥२३॥ अन्न पानो मे प्रचरण करता हुआ मनुष्य यदि द्रव्य हाथ मे लिये हुए हो तो उसे भूमिपर रखकर आचमन करके अभ्युक्षण करना चाहिए ॥२४॥ कोई तैजस पदार्थ लेकर यदि द्विज उच्छिष्ट हो जावे तो उस नियुक्त पदार्थ को भूमि पर निक्षिप्त करके आचमन करे और अभ्युक्षण करना चाहिए ॥२५॥ जो जो भी द्रव्य लेकर उच्छेषण से युक्त होवे तो उस-उस द्रव्य को भूमि मे न रख कर ही अशुचिता को प्राप्त हुआ करता है—ऐसा ही नियम है ॥२६॥ वस्त्र आदि मे विकल्प होता है, उसका सस्पर्श करके आचमन करना चाहिए। अरण्य मे जहाँ कोई भी प्राणी न हो, रात्रि मे और चोर तथा व्याघ्र से समाकुलित मार्ग मे मूत्र एवं मल का त्याग करके भी यदि कोई द्रव्य हाथ मे भी हो तो वह दूषित नही हुआ करता है। दक्षिण कर्ण मे ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को रख कर उत्तर की ओर मुख वाला होकर त्याग करना चाहिए ऐसा मल-मूत्र के त्याग करने का विधान है ॥२७-२८॥

अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ।
अन्तर्धाय मही काष्ठैः पत्रैर्लोष्टतृणेन वा ॥२९
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्जनम् ।
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथि भस्मसु ॥३०
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रं न समाचरेत् ।
न गोमये न काष्ठे वा महावृक्षेऽथ शाद्वले ॥३१
न तिष्ठन्नच निर्वासा न च पर्वतमण्डले ।
न जीर्णदेवायतने वल्मीके न कदाचन ॥३२
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न समाचरेत् ।
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ॥३३

न क्षेत्रे न विले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे ।
नोद्यानेऽपां समीपे नोषरे नगराश्रये ॥३४
न सोपानत्पादुको वा छत्री वानान्तरिक्षके ।
न चैवाभिमुखः स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम् ॥३५

दिन मे मल-मूत्र का त्याग उदङ्मुख होकर ही करे और रात्रि मे यदि इनका त्याग करना हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करना चाहिए । भूमि को काष्ठ-पत्र लोष्ठ अथवा तृण से अन्तर्धान करके और सिर को ढक कर विष्ठा एवं मूत्र का विसर्जन करना चाहिए । वृक्षादि की छाया मे-कूप मे-नदी-गोष्ठ मे-चैत्य मे-जल-मार्ग मे और भस्म मे अग्नि तथा श्मशान मे कभी भी भूल कर मल-मूत्र का त्याग न करना चाहिए । इसी भाँति गोमय-काष्ठ-महान् वृक्ष-शाड्वल (हरी घास) मे भी मल-मूत्र का विसर्जन नही चाहिए ॥२६-३१॥ खड़े होकर नग्न होकर-पर्वत मण्डल मे-जीर्ण देवो के आयतन (स्थान) मे—सर्प की बाँबी मे भी कभी भी मल-मूत्र का त्याग नही करना चाहिए ॥३२॥ ऐसे गर्तों मे जिनमे जन्तु निवास करते हो तथा गमन करते हुए भी मल-मूत्र का विसर्जन नही करना चाहिए । तुप-अगार-कपाल मे राजमार्ग मे-क्षेत्र मे-बिल मे-तीर्थ मे-चौराहे मे-उद्यान मे-जल के समीप मे-ऊसर भूमि मे-नगराश्रय मे मल-मूत्र का त्याग नही करने की विधि है ॥३३-३४॥ जूतो के सहित तथा पादुका के सहित- छत्र धारण किये हुए अनान्तरिक्ष मे- स्त्रियो के समक्ष मे-गुरु, ब्राह्मण और गौओ के बिल्कुल सामने मे भी स्थित होकर कभी मल-मूत्र का त्याग नही करना चाहिए ॥३५॥

॥ गृहस्थ धर्म कथन ॥

वेद वेदौ तथा वेदान्वेदाङ्गानि तथा द्विजाः ।
अधीत्य चाधिगम्यार्थं ततः स्नायाद् द्विजोत्तम ॥१

गुरवे तु धनं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया ।
तीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा शक्तो वा स्नातुमर्हति ॥२
वैष्णवीं धारयेद्यष्टिमन्तर्वासस्तथोत्तरम् ।
यज्ञोपवीतद्वितीयं सोदकं च कमण्डलुम् ॥३
छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ ।
रौक्मे च कुण्डले धार्ये कृत्तकेशनखः शुचिः ॥४
अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रो न रक्तां बिभृयात्स्रजम् ।
शुक्लाम्बरधरो नित्य सुगन्धः प्रियदर्शनः ॥५
न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै विभवे सति ।
न रक्तमुल्बणं चान्यधृत वासो न कुण्डलम् ॥६
नोपानहौ स्रजं चाथ पादुके च प्रयोजयेत् ।
उपवीतमलङ्कारं दर्भान्कृष्णाजिनं तथा ॥७

महर्षि व्यास देव ने कहा—हे द्विजगण ! एक वेद, अथवा कोई से दो वेद तथा सभी वेदों का एव वेदो के अ ग शास्त्रो का अध्ययन करके और उनके ठीक २ अर्थों का अधिगमन करके फिर द्विजोत्तम को स्नान करना चाहिए । यह आश्रम की समाप्ति का विशेष प्रकार का स्नान है ॥१॥ जिस गुरु के पास ब्रह्मचर्य्य आश्रम मे रह कर अध्ययन किया था उसको दक्षिणा के रूप मे धन जो भी अपनी शक्ति के अनुसार हो सके देवे और गुरु का आदेश प्राप्त करके ही पूर्वाश्रम का त्याग का स्नान करना चाहिए । तीर्थों के व्रत वाला युक्तात्मा यदि शक्तिमान् हो तो स्नान कर सकता है ॥२॥ वैष्णवी यष्टि को धारण करे, अन्तर्वास और उत्तरीय वस्त्र धारण करना चाहिए । यज्ञोपवीत उत्तरीय व स्रज के अतिरिक्त दूसरा भी धारण करे । जल से भरा हुआ एक कमण्डलु होवे ॥३॥ छत्र ग्रहण करे बहुत स्वच्छ उष्णीष पहिने, पादुकाऐं हो या उपानह (जूता) धारण करे । सुवर्ण निर्मित सुन्दर कुण्डल कानो मे पहिने । केश और नाखून कटवा कर परम पवित्र होना चाहिए ॥४॥ सुवर्ण के अतिरिक्त विप्र को रक्त माला नही धारण करनी चाहिए । नित्य ही शुक्ल वर्ण के वस्त्रो को धारण करे सुगन्धित पदार्थों को ग्रहण

करे और सब प्रकार देखने में प्रिय होना चाहिए ॥५॥ ऐश्वर्य होते हुए कभी भी पुराना फटा हुआ और मैला कुचैला वस्त्र धारण करने वाला नहीं होना चाहिए। रक्त वर्ण का, उल्वण और दूसरे किसी के द्वारा पहिना वस्त्र एवं कुण्डल नहीं धारण करना चाहिए ॥६॥ दूसरे के उपानह-माला-पादुकाओं भी का प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्य के द्वारा पहिना हुआ उपवीत- अलंकार- दर्भ-और कृष्ण वर्ण का मृग चर्म (मृग छाला) भी धारण नहीं करे ॥७॥

नापसव्यं परीदध्याद्वासोन विकृतं वसेत् ।
आहरेद्विधिवद्दारान्सदृशानात्मनःशुभान् ॥८
रूपलक्षणसंयुक्तान्योनिदोषविवर्जितान् ।
असपिण्डा च वै मातुरसमानार्षगोत्रजाम् ॥९
आहरेद् ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम् ।
ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते ॥१०
वर्जयेत्प्रतिपिद्धानि प्रयत्नेन दिनानि तु ।
षष्ठ्यष्टमी पञ्चदशीद्वादशी च चतुर्दशीम् ॥११
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्वज्जन्मत्रयाहनि ।
आदधीत विवाहाग्नि जुहुयाज्जातवेदसम् ॥१२
एतानि स्नातको नित्य पावनानि च पावयेत् ।
वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥१३
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानतिभीषणान् ।
अभ्यसेत्प्रयतो वेद महायज्ञान्न हापयेत् ॥१४
कुर्याद् गृह्याणि कार्याणि सन्ध्योपासनमेव च ।
सख्यं सदाधिकैः कुर्यादुपेयादीश्वरं सदा ॥१५

वस्त्र को कभी अपसव्य नहीं रखना चाहिए और जो वस्त्र विकृत दशा में हो उसे भी नहीं पहिने, ब्रह्मचर्याश्रम की अवस्था को समाप्त कर पत्नी का ग्रहण कर गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करना चाहिए किन्तु पत्नी ऐसी होनी चाहिए जो अपने ही अनुकूल समानता रखने वाली हो और परम शुभ हो अर्थात् सुलक्षणा हो। ऐसी पत्नी का ग्रहण शास्त्रोक्त

विधि के साथ ही करने का विधान है ॥८॥ पत्नी रूप-लावण्य से संयुक्त होनी चाहिए और ऐसी हो कि जिसमे कोई योनि–दोष न हो। जो पत्नी हो वह असपिण्ड होनी चाहिए। अपन गोत्र मे सात पीढी तक सपिण्डता शास्त्र मे मानी गई है। पत्नी माता के गोत्र अर्थात् आर्ष गोत्र के समान नही होनी चाहिए ॥९॥ ब्राह्मण को ऐसी भार्या का ग्रहण करना चाहिए जो शील और शौच से समन्वित हो अर्थात् भार्या का विशेष गुण यही है कि उसके स्वभाव म शान्ति शालीनता हो और शुचिता भी होवे। तात्पर्य यह है कि ऐसी भार्या ही गार्हस्थ्य को सुखमय बना सकती है। जिस समय तक पुत्र की समुत्पत्ति न हो तब तक भार्या का अभिगमन ऋतुकाल मे ही करना चाहिए ॥१०॥ अभिगमन करने के लिए शास्त्र मे जो दिन निषिद्ध माने गये हैं उन दिनो को प्रयत्न पूर्वक त्याग देना चाहिए। प्रतिषिद्ध तिथियो मे षष्ठी–अष्टमी पञ्चदशी–द्वादशी और चतुर्दशी ये तिथियाँ होती हैं ॥११॥ उसी भाँति जन्मत्रय के दिन मे नित्य ही ब्रह्मचारी होना चाहिए। वैवाहिक अग्नि को धारण करे और अग्नि मे हवन करना चाहिए ॥१२॥ जो स्नातक है अर्थात् जिसने ब्रह्मचर्य धारण कर नियम पूर्वक वेदाध्ययन का कार्य समाप्त कर लिया है वह स्नातक कहा जाता है, उसे नित्य ही इन पावन कर्मों को पवित्र करना चाहिए। जो कर्म्म वेदो मे बतलाया गया है उसे अपने कर्म को निरालस्य होकर नित्य ही करना चाहिए ॥१३॥ यदि वेदोक्त कर्म को कोई गृहस्थ नित्य नही किया करता है तो वह शीघ्र ही अत्यन्त भीषण नरको मे पडता है। अतएव प्रयत होकर नित्य ही वेदो का अभ्यास करना चाहिए और जो महान् यज्ञ हैं उनका कभी भी त्याग नही करे ॥१४॥ जो कार्य्य गुह्य हैं उन्हें करता रहे और सन्ध्योपासन नित्य नियम से उचित समय पर करना चाहिए। अपने से जो शील-गुण-विद्या आदि मे अधिक हों उन्ही के साथ सख्य भाव या मैत्री-सम्बन्ध करना चाहिए और सर्वदा भगवान् का ध्यान एव भजन करते रहना चाहिए ॥१५॥

देवतान्यभिगच्छेत कुर्याद्भार्याभिपोषणम् ।
न धर्मं ख्यापयेद्विद्वान्न पापं गूहयेदपि ॥१६
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः ।
वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च ॥१७
देशवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरन्विचरेत्सदा ।
श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्साधुभिर्यश्च सेवितः ॥१८
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित् ।
येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः ॥१९
तेन यायात्सतां मार्गं येन गच्छन्न दुष्यति ।
नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् ॥२०
सत्यवादीजितक्रोधोलोभमोहविवर्जितः ।
सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यतेगृही ॥२१
मातापित्रोर्हितेयुक्तो ब्राह्मणस्यहिते रतः ।
दाता यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२२

गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि देवों की उपासना करे और अपनी भार्य्या का अभिपोषण भी भली भाँति गृहस्थाश्रमी पुरुष को करना ही चाहिए। विद्वान् पुरुष जो भी धर्म-कृत्य करे उनका ख्यापन न करे और जो भी कुछ पाप कर्म बन जावे उसे कभी छिपाना नहीं चाहिए। पाप कर्म को छिपा कर रखना अत्यधिक उग्र हो जाता है ॥१६॥ अपनी आत्मा का हित का कार्य विद्वान् गृहस्थ को नित्य ही करना चाहिए और समस्त प्राणियों पर हार्दिक दया रखने की भावना वाला होवे। सर्वदा इस प्रकार का आचरण करना चाहिए जो अपनी उम्र—अपना कर्म—अर्थ श्रुत-अभिजन-देश-वाणी और बुद्धि के सदृश अर्थात् अनुरूप हो-ऐसा समाचरण करते हुए ही सदा विचरण करना चाहिए। इनके विपरीत अथवा प्रतिकूल आचरण करने से अयश तथा पाप ही होता है। जो श्रुति और स्मृति ने प्रतिपादित किया है या आदेश दिया है और जिसे साधु पुरुषों के द्वारा भले प्रकार से सेवन किया है वही आचार सेवन करने के योग्य होता है अतः उसी आचार के अनुसार चलना चाहिए।

अन्य किसी भी आचार को देखा देखी किसी भी समय मे, कदापि भी और किसी भी स्थान पर नहीं करना चाहिए। जिस सदाचार का पालन करते हुए हम सब के पिता-पितामह और पूर्व पुरुष गये है उसी सत्पुरुषो के मार्ग से जाना ही हमारा भी कर्त्तव्य है। उसी मार्ग से चलने पर कोई दोष नही होता है । गृहस्थाश्रमी पुरुष को भी नित्य स्वाध्याय करने के स्वभाव वाला होना चाहिए और सर्वदा यज्ञोपवीत के धारण करने वाला रहना चाहिए ॥ १९-२० ॥ सत्य बोलने वाला, क्रोध को जीत कर रखने वाला, लोभ और मोह से रहित, सावित्री के जाप करने मे निरत रहने वाला और श्राद्ध करने वाला जो गृही(गृहस्थाश्रमी)होता है वह मुक्त हो जाया करता है॥२१॥ जो गृहस्थाश्रमी अपने माता-पिता के हितकर कार्यों मे रति रखता है और ब्राह्मण के हित मे प्रेम रखता है, दान शील, यजन करने वाला और देववृन्द का भक्त होता है वह ब्रह्मलोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२२॥

त्रिवर्गसेवी सततं देवानां च समर्चनम्।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत्प्रयतः सुरान् ॥२३
विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ॥२४
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः।
अध्यात्मनित्यता ज्ञानमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥२५
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमः।
यथाशक्ति चरन्धर्मं निन्दितानि विवर्जयेत् ॥२६
विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्।
गृहस्थो मुच्यते बन्धान्नात्र कार्याविचारणा ॥२७

धर्म—अर्थ और काम तीनो के वर्ग का सेवन करने वाला और निरन्तर देवगण की अर्चना करने वाला होना चाहिए। गृहस्थ पुरुष प्रयत होकर सुरो को प्रणाम किया करता है ॥२३॥ विभाजन करके

सुखोपभोग के स्वभाव वाला एक गृहाश्रमी हो। क्षमा को सदा धारण करके रहने वाला हो अर्थात् अपराधों को क्षमा कर देने के स्वभाव रखता हो तथा दयालु हो—ऐसा ही सच्चा गृहस्थ कहा गया है केवल गृह में रहता है इसीसे गृहस्थ नही हो जाता है ।।२४।। क्षमा-दया-विज्ञान-सत्य-दम-शम अध्यात्म नित्यता अर्थात् नित्य ही आत्मा के उत्थान का अभ्यास और ज्ञान-ये ही ब्राह्मण का लक्षण है अर्थात् जो सही अर्थ मे ब्राह्मण होता है उसमे ये उपर्युक्त सभी सद्गुण विद्यमान रहा करते है ।।२५।। ये सद्गुण ऐसे हैं जो मनुष्य मात्र मे ही होने चाहिए जिससे कि वह सच्ची मानवता प्राप्त कर सके किन्तु विशेष करके ब्राह्मण को तो इन सद्गुणो से कभी भी प्रमाद नही करना चाहिए। अर्थात् उसे इनको कभी त्याग नही देना चाहिए,भरसक इन उक्त गुणो मे जितना भी अधिक से अधिक धर्म का आचरण बन सके उसका पालन करे और बुरे कर्मों का त्याग कर देना चाहिए।२६।मोह के कलिल को हटाकर उत्तमयोग को प्राप्त करना चाहिए। ऐसा करने ही से गार्हस्थ्य आश्रम मे रहने वाला मनुष्य मुक्त होता है—इसम कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नही है। जब तक मोह मे फँसा रहेगा उद्धार होना कठिन होता है। गृहस्थ को मोह ही का बडा बन्धन होता है ।।२७।।

विगर्हितजयक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम् ।
अन्यमन्युसमुत्थाना दोषाणा मर्षण क्षमा ।।२८
स्वदु खेष्वेव कारुण्य परदु खेषु सौहृदम् ।
दयेति मुनय प्राहु साक्षाद्धर्मस्य साधनम् ।।२९
चतुर्दशाना विद्याना धारणा हि परार्थत ।
विज्ञानमिति तद्विद्यायेन धर्मो विवर्धते ।।३०
अधीत्य विधिवद्विद्यामर्थं चैवोपलभ्यते ।
धर्मकार्याणि कुर्वीत ह्येतद्विज्ञानमुच्यते ।।३१
सत्येन लोक जयति सत्य तत्परम पदम् ।
यथाभूताप्रमाद तु सत्यमाहुर्मनोषिण ।।३२

दम:शरीरोपरतिः शमः प्रज्ञाप्रसादतः ।
अध्यात्ममक्षरं विद्या यत्र गत्वा नशोचति ॥३३
यया स देवो भगवान्विद्यया विद्यते परः ।
साक्षादेव हृषीकेशस्तज्ज्ञानमितिकीर्तितम् ॥३४
तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनःशुचिः ।
महायज्ञपरो विप्रो लभते तदनुत्तमम् ॥३५॥

अब क्षमा आदि के स्वरूप को बतलाया जाता है जिससे मनुष्य सावधानी पूर्वक इनका परिपालन कर सके । निन्दित जय क्षेप हिंसा बन्ध और वध के स्वरूप वाले तथा अन्य क्रोध से समुत्पन्न दोषों का मर्पण करने को ही क्षमा कहते हैं ॥२८॥ अपने ही दुःखों में करुणा और परायों के दुःखो मे सौहार्द्र को ही मुनिगण दया कहते हैं यह धर्म का साक्षात् लक्षण है ॥२९॥ पदार्थ से चौदह विद्याओं की धारणा ही को विज्ञान कहते हैं । अतएव इसको जानना ही चाहिए जिससे धर्म की वृद्धि होती है ॥३०॥ विधि पूर्वक विद्या का अध्ययन करके जो अर्थ की उपलब्धि की जाती है और धर्म्म के कार्य भी करें —यही विज्ञान कहा जाता है ॥३१॥ सत्य से लोक की जय होती है । सत्य ही परम पद है । यथा भूत अप्रमाद ही को मनीषी लोग सत्य कहते है ॥३२॥ शरीर की उपरति ही दम कहलाता है और प्रज्ञा के प्रसाद से शम होता है । जो अक्षर विद्या है उसे ही अध्यात्म कहते हैं जहाँ पर पहुँचकर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है ॥३३॥ जिस विद्या के द्वारा यह परात्पर भगवान् देव जाना जाता है अर्थात् भगवान् का पूर्णज्ञान प्राप्त हो जाता है जो कि साक्षात् हृषीकेश हैं वही ज्ञान कहा गया है ॥३४॥ उसी भगवान् में निष्ठा रखने वाला और उसी में तत्पर विद्वान् नित्य ही क्रोध रहित एवं शुचि होता है । इस प्रकार से महान् यज्ञ में परायण विप्र उस उत्तम को प्राप्त किया करता है ॥३५॥

धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं परिपालयेत् ।
नहि देहं विना विष्णुः पुरुषैर्विद्यते परः ॥३६

नित्यं धर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः ।
न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत् ॥३७
सीदन्नपि हि धर्मेण नत्वधर्मं समाचरेत् ।
धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु ॥३८
भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधीः ।
न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न संवसेत् ॥३९
यस्त्विमं नियतो मर्त्यो धर्माध्याय पठेच्छुचिः ।
अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥४०

धर्म के कर्म करने का घर यह मानव का शरीर ही होता है क्योंकि शरीर के ही द्वारा समस्त धार्मिक कर्म किये जाते हैं । अतएव इस शरीर का परिपालन पूर्णयत्न के साथ करना चाहिए । इस देह के बिना यह परम पुरुष भगवान् विष्णु मनुष्यों के द्वारा नहीं जाना जा सकता ॥३६॥ अतएव द्विज को नित्य ही नियत होकर धर्म-अर्थ और काम में युक्त होना चाहिए । जो काम और अर्थ धर्म्म से रहित है उनका मन से भी कभी स्मरण नहीं करना चाहिए ॥३७॥ धर्म का कार्य करते हुए यदि दुःख भी भोगने पड़ें तो उन्हें भोग लेवे परन्तु दुःखों से घबरा कर कभी भी अधर्म का आचरण न करे । यह धर्म ही साक्षात् भगवान् देव है और इसीसे समस्त जन्तुओं का उद्धार हुआ करता है ॥३८॥ सभी प्राणियों का प्रिय करने वाला होवे और दूसरे के साथ द्रोह करने के कर्मों की बुद्धि कभी नहीं रखनी चाहिए वेदों की और देवताओं की निन्दा कभी न करे और जो भी कोई पुरुष इनकी बुराई किया करते हैं उनके साथ निवास भी नहीं करना चाहिए ॥३९॥ इस धर्म्म के अध्याय का जो पुरुष शुचि होकर नियत रूप से पठन किया करता है अथवा इस अध्याय का अध्ययन किया करता है अथवा इस अध्याय का अध्यापन किया करता है या श्रवण कराता है वह मनुष्य ब्रह्मलोक में पहुँचकर परम प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥४०॥

।। विष्णुभक्ति की महिमा ।।

एवमुक्त पुरा विप्रा व्यासेनामिततेजसा ।
एतावदुक्त्वा भगवान्व्यास सत्यवतीसुतः ।।१
समाश्वास्य मुनीन्सर्वाञ्जगाम च यथागतम् ।
भवद्भ्यस्तु मया प्रोक्त वर्णाश्रमविधानकम् ।।२
एव कृत्वा प्रियोविष्णोर्भवत्येव नचान्यथा ।
रहस्य तत्र वक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ।।३
ये चात्र कथिता धर्मा वर्णाश्रमनिबन्धनाः ।
हरिभक्तिकलाशाशसमाना नहिते द्विजाः ।।४
पु सामेकेहवै साध्या हरिभक्ति कलौ युगे ।
युगान्तरेण धर्मा हि से वितव्या नरेण हि ।।५
कलौ नारायण देव यजते यः स धर्मभाक् ।
दामोदर हृषिकेश पुरूहूत सनातनम् ।।६
हृदि कृत्वा पर शान्त जितमेव जगत्त्रयम् ।
कलिकालोरगादशात्किल्बिपात्कालकूटत. ।।७
हरिभक्तिसुधा पीत्वा उल्लङ्घ्यो भवति द्विजः ।
किजपैः श्रीहरेर्नाम गृहीत यदि मानुपैः ।।८

सूतजी ने कहा—हे विप्रवृन्द ! अपरिमित तेज के धारण करने वाले महर्षि व्यासजी ने पहिले इस प्रकार से कहा था । सत्यवती के पुत्र भगवान् व्यास देवजी ने इतना कहकर समस्त मुनियो को समाश्वासन देकर जिस तरह आये थे वैसे ही चले गये थे । आप लोगो को मैंने वर्णों और आश्रमो का विधान कह दिया है ।।१-२।। इस प्रकार का आचरण करके ही भगवान् विष्णु का यह मान व प्रिय पात्र बन जाता है । अन्यथा विष्णु की प्रीति का पात्र नही हो सकता है । हे द्विजो मे श्रेष्ठो ! इसमे भी एक रहस्य है उसे मैं आप लोगो को बतलाता हूँ उसका आप सब श्रवण कीजिए ।।३।। जो भी यहा पर वर्णों और आश्रमो के निबन्धन वाले धर्मो का वर्णन किया गया है हे द्विजगण !

वे सब भगवान् हरि की भक्ति की कला के अंशों के अंश के भी समान नहीं होते हैं। हरि भक्ति ही सर्वोपरि होती है ॥४॥ अतएव इस संसार में पुरुषों को केवल एक श्री हरि की भक्ति ही साधनी चाहिए क्योंकि इस कलियुग में यही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मानवों का उद्धार हो सकता है। दूसरे द्वापरादि युगों में मनुष्यों को धर्म के कर्मों का सेवन करना कल्याण कर होता है ॥५॥ इस महान् घोर कलियुग में जो पुरुष भगवान् नारायण का यजन किया करता है वही परम धार्मिक पुरुष है। भगवान् दामोदर हृषीकेश पुरुहूत और सनातन श्रीहरि को जिसने अपने हृदय में स्थित कर लिया है वह परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है और उसने मानो तीनों जगतों को ही जीत लिया यह कलिकाल रूपी महाविषैला सर्प है इसके दशन से जो किल्विष होता है वह महा कालकूट ही होता है। इसके निवारण करने के लिए श्रीहरि की भक्ति रूपिणी सुधा ही है जिसका पान कर मनुष्य उल्लंघन करने के योग्य हो जाता है अर्थात् फिर उस पर इसके महाविष का कुछ भी प्रभाव नहीं होता है। यदि मनुष्यों ने श्रीहरि के पवित्र शुभ कल्याण मय नाम का ग्रहण कर लिया है अर्थात् हरि नाम का जाप करना आरम्भ कर दिया है तो फिर अन्य मन्त्रों के जप एवं धार्मिक कर्मानुष्ठान आदि की उसे कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। उसके लिए अन्य जाप सब व्यर्थ ही होते हैं ॥६-८॥

किंस्नानंर्वष्णुपादाम्बुमस्तके येन धार्यते ।
किंयज्ञन हरे पादपद्म येन घृत हृदि ॥६
किंदानेन हरे कर्म सभाया वै प्रकाशितम् ।
हरेर्गुणगणाञ्छ्रुत्वा य प्रहृष्येत्पुन पुन ॥१०
समाधिनाप्रहृष्टस्य सा गति कृष्णचेतस ।
तत्र विघ्नकरा प्रोक्ता. पाखण्डालापपेशला ॥११
नार्यस्तत्सङ्गिनश्चापि हरिभक्तिविघातका ।
नारीणा नयनादेश सुराणामपि दुर्जय ॥१२

स येन विजितो लोके हरिभक्तः स उच्यते ।
माद्यन्ति मुनयोऽप्यत्र नारीचरितलोलुपाः ॥१३
हरिभक्तिः कुतः पुंसा नारीभक्तिजुषां द्विजाः ।
राक्षस्यः कामिनीवेषाश्चरन्ति जगति द्विजाः ॥१४

जिसने भगवान् के चरणारविन्द का चरणामृत अपने मस्तक पर धारण कर लिया है या जो धारण किया करते है उन्हें अन्य बड़े २ तीर्थों मे स्नान आदि करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। जिस पुरुष ने श्रीहरि के चरण कमलो का ध्यान अपने हृदय मे किया है उसके लिये यज्ञ–जपादि करना सब व्यर्थ ही है ॥ ९॥ जिसने श्री हरि के मन्दिर मे उनकी सेवा के हित कर्म किये है उसे दान करने की आवश्यकता नही है। सभा में प्रकाशित भगवान् श्रीहरि के गुण गणों का श्रवण कर जो मनुष्य बारम्बार प्रहर्षित होता है। और हर्षोद्गम से पुलकायमान हो जाया करता है उस पुरुष की वही गति हुआ करती है जो समाधि लगा कर एक योगाभ्यासी की हर्षातिरेक से होती है। कृष्ण में चित्त लगा देने वाले पुरुष को समाधि मे स्थित पुरुष के समान ही आनन्दानुभव होता है। उसमे विघ्न करने वाले पाषण्डालाप पेशल हुआ करते है अर्थात् जो ढोंग करके आलाप किया करते हैं और मीठी २ बातें बनाते है वे ही विघ्न डालने वाले लोग होते हैं ॥१०-११॥ उनके संग करने वाली नारियां भी हरिभक्ति की विघात करने वाली हुआ करती है। नारियो का नयनादेश देवो को भी दुर्जय होता है ॥१२॥ जिस ने इसका जीत लिया है वही इस लोक में हरि का भक्त है ऐसा कहा जाता है। नारियो का चरित्र ही ऐसा अद्भुत है कि इसके लालची मुनिगण भी मत्त हो जाया करते है और उनका ध्यान-ज्ञान सब छूट जाता है ॥१३॥ हे द्विजगण ! जो पुरुष नारियों की भक्ति का सेवन करने वाले होते है उनको श्री हरिके चरणारविन्द की भक्ति कैसे हो सकती है अर्थात् कदापि नहीं हुआ करती है। हे द्विजवरो ! ये नारियाँ जो इस समय संसार कामिनियो के वेष–भूषा या स्वरूप मे विद्यमान है वे साक्षात् राक्षसी ही होती हैं ॥१४॥

नराणां बुद्धिकवलं कुर्वन्ति सततं हिताः ।
तावद्विद्या प्रभवति तावज्ज्ञानं प्रवर्तते ॥१५
तावत्सुनिर्मला मेधा सर्वशास्त्रविधारिणी ।
तावज्जपस्तपस्तावत्तावत्तीर्थनिषेवणम् ॥१६
तावच्च गुरुशुश्रूषा तावद्वितरणे मतिः ।
तावत्प्रबोधो भवति विवेकस्तावदेव हि ॥१७
तावत्सतां सङ्गरुचिस्तावत्पौराणलालसा ।
यावत्सीमन्तिनीलोलनयनान्दोलनं महि ॥१८
जनोपरि पतेद्विप्राः सर्वधर्मविलोपनम् ।
तत्र ये हरिपादाब्जमधुलेशप्रसादिताः ॥१९
तेषां न नारीलोलाक्षिक्षेपणं हि प्रभुर्भवेत् ।
जन्मजन्महृषीकेशसेवनं यैः कृतं द्विजाः ॥२०
द्विजे दत्तं हुतं वह्नौ विरतिस्तस्य तत्र हि ।
नारीणां किल किंनाम सौन्दर्यं परिचक्षते ॥२१

ये नारियाँ इस लोक मे निरन्तर हितैषिणी बन कर पुरुषो की बुद्धि को ग्रास बना कर खाजाया करती हैं। पुरुषो का ज्ञान—विद्या तभी तक स्थिर रहता है और उसी समय तक इनकी बुद्धि भी निर्मल रहा करती है जोकि सम्पूर्ण शास्त्रों को धारण करने वाली होती है, तभी तक जप-तप और तीर्थों का निषेवण स्थिर रहता है, उसी समय तक गुरुचरण की शुश्रूषा और वितरण करने की बुद्धि रहती है, तब तक ही-प्रबोध और विवेक कायम रहता है और उसी समय तक सत्पुरुषो के साथ सगति करने की रुचि रहती है एव पौराणिक कथाओ के श्रवण करने की लालसा भी उसी समय पर्यन्त रहा करती है जब तक पुरुष सीमन्तिनियो के चचल नयनो के कटाक्ष पातो का शिकार नही बनता है ॥१५-१८॥ हे विप्रगण ! नारियो के नेत्रो के व्यामोहक कटाक्षो के शिकार होने पर मनुष्यो पर समस्त धर्मों का विलोपन आकर पड जाता है फिर वह किसी भी धर्म मे आस्था नही रखता है। वहा पर जो श्रीहरि के पद कमल के माधुर्य के लेश से प्रसादित पुरुष है अर्थात्

जिनको भगवान् के चरणो के रस का आस्वाद भगवत्कृपा से ही प्राप्त हो गया है उन भक्तों पर नारियों के चंचल नेत्रो के कटाक्षपात कुछ भी अपना प्रभाव नही कर सकते हैं। हे द्विजो ! जिन्होंने जन्म-जन्म मे भगवान् हृषीकेश के चरणों का सेवन किया है उन्होंने द्विजो को दान भी दे दिया, अग्नि मे हवन भी कर लिया है और यहा-वहा पर ही उन्हें विरति होती है। नारियों का सौन्दर्य ही क्या होता है। बाह्य बनावट से ही मनुष्य उनके सौन्दर्य मे फँस जाते हैं ॥१९-२१॥

भूषणानां च वस्त्राणां चाकचक्यं तदुच्यते ।
स्नेहात्मज्ञानरहितं नारीरूपं कुतःस्मृतम् ॥२२
पूयमूत्रपुरीषासृक्त्वङ्मेदोस्थिवसान्वितम् ।
कलेवरं हि तन्नाम कुतः सौन्दर्य्यमत्र हि ॥२३
तदेवं पृथगाचिन्त्य स्पृष्ट्वा स्नात्वा शुचिर्भवेत् ।
तैः सहितं शरीरं हि दृश्यते सुन्दरं जनैः ॥२४
अहोऽतिदुर्दशा नृणां दुर्दैवघटिता द्विजाः ।
कुचावृतेऽङ्गे पुरुषो नारीबुद्ध्या प्रवर्त्तते ॥२५
का नारी वा पुमान्को वा विचारे सति किञ्चन ।
तस्मात्सर्वात्मना साधुर्नारीसङ्गं विवर्जयेत् ॥२६
कोनाम नारीमासाद्य सिद्धिं प्राप्नोति भूतले ।
कामिनीकामिनीसङ्गमङ्गमित्यपि सन्त्यजेत् ॥२७
तत्सङ्गाद्रौरवमिति साक्षादेव प्रतीयते ।
अज्ञानाल्लोलुपा लोकास्तत्र दैवेन वञ्चिताः ॥२८

वस्तुत. नारियों मे कुछ भी सौन्दर्य नही होता है पुरुषों की काम वासना ने ही उनमे एक अद्भुत रूप—सुन्दरता की कल्पना कर रक्खी है। नारी मे भूषण और वस्त्रो का चाकचिक्य होता है उसी को रूप-सौन्दर्य कहा करते हैं। वसन-भूषण विहीन नारी के देखने का ध्यान मात्र ही करिये साक्षात् चुड़ैल जैसी प्रतीत वह होगी। जिसके हृदय मे न तो सच्चा स्नेह ही है और न ज्ञान है अर्थात् आत्मबोध है वह नारी का रूप कैसे कहा गया है ॥२२॥ मवाद—मूत्र—मल- रक्त-त्वचा-चर्बी-अस्थि

और वसा से युक्त जो नारी का शरीर है उसमें सौन्दर्य नाम वाली वस्तु कहा और क्या है ? अर्थात् है ही नही ॥२३॥ तो इस प्रकार से उसका पृथक् चिन्तन करके-स्पर्श करके स्नान करने पर ही शुद्धता होती है उनके सहित ही उसका शरीर मनुष्यो को सुन्दर दिखलाई दिया करता है ॥२४॥ हे द्विजगण ! बड़ा ही आश्चर्य होता है कि मनुष्यों की कैसी बुरी दशा दुर्दैव के द्वारा घटित हो रही है कि कुचावृत्त अंग में पुरुष नारी की बुद्धि से प्रवृत्ति किया करता है ॥२५॥ क्या तो नारी है और कौन पुरुष है विचार करने पर कुछ भी नही है । इससे साधु पुरुष को सर्वात्मा से नारी का सग ही त्याग देना चाहिए ॥२६॥ इस भूमण्डल मे ऐसा कौन है जो नारी का संग करके सिद्धि को प्राप्त हो जाता है । तात्पर्य यही है कि नारी के साथ से कभी भी सिद्धि हो ही नहीं सकती है । अतः कामिनी और कामिनी का संग का भी त्याग कर ही देना चाहिए । नारी का सग ही साक्षात् रौरव नरक नरक है—ऐसा प्रतीत होता है । जो पुरुष अज्ञान वश लालची हो जाते हैं उन्हें ही दैव वहा पर भेजकर वञ्चित रक्खा करता है ॥२८॥

साक्षान्नरककुण्डेऽस्मिन्नारीयोनौ पचेन्नरः ।
यत एवागतः पृथ्व्यां तस्मिन्नेव पुनारमेत् ॥२९

यतः प्रसरते नित्यं मूत्रं रेतोमलोत्थितम् ।
तत्रैव रमते लोकः कस्तस्मादशुचिर्भवेत् ॥३०

तत्रातिकष्टलोकेऽस्मिन्नहोदेवविडम्बना ।
पुनः पुना रमेत्तत्र अहो निस्त्रपता नृणाम् ॥३१

तस्माद्विचारयेद्धीमान्नारीदोषगणान्वहून् ।
मैथुनाद्बलहानिः स्यान्निद्रातितरुणायते ॥३२
निद्रयाऽपहृतज्ञानः स्वल्पायुर्जायते नरः ।
तस्मात्प्रयत्नतो धीमान्नारी मृत्युमिवात्मनः ॥३३
पश्येद्गोविन्दपादाब्जे मनो वै रमयेद्बुधः ।
इहामुत्र सुखं तद्धि गोविन्दपदसेवनम् ॥३४

विहाय को महामूढो नारीपादं हि सेवते ॥
जनार्दनाङ्घ्रिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी ॥३५

नारी की योनि साक्षात् नरक का ही कुण्ड होता है जिस मे रमण करने के लिए मनुष्य प्रयत्न शील रहा करता है। जिस योनियो के द्वार से बहुत कष्ट भोग करता हुआ बाहिर निकल कर आया है उसी द्वार मे पुनः रमण किया करता है ॥२६॥ वह भी योनि द्वार किस प्रकार का है जरा विचार कीजिए जिसमे अहर्निश मूत्र प्रसृत रहता है और रेतस मल उठा करता है। उसी मे मनुष्य रमणानन्द लिया करता है। उससे कौन अशुचि नही होगा ? ॥३०॥ इस अत्यन्त कष्ट मय इस लोक मे यह कैसी दैव की विडम्बना है कि पुरुष उस नारी की योनि मे बार-म्बार रमण किया करता है। बहुत ही अचरज है कि पुरुषो मे कैसी निर्लज्जता भर गई है कि वही काम अशुचिता और वेदना का किया करते हैं और उसमे ग्लानि के स्थान मे आनन्द समझते है ॥३१॥ इस लिए एक बुद्धिमान् पुरुष को नारी के बहुत-से दोषो के गणो का विचार करना चाहिए। नारी के साथ मैथुन करने से बल की हानि हुआ ही करती है और अत्यन्त निद्रा का काफी जोर रहा करता है ॥३२॥ जब अधिक पुरुष निद्रा लेता है तो उसका सम्पूर्ण ज्ञान अपहृत हो जाया करता है और फिर मनुष्य स्वल्प आयु वाला हो जाया करता है। इस लिये बुद्धिमान् पुरुष को तो नारी को ऐसा ही समझ लेना चाहिए कि यह अपनी आत्मा के लिए साक्षात् मौत ही है ॥३३॥ मनुष्य को सदा श्री गोविन्द के चरणारविन्द का मन मे दर्शन करते रहना चाहिए और उसी आनन्द मे बुध पुरुष रमण किया करे। श्री गोविन्द के चरणार-विन्द के सेवन से इस लोक और परलोक मे दोनो ही जगह सुख ही सुख प्राप्त होता है ॥३४॥ ऐसे उभयलोक मे कल्याणकारी श्री भगवान् के चरणो का ध्यान न कर कोई महान् मूढ पुरुष ही नारी के चरणो का सेवन किया करता करता है। भगवान् जनार्दन के चरण कमल का सेवन तो पुनर्भव को मिटा देने वाला होता है अर्थात् इससे फिर इस संसार मे आवागमन होता ही नही है ॥३५॥

नारीणां योनिसेवा हि योनिसङ्कटकारिणी ।
पुनः पुनः पतेद्योनौ यन्त्रनिष्पाचितो यथा ।।३६
पुनस्तामेवाभिलषेद्विद्यादस्य विडम्बनम् ।
ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि श्रृणु मे परम वचः ।।३७
गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनाजुषि ।
नारीसङ्ग परित्यज्य यश्चापि परिवर्त्तते ।।३८
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ।
कुलाङ्गना दैवयोगादूढा यदि नृणां सती ।।३६
पुत्रमुत्पाद्य यस्तत्र तत्सङ्ग परिवर्जयेत् ।
तस्य तुष्टो जगन्नाथो भवत्येव न संशयः ।।४०
नारीसङ्गो हि धर्मज्ञ रसत्सङ्गः प्रकीर्त्यते ।
तस्मिन्सति हरौ भक्तिः सुदृढा नैव जायते ।।४१
सर्वसङ्ग परित्यज्य हरौ भक्ति समाचरेत् ।
हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्ल्लभा हि मतामम ।।४२

जो पुरुष यह दुर्लभ मानव देह प्राप्त करके भी केवल नारी की योनि के सेवन को सुखानन्द मान कर उसी मे लिपटा रहता है इसका परिणाम यही है कि फिर जन्म ग्रहण करने के लिए योनिद्वार से निष्क्रमण करने के संकट को भोग्ना पड़ता है यह मानव बारम्बार यन्त्र द्वारा निष्पाचित किए हुए की भाँति उसी योनि मे पड़ता रहा करता है ।।३६।। फिर भी अनेक बार ऐसे महान् संकट को भोग कर भी उसी योनि में रमण करने की अभिलाषा किया करता है । इस पुरुष की विडम्बना समझनी चाहिए । मैं ऊपर को बाहुओ को उठा कर घोषणा करता हूँ और आप लोग मेरे वचनो का श्रवण करें,जोकि परम सार से परिपूर्ण है ।।३६।। श्रीगोविन्द के चरणारविन्द मे अपने चित्त को लगाओ तथा यातनाऐं देने वाली नारी की योनि से चित्त को एकदम हटालो । नारी की संगति का परित्याग करके जो भी कोई पुरुष इस जगत् मे परिवर्त्तन किया करता है वह मानव अपने एक-एक कदम पर अश्वमेध

विहाय को महामूढो नारीपाद हि सेवते ॥
जनार्दनाङ्घ्रिसेवा हि ह्यपुनर्भवदायिनी ॥३५

नारी की योनि साक्षात् नरक का हो कुण्ड होता है जिस मे रमण करने के लिए मनुष्य प्रयत्न शील रहा करता है। जिस योनियो के द्वार से बहुत कष्ट भोग करता हुआ बाहिर निकल कर आया है उसी द्वार मे पुनः रमण किया करता है ॥२६॥ वह भी योनि द्वार किस प्रकार का है जरा विचार कीजिए जिसमे अहर्निश मूत्र प्रसृत रहता है और रेतम मल बहा करता है। उसी मे मनुष्य रमणानन्द लिया करता है। उससे कौन अशुचि नही होगा ? ॥३०॥ इस अत्यन्त कष्ट मय इस लोक मे यह कैसी दैव की विडम्बना है कि पुरुष उस नारी की योनि मे बार-म्बार रमण किया करता है। बहुत ही अचरज है कि पुरुषो मे कैसी निर्लज्जता भर गई है कि वही काम अशुचिता और वेदना का किया करते हैं और उसमे ग्लानि के स्थान मे आनन्द समझते है ॥३१॥ इस लिए एक बुद्धिमान् पुरुष को नारी के बहुत-से दोषो के गणो का विचार करना चाहिए। नारी के साथ मैथुन करने मे बल की हानि हुआ ही करती है और अत्यन्त निद्रा का काफी जोर रहा करता है ॥३२॥ जब अत्यधिक पुरुष निद्रा लेता है तो उसका सम्पूर्ण ज्ञान अपहृत हो जाया करता है और फिर मनुष्य स्वल्प आयु वाला हो जाया करता है। इस लिये बुद्धिमान् पुरुष को तो नारी को ऐसा ही समझ लेना चाहिए कि यह अपनी आत्मा के लिए साक्षात् मौत ही है ॥३३॥ मनुष्य को सदा श्री गोविन्द के चरणारविन्द का मन मे दर्शन करते रहना चाहिए और उसी आनन्द मे बुध पुरुष रमण किया करे। श्री गोविन्द के चरणार-विन्द के सेवन से इस लोक और परलोक मे दोनो ही जगह सुख ही सुख प्राप्त होता है ॥३४॥ ऐसे उभयलोक मे कल्याणकारी श्री भगवान् के चरणो का ध्यान न कर कोई महान् मूढ पुरुष ही नारी के चरणो का सेवन किया करता करता है। भगवान् जनार्दन के चरण कमल का सेवन तो पुनर्भव को मिटा देने वाला होता है अर्थात् इससे फिर इस ससार मे आवागमन होता ही नही है ॥३५॥

नारीणां योनिसेवा हि योनिसङ्कटकारिणी ।
पुनः पुनः पतेद्योनौ यन्त्रनिष्पाचितो यथा ॥३६
पुनस्तामेवाभिलषेद्विद्यादस्य विडम्बनम् ।
ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः ॥३७
गोविन्दे धेहि हृदयं न योनौ यातनाजुषि ।
नारीसङ्गं परित्यज्य यश्चापि परिवर्त्तते ॥३८
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः ।
कुलाङ्गना दैवयोगादूढा यदि नृणा सती ॥३९
पुत्रमुत्पाद्य यस्तत्र तत्सङ्गं परिवर्जयेत् ।
तस्य तुष्टो जगन्नाथो भवत्येव न संशयः ॥४०
नारीसङ्गो हि धर्मज्ञ रसत्सङ्गः प्रकीर्त्यते ।
तस्मिन्सति हरौ भक्तिः सुदृढा नैव जायते ॥४१
सर्वसङ्गं परित्यज्य हरौ भक्तिं समाचरेत् ।
हरिभक्तिश्च लोकेऽत्र दुर्ल्लभा हि मतामम ॥४२

जो पुरुष यह दुर्लभ मानव देह प्राप्त करके भी केवल नारी की योनि के सेवन को सुखानन्द मान कर उसी मे लिपटा रहता है इसका परिणाम यही है कि फिर जन्म ग्रहण करने के लिए योनिद्वार से निष्क्रमण करने के सकट को भोगना पडता है यह मानव बारम्बार यन्त्र द्वारा निष्पाचित किए हुए की भाँति उसी योनि मे पडता रहा करता है ॥३६॥ फिर भी अनेक बार ऐसे महान् सकट को भोग कर भी उसी योनि मे रमण करने की अभिलाषा किया करता है। इस पुरुष की विडम्बना समझनी चाहिए। मैं ऊपर को बाहुओ को उठा कर घोषणा करता हूँ और आप लोग मेरे वचनो का श्रवण करें,जोकि परम सार से परिपूर्ण है ॥३६॥ श्रीगोविन्द के चरणारविन्द मे अपने चित्त को लगाओ तथा *यातनाऐं देने वाली नारी को योनि से* चित्त को एकदम हटालो। नारी की सगति का परित्याग करके जो भी कोई पुरुष इस जगत् मे परिवर्त्तन किया करता है वह मानव अपने एक-एक कदम पर अश्वमेध

के फल को प्राप्त किया करता है। यदि सौभाग्य से कोई अच्छे कुल की नारी दैवयोग से पत्नी के रूप में प्राप्त हो जावे और जो परम सती-साध्वी हो तो उसका सग उतना हो ऋतु काल मे करे जिसमे पुत्र समुत्पन्न हो जावे। यह नारी का अभिगमन केवल पुत्रोत्पत्ति के लिये ही करना चाहिए न कि विषयानन्द प्राप्त करने को इसे करे। जब पुत्र का उत्पादन हो जावे तो पुरुष का कर्त्तव्य है कि फिर उस नारी का सग त्याग देना चाहिए। ऐसा जो भी किया करता है उस प्राणी पर भगवान् परम प्रसन्न होते है-इसमे लेशमात्र भी सशय नही है।।३७-४०।। जो पुरुष धर्म्म का ज्ञान रखने वाले है वे नारी की सगति को असत् सग ही कहा करते है। जब तक नारी का सग रहेगा तब तक भगवान् हरि के चरणो मे सुदृढ भक्ति किसी प्रकार भी नही हो सकती है ।।४१।।अत-एव इस लोक मे आत्म कल्याण के लिए मनुष्य को सब का सङ्ग त्याग कर श्री हरि मे भक्ति करनी चाहिए। इस लोक मे श्री हरि की भक्ति परम दुर्लभ होती है-मैं तो यही मानता हू ।।४२।।

हरौ यस्य भवेद्भक्तिः स कृतार्थो न संशयः ।
तत्तदेवाचरेत्कर्म हरिः प्रीणाति येन हि ।।४३
तस्मिस्तुष्टे जगत्तुष्ट प्रीणिते प्रीणित जगत् ।
हरौ भक्ति विना नृणा वृथा जन्म प्रकीर्तितम् ।।४४
ब्रह्मे शादि सुरा यस्य यजन्ते प्रीतिहेतवे ।
नारायणमनाव्यक्त न त सेवेत को जनः ।।४५
तस्य माता महाभागा पिता तस्य महाकुली ।
जनार्द्दनपदद्वन्द्व हृदये येन धार्यते ।।४६
जनार्दन जगद्वन्द्य शरणागतवत्सल ।
इतीरयन्ति ये मर्त्या न तेषा निरये गतिः ।।४७
ब्राह्मण च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेनानुकीर्तितम् ।
पुराणं शृणुयान्नित्य महापापदवानलम् ।।४८
पुराणं सर्वतीर्थेषु तीर्थं चाधिकमुच्यते ।
यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति ।।४६

सौभाग्य से जिस पुरुष की भक्ति श्री हरि के चरणारविन्द में हो गई है वह वास्तव में सफल जीवन वाला होगया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अतएव यहाँ लोक में वही-वही कर्म करना चाहिए जिसके करने से श्रीहरि की प्रसन्नता प्राप्त होवे ॥४३॥ जब भगवान् ही इस जीवात्मा पर पूर्ण सन्तुष्ट हो जाते हैं तो इस सम्पूर्ण जगत् को तुष्ट हुआ समझ लो। वह प्रभु प्रसन्न हैं तो त्रैलोक्य ही प्रसन्न होजाया करता है। मनुष्यों में यदि श्री हरि की भक्ति का अभाव है तो समझ लेना चाहिए कि उनका जन्म ग्रहण करना ही व्यर्थ है ऐसा बताया गया है॥४४॥मानव जीवन की सफलता आत्मकल्याण कर विमुक्ति प्राप्त करने ही से होती है। जो कि हरिभक्ति से ही सम्भव है। उसके बिना जीवन लेना ही व्यर्थ है। ब्रह्मा आदि देवगण उसी हरि की प्रीति प्राप्त करने के लिए यजन किया करते हैं। उस परमाव्यक्त भगवान् नारायण की सेवा करना कौन पुरुष नहीं चाहेगा ? अर्थात् सभी चाहते हैं ॥४५॥ उस पुरुष की माता महान् अच्छे भाग्य वाली है और उसका पिता भी महान् पुण्यात्मा है जिस पुरुष ने यहाँ भगवान् जनार्दन के चरण कमलों को अपने हृदय में भक्ति भाव पूर्वक धारण कर लिया है ॥४६॥ हे जनार्दन अर्थात् जनों की पीड़ा का अर्दन कर उसको विमुक्त करने वाले प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत् के द्वारा वन्दना करने के योग्य हैं और जो सबका परित्याग कर आपकी शरणागति में प्राप्त हो जाता है उस पर पूर्ण कृपा किया करते हैं। इस प्रकार से जो मनुष्य प्रार्थना किया करते हैं उनको कभी भी नरक में गमन नहीं करना पड़ता है ॥४७॥ ब्राह्मण आगे करके ब्राह्मण के द्वारा ही अनुकीर्तन किया गया पुराण का नित्य प्रति श्रवण करना चाहिए। यह पुराण नित्य श्रवण करना महान् पापों के भस्म कर देने के लिए दावानल के समान होता है ॥४८॥ पुराण श्रवण समस्त तीर्थों में भी अधिक तीर्थ कहा जाता है जिसके एक पाद के श्रवण मात्र से ही भगवान् श्री हरि परम प्रसन्न हो जाया करते हैं ॥४९॥

यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः ।
सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे ॥५०
तथैवान्तः प्रकाशाय पुराणावयवो हरिः ।
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावन परम् ॥५१
तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः ॥५२
विष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमपि दुर्लभम् ।
पुराणाख्यानममलममलीकरण परम् ॥५३
यस्मिन्वेदार्थमाहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा ।
पुराणं निर्मित विप्र तस्मात्तत्परमोभवेत् ॥५४
पुराणे निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम् ।
तस्मात्कृते पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति ॥५५

जिस प्रकार से भगवान श्री हरि सब को प्रकाश प्रदान करने के लिए सूर्य का शरीर धारण किया करते है और अहर्निश सञ्चारण करते रहते हैं क्योकि समस्त जगतो को अलोक प्रदान करना ही उनके सचरण का हेतु होता है ॥५०॥ उसी प्रकार से हृदय के अन्दर अज्ञानान्धकार का विनाश कर प्रकाश देने के लिये अर्थात् ज्ञानोदय करने के वास्ते पुराण का स्वरूप भी एक श्रीहरि का ही रूप है और वह यहा लोक मे प्राणियों मे परम पावन पुराण विचरण किया करता है ॥५१॥ इसलिए यदि मानव की मति भगवान श्री हरि की प्रीति उत्पादन करने के लिये होती है तो उसे श्रीकृष्ण के स्वरूप वाले पुराण का श्रवण नित्य ही करना चाहिए ॥५२॥ विष्णु के चरणो मे भक्ति रखने वाले पुरुष को परमशान्ति के भाव से जो कुछ श्रवण करने को होता है वह भी दुर्लभ वस्तु है । यह पुराणो का आख्यान बहुत ही निर्मल है और अन्त करण को निर्मल करने का परम एव सर्वोत्तम साधन होता है ॥५३॥ महर्षि व्यास के रूप धारी साक्षात् श्रीहरि ने इस पुराण मे वेदो के ही अर्थ का आहरण किया है और फिर इस पुराण का निर्माण किया है । हे विप्र ! इसलिये इस पुराण के श्रवण

करने मे परायण हो जाना चाहिए ।।५४।। पुराण मे धर्म निश्चित रूप से विद्यमान रहा करता है और जो धर्म्म है वही साक्षात् भगवान् केशव का स्वरूप है। इसलिए पुराण के श्रवण करने पर साक्षात् भगवान् विष्णु के स्वरूप का ही श्रवण हो जाया करता है ।।५५।।

साक्षात्स्वय हरिर्विप्र: पुराण च तथाविधम् ।
एतयो: सङ्गमासाद्य हरिरेवभवेन्नर: ।।५६
तथा गङ्गाम्बुसेकेन नाशयेत्किल्बिष स्वकम् ।
केशवो द्रवरूपेण पापात्तारयते महीम् ।।५७
वैष्णवो विष्णुभजनस्याकाङ्क्षी यदि वर्त्तते ।
गङ्गाम्बुसेकममलममलीकरण चरेत् ।।५८
विष्णुभक्तिप्रदा देवी गङ्गा भुवि च गीयते ।
विष्णुरूपा हि सा गगा लोकनिस्तारकारिणी ।।५९
ब्राह्मणेषु पराणेषु गगाया गोषु पिप्पले ।
नारायणधिया पुम्भिर्भक्ति कार्या ह्यहैतुकी ।।६०
प्रत्यक्षविष्णुरूपा हि तत्त्वज्ञ निश्चिता अमी ।
तस्मात्स ततमभ्यर्च्या विष्णुभक्त्यभिलाषिणा ।।६१
विष्णौ भक्ति विना नृणा निष्फल जन्म उच्यते ।
कलिकालपयोराशि पापग्राहसमाकुलम् ।।६२

विप्र का जो स्वरूप है वह भी साक्षात् श्री हरि का ही स्वरूप होता है और जो पुराण है वह भी वैसा ही होता है। इन दोनो सग को प्राप्त करके अर्थात् विप्र विद्वान् के मुख से पुराण का श्रवण करके वह श्रोता मनुष्य भी हरि के स्वरूप वाला हो जाया करता है ।।५६।। जिस तरह भागीरथी गगा के जल के अभिषेक से मनुष्य अपने सम्पूर्ण किल्विषो का विनाश करके विमुक्त हो जाता है क्योकि वह गगा का जल भी तो द्रव रूप धारी साक्षात् भगवान् केशव ही है जो इस भूमिगत प्राणियो का उद्धार किया करता है और पापो का विनाश कर देता है ।।५७।। विष्णु का भक्त कोई वैष्णव यदि भगवान् विष्णु के भजन की आकाक्षा रखता है तो उसे श्रीगगा के जल मे स्नान करना चाहिए क्योकि

यह मानव के मन को धोकर उसे बिल्कुल निर्मल कर देने का सर्वोत्तम साधन है ।।५८।। गंगा देवी इस भूमण्डल में विष्णु की भक्ति को प्रदान कर देने वाली गायी जाती है क्योंकि वह साक्षात् विष्णु के ही स्वरूप वाली है और लोकों के निस्तार कर देने वाली होती है ।।५६।। ब्राह्मणों में-पुराणों में—भागीरथी गंगा में—गौओं में—पीपल वृक्ष में साक्षात् भगवान् नारायण की ही बुद्धि रख कर मनुष्यों को बिना किसी हेतु वाली भक्ति अवश्य ही करनी चाहिए ।।६०।। जो तत्वों के ज्ञाता पुरुष हैं उनके द्वारा ये सब प्रत्यक्ष में विष्णु के स्वरूप वाले निश्चित किये गये हैं इसलिए जो भी भगवान् विष्णु की भक्ति करने की अभिलाषा रखते हैं उन्हें इन सब का निरन्तर अभ्यर्चन करना ही चाहिए ।।६१।। इस संसार में मानव देह प्राप्त कर यदि भगवान् विष्णु की भक्ति नहीं की तो इसके बिना मनुष्यों का जन्म ग्रहण करना ही निष्फल हो जाया करता है । यह घोर कलिकाल का महा सागर है और इसमें पाप रूपी बड़े २ ग्राह भरे हुए हैं । इससे सन्तरण प्राप्त करने के लिये विष्णु की भक्ति ही एक अमोघ नौका है ।।६२।।

विषयामज्जनावर्त्तदुर्बोधफेनिलपरम् ।
महादुष्टजनव्यालमहाभीम भयानकम् ।।६३
दुस्तर च तरन्त्येव हरिभक्तिनरि स्थिताः ।
तस्माद्यतेत वै लोको विष्णुभक्तिप्रसाधने ।।६४
किं सुख लभते जन्तुरसद्वार्तावधारणे ।
हरेरद्भुतलीलस्य लीलाख्याने न सज्जते ।।६५
तद्विचित्रकथा लोके नानाविषयमिश्रिताः ।
श्रोतव्या यदि वै नृणा विषये सज्जते मनः ।।६६
निर्वाणे तदि या चित्त श्रोतव्या तदपि द्विजाः ।
हेलया श्रवणान्नापि तस्य तुष्टो भवेद्धरिः ।।६७
निष्क्रियोऽपि हृषीकेशो नानाकर्म चकार सः ।
शुश्रूषूणा हितार्थाय भक्ताना भक्तवत्सल. ।।६८

न लभ्यते कर्मणाऽपि वाजपेयशतादिना ।
राजसूयायुतेनापि यथा भक्त्या स लभ्यते ॥६९
यत्पद चेतसा सेव्य सद्भिराचरित मुहुः ।
भवाब्धितरणे सारमाश्रयध्व हरे पदम् ॥७०

इस सागर मे विविध प्रकार के विषयो मे जो दुर्बकियाँ लगती रहा करती हैं ये ही इस समुद्र के आवर्त्त (भौंरे) हैं और दुर्बोध ही इसमे फेन रहा करता है जिससे प्राणी का मन घिरा रहता है । अत्यन्त दुष्ट प्रकृति वाले मनुष्य ही इस ससार सागर में व्याल हैं जिनसे यह महान भीम और अत्यन्त भयानक है ॥६३॥ इस दुस्तर सागर को वे ही परम भक्तजन तैर कर पार चले जाया करते हैं जो श्रीहरि के चरण कमल की भक्ति रूपिणी नौका में स्थित रहा करते हैं । इसलिए सब लोगो को भगवान् विष्णु की भक्ति के प्रसाधन में पूर्णतया प्रयत्न करना चाहिए ॥६४॥ लोग यो ही अपना सारा समय इधर-उधर व्यर्थ की बात चीत करने मे गँवा दिया करते हैं । ऐसी असद बातो के करने मे क्या सुख प्राप्त होता है कि यह जन्तु उन्हे किया करता है । भगवान् की अत्यन्त अदभुत लीलाऐ हैं उनके कथन करने और उनको श्रवण करने मे यह प्रस्तुत नही हुआ करता है जिसके कथन और श्रवण दोनो म ही अत्यन्त आनन्द आता है ॥६५॥ नाना विषयो से मिली-जुली उनकी विचित्र कथाऐ लोक मे प्रचलित हैं । यदि मनुष्यो का मन विषयो के आस्वादन मे ही सञ्चित होता रहता है तो उन मनुष्यो को हरि की ऐसी ही कथाऐ सुननी चाहिए ॥६६॥ यदि निर्वाण म ही चित्त है तो भी हे द्विज गण ! तो भी हरि की कथाओ का श्रवण करना ही चाहिए । यदि कोई यों ही हेला से अर्थात् दिल बहलाव की क्रीडा से भी हरि की कथा का श्रवण किया करता है तो इससे भी हरि भगवान् बहुत तुष्ट एव प्रसन्न हो जाते हैं ॥६७॥ यद्यपि हृषीकेश भगवान् क्रिया से रहित हैं तो भी वे अनेक प्रकार के कर्मों के करने वाले हुए हैं । भगवान् अपने भक्तो पर प्यार किया करते है इसी लिए उन्होने निष्क्रिय होते हुए भी अनेक कर्म किये हैं कि भक्तजन उनके उन

प्रभु की लीलाओं का श्रवण करके अपना हित-सम्पादन करने के इच्छुक हैं। भक्तों के हित के लिए ही उन्होंने ये लीलाएँ की हैं॥६८॥ जो किसी भी धार्मिक कर्म के करने से तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञों के करने से और सहस्रों राजसूय यज्ञों के करने से भी प्राप्त नहीं हो सकता है वह केवल श्री हरि के चरण कमल की भक्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है॥६९॥ जिस पद को चित्त के द्वारा ही सेवन करना चाहिए और सत्पुरुषों ने जिसका सेवन बारम्बार किया है। यही इस संसार रूपी सागर से तरण करने में सारभूत है। उसी हरि के पद का आश्रय ग्रहण करो॥७०॥

यास से ही दु खो से तरण नहीं होगा। यदि तुम लोग इनसे छुटकारा चाहते हो तो भगवान् के चरणों का ही सेवन करो ॥७२॥ भगवान् श्रीकृष्ण के चरणो का भजन ही पुनर्जन्म न पाने के लिए एक मात्र साधन है उसी को ग्रहण करो। तुम मनुष्य जन्म पाकर क्यो आये हो ? और पुन यो ही कुछ भी कल्याण प्राप्त करने का साधन न करके क्यो यहा से जारहे हो ? मनुष्य देह तो उद्धार के करने के लिए भगवान् का भजन करने को ही प्राप्त हुआ है। इसे व्यर्थ ही क्यो गँवा रहे हो ? ॥७३॥ यह भली भांति विचार करके मतिमान् पुरुष को धर्म्म का सग्रह अवश्य ही इस मनुष्य देह से करना चाहिए। अब तक न मालूम कितने ही नरको मे गिर कर तुमने उत्थान किया है कि यह दुर्लभ मानुष देह तुम्हे मिल गया है ॥७४॥ स्थावर आदि जड योनियो मे शरीर प्राप्त कर सौभाग्य वश फिर यदि यह मनुष्य शरीर प्राप्त भी होता है तो सर्व प्रथम तो माता के उदर मे गर्भ वास करना ही अत्यन्त पीडा देने वाला होता है ॥७५॥ यदि कर्म वश वह जन्तु जन्म ग्रहण कर इस भूमि पर भी आजाता है तो फिर भी हे द्विजगण ! बाल्य काल के बहुत-से दोषो से यह पीडित हुआ करता है ॥७६॥ बाल्य काल के समाप्त होने पर इस मनुष्य देह धारी प्राणी को यौवन अवस्था आती है जिसमे दरिद्रता से पीडित रहा करता है—या कोई बडा भारी रोग इसके शरीर को ग्रस लेता है उससे इसको महान् दु ख होता है किम्बा अनावृष्टि आदि अनक पीडाऐ इसे उस अवस्था मे सताया करती हैं ॥७७॥

वार्द्धकेन लभेत्पीडामनिर्वाच्यामितस्ततः ।
मनसश्चलनाद्व्याधेस्ततो मरणमाप्नुयात् ॥७८
न तस्मादधिक दुःख ससारेऽप्यनुभूयते ।
ततः कर्मवशाज्जन्तुर्यमलोके प्रपीड्यते ॥७९
तत्रातियातना भुक्त्वा पुनरेव प्रजायते ।
जायते म्रियते जन्तुर्म्रियते जायते पुनः ॥८०

अनाराधितगोविन्दचरणस्येदृशी दशा ।
अनायासेन मरणं विनियासेन जीवनम् ॥८१
अनाराधितगोविन्दचरणस्य न जायते ।
धन यदि भवेद्गेहे रक्षणात्तस्य किं फलम् ॥८२
यदाऽसौ कृष्यते याम्यैर्दूतैः किं धनमन्वियात् ।
तस्माद् द्विजातिसत्कार्यं द्रविणं सर्वसौख्यदम् ॥८३
दान स्वर्गस्य सोपानं दानं किल्बिषनाशनम् ।
गोविन्दभक्तिभजनं महापुण्यविवर्द्धनम् ॥८४

इसके अनन्तर बुढ़ापा आजाता है और इस वार्धक्य से अनिर्वचनीय पीडा का अनुभव हुआ करता है । इसका मन इधर-उधर चला करता है—शरीर और समस्त इन्द्रियाँ शिथिल एवं अशक्त हो जाता है । बहुत-सी व्याधियाँ आकर वृद्धावस्था में घेर लिया करती हैं और फिर मृत्यु आ जाती है । समस्त जीवन यों ही कष्ट भोगते व्यतीत हो जाया करता है ॥७८॥ इस संसार में भी इससे अधिक दुःख का अनुभव नहीं होता है । इसके पश्चात् कर्मों के वशीभूत होकर यह जन्तु यमलोक में पहुँच जाता है और वहाँ पर जो भी यहा पाप कर्म किये हैं उनका दण्ड भोगने में वहा उसे खूब पीडाऐं दी जाया करती हैं ॥७९॥ वहा पर घोराति घोर यातनाऐं भोग कर फिर इस ससार में यह जन्तु जन्म ग्रहण किया करता है । इसी प्रकार से यह जीवात्मा बराबर जन्म ग्रहण करता है—मरता है और फिर जन्मता है और मौत के मुख में चला जाया करता है । यही क्रम बराबर चलता रहता है और इसी आवागमन के चक्र में निरन्तर घूमता पीडाऐं भोगता रहता है ॥८०॥ जिसने भगवान् गोविंद के चरण कमल की कभी आराधना नहीं की है उस जीव की ऐसी दयनीय बुरी दशा हुआ करती है । अनायास ही उसका जीवन होता है और बिना आयास के ही मौत हो जाया करती है ॥८१॥ अनाराधित गोविन्द के चरण वाले पुरुष को अनायास जीवन एवं मृत्यु नहीं होते हैं । उसे तो जन्म-जीवन-मृत्यु-नरक और गर्भवास का सभी कष्ट भोगना पड़ता है । यदि घर में धन हो तो उसकी रक्षा करने का क्या फल है ?

जीवन भर न्यायान्याय मे कमा कर संग्रह करते हैं और उसकी प्राणपन से हिफाजत भी किया करते हैं किन्तु उससे लाभ कुछ भी नहीं होता है ।।८२।। जिस समय मे यमराज के दूतों के द्वारा यमपुरी ले जाने के लिये इस प्राणी को खींचा जाता है तो क्या वह एकत्रित किया हुआ धन जिसको बडो कठिनाई से जोड़ा था और रक्षा की थी उसके साथ चला जाता है ? अर्थात् साथ न जाकर यहीं रह जाया करता है। इसी-लिए जो धन द्विजातियो के सत्कार करने मे काम आता है वही धन सब प्रकार का सुख देने वाला होता है ।।८३।। दान देना अर्थात् धन का दान करना ही स्वर्ग प्राप्त करने का सोपान (सीढी) है और दान ही पापो का नाश करने वाला है। श्रीगोविन्द का भजन करना महान् पुण्य का विशेष रूप से बढाने वाला है ।।८४।।

बल यदि भवेन्मर्त्ये न वृथा तद्व्य चरेत् ।
हरेरग्रे नृत्यगीत कुर्यादेवमतन्द्रितः ।।८५
यत्किञ्चिद्विद्यते पुसा तच्च कृष्णे समर्पयेत् ।
कृष्णार्पितकुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम् ।।८६
चक्षुर्भ्यां श्रीहरेरेव प्रतिमादिनिरूपणम् ।
श्रोत्राभ्याकलयेत्कृष्णगुणनामान्यहर्निशम् ।।८७
जिह्वया हरिपादाम्बु स्वादितव्य विचक्षणैः ।
घ्राणेनाघ्राय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम् ।।८८
त्वचा स्पृष्ट्वा हरेर्भक्त मनसाध्याय तत्पदम् ।
कृतार्थो जायते जन्तुर्नात्र कार्या विचारणा ।।८९
तन्मनाहि भवेत्प्राज्ञस्तथा स्यात्तद्गताशयः ।
तमेवान्तेऽभ्येति लोको नात्र कार्या विचारणा ।।९०
चेतसा चाप्यनुध्यात. स्वपद य: प्रयच्छति ।
नारायणमनाद्यन्त न त सेवते को जनः ।।९१
सततनियतचित्तो विष्णुपादारविन्दे ।
यितरणमनुशक्तिप्रीतये तस्य कुर्यात् ।।९२

नतिमतिरतिमस्याङ्घ्रिद्वये संविदध्यात् ।
स हि खलु नरलोके पूज्यतामाप्नुयाच्च ॥८९

यदि किसी मनुष्य मे सौभाग्य वश बल हो तो उसका वृथा व्यय नही करना चाहिए । भगवान् के श्री विग्रह के समक्ष में तन्द्रा से रहित होकर नृत्य और गान करना चाहिए ॥८५॥ मनुष्यो के जो भी कुछ हो वह सभी कुछ कृष्ण को अर्पण कर देना चाहिए। ससार मे सभी कुछ भगवत्कृपा से प्राप्त होता है अत सब भगवदीय वस्तुऐ हैं इसलिये उनको ही समर्पण कर देना मनुष्य-कर्त्तव्य है । श्रीकृष्ण की सेवा मे समर्पित किए हुए धन से ही ससार मे कुशल होता है । इसके अतिरिक्त किसी अन्य कार्य मे व्यय किया हुआ जो धन है वह सुख प्रदान करने वाला नही होता है प्रत्युत उसमे उल्टा दु ख ही होता है ॥८६॥ भगवान् ने मनुष्य को जितनी भी इन्द्रिया दी हैं उन सबको भगवत्सम्बन्धी विषयो मे निरन्तर लगाने से मानव कल्याण होता है । जो चक्षुऐ हैं उनमे श्री हरि ही की प्रतिमा आदि का निरूपण करना चाहिए । तात्पर्य यह है कि अन्य सासारिक पदार्थों के देखने मे नेत्रो का उपयोग नही करे । श्रोत्रेन्द्रियो से भगवान् श्रीकृष्ण के गुणानुवाद तथा भगवान् के नाम का कीर्त्तन सुनना चाहिए । दुनिया के दूसरे तान-टप्पे तथा व्यर्थ की बातो का श्रवण कभी न करे ॥८७॥ जिह्वा से श्री हरि के चरणामृत का आस्वाद विचक्षण पुरुषो को लेना चाहिए और अन्य भोज्य वस्तुओ के आस्वादन मे कभी भी आसक्ति न रक्खे । घ्राणेन्द्रिय से श्रीगोविन्द के चरण कमल म समर्पित तुलसीदल का आघ्राण करे ॥८८॥ त्वगिन्द्रिय के द्वारा श्रीहरि के परम भक्त के चरणो का स्पर्श करे और मन से हरि के चरणो का ध्यान करना चाहिए । ऐसा करने ही से यह जन्तु कृतार्थ होता है—इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नही है ॥८६॥ जो प्राज्ञ पुरुष है उसे श्रीहरि ही के चरणो मे मन लगाने वाला रहना चाहिए और अपने मन मे पूर्ण आशय भगवान् का सर्वदा रहना चाहिए । जो इस प्रकार से अपना पूरा जीवन यापन किया करता है वह पुरुष अन्त समय मे भगवान् की ही सन्निधि में प्राप्त हो

जाता है—इसमे भी विचार एवं सशय करने की आवश्यकता नही है ।८८। जिसका कोई चित्त से भी अनुध्यान किया करता है उसे भी भगवान् प्रसन्न एव इतने मात्र से सन्तुष्ट होकर अपना पद प्रदान कर दिया करते हैं ऐसे आदि–अन्त से रहित भगवान् नारायण का जो कोई मनुष्य सेवन न करे वह कैसा मनुष्य है अर्थात् महामूढ है।।८९।।निरन्तर नियत चित्त वाला होकर भगवान् विष्णु के पादारविन्द मे अपनी शक्ति के अनुसार जो उनकी प्रीति के लिये वितरण किया करता है। नति-मति और रति भगवान के चरण कमल मे सर्वदा रखता है। प्रणाम करता है, बुद्धि लगाये रहता है और प्रीति रखता है ऐसा मनुष्य निश्चय ही इस नर लोक में पुण्यनाद् को प्राप्त होता है। भगवद्भक्ति की ऐसी ही महिमा है ।।९२-९३।।

।। कलियुग से उद्धार कैसे हो ? ।।

कलौ समागते सूत प्राणिनां केन कर्मणा ।
उद्धारो वै भवेत्तस्व कथयस्व ममाग्रतः ।।१
साधु साधु मुनिश्रेष्ठ ! पुण्यात्मप्रवरो भवान् ।
सर्वेषा च जनाना त्व शुभवाञ्छो निरन्तरम् ।।२
एतद्व्यासः पुरा विप्रःसर्वज्ञ.सर्वपूजितः ।
पृष्टो जैमिनिना त स यदाह शृणु वैष्णव ! ।।३
दण्डवत्प्रणिपत्यासो व्यास सर्वार्थपारगम् ।
गुरुं सत्यवतीसूनु पप्रच्छ मुनिपुङ्गवः ।।४
कलौ नृणा भवेत्केन मोक्षो वै कथयस्व मे ।
अल्पेनापि च पुण्येन मर्त्याश्चाल्पायुषो यतः ।।५
साधुसङ्गाद्भवेद्विप्र शास्त्राणा श्रवणं प्रभो ! ।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात्ततो ज्ञान ततो गतिः ।।६
न रोचते कथा भूमौ पापिष्ठाय जनाय वै ।
वैष्णवी स तु विज्ञयःपापिष्ठप्रवरो द्विजः ।।७

श्री शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! इस महान् घोर कलिकाल मे प्राणियो का किस कर्म्म के द्वारा उद्धार हो सकता है। इस विषय मे आप कृपा करके मेरे समक्ष मे तात्विक रूप से वर्णन कीजिएगा ॥१॥ सूत जी ने कहा—हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ ! बहुत अच्छा। आप तो पुण्यात्माओ मे परम श्रेष्ठ पुरुष हैं। क्योंकि आप सर्वदा समस्त प्राणियो की शुभेच्छा किया करते हो ॥२॥ प्राचीन समय मे पहिले सर्वज्ञ तथा सबके द्वारा वन्द्यमान विप्रवर वेद व्यास कृष्ण द्वैपायन से जैमिनि मुनि ने पूछा था। हे वैष्णव ! व्यास जी ने जैमिनि से जो कुछ भी कहा था उसे ही मैं आपको सुनाता हूँ। उसका आप श्रवण कीजिए ॥३॥ मुनियो मे परम श्रेष्ठ जैमिनि ने दण्ड की भांति भूमि पर पड कर प्रणाम किया था और फिर सत्यवती के पुत्र सब प्रकार से अर्थों के पारगामी गुरुदेव कृष्ण द्वैपायन व्यास जी से उन्होने पूछा था ॥४॥ जैमिनि ने कहा—हे मुनिवर ! इस महान् घोर कलिकाल मे मनुष्यो का मोक्ष किस उपाय या साधन से होगा—इसे आप मुझे बतलाइये क्योकि कलियुग मे मनुष्यो की आयु भी बहुत ही अल्प होगी इसलिए ऐसा ही कोई साधन या पुण्य बतलाइये जो स्वल्प ही हो और जिसे लोग कर सकें ॥५॥ व्यासजी ने कहा—हे विप्र ! शास्त्रो का श्रवण का अवसर साधु पुरुषो के सङ्गति से ही हुआ करता है। सग से शास्त्र श्रवण और उस शास्त्र श्रवण से श्री हरि की भक्ति होती है। उसी भक्ति से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान से गति हुआ करती है ॥६॥ जो पापिष्ठ मनुष्य होते हैं उनको इस भूमण्डल मे हरि की कथा मे रुचि ही नही होती है वह पापिष्ठ प्रवर वैष्णव जानना चाहिए ॥७॥

श्रीकृष्णस्य कथा श्रुत्वाऽऽनन्दी भवति वैष्णव. ।
असत्या ता तु यो ब्रूयाज्ज्ञेयः स पापिना गुरुः ॥८
यस्मिन्यस्मिन्स्थले विप्र ! कृष्णस्य वर्त्तते कथा ।
तस्मात्तस्माज्जगन्नाथो याति त्यक्त्वा न कर्हिचित् ॥९
कृष्णस्य य. कथारम्भे कुर्याद्विघ्न नराधमः ।
नरकान्निष्कृतिर्नास्ति मन्वन्तरशतावधि ॥१०

ये पुराणकथा श्रुत्वा निन्दन्त्युपहसन्ति वै ।
तेषां करस्था नरका बहुक्लेशकराः सदा ॥११
जन्मान्तरार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
श्रीकृष्णचरितं यो वै श्रोतुमिच्छां करोत्यपि ॥१२
भक्त्या यो वै नरः कुर्याच्छ्रीकृष्णचरितं तथा ।
न जाने श्रवणे तस्य का गतिर्वा भविष्यति ॥१३
श्रीकृष्णचरितं विप्र ! तिष्ठेद्वै पुस्तकं गृहे ।
तस्य गृहसमीपं हि नायान्ति यमकिङ्कराः ॥१४

भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का श्रवण करके वैष्णवजन आनन्द से युक्त हो जाता है। जो उस कथा को असत्य कहता है। उसे पापियों का गुरु ही समझना चाहिए ॥८॥ हे विप्र ! जिस जिस स्थल में श्रीकृष्ण की कथा होती है उस–उस स्थल से भगवान् जगन्नाथ उसका त्याग करके कभी भी नहीं जाया करते हैं ॥९॥ जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की कथा के आरम्भ काल में विजय-बाधा किया करता है उस मनुष्य को नरों में महान् अधम नर ही समझना चाहिए ऐसे पुरुष को नरक में जाकर पड़ना पड़ता है और उसकी फिर उस नरक से निष्कृति सैकड़ों मन्वन्तर तक भी नहीं हुआ करती है ॥१०॥ जो पुरुष पुराणों की कथा का श्रवण करके उस कथा की निन्दा किया करते हैं या उसका उपहास करते हैं उनके हाथों में ही नरक का निवास रहा करता है जोकि सदा बहुत ही अधिक कष्टों का करने वाला होता है ॥११॥ जो भगवान् श्रीकृष्ण की कथा के श्रवण करने की इच्छा मात्र किया करता है। उसी क्षण में जन्म जन्मान्तरों के किये हुए सञ्चित पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१२॥ भक्ति की भावना से जो मनुष्य श्रीकृष्ण के चरित को किया करता है उस का भी उद्धार हो जाता है। उस चरित के श्रवण करने से उसकी क्या गति होगी—यह मैं नहीं जानता हूँ ॥१३॥ हे विप्र ! श्रीकृष्ण के चरित से युक्त-पुस्तक यदि घर में रहती है तो उस घर की तो बात ही क्या है ? उस घर के समीप में भी यमराज के किङ्कर कभी नहीं आया करते हैं ॥१४॥

वदन्ति वैष्णवान्काश्च वाञ्छा ब्रूहि गुरो ! मम ।
इदानीं तान्समाज्ञातुं तेषां माहात्म्यमुत्तमम् ।।१५
यो नरो मस्तके भक्त्या वैष्णवाङ्घ्र्यम्भसो द्विज ! ।
करोति सेचनं पापी तीर्थस्नानेन तस्य किम् ।।१६
साधुसङ्गं तु यः कुर्यात्क्षणं वार्द्धक्षणं द्विज ।
तस्य नश्यन्ति पापानि ब्रह्महत्यामुखानि च ।।१७
यत्र यत्र कुलेचैव एको भवति वैष्णवः ।
कुलं तस्य यदापर्यैयुक्तं तन्मोक्षगामिवै ।।१८
हिंसादम्भकामक्रोधैर्वर्जिताश्चैव ये नराः ।
लोभमोहपरित्यक्ता ज्ञेयास्ते वैष्णवा द्विज ! ।।१९
पितृभक्ता दयायुक्ताः सर्वप्राणिहितेरताः ।
अमत्सरा वैष्णवा ये विज्ञेया सत्यभाषिणः ।।२०
विप्रभक्तिरता ये च परस्त्रीषु नपुंसकाः ।
एकादशीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ।।२१

जैमिनि मुनि ने कहा—गुरुवर ! मेरी यह इच्छा है कि मुझे इसका ज्ञान प्राप्त हो जावे कि वैष्णव जन किनको कहा करते हैं । अब उनके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आप उनका उत्तम माहात्म्य श्रवण कराइये ।।१५।। व्यास जी ने कहा—जो मनुष्य भक्ति भाव से हे द्विज ! वैष्णवों के चरणों का जल अपने मस्तक पर धारण करता है और फिर उसी चरणामृत के द्वारा अपने मस्तक का सेचन किया करता है, उस पापी को तीर्थों के स्नान करने से क्या लाभ है अर्थात् फिर तीर्थ-स्नान की कोई भी आवश्यकता नहीं रह जाती है ।।१६।। हे द्विज ! जो पुरुष एक ही क्षणमात्र या आधे क्षण के लिये भी साधु पुरुषों का सङ्ग किया करता है उसके समस्त ब्रह्महत्या जैसे भी महापाप भी समूल नष्ट हो जाया करते हैं ।।१७।। जिस-जिस कुल में कोई भी एक पुरुष भी वैष्णव हो जाता है उसका पूरा कुल जो कि महापापों में भी युक्त होता है वो भी पापों से छुटकारा पाकर मोक्ष गामी हो जाया करता है ।।१८।।

जो पुरुष हिंसा—दम्भ—काम और क्रोध से रहित होते हैं और लोभ-मोह से वर्जित होते हैं हे द्विज ! उनको वैष्णव ही समझना चाहिए ॥१९॥ जो अपने पिता के परम भक्त होते हैं तथा दया से युक्त हुआ करते हैं और समस्त प्राणियो के हित के करने मे रति रखते है एव जिनके हृदय मे मत्सरता की भावना नही होती है और सर्वदा सत्य का भाषण किया करते हैं उनको वैष्णवजन समझना चाहिए ॥२०॥ जो सदा विप्रो के प्रति भक्ति का भाव रखते है और विप्रो के चरणो मे प्रेम और जो पराई स्त्रियो के प्रति नपुंसकता रखते हैं तथा एकादशी का सर्वदा व्रत करने मे रति रखते हैं उन सबको परम वैष्णव ही मानना चाहिए ॥२१॥

गायन्ति हरिनामानि तुलसीमाल्यधारकाः ।
हर्यङ्घ्रिसलिलै.सिक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥२२
श्रोत्रयोर्मस्तकेयेषातुलस्या.पर्णमुत्तमम् ।
कर्हिचिद्दृश्यते विप्र ! विज्ञेयास्ते च वैष्णवा. ॥२३
पाखण्डसङ्गरहिता विप्रद्वेषविवर्जिताः ।
सिञ्चेयुस्तुलसी ये च ज्ञातव्या वैष्णवा नराः ॥२४
पूजयन्ति हरिं ये च तुलस्या चार्चयन्ति ये ।
कन्यादानरता ये च ये वैष्णतिथि पूजका. ॥२५
शृण्वन्ति विष्णुचरितं विज्ञेया वैष्णवा नरा. ।
यस्य गृहे सुप्रतिष्ठेच्छालग्रामशिलाऽपि च ॥२६
मार्जयन्ति हरेःस्थान पितृयज्ञप्रवर्तकाः ।
जने दीने दयायुक्ता विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥२७
परस्व ब्राह्मणद्रव्य पश्यन्ति विषवच्च ये ।
हरिनैवेद्य येऽश्नन्ति विज्ञेया वैष्णवा जनाः ॥२८

जो श्रीहरि के शुभ नामो का सकीर्तन किया करते हैं और तुलसी की माला (कण्ठी) को धारण किया करते हैं। जो श्रीहरि के चरणामृत से अपने आपको सिक्त किया करते हैं। उन सब को वैष्णव जन ही समझना चाहिए ॥२२॥जिनके कानो मे और मस्तक मे तुलसी का उत्तम

पत्र किसी भी समय मे दिखलाई देता है तो हे विप्र ! उनको परम वैष्णव जन ही जानना चाहिए ॥२३॥ पाषण्डियो की सगति से जो रहित होते हैं तथा विप्रो के द्वेष से जो शून्य होते हैं और जो तुलसी के पौधे का सिञ्चन किया करते हैं उन्हें वैष्णव जन ही समझना चाहिए ॥२४॥ जो लोग श्रीहरि का अर्चन किया करते हैं और जो तुलसी की पूजा किया करते हैं तथा जो कन्या के दान करने मे रत रहा करते हैं और जो अतिथियो का समर्चन करते हैं, जो विष्णु भगवान् के चरित्र का श्रवण करते हैं वे मनुष्य परम वैष्णव जाने जाते हैं। जिसके घर मे शालग्राम शिला की सुप्रतिष्ठा हो, जो हरि के स्थान पर मार्जन किया करते हैं तथा पितृयज्ञ के प्रवर्त्तक होते हैं जो दीन मनुष्यो पर दया किया करते हैं उनको वैष्णवजन समझना चाहिए ॥२५-२७॥ जो पराये धन को तथा ब्राह्मणो के धन को विष की भाँति देखते हैं और जो हरि को समर्पित किया हुआ नैवेद्य (प्रसाद) खाते हैं उनको वैष्णवजन ही जानना चाहिए ॥२८॥

वेदशास्त्रानुरक्ता ये तुलसीवनपालका ।
राधाष्टमीव्रतरता विज्ञेयास्ते च वैष्णवा ॥२९
श्रीकृष्णपुरतो ये च दीप यच्छन्ति श्रद्धया ।
परनिन्दा न कुर्वन्ति विज्ञेयास्ते च वैष्णवा. ॥३०
पृष्टो जैमिनिना व्यास इत्युवाच यथाक्रमम् ।
मयैव कथ्यते ब्रह्मन्यत्प्रसङ्गाद्गुरो. श्रुतम् ॥३१
अध्याय श्रद्धया युक्ता ये शृण्वन्ति नरोत्तमा. ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णो परपदम् ॥३२

जो वेदो के और शास्त्रो के अन्दर अनुराग रखने वाले हैं तथा तुलसी के वन को जो पालित किया करते हैं। जो श्रीराधाष्टमी के दिन उपवास करने मे रति रखते हैं उन्हें वैष्णव जन ही जानना चाहिए ॥२९॥ जो श्रीकृष्ण भगवान् के आगे श्रद्धा के भाव से दीपक का दान किया करते हैं और दूसरो की जो कभी भी निन्दा नही किया करते हैं। उन्हें ही परम वैष्णव जन समझना चाहिए ॥३०॥ सूत जी ने

कहा—इस प्रकार से जैमिन के द्वारा व्यास जी से पूछा गया था तब व्यास जी ने क्रमानुसार यह कहा था —हे ब्रह्मन् ! मैंने जो प्रसगवश अपने गुरुजी से श्रवण किया है उसे ही मैं कहता हूँ ॥३१॥ जो नरो मे श्रेष्ठ इस अध्याय का श्रवण श्रद्धा के साथ किया करते हैं वे सभी पापो से विनिर्मुक्त होकर श्री विष्णु भगवान् के परम पद को अन्त मे प्राप्त किया करते हैं ॥३२॥

॥ कार्तिक मास माहात्म्य ॥

कार्त्तिकस्य च माहात्म्य ब्रूहि सूत ! ममाग्रतः ।
तद्व्रतस्य फल किं वा दोष किं तदकुर्वतः ॥१
पुरैकदा मुनिश्रेष्ठ ! व्यास सत्यवतीसुतम् ।
जैमिनि. पृष्टवानेतदारेभे कथितु मुनिः ॥२
तिलतैल मैथुन यः शुभदंकार्त्तिके त्यजेत् ।
बहुजन्मकृतं पापैर्मुक्तोयाति हरेर्गृहम् ॥३
मत्स्य च मैथुनयो वै कार्त्तिके न परित्यजेत् ।
प्रतिजन्मनि समूढः शूकरश्च भवेद्ध्रुवम् ॥४
कार्त्तिके तुलसीपत्रै पूजयेद्व जनार्दनम् ।
पत्रपत्रेऽश्वमेधस्य फल प्राप्नोति मानवः ॥५
कार्तिके मुनिपुष्पैर्यः पूजयेन्मधुसूदनम् ।
देवाना दुर्लभ मोक्ष प्राप्नोति कृपया हरेः ॥६
कार्तिके मुनिशाक वै योऽश्नाति च नरोत्तमः ।
सवत्सरकृतपाप शाकेनैकेन नश्यति ॥७
फल तस्य नरोऽश्नाति चोर्जे यो वै हरिप्रिये ।
प्रदाय तु हरेर्यं ह्यन्वृजिन कोटिजन्मजम् ॥८

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! अब आप कृपा करके मेरे आगे कार्तिक मास के माहात्म्य का वर्णन कीजिए । इस व्रत के करने से क्या फल प्राप्त होता है ? और यदि कोई इस व्रत को नहीं किया करता है तो उसे क्या दोष लगता है ? ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ !

सत्यवती के पुत्र व्यास देवजी से जैमिनि मुनि ने यह पूछा था। उस समय मुनिवर ने यही कहना आरम्भ किया था—व्यासजी ने कहा था परम शुभ के प्रदान करने वाले कार्त्तिक मास में जो पुरुष तिलों का तैल और मैथुन का त्याग कर देता है वह पुरुष बहुत से जन्मों के किए पापों से मुक्त होकर श्री हरि के पद की प्राप्ति किया करता है ॥२-३॥ जो पुरुष कार्त्तिक मास में मत्स्यों का आहार और मैथुन का त्याग नहीं किया करते हैं वह प्रत्येक जन्म समूह निश्चय ही शूकर की योनि में जन्म ग्रहण किया करता है ॥४॥ कार्त्तिक में तुलसी के दलों से जनार्दन भगवान् का अर्चन करना चाहिए। एक-एक तुलसी के पत्र के समर्पित करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त किया करता है ॥५॥ कार्त्तिक में मुनि (अगस्त्य) पुष्पों से जो मधुसूदन भगवान् का पूजन किया करता है वह मनुष्य देवों को भी महा दुर्लभ जो मोक्ष होता है उसे श्रीहरि की कृपा से प्राप्त कर लेता है ॥ ६ ॥ कार्त्तिक में जो नरों में परम श्रेष्ठ पुरुष मुनि शाक का अशन करता है वह एक वर्ष भर में किए हुए पापों को एक ही शाक के अशन मात्र से ही नष्ट कर दिया करता है ॥७॥ श्री हरि का परम प्रिय ऊर्जमास में जो उसके फल का अशन करता है वह हे ब्रह्मन्! करोड़ों जन्म के पापों को हरि की कृपा से नष्ट कर देता है ॥८॥

सुरस सर्पिषा युक्तं दद्याद्यो हरयेऽपिच ।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सगच्छेद्धरिमन्दिरम् ॥९
कार्तिके यो नरो दद्यादेकपद्मं हरावपि ।
अन्ते विष्णुपद गच्छेत्सर्वपापविवर्जितः ॥१०
प्रातः स्नान नरो योवै कार्तिके श्रीहरिप्रिये ।
करोति सर्वतीर्थेषु यत्स्नात्वातत्फलंलभेत् ॥११
कार्तिके यो नरोदद्यात्प्रदीपं नभसि द्विजः ।
विप्रहत्यादिभिःपापैर्मुक्तोगच्छेद्धरेर्गृहम् ॥१२
मुहूर्तमपि य दद्यात्कार्तिके प्रीतये हरेः ।
दीप नभसि विप्रेन्द्र ! तस्मिंस्तुष्टःसदाहरिः ॥१३

यो दद्याच्च गृहे दीपं कृष्णस्य सघृतं द्विजः ।
कार्तिके चाश्वमेधस्य फलस्याह्नं दिने दिने ।।१४

जो पुरुष सर्पि (घृत) से युक्त सुरस पदार्थ को हरि की सेवा में समर्पित करता है वह समस्त पापों से विमुक्त होकर श्री हरि के मन्दिर में गमन किया करता है ।।६।। कार्तिक में जो मनुष्य एक भी पद्म का पुष्प श्री हरि को समर्पित किया करता है वह अन्त में समस्त पापों से छुटकारा पाकर विष्णु के पद की प्राप्ति किया करता है ।।१०।। भगवान् के परमप्रिय कार्तिक मास में जो कोई भी मानव प्रातः काल में सूर्योदय से भी पूर्व नित्य स्नान किया करता है वह इतना पुण्य का भागी हो जाता है जैसा कोई सम्पूर्ण तीर्थ स्थानों में स्नान करने वाला हुआ करता है ।।११।। जो द्विज कार्तिक में आकाश द्वीप का दान किया करता है वह विप्रहत्या आदि के महान् पातकों से विमुक्त होकर श्रीहरि के मन्दिर में अन्त में प्राप्त हो जाया करता है ।।१२।। हे विप्रेन्द्र ! जो व्यक्ति एक मुहूर्त मात्र (ढाई घडी) के लिये भी कार्तिक मास में हरि की प्रीति के लिए दीपक का दान किया करता है अर्थात् आकाश दीप देता है उससे श्रीहरि भगवान् परम सन्तुष्ट हुआ करते हैं और सदा ही प्रसन्न रहते हैं ।।१३।। जो द्विज घृत का दीप घर में ही श्री कृष्ण भगवान् के लिए दान किया करता है और कार्तिक मास में ऐसा करे तो प्रतिदिन के अश्वमेध यज्ञ के फल का भागी होता है ।।१४।।

।। श्रीराधाजन्माष्टमी माहात्म्य ।।

कथयस्व महाप्राज्ञ ! गोलोकं याति कर्मणा ।
मुच्यते दुस्तरात्केन जनः संसारसागरात् ।
राधायाश्चाष्टमी सूत तस्या माहात्म्यमुत्तमम् ।।१
ब्रह्माणं नारदोऽपृच्छत्पुरा चैतन्महामुने ।
तच्छृणुष्वसमासेन पृष्टवान्स यथा द्विज ! ।।२

पितामह ! महाप्राज्ञ ! सर्वशास्त्रविदावर ! ।
राधाजन्माष्टमी तात कथयस्व ममाग्रत ॥३
तस्या पुण्यफल किं वा कृत केन पुरा विभो ! ।
अकुर्वता जनाना हि किल्विप किं भवेद्विभो ! ॥४
केनैव तु विधानेन कर्त्तव्य तद्व्रत कदा ।
कस्मौज्जाता च सा राधातन्मे कथयमूलत ॥५

श्री शौनक मुनि ने कहा—हे महान् प्रज्ञा वाले ! वह कर्म्म वर्णन करने की कृपा कीजिए जिसके द्वारा इस अति दुस्तर ससार रूपी सागर से पार होकर मनुष्य गोलोक की प्राप्ति किया करता है। आप तो महान् सुन्दर मति वाले हैं और सभी कुछ जानते भी हैं हे सूतजी ! ऐसा सुना जाता है कि राधाजी के जन्म दिवस की जो भाद्रपद मास मे अष्टमी है उसका अत्यन्त उत्तम माहात्म्य होता है ॥१॥ सूतजी ने कहा—हे महा-मुने ! पहिले एक बार देवर्षि श्रीनारदजी ने ब्रह्मा जी से यही प्रश्न पूछा था वही मैं बतलाता हूँ उसको आप सक्षेप से श्रवण कीजिए ॥२॥ नारद जी ने कहा था—हे पितामह ! हे महाप्राज्ञ ! आप तो समस्त शास्त्रो के पूण ज्ञाताओ मे भी परम श्रेष्ठ हैं। हे तात ! मेरे सामने इस समय मे श्रीराधा अष्टमी की जयन्ती के दिन का माहात्म्य वर्णन कीजिए ॥३॥ उसका क्या तो पुण्य फल हुआ करता है और हे विभो ! सर्व प्रथम इसको किसने किया था ? जो मनुष्य इसका उपवास आदि नहीं किया करते हैं उनको क्या पाप—दोप लगता है—यह भी स्पष्ट बतलाइये ॥४॥ इस व्रत के करने का क्या विधान है और इसे किस समय म करना चाहिए। यह राधा किससे समुत्पन्न हुई हैं ? यह सभी मूल सहित वर्णन करने की कृपा करें ॥५॥

राधाजन्माष्टमी वत्स ! शृणुष्व सुसमाहित ।
कथयामि समासेन समग्र हरिणा विना ॥६
कथितु तत्फल पुण्य न शक्नोत्यपि नारद ।
कोटिजन्मार्जित पाप ब्रह्महत्यादिकमहत् ॥७

कुर्वन्ति ये सकृद्भक्त्या तेषां नश्यति तत्क्षणात् ।
एकादश्याः सहस्रेण यत्फलं लभतेनरः ॥८
राधाजन्माष्टमी पुण्यं तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्त्वा यत्फलमाप्यते ॥९
सकृद्राधाष्टमीं कृत्वा तस्माच्छतगुणाधिकम् ।
कन्यादानसहस्रेण यत्पुण्यं प्राप्यते जनैः ॥१०
वृषभानुसुताष्टम्या तत्फलं प्राप्यते जनैः ।
गङ्गादिषु च तीर्थेषु स्नात्वा तु यत्फलंलभेत् ॥११
कृष्णप्राणप्रियाष्टम्या फलं प्राप्नोति मानवः ।
एतद्व्रतं तु यः पापी हेलया श्रद्धयाऽपि वा ॥१२

श्रीब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! श्रीराधा जन्माष्टमी के व्रतोत्सव का पूर्ण हाल तुम सावधान चित्त होकर मुझसे श्रवण करो । मैं हरि के बिना इसका पूरा हाल अति संक्षेप मे तुमको बतलाता हूँ ॥६॥ हे नारद ! इसका पुण्य और जो फल होता है उसको कहने की सामर्थ्य भी नही है । करोड़ो जन्मो मे किये हुए पाप और ब्रह्महत्या आदि जो महत् पातक होते हैं वे सभी इसको जो भी एक बार भक्ति भाव से करते हैं वे सब तत्क्षण मे ही नष्ट हो जाया करते हैं । सहस्र एकादशी के व्रतो का जो फल मनुष्य प्राप्त करता है उससे सौगुना अधिक पुण्य श्रीराधाष्टमी के व्रत करने से प्राप्त होता है । मेरु पर्वत के तुल्य सुवर्ण का दान करने से जो पुण्य-फल प्राप्त किया जाता है वह एक बार राधा अष्टमी के करने से उससे भी शत गुण अधिक फल होता है । कन्या के सहस्र दान करने से जो पुण्य-फल मनुष्यो के द्वारा प्राप्त किया जाता है वृषभानु सुता श्री राधा के जन्म की अष्टमी के दिन उपवास करने से वही फल प्राप्त होता है । गंगा आदि तीर्थों मे स्नान करके जो फल उपलब्ध होता है उसी फल को श्रीकृष्ण की प्रिया श्री राधा की अष्टमी के उपवास से मनुष्य प्राप्त किया करता है । इस व्रत को जो पापी हेला या श्रद्धा किसी भी प्रकार से करता है उसे महान् पुण्य की प्राप्ति होती है ॥७-१२॥

॥ श्रीकृष्णजन्माष्टमी माहात्म्य ॥

कृष्णजन्माष्टमी सूत ! तस्या माहात्म्यमुत्तमम् ।
कथयस्व महाप्राज्ञ चोद्धरस्व भवार्णवात् ॥१
कृष्णजन्माष्टमी ब्रह्मन्भक्त्या करोति यो नरः ।
अन्ते विष्णुपुरंयाति कुलकोटियुतोद्विज ! ॥२
अष्टमीबुधवारे च सोमेचैव द्विजोत्तम ! ।
रोहिणीऋक्षसयुक्ता कुलकोटिविमुक्तिदा ॥३
महापातकसयुक्तः करोति व्रतमुत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तश्चान्ते याति हरेगृ हम् ॥४
कृष्णजन्माष्टमी ब्रह्मन्न करोति नराधमः ।
इह दुःखमवाप्नोति स प्रेत्य नरकं व्रजेत् ॥५
न करोति च या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।
वर्षे वर्षे तु सा मूढा नरकं याति दारुणम् ॥६
जन्माष्टमीदिने यो वै नरोऽश्नानि विमूढधीः ।
महानरकमश्नाति सत्यंसत्यं वदाम्यहम् ॥७
दिलीपेन पुरापृष्टो वसिष्ठोमुनिसत्तमः ।
तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ ! सर्वपातकनाशनम् ॥८

शौनक मुनि ने कहा—हे सूत जी ! आप तो महान् प्रज्ञा सम्पन्न हैं । अब कृष्णजन्माष्टमी का जो उत्तम माहात्म्य है उसका वर्णन कीजिए और हम सब लोगों को उसका माहात्म्य श्रवण करा कर इस भव रूपी सागर से हमारा उद्धार करियेगा ॥१॥ सूतजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो मनुष्य श्रीकृष्ण के जन्म की अष्टमी का व्रतोपवास आदि किया करता है और भक्ति भाव से जो इसको पूर्णरूप से करता है वह अन्त में विष्णु के पुर में करोड़ों कुलों से युक्त होकर निवास प्राप्त किया करता है ॥२॥ यदि वह कृष्ण जन्माष्टमी बुधवार से युक्त हो अथवा हे द्विजोत्तम ! सोमवार से युक्त हो उसी दिन रोहिणी नक्षत्र भी हो तो करोड़ों कुलों को विमुक्ति प्रदान करने वाली होती है॥३॥जो कोई पुरुष

महान् पातकों से युक्त भी हो और इस महान् उत्तम व्रत को कर लेता है तो वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाकर अन्त में हरि के निवास स्थान में जाकर स्थान प्राप्त किया करता है।।४।।हे ब्रह्मन् ! जो कृष्णजन्माष्टमी का व्रत नहीं करता है वह नरों में महान् अधम नर होता है। वह यहाँ संसार में तो महान् घोर दु:खों को प्राप्ति किया ही करता है और अन्त में भी मर कर नरक में निवास किया करता है जहाँ उसे घोर नारकीय यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं ।।५।। जो नारी कृष्णाष्टमी का व्रत नहीं करती है वह वर्ष-वर्ष में मूढ़ा नारी दारुण नरक की प्राप्ति किया करती है ।।६।। जन्माष्टमी के दिन में जो विमूढ़ बुद्धि वाला मनुष्य भोजन किया करता है वह महान् नरक का ही अशन करता है—यह मैं सर्वथा सत्य और पूर्ण सत्य ही बता रहा हूँ ।।७।। बहुत पहिले समय में एक बार महाराजा दिलीप ने महर्षि वसिष्ठ से पूछा था। हे महाप्राज्ञ ! उसको आप भले प्रकार सुनो यह समस्त पातकों को नाश करता है ।।८।।

भाद्रे मास्यसिताष्टम्यां यस्यां जातो जनार्द्दनः ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ।।९
कथं वा भगवाञ्जातः शङ्खचक्रगदाधरः ।
देवकीजठरे विष्णुः किं कर्तुं केन हेतुना ।।१०
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कस्माज्जातोजनार्द्दनः ।
पृथिव्या त्रिदिवंयत्त्वामवते कथयाम्यहम् ।।११
पुरा वसुन्धरा ह्यासीत्कंसादिनृपपीडिता ।
स्वाधिकारप्रमत्तेन कंसदूतेन ताडिता ।।१२
क्रन्दती क्रन्दनो सा तु ययौ घूर्णितलोचना ।
यत्र तिष्ठति देवेश उमाकान्तो वृषध्वजः ।।१३
कंसेन ताडिता नाथ इति तस्मै निवेदितुम् ।
याप्यवारीपि वर्णन्ती विवर्णा सा विमानिता ।।१४

राजा दिलीप ने कहा—भाद्रपद मास में सित पक्ष की अष्टमी तिथि में जिसमें भगवान् जनार्दन ने जन्म ग्रहण किया था, मैं उसके विषय

श्रवण करना चाहता हूं । हे महामुने ! आप कृपा करके उसका वर्णन कीजिएगा ।।९।। शङ्ख-चक्र-गदा के धारण करने वाले भगवान् कैसे क्यो उत्पन्न हुए थे ? देवकी के जठर मे किस हेतु से और क्या करने के लिए भगवान् विष्णु ने जन्म ग्रहण किया था ? ।।१०।। वसिष्ठ मुनि ने कहा– हे राजन् ! आप सुनिये, मैं आपको बतलाता हूँ कि जनार्दन भगवान् क्यो उत्पन्न हुए थे और जिन्होने त्रिदिव का त्याग करके इस भूमण्डल मे क्यो अवतरण किया था । यह सभी मैं आपको बतलाता हूं ।।११।। पहिले समय मे यह भूमि कस आदि दुष्ट नृपो से अत्यन्त उत्पीडित हो रही थी । स्वाधिकार का बडा भारी प्रमाद कस को होगया था । उसने इस भूमि को अत्यन्त ताडित किया था ।।१२।। यह बिचारी भूमि रोती–बिलखती हुई देवो के स्वामी उमादेवी के पति वृषभध्वज जहा पर विराजमान थे वहाँ गयी थी । बिचारी भूमि के रोने से लाल नेत्र हो रहे थे । कस के द्वारा प्रताडित होकर अपना घोर कष्ट शिव से निवेदन करने को यह वहा पहुची थी ।।१३।। यह पृथ्वी अपने नेत्रों से अविरल आँसुओ की धाराऐं गिरा रही थी और इसकी कान्ति क्षीण होगई थी तथा यह अत्यन्त अपमानित होकर वहा गयी थी ।।१४।।

क्रन्दन्ती ता समालोक्य कोपेन स्फुरिताधर. ।
उमया सहित सर्वैर्देववृन्दैरनुद्रुत ।।१५
आजगाम महादेवो विधातृभवन रुषा ।
गत्वा चोवाच ब्रह्माण कसध्वसनहेतवे ।।१६
उपाय सृज्यता ब्रह्मन्भवता विष्णुना सह ।
ऐश्वर तद्वच श्रुत्वा देववृन्दैर्हरादिभिः ।।१७
क्षीरोदे यत्र वैकुण्ठः सुप्तोऽस्ति भुजगोपरि ।
हसपृष्ठं समारुह्य हरेरन्तिकमाययौ ।।१८
तत्र गत्वा च त धाता देववृन्दैर्हरादिभिः ।
सयुक्तःप्रास्तवीद्वाग्मि कोमल वाग्विदावर. ।।१९
नम कमलनेत्राय हरये परमात्मने ।
जगत. पालयित्रे च लक्ष्मीकान्त नमोऽस्तुते ।।२०

इति तेभ्यः स्तुतिं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः ।
देवान्विलष्टमुखान्सर्वान्भवद्भिरागतं कथम् ॥२१

उस भूमि को रुदन करती हुई देखकर भगवान शिव को महान् क्रोध आगया था और कोप से उनके होठ फड़क रहे थे । उसी समय उमादेवी के सहित समस्त देवताओं के समुदाय के साथ महादेव रोष से युक्त विधाता के भवन में आगये थे । वहाँ जाकर दुष्ट वेन राजा के ध्वंस करने के लिए महादेवजी ने ब्रह्माजी से कहा था ॥१५-१६॥ शिवजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आप भगवान् विष्णु के साथ मिल कर कोई उपाय करिए । शिव के इस वचन को सुन करके समस्त देवों के वृन्द और शिव आदि भगवान् हरि के समीप में गये थे जहां पर क्षीरसागर में भगवान् विष्णु शेष की शय्या पर शयन कर रहे थे,ब्रह्माजी भी हंस पर समारूढ़ होकर वहां पहुँचे थे ॥१७-१८॥ वहां पर जाकर देव वृन्द और हर प्रभृति सबके साथ ब्रह्माजी ने संयुक्त होकर अपनी मधुर वाणी से विष्णु की स्तुति की थी । ब्रह्माजी जो स्वयं बोलने वाले विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ थे ॥१६॥ ब्रह्माजी ने स्तवन किया था—कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले परमात्मा हरि के चरणों में हम सबका प्रणाम है । हे लक्ष्मी के कान्त ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के पालन-पोषण करने वाले हैं । आपके लिए हमारा नमस्कार समर्पित है ॥२०॥ इस प्रकार से उन सब की स्तुति को सुनकर भगवान् जनार्दन ने उनसे कहा था—आज इस समय में आप सब का किस कारण से यहाँ आगमन हुआ है ? मैं देख रहा हूँ कि आप समस्त देवों के मुख पर क्लेश की म्लानता छायी हुई है ॥२१॥

शृणु देवजगन्नाथ यस्मादस्मात्समागताः ।
कथयामि सुरश्रेष्ठ ! तदहं लोकभावन ! ॥२२
भूमिरत्रागतोन्मत्तः वेनोराजा दुरासदः ।
वसुधा ताडिता तेन चरणेन पीडिता ॥२३
यद् दृष्ट्वा पुराध्यर्थे मायया नु प्रयश्चितः ।
नागितैवं विनाशाय्यो कस्य भविता न मे ॥२४

तस्माद् गच्छ स्वयं देव ! कंस हन्तुं दुरासदम् ।
देवकीजठरे जन्म लब्ध्वा गत्वा च गोकुलम् ॥२५
ब्रह्मणा प्रेरितो देवः प्रत्युवाच च शूलिनम् ।
पार्वती देहि देवेश अहं स्थित्वाऽऽगमिष्यति ॥२६
उमया रक्षयासार्द्धं शङ्खचक्रगदाधरः ।
उद्दिश्य मथुराचक्रे प्रयाणं कमलासनः ॥२७
देवकीजठरे जन्म लेभे तत्र गदाधरः ।
यशोदा कुक्षिमध्यास्ते शर्वाणी मृगलोचना ॥२८
नवमासाश्च विथस्य कुक्षौ नवदिनान्तकान् ।
भाद्रे मास्यसितेपक्षे चाष्टमी सप्तमी तिथिः ॥२९

लोचना शर्वाणी ने अपनी स्थिति की थी ।।२८।। नौमा सतक विश्राम करके कुक्षि मे नौ दिन के अन्त तक रह कर भाद्र पद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि मे जन्म ग्रहण किया था ।।२९।।

श्रुत्वा पापानि नश्यन्ति कुर्यात्किं वा भविष्यति ।
य इद कुरुते मर्त्यो या च नारी हरेर्व्रतम् ।।३०
ऐश्वर्यमतुल प्राप्य जन्मन्यत्र यथेप्सितम् ।
पूर्वविद्धा न कर्तव्या तृतीया षष्ठिरेव च ।।३१
अष्टम्येकादशीभूता धर्मकामार्थवाञ्छुभि ।
वर्जयित्वा प्रयत्नेन सप्तमीसयुताष्टमीम् ।।३२
विना ऋक्षेऽपि कर्तव्या नवमी सयुताष्टमी ।
उदये चाष्टमी किञ्चित्सकला नवमीयदि ।।३३
मुहूर्तरोहिणीयुक्ता सम्पूर्णा चाष्टमी भवेत् ।
अष्टमी बुधवारेण रोहिणी सहिता यदि ।।३४
सोमेनैव भवेद्राजन्कि कृतव्रतकोटिभि. ।
नवम्यामुदयात्किञ्चित्सोमेसापि बुधेऽपि च ।।३५

यह इस प्रकार से श्रीकृष्ण के जन्म का कारण है । इस जन्म वृत्त को जो कोई भी सुनता है उसके समस्त पाप नष्ट हो जाया करते हैं । जो इसका व्रत किया करता है उसको तो क्या-क्या फल नही होगा अर्थात् उसे तो सभी कुछ होगा । जो भी कोई मनुष्य या नारी इस व्रत को करता है वह यहा पद अतुल ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है और इस जन्म म जो भी उसका अभीष्ट होता है उसे भी वह प्राप्त कर लेता है । यह व्रत पूर्व तिथि अर्थात् सप्तमी से विद्ध यदि अष्टमी हो तो उस नहीं करना चाहिए । इसी तरह तृतीया और षष्ठी भी नही करनी चाहिए ।।३०-३१।। यह अष्टमी भी एकादशी के ही समान है । जो मनुष्य धर्म-काम और अर्थ की इच्छा रखने वाले पुरुष हैं उन्हें सप्तमी से सयुत अर्थात् विद्धा अष्टमी के व्रत का वर्जन कर देना ही चाहिए ।।३२।। बिना रोहिणी नक्षत्र के भी नवमी से सयुत अष्टमी का व्रत करना चाहिए । केवल सूर्योदय काल मे थोड़ी सी भी तिथि हो और

पीछे पूरी नवमी तिथि हो तो उस दिन ही व्रत करे। मुहूर्त्त मात्र (दो घड़ी) भी यदि रोहिणी नक्षत्र से युक्त सम्पूर्ण अष्टमी तिथि हो और वह अष्टमी तिथि बुधवार से युक्त हो यदि रोहिणी से भी सहित हो तो व्रत करना चाहिए ॥३३-३४॥ हे राजन्! यदि सोमवार से भी युक्त हो तो फिर उस का महान् पुण्य होता है। यह एक ही व्रत बड़ा महत्व रखता है अन्य करोड़ों व्रतों की कोई भी फिर आवश्यकता नहीं है। नवमी तिथि में उदय से कुछ थोड़ी से सोम में या बुध में भी हो तो उसका व्रत श्रेष्ठतम माना जाता है ॥३५॥

अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न लभ्यते।
विना ऋक्ष न कर्त्तव्या नवमीसयुताष्टमी ॥३६
कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणी सयुताष्टमी।
कला काष्ठा मुहूर्तेऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः ॥३७
नवम्या सैव वा ग्राह्या सप्तमीसयुता न हि।
किंपुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषत ॥३८
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा।
पलवेधेन राजेन्द्र सप्तम्या अष्टमी त्यजेत्।
सुराया बिन्दुना स्पृष्ट गङ्गाम्भ कलश यथा ॥३९

इस प्रकार के योगों से समन्वित अष्टमी तिथि सौ वर्ष में भी प्राप्त हो अथवा न भी प्राप्त हो किन्तु बिना नक्षत्र के नवमी तिथि स सयुत अष्टमी तिथि का व्रत नहीं करना चाहिए ॥३६॥ यदि रोहिणी से सयुत अष्टमी हो तो सप्तमी से विद्ध होने पर भी कर लेनी चाहिए। कला–काष्ठा और मुहूर्त में भी जब कि कृष्णाष्टमी तिथि वर्त्तमान हो ॥३७॥ वह भी नवमी तिथि में हो ग्रहण करने में योग्य होती है। सप्तमी से सयुत तो कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए। फिर बुधवार से क्या है, विशेष करके सोमवार से भी युक्त ग्राह्य है ॥३८॥ जो नवमी से युक्त जो अष्टमी होती है उस के विषय में क्या बतलावें वह तो इतना अधिक महत्व रखती है कि करोड़ कुलों को मुक्ति देने वाली

होती है । हे राजेन्द्र ! एक पल मात्र के वेध होने से जोकि अष्टमी तिथि में सप्तमी का होता है उस अष्टमी के व्रत का त्याग कर देना चाहिए अर्थात् उसदिन व्रत न करे । वह त्याग भी इस तरह का हो जैसे गंगा जल से पूर्ण कलश का एक बूंद भी सुरा का स्पर्श हो जाने से वह परम पवित्र होते हुए भी त्याज्य हो जाता है ।।३६।।

।। एकादशी माहात्म्य ।।

कथयस्व महाभाग ! माहात्म्यं पापनाशनम् ।
एकादश्याःफलं किंवा किल्बिषंस्यादकुर्वतः ।।१
एकादश्यास्तु माहात्म्यं किमहं वच्मि साम्प्रतम् ।
श्रुत्वा चैकादशी नाम यमदूताश्च शङ्किताः ।।२
भवन्ति नात्रसन्देहः सर्वप्राणिभयङ्कराः ।
व्रताना चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चैकादशी शुभाम् ।।३
उपोष्य जागृयाद्विष्णोः कुर्याच्च मण्डनं महत् ।
तुलसीदलैस्तु यो मर्त्यो हरिपूजां करोति वै ।।४
दलेनैकेन लभते कोटियज्ञफलं द्विज ! ।
अगम्यागमने चैव यत्पापं समुदाहृतम् ।।५
तत्पापं याति तिलयं चैकादश्यामुपोषणात् ।
घृतपूर्णं प्रदीपं यो दद्याद्विष्णुदिने द्विज ! ।।६
अन्ते विष्णुपुरं याति तमो हत्वा स्वतेजसा ।
धन्या जनपदास्ते वै धन्यः स च महीपतिः ।।७
हरेर्दिने यस्य राज्ये चैकादश्या महोत्सवः ।
नारायणस्य शयने पार्श्वस्य परिवर्त्तने ।।८
विशेषेण प्रवोधिन्यां निराहारा भवन्ति ये ।
भवन्तिकं नात्रसन्देहःसर्वप्राणिनःपुण्यभागिनः ।।९
अहर्निशं पितृपतिःसमादिशति दूतकान् ।
एकादशी जगन्नाथ वल्लभा पुण्यवर्धिनी ।।१०

श्री शौनक महर्षि ने कहा—हे महाभाग ! अब आप एकादशी तिथि के व्रत का माहात्म्य वर्णन कीजिए जोकि पापों का नाश कर देने वाला होता है। एकादशी तिथि का क्या फल होता है और जो एकादशी का व्रत नहीं किया करता है उसको कौनसा महान् पाप हुआ करता है ॥१॥ सूत जी ने कहा—एकादशी तिथि का माहात्म्य मैं इस समय आप लोगों को क्या बतलाऊँ। एकादशी तिथि का नाम श्रवण करके ही यम के दूत शंकित हो जाया करते हैं। जो यम के दूत समस्त प्राणियों के लिए महान् भयकर हुआ करते हैं उन्हें भी एकादशी के नाम मात्र से भयभीत हो जाना पड़ता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जितने भी अन्य व्रतोपवास हैं उन सब में एकादशी व्रत सबसे श्रेष्ठ व्रत होता है और एकादशी तिथि परम शुभ तिथि मानी गयी है ॥२-३॥ एकादशी तिथि के दिन सविधि एवं पूर्ण नियमों से युक्त होकर उसका उपवास करे और रात्रि में जागरण करे तथा भगवान् विष्णु का बहुत ही भली भाँति मण्डन करना चाहिए। जो मनुष्य तुलसी के दलों से उस दिन श्री हरि का अर्चन किया करता है उस देव-यजन का अत्यधिक महत्व होता है ॥४॥ हे द्विज ! शास्त्रकारों ने ऐसा बतलाया है कि एक ही दल से पूजन करने का करोड़ यज्ञ करने के समान फल होता है। जो नारी गमन करने के योग्य नहीं है उसका गमन करने में जो महान् पाप बतलाया गया है वह महा पातक भी एकादशी तिथि में उपवास करने से विलीन हो जाया करता है। हे द्विज ! विष्णु का यह दिन कहलाता है उस दिन में जो भी कोई घृत से पूर्ण एक दीपक को विष्णु की सेवा में समर्पित किया करता है उसका इतना अधिक महत्व होता है कि वह पुरुष अपने प्रवृद्ध तेज से सम्पूर्ण तम का हनन करके अन्त में श्री विष्णु के पुर का निवास प्राप्त किया करता है। वे जागृत परम धन्य हैं और वहाँ का महीपति भी महान् भाग्य शाली है जिसके राज्य में श्री हरि के दिन में एकादशी तिथि का महान उत्सव सम्पन्न हुआ करता है। नारायण के शयन में अर्थात् देवशयनी एकादशी के दिन में और पार्श्व परिवर्तन के दिन में एक विशेष करके देव प्रबोधिनी एकादशी के दिन

मे जो मनुष्य निराहार रह कर उपवास किया करते हैं उन मनुष्यो को यमराज कहते हैं कि हे दूतगण ! मेरे पास कभी भी मत लाना—ऐसा आदेश पितृपति यमराज अहर्निश अपने दूतो को दिया करते हैं। क्योंकि यह एकादशी तिथि तो जगत् के स्वामी प्रभु की परम वल्लभा होती है और पुण्यो के वर्धन करने वाली तिथि है ॥५-१०॥

विष्णुर्दह दहत्येव तस्यामन्नस्य भक्षणे ।
तेषा धिग्जीवन सम्पद्धिवसौन्दर्यं च वर्तनम् ॥११

येऽन्नमश्नन्ति पापिष्ठाश्चैकादश्या हि विड्भुज ।
एकादश्या द्विजश्रेष्ठ ! भुक्तिमाश्रित्य केवलम् ॥१२

बहूनि विविधान्येव तिष्ठन्ति दुरितानि च ।
दर्शकाले यथा स्त्रीणा सङ्गमे कलुष महत् ॥१३
एकादश्या तथैवान्नभक्षणे वृजिन भवेत् ।
रोगिणश्च तथा खञ्जकाससोदरकुष्ठका ॥१४

यदि कोई भी मनुष्य एकादशी तिथि के दिन अन्न का भक्षण किया करता है तो भगवान् विष्णु उसके देह का दहन किया करते हैं । ऐसे अन्न खाने वालो का जीवन धिक्कार युक्त है। उनके सौन्दर्य को भी धिक्कार है तथा उनके सम्पूर्ण व्यवहार धिक्कृत होते हैं ॥११॥ जो एकादशी तिथि के उपवास वाले दिन मे अन्न का भक्षण किया करते हैं वे महान् पापिष्ठ होते हैं और विड् का ही अशन किया करते हैं। हे द्विजों म परमश्रेष्ठ ! एकादशी के दिन जो भुक्ति का केवल आश्रय ग्रहण करते हैं उनको बहुत प्रकार के दुरित हुआ करते हैं जिस तरह दर्श काल म स्त्रियों के सगम करने मे महान् कलुष होता है वैसा ही महान पाप एकादशी के दिन अशन करने से हुआ करता है ॥१२-१३॥ एकादशी के दिन म अन्न के भक्षण का पूर्णतया निषेध शास्त्रो ने बतलाया है। उस दिन अन्न के भक्षण स महान् पाप होता है। उसदिन अन्न खाने से रोग—खञ्ज—काम—उदररोग और कुष्ठ रोगो वाले हो जाते हैं ॥१४॥

भवन्ति प्राणिनस्ते वै तस्यामन्नस्य भक्षणे ।
ग्रामसूकरतां यान्ति दरिद्रयं च प्रयान्ति वै ॥१५
राजबद्धा द्विजश्रेष्ठ ! तस्यमन्नस्य भक्षणे ।
संसारे यानि पापानि ताकि विप्र हरेर्दिने ॥१६
भुक्तिमाश्रित्य तिष्ठन्ति जलभक्षणमाशया ।
कुर्वता सर्वपापानि नरकान्निष्कृतिर्भवेत् ॥१७
न निष्कृतिर्भवेन्नृणां भुञ्जता च हरेर्दिने ।
नरा यावन्ति चान्नानि भुञ्जते च हरेर्दिने ॥१८
प्रत्यन्नं च ब्रह्महत्या कोटिज वृजिनं भवेत् ।
पुनर्वच्मि पुनर्वच्मि श्रूयता श्रूयता नराः ॥१९
न भोक्तव्य न भोक्तव्य न भोक्तव्यं हरेर्दिने ।
गङ्गाविषु च तीर्थेषु स्नात्वा यत्फलमाप्यते ॥२०

एकादशी तिथि के दिन अन्न के भक्षण करने से प्राणियों का अनेक रोगों की उत्पत्ति हो जाया करती है । ऐसे अन्न खाने वाले प्राणी ग्राम शूकर की योनि मे जन्म ग्रहण किया करते हैं और उनको दरिद्र जीवन भी बिताना पडता है ॥१५॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! एकादशी मे अन्न के भक्षण करने से राजा के द्वारा बद्ध हो जाया करते हैं । हे विप्र ! हरि के दिन मे अन्न के भक्षण करने से ससार मे जितने भी महा पातक हुआ करते हैं वे सभी उनको लगा करते हैं ॥१६॥ केवल जलमात्र की भुक्ति करके जो मनुष्य रहा करते हैं उनकी नरक से सब पापो को करते हुए निष्कृति हो जाया करती है ॥१७॥ जो भगवान् श्री हरि के दिन मे अर्थात् एकादशी के दिन भोजन किया करते हैं उनकी नरको से निष्कृति नहीं होती है । जितना भी अन्न हरि के दिन मे खाया करते हैं उतने ही दिन तक उनका नरक में निवास होता है॥१८॥ प्रत्येक अन्न के दाने से ब्रह्महत्या के करोड पाप उत्पन्न होने वाला महापाप उनको होता है । मैं इस तथ्य को पुनः पुनः बतलाता हूं । हे मनुष्यो ! इस को भली भाति आप लोग श्रवण कर लेवें और अच्छी तरह सुन लेवें ॥१९॥ हरि के दिन मे अर्थात् एकादशी तिथि के व्रतोपवास के दिन नहीं खाना

चाहिए—नहीं खाना चाहिए कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए। इसका वैसा ही पुण्य-फल होता है जोकि गंगा आदि तीर्थों में स्नान करने से हुआ करता है ॥२०॥

॥ भगवान् का नाम-माहात्म्य ॥

श्रीप्रदं विष्णुचरितं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
सर्वपापक्षयकरं दुष्टग्रहनिवारणम् ॥१
विष्णुसान्निध्यदं चैव चतुर्वर्गं फलप्रदम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या चान्ते याति हरेर्गृहम् ॥२
नामोच्चारणमाहात्म्यं श्रूयते महदद्भुतम् ।
यदुच्चारणमात्रेण नरो यायात्परंपदम् ॥३
तद्वदस्वाधुना सूत ! विधानं नाम कीर्तने ॥४
शृणु शौनक ! वक्ष्यामि संवादं मोक्षसाधनम् ।
नारदःपृष्टवान्पूर्वं कुमारं तद्वदामिते ॥५
एकदा यमुनातीरे निविष्टं शान्तमानसम् ।
सनत्कुमारं प्रपच्छ नारदो रचिताञ्जलिः ।
श्रुत्वा नानाविधान्धर्मान्धर्मव्यतिकरांस्तथा ॥६
योऽसौ भगवता प्रोक्तो धर्मव्यतिकरो नृणाम् ।
कथं तस्य विनाशःस्यादुच्यतां भगवत्प्रिय ! ॥७

श्रीशौनक मुनि ने कहा—भगवान् विष्णु का चरित श्री के प्रदान करने वाला है और सम्पूर्ण उपद्रवों के नाश करने वाला तथा समस्त पापों के क्षय को करने वाला एवं दुष्ट ग्रहों के निवारण करने वाला होता है ॥१॥ यह विष्णु का चरित भगवान् विष्णु के सान्निध्य को प्रदान करता है एवं चारों वर्गों का (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) फल प्रदायक होता है। जो कोई भी मनुष्य इसका श्रवण किया करता है और भक्ति की भावना से इसे सुनता है वह मनुष्य हरि के गृह को अन्त में प्राप्त किया करता है॥२॥हे भगवन् ! भगवान् के शुभ नामों के मुख से

उच्चारण का बहुत अधिक माहात्म्य सुना जाता है जिसका एक महान् अद्भुत फल होता है जिसके केवल मुख से उच्चारण करने ही से मनुष्य परम पद को प्राप्त हो जाया करता है ॥३॥ हे सूतजी ! अब आप कृपा करके भगवान् के शुभ नाम-कीर्तन के विषय में कुछ वर्णन कीजिए कि उसका क्या विधान है ॥४॥ सूतजी ने कहा—हे शौनक ! आप सुनिये, मैं मोक्ष के साधन करने वाला एक सम्वाद आप को बतलाता हूँ। पुराने समय में एक बार देवर्षि नारद जी ने कुमार से पूछा था। वही मैं इस समय मे आपको बतलाता हूँ ॥५॥ एक समय में यमुना के तट पर आसन जमाकर बैठे हुए और परम शान्त मन वाले सनत्कुमार जी से नारदजी ने अपने दोनों हाथों को जोड़कर बहुत ही विनम्र भाव से पूछा था। इसके पूर्व वे अनेक प्रकार के धर्मों के व्यतिकरों का श्रवण कर चुके थे ॥६॥ श्रीनारदजी ने कहा—आपने जो मनुष्यों के लिए धर्म का व्यतिकर वर्णन किया है हे भगवान् के परम प्रिय ! उसका विनाश किस प्रकार से होता है इसे अब आप अनुग्रह करके बताइये ॥७॥

शृणु नारद ! गोविन्दप्रिय ! गोविन्दधर्मवित् ! ।
यत्पृष्टं लोकनिर्मुक्तिकारण तमस:परम् ॥८
सर्वाचारविवर्जिता: शठधियो व्रात्या जगद्वञ्चका ।
दम्भाहङ्कृतिपानपैशुनपरा:पापाश्च ये निष्ठुरा: ॥९
ये चान्ये धनदारपुत्रनिरता: सर्वेऽधमास्तेऽपि हि ।
श्रीगोविन्दपदारविन्दशरणा: शुद्धा भवन्ति द्विज ! ॥१०
तमपि देवकर करुणाकर स्थविरजगममुक्तिकर परम् ।
अतिथरन्त्यपगाघपराजनाय इह तान्हरिनाम पुनातिहि ॥११
नामश्रय:कदाचित्स्यात्तरत्येव स नामत: ।
नाम्नो हि सर्व सुहृदो ह्यपराधात्पतत्यध: ॥१२
के तेऽपराधा विप्रेन्द्र ! नाम्नो भगवत: कृता: ।
विनिघ्नन्ति नृणा कृत्यं प्राकृतं ह्यानयन्ति च ॥१३

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे नारद ! तुम श्रवण करो। आप ही स्वयं सदा भगवान् श्रीगोविन्द के परम प्रिय भक्त हो और गोविन्द के

धर्म के पूर्ण ज्ञाता भी हो। आपने इस समय मे जो भी कुछ मुझमे पूछा है वह लोगो के निर्मुक्त होने के कारण से ही अन्धकार के नाश करने वाला ही प्रश्न किया है ॥८॥ हे द्विज ! जो मनुष्य सभी प्रकार के सदाचारो से रहित होते हैं और जिनकी बुद्धि मे शठता कूट-कूट कर भरी होती है तथा महान् शास्य एव जगत के वश्चक हुआ करते हैं। जिनमे दम्भ—अहकार—मदिरा पान—पिशुनता भरी होती हैं और अहर्निश इन्ही दुर्गुण—दोषो मे परायण रहा करते हैं। जो महान् घोर पापाचरण करने वाले एवं निर्दयी निष्ठुर हुआ करते हैं और दूसरे भी लोग जो रात दिन अपने ही धन—द्वारा और पुत्रादि मे निरत रहा करते हैं वे सभी महान् अधम पुरुष ही होते है। यदि ऐसे भी पुरुष गोविन्द के चरणो की शरण मे आजाते हैं तो परम विशुद्ध हो जाया करते है ॥६-१०॥ ऐसे भी घोर पापी को भगवान् श्री हरि का नाम पवित्र कर दिया करता है। परम अपराधो मे तत्पर रहने वाले लोग भी देव बना देने वाले—करुणा के आकर और स्थावर तथा जगम सब को मुक्ति देने वाले भगवान् के नाम का आश्रय ग्रहण करके उद्धार को प्राप्त होजाया करते हैं ॥११॥ भगवान् के शुभ नाम का आश्रय यदि किसी भी प्रकार से किसी भी समय मे हो जाता है तो वह केवल हरि नाम से ही तर जाया करता है। सबका कल्याण करने वाले नाम का यदि कोई अपराध किया करता है तो उसका अधः पतन हो जाता है ॥१२॥ श्रीनारद जी ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! कृपा कर सर्व प्रथम यही बतलाइये वे नामापराध कौन से होते हैं जो भगवान् के नाम के भी हुआ करते है और जिनका ऐसा प्रभाव होता है कि मनुष्यो के कृत्यों का निहनन हो जाता है और उन्हें एव प्राकृत जैसा बना दिया करते हैं ॥१३॥

सता निन्दा नाम्न. परममपराध बुधजना,
वद-त्येना कर्तुं न खलुमनुजः कोऽपि यतने ॥
शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणरामादि सकल,
धिया भिन्न पश्येत्स खलु हरिनामाहितकरः ॥१४

गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दन तथार्थवादो हरिनाम्निकल्प्यते।
नामापराधस्य हि पापबुद्धेर्न विद्यते तस्य यमैर्हिशुद्धिः ॥१५
धर्मव्रतत्यागहुतादि सर्वं शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः।
अश्रद्दधानोविमुखोऽप्यश्रृण्वन्यश्चोपदेशःशिवनामापराधः ॥१६
श्रुत्वाऽपि नाम माहात्म्य य प्रीतिरहितोऽधमः।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥१७
एवं नारद शङ्करेण कृपया मह्यं मुनीना परं,
प्रोक्तं नाम सुखावह भगवतो वर्ज्यं सदा यत्नतः।
ये ज्ञात्वाऽपि न वर्जयन्ति सहसा नाम्नाऽपराधान्दश,
क्रुद्धा मातरमप्यभोजनपराः खिद्यन्ति ते बालवत् ॥१८
अपराधविमुक्तो हि नाम्नि जप्ते सदाचर!।
नाम्नैव तव देवर्षे! सर्वसेत्स्यति नान्यतः ॥१९

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—हे बुधजनो! सब से प्रथम तो नामोच्चारण करने वाले पुरुष के द्वारा यही अपराध बतलाया गया है कि सत्पुरुषो की निन्दा करना महान् नाम का एक अपराध होता है। नाम लेने वाले भी पुरुष इसको किया करते हैं और कोई भी मनुष्य इसके त्याग करने का यत्न नही करता है। इसके करने से नाम का बड़ा भारी अपराध होता है। दूसरा अपराध यह है कि भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु के गुण नाम आदि सब मे भेद बुद्धि रख कर देखा करते है एव भगवान् के नामो मे भी भेदभाव रखते है। यह नाम का बड़ा अहित करने वाला अपराध होता है। इसका भी नाम लेने वाले पुरुष को त्याग दना चाहिए ॥१४॥ तीसरा अपराध अपने गुरु की किसी भी रूप मे अवज्ञा कर देना होता है। चौथा अपराध श्रुति एव शास्त्रो की निन्दा करना होता है। पाँचवाँ अपराध यही होता कि जो श्रीहरि के नाम का माहात्म्य बतलाया जाता है उसे अर्थवाद की कल्पना का समझना या कथन करना। जो पाप बुद्धि वाला मनुष्य होता है उसके द्वारा किए हुए नामापराध की शुद्धि यमराज के द्वारा भी नही होती है ॥१५॥ धर्म–व्रत–त्याग–होम आदि समस्त शुभ क्रियाओ की समता

भी प्रमाद ही होता है जो श्रद्धा नहीं रखने वाला एवं विमुख है वह भी यदि नहीं सुनता है तो यह शिव नाम का अपराध होता है ॥१६॥ नाम के माहात्म्य को सुन कर भी जो पुरुष प्रीति से रहित होता है वह महान् अधम पुरुष होता है। मैं और मेरा—इसी मे जो रातदिन भरा रहता है वह भी नाम मे अपराध करने वाला ही होता है ॥१७॥ हे नारद ! इसी प्रकार मे भगवान् शंकर ने मुनियो का भी परम यह नामापराध मुझको बतलाया था और महती कृपा की थी। नामापराध का त्याग भगवान को सुख प्रदान करने वाला है। अतएव इसे सदा यत्न से वर्जित कर ही देना चाहिए। जो जानकर भी इन दश नामापराधों को नहीं त्यागते हैं वे सर्वदा मात से भी क्रुद्ध होकर भोजन न करने वाले बालको की भाँति दुःखित रहा करते हैं ॥१८॥ इन अपराधो से विनिर्मुक्त होकर ही नाम का जाप करने पर हे देवर्षे ! केवल इस एकमात्र नाम से ही तुम्हारा सम्पूर्ण कल्याण हो जायगा। अतः इसी का सदा समाचरण करो ॥१९॥

सनत्कुमार ! प्रियसाहसाना विवेकवैराग्यविवर्जितानाम् ।
देहप्रियार्थात्मपरायणानामुक्तापराधाःप्रभवन्ति न.कथम् ॥२०
जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथञ्चन् ।
सदा सङ्कीर्तयन्नाम तदेकशणो भवेत् ॥२१
नामापराधयुक्ताना नामान्येव हरन्त्यघम् ।
अविश्रान्ति प्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि यत् ॥२२
नामंक यस्य चिह्नं स्मरणपथगत श्रोत्रमूल गतं वा ।
शुद्धं वाऽशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम् ॥२३
तच्चेद् हृद्रविणवनितालोभपाखण्डमध्ये ।
निक्षिप्तस्यान्नफलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ! ।
इद रहस्य परम पुरा नारद ! शङ्करात् ।
श्रुत सर्वाशुभहरमपराधनिवारकम् ॥२४
विदुर्विष्ण्वभिधान ये ह्यपराधपरानराः ।
तेषामपि भवेन्मुक्तिःपठनादेव नारद ! ॥२५

नाम्नो माहात्म्यमखिलं पुराणे परिगीयते।
ततः पुराणमखिलं श्रोतुमर्हसि मानद ! ॥२६
पुराणश्रवणे श्रद्धा यस्य स्याद् प्रातरन्वहम्।
तस्य साक्षात्प्रसन्न.स्याच्छिवो विष्णुश्च सानुगः ॥२७

श्री नारदजी ने कहा—हे सनत्कुमार जी ! जिन को साहस प्रिय है और जो विवेक तथा वैराग्य से भी रहित हैं, जिनको अपना ही देह, अर्थ और सब कुछ प्रिय होता है वे मुक्तापराध क्यों नहीं होते हैं ॥२०॥ सनत्कुमार जी ने कहा—किसी भी प्रकार से प्रमाद वश नाम का अपराध हो जाने पर उससे छुटकारा पाने के लिए सदा नाम का संकीर्तन करते हुए एक बार ही शरण करने वाला होना चाहिए ॥२१॥ जो पुरुष नामापराध किया करते हैं उनके इस अघ का विनाश भी नाम के द्वारा ही होता है। निरन्तर बिना क्षणमात्र को भी विश्राम लिये नामोच्चारण करते रहने से ही वे ही भगवान् के शुभ नाम लाभदायक हुआ करते हैं ॥२२॥ केवल एक ही भगवान् का नाम जिसका चिह्न स्मृति के मार्ग मे प्राप्त होगया हो अथवा श्रोत्रों के मेल मे पड जावे, चाहे वह शुद्ध हो या अशुद्ध ही हो अर्थात् जिसके वर्णों मे पूर्ण शुद्धि न हो किन्तु व्यवधान से रहित हो वह सत्य रूप मे तार दिया करता है ॥२३॥ हे विप्र ! उस भगवान् के शुभ नाम का ऐसा महान् महत्व है कि वह देह द्रविण–वनिता-लोभ और पाखण्ड के मध्य मे भी लिया जाता है तो महा शीघ्र ही फल प्रदान करने वाला होता है। हे नारद ! यह परम रहस्य पहिले मैंने भगवान् शंकर से श्रवण किया था। यह परम रहस्य समस्त अशुभों का हरण करने वाला तथा अपराधों का निवारण करने वाला है ॥२४॥ जो केवल भगवान् विष्णु के ही नाम मे तत्पर होते हैं वे भी अपराध परायण मनुष्य हुआ करते हैं। हे नारद ! उन पुरुषों की भी पठन करने ही से मुक्ति होजाती है ॥२५॥ भगवान् के नामों का पूर्ण माहात्म्य पुराणों मे गाया जाता है। अतएव पुराणों मे सभी का श्रवण करना ही चाहिए ॥२६॥ हे भ्रात ! जिसकी पुराण के श्रवण करने मे श्रद्धा होती है और प्रतिदिन जो

श्रवण किया करता है उस व्यक्ति पर भगवान् शिव तथा विष्णु अपने अनुगों के सहित पूर्ण प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२७॥

यत्स्नात्वा पुष्करेतीर्थे यागे सिन्धुसङ्गमे ।
तत्फलद्विगुण तस्य श्रद्धया वै शृणोति यः ॥२८
ये पठन्ति पुराणानि शृण्वन्ति च समाहिता. ।
प्रत्यक्षरं लभन्त्येते कपिलादानजफलम् ॥२९
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
विद्यार्थी लभते विद्या मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥३०
ये शृण्वन्ति पुराणानि कोटिजन्मार्जित खलु ।
पापजालं तु ते हित्वा गच्छन्ति हरिमन्दिरम् ॥३१
पुराणवाचक विप्रं पूजयेद्भक्तिभावन: ।
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च गन्धपुष्पादिभिर्मुने ॥३२
दद्याद्यो पुस्तक भक्त्या स गच्छेद्धरिमन्दिरम् ।
कुर्वन्ति विधिनाऽनेन सम्पूर्ण पुस्तक च ये ॥३३
तेषा नामानि लिम्पेत चित्रगुप्तोऽन्तनाद् द्विज ॥३४

जो पुष्कर तीर्थ मे स्नान करके, प्रयाग तथा सिन्धुओ के सगम मे स्नान करके पुण्य-फल प्राप्त होता है उस पुण्य-फल से भी दुगुना पुण्य-फल उसे प्राप्त होता है जो श्रद्धा एव भक्ति भाव से इसका श्रवण किया करता है ॥२८॥ जो मनुष्य पुराणो का पाठ किया करते हैं अथवा अत्यन्त समाहित होकर पुराणो का श्रवण किया करते हैं उनको प्रत्येक अक्षर में पठन एव श्रवण मे एक-एक कपिला गौ के दान से समुत्पन्न होने वाला पुण्य-फल हुआ करता है ॥२९॥ जिसके पुत्र नही होता है वह पुत्र की प्राप्ति किया करता है और धन की इच्छा वाला पुरुष धन का लाभ प्राप्त करता है। विद्या का अभिलाषी विद्या पाता है और जो सासारिक जन्म-मरण रूपी आगमन से छुटकारा प्राप्त करने की लालसा वाला अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥३०॥ जो मनुष्य पुराणो का श्रवण किया करते हैं वे करोडो जन्मो में सञ्चित किया हुआ पाप निश्चय ही त्याग करके हरि के मन्दिर मे गमन किया करते

हैं ।।३१।। जो पुराणों का वाँचने वाला ब्राह्मण हो उसका पूजन बहुत ही भक्ति की भावना से करना चाहिए । हे मुने ! उस ब्राह्मण को गौ-भूमि-सुवर्ण और वस्त्र तथा गन्धाक्षत पुष्पादि से भली भाँति पूजन करे ।।३२।। जो पुरुष पुराण की पुस्तक का दान किया करते हैं और भक्ति पूर्वक विद्वान ब्राह्मण को दिया करते हैं वे श्रीहरि का निवास लाभ करते हैं इसविधि विधान से जो सम्पूर्ण पुस्तकों का यजन-पठन-श्रवण तथा दान करते हैं उनके शुभ नामों को अर्चन से चित्र गुप्त लिपिबद्ध कर दिया करते हैं ।।३३-३४।।

।। प्रतिज्ञा पालन का महाफल ।।

श्रोतुमिच्छामि ते ब्रह्म ! कथयस्व समूलकम् ।
प्रतिज्ञापालने पुण्यं खण्डने किं च किल्विषम् ।।१
अनृते शपथे किं वा सत्ये किञ्चिद्भवेन्मुने ! ।
दक्षिणां किं करं दत्वा कृपां कृत्वा कृपार्णव ।।२
शृणुष्व मुनिशार्दूल ! कथयामि समूलतः ।
वैष्णवानां त्वमग्र्योऽसि सर्वलोकहितेरतः ।।३
धेनूनां तु शतं दत्वा यत्फलं लभते नरः ।
तस्मात्कोटिगुणं पुण्यं प्रतिज्ञा पालनेद्विज ।।४
प्रतिज्ञाखण्डनान्मूढो निरयं याति दारुणम् ।
शतमन्वन्तरं यावत्पच्यते नात्र संशयः ।
ततोऽस्य जन्म चासाद्य निर्धनस्य निकेतने ।।५
अन्नवस्त्रैर्विहीनःस्यात्क्लेशी चापि स्वकर्मणा ।।६
सत्येन शपथं कुर्याद्वाग्निगुरुसन्निधौ ।
तावद्दहति वै गात्रं विष्णोर्वंशो न लुप्यते ।।७
मिथ्यायां शपथे विप्र किमहं वच्मि साम्प्रतम् ।
शतमन्वन्तरं विप्र निरयं मिथ्यया किमु ।।८

शौनक मुनि ने कहा—हे ब्रह्म ! हम लोगों की अत्यन्त उत्कट इच्छा है मूल सहित श्रवण करने की, आप कृपा करके वर्णन करें की

बड़ा ही कल्याण होगा—की हुई प्रतिज्ञा वचनों के पालन करने में क्या पुण्य होता है और की हुई प्रतिज्ञा के खण्डन कर देने में क्या पाप हुआ करता है ? ॥१॥ हे मुने ! जो झूठी शपथ किया करते हैं तथा सत्य बात की शपथ लिया करते हैं—इनका क्या गुण-दोष होता है ? दक्षिण कर देकर क्या फल होता है—इसे आप कृपा कर बतलाइये । आप तो कृपा के परिपूर्ण सागर हैं ॥२॥ सूतजी ने कहा—हे मुनियों में शार्दूल सदृश ! मैं मूल सहित विषय का वर्णन करता हूँ आप श्रवण करिये । आप तो विष्णु के उपासक भक्तों में सर्व शिरोमणि वैष्णव हैं और आपको सदा समस्त लोगों के हित-सम्पादन करने में रति रहा करती है ॥३॥ सैकड़ों धेनुओं के दान करने से जो पुण्य-फल मनुष्य प्राप्त किया करता है उससे भी करोड़ों गुना अधिक पुण्य की हुई प्रतिज्ञा के पालन करने में हुआ करता है ॥४॥ जो मूढ़ अपनी प्रतिज्ञा का खण्डन कर देता है अर्थात् की हुई प्रतिज्ञा का पालन नहीं करके मुकुर जाया करता है वह परम दारुण नरक में जाया करता है और जब तक एक सौ मन्वन्तर अपना समय व्यतीत किया करते हैं उतने समय तक वह प्रतिज्ञा को तोड़ देने वाला पुरुष वहाँ पर ही नरक में पड़ा हुआ यातनाएं भोगा करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । इसके भी पश्चात् उसको जो जन्म प्राप्त होता है वह एक किसी निर्धन पुरुष के घर में ही हुआ करता है ॥५॥ वह सदा अन्न और वस्त्र से रहित ही रहा करता है और अपने ही कर्म्म के कारण क्लेशों से समन्वित रहता है ॥६॥ सत्यता पूर्वक भी जो किसी देवता-गुरु और अग्नि की सन्निधि में शपथ किया करता है उसका गात्र तब तक दग्ध हुआ करता है जब तक विष्णु का वश लुप्त नहीं होता है ॥७॥ हे विप्र ! मिथ्या जो शपथ लोग खा लिया करते हैं उसके दोष के विषय में इस समय मैं आपको क्या बतलाऊँ—शत मन्वन्तर तक मिथ्या शपथ लेने वाला मनुष्य नरक गामी रहा करता है—इससे अधिक क्या कहूँ ॥८॥

निर्माल्यं श्रीहरेःस्पृष्ट्वा सत्येन मुनिपुङ्गव ।
गृहीत्वा पुरुषान्सप्त पच्यते निरये चिरम् ॥९

कदाचिज्जन्म सम्प्राप्य कुष्ठी च प्रति जन्मनि ।
सत्येनैवं भवेद्विप्र अनृते वै किमुच्यते ।।१०
यो मर्त्यो दक्षिणं दत्वा करं तत्प्रतिपालयेत् ।
तस्य प्राप्तो भवेत्कृष्णःसत्यं सत्य वदाम्यहम् ।।११
करं दत्वा तु यो मर्त्यो वचनस्य च पालनम् ।
तावन्न कुर्यात्पितरः प्राप्नुवन्ति च यातनाम् ।।१२
स्वयं तु मुनिशार्दूल ! निरय याति दारुणम् ।
उद्धारं कोटिपुरुषैर्मृतो याति न संशयः ।।१३
कृष्णप्राप्ति पुरा कस्य करस्य प्रतिपालनात् ।
दक्षिणस्य मुने ब्रूहि श्रोतुमिच्छामि सादरात् ।।१४

हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! सत्य से हरि के निर्माल्य का स्पर्श करके जो शपथ लेता है वह पुरुष अपने सात पूर्व पुरुषों (पीढ़ियों) को भी साथ में लेकर नरक में जाया करता है और चिर काल तक वहाँ निवास करता है ।।६।। फिर कदाचित् उसे जन्म भी प्राप्त होता है तो प्रत्येक जन्म में वह कुष्ठी होता है । हे विप्र ! यह तो सत्य विषय पर सत्यता पूर्वक शपथ लेने पर ही कुफल मिला करता है । जो मिथ्या शपथ खाया करते हैं उनके विषय में तो कहा ही क्या जावे कि कितना कुफल उन्हें मिलता होगा ।।१०।। जो मनुष्य अपना दक्षिण कर देकर उसका प्रतिपालन किया करता है उसे कृष्ण ही प्राप्त हो गये समझो यह मैं सर्वथा सत्य ही बतला रहा हूँ ।।११।। जो मनुष्य कर देकर अपने वचन का प्रतिपालन नहीं करता है उसके पितर उस समय तक नारकीय यातनायें भोगा करते हैं ।।१२।। फिर स्वयं भी परम दारुण नरक में गमन किया करता है । उसका उद्धार करोड़ों पुरुषों के मृत होने पर भी नहीं हुआ करता है—इसमें संशय नहीं है।।१३।।शौनकजी ने कहा—पहिले कर के प्रतिपालन करने में किसको साक्षात् श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई है ? हे मुनिवर ! इस दक्षिण कर के पालन के विषय में आप वर्णन कीजिए । हमारी बड़ी ही अभिलाषा इसके श्रवण करने की उत्पन्न हो रही है । हम बड़े ही आदर के सहित इसे सुनना चाहते हैं ।।१४।।

पुरा किञ्चित्पुरे शूद्रो नाम्नाऽऽसीद्वीरविक्रम ।
बह्वाशी पृथुलाङ्गश्च बहुवक्ताऽतिसुन्दरः ॥१५-
धनवान्पुत्रवान्सभ्यो विद्वान्सर्वजनप्रियः ।
विप्राणामतिथीना च पूजक सर्वदैव तु ॥१६
पितृभक्तो द्विजश्रेष्ठ ! प्रतिज्ञापालकः सदा ।
वाचा गुरुजनाना च पालको हरिसेवकः ॥१७
एकदा सुन्दरो गेह श्वपचस्तस्य छद्मना ।
प्राप्तो धृत्वा ब्राह्मणस्य रूप वै तरुण सुधीः ॥१८
शृणु मे वचन धीर ! मम जाया मृता शुभा ।
किं करोमि क्व गच्छामि कथयाद्यानुकम्पया ॥१९
विवाह योजन कुर्याद्ब्राह्मणस्य विशेषतः ।
किमुदानै कि च तीर्थै.कि यज्ञै र्व्रतकोटिभिः ॥२०
इति श्रुत्वा रवसौ विप्र चोक्तवान्वीरविक्रम ।
शृणु मे वचन ब्रह्मन्बालाऽस्तिममकन्यका ॥२१

सूतजी ने कहा—बहुत पहिले प्राचीन समय मे किञ्चित्पुर मे एक शूद्र नाम वाला वीर विक्रम हुआ था। वह बहुत अशन करने वाला—पृथुल अङ्गो वाला अत्यधिक बोलने वाला और परम सुन्दर था ॥१५॥ वह धन से भी सम्पन्न था तथा पुत्र वाला था और अत्यन्त सभ्य, विद्वान् एव सर्वजन प्रिय था। वह विप्रो का और अतिथियो का सर्वदा यजनार्चन करने वाला था ॥१६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! वह परम पितृ भक्त था और सदा ही अपनी की हुई प्रतिज्ञा का परिपालन करने वाला था। वह अपने गुरुजनों का पूर्णतया पालन करने वाला था एव हरि की सेवा मे परायण रहने वाला था ॥१७॥ एक बार ऐसा हुआ था कि एक परम सुन्दर श्वपच जो कि तरुण और सुधी भी था छद्म से ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उसके समीप मे प्राप्त हो गया था ॥१८॥ ब्राह्मण वेषधारी वह श्वपच बोला—हे धीर ! मेरे द्वारा कथित वचनो का आप श्रवण कीजिये। मेरी जाया(पत्नी)बहुत अच्छी थी किन्तु अब वह मृत्युगत

हो गई है । अब मैं एकाकी रह गया हूँ । आप ही कृपा करके इस समय मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ? ।।१९।। जो पुरुष किसी ब्राह्मण का विवाह कर देता है तो विशेष रूप से अन्य दान-तीर्थ-यज्ञ और करोड़ों व्रतोपवासों के करने की क्या आवश्यकता है ।।२०।। यह सुन कर यह वीर विक्रम उस ब्राह्मण से बोला—हे ब्रह्मन् ! आप मेरे वचनों को सुनिये, मेरी एक बाला कन्या है ।।२१।।

यदीच्छा ते भवेद्विप्र ! दास्यामि विधिपूर्वकम् ।
नय मे दक्षिण हस्त दास्यामि चान्यथा न हि ।।२२
तस्यैतद्वचन श्रुत्वा जग्राह दक्षिणकरम् ।
श्वपचो हर्षयुक्तो वै प्रोवाच वचन त्विति ।।२३
कृत्वा शुभक्षण मह्य देहि कन्या शुभान्विताम् ।
विलम्बे बहुविघ्न स्यादिति शास्त्रेषु निश्चितम् ।।२४
तुभ्य श्वःकन्यका ब्रह्मन्दास्यामि नास्ति चान्यथा ।
दक्षिण च कर दत्वा न कुर्यात्पुरुषाधमः ।।२५
ब्राह्मण कृष्णशर्माण चाहूयाकथयन्मुने ! ।
पुरोहितमिद सर्व प्रोवाच सविद द्विज ! ।।२६
कथ विप्रायते कन्या शूद्राय दातुमिच्छसि ।
अज्ञाताया कुलीनाय न दद्स्व विशेषत. ।।२७
ऊचुस्तज्ज्ञातय.सर्वे जनकाद्यास्तपोधन ।
अस्माक वचन तात शृणुष्व वीरविक्रम ! ।।२८

हे विप्र ! यदि आपकी इच्छा हो तो मैं आपकी सेवा में उस कन्या को विधि पूर्वक समर्पित कर दूंगा । यह आप मेरा दक्षिण कर ग्रहण कीजिए—मैं अपनी कन्या को आपको दूंगा—इसमें अन्यथा नहीं होगा ।।२२।। उस वीर विक्रम से यह वचन श्रवण कर उसका दक्षिण कर उसने ग्रहण कर लिया था । श्वपच परम हर्ष से युक्त होगया था और फिर वह यह वचन बोला—ब्राह्मण वेषधारी श्वपच ने कहा—आप कोई परम शुभ क्षण अर्थात् मुहूर्त निश्चित करके अपनी शुभ लक्षण कन्या का दान कीजिएगा । अब अधिक विलम्ब न करिये क्योंकि देरी करने में तो बहुत

से विघ्न हो सकते हैं—ऐसा ही शास्त्रों में भी निश्चय किया गया कि शुभ कार्य बहुत विघ्न युक्त ही हुआ करते हैं ॥२३-२४॥ वीर विक्रम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं अपनी कन्या को कल दान करूंगा और आपकी सेवा मे उसे समर्पित कर दूंगा इसमें कुछ भी अन्यथा वचन नही हो सकते हैं। दक्षिण कर को देकर जो नही किया करते हैं वे तो महान् पुरुष ही होते है ॥ २५ ॥ सूतजी ने कहा—हे मुने ! कृष्ण शर्मा नामक ब्राह्मण को बुलाकर उसने कहा—हे मुने ! भली भाँति ज्ञाता अपने पुरोहित से यह सब कह दिया था ॥२६॥ विप्र के रूपधारी शूद्र के लिये आप यह अपनी कन्या कैसे देना चाहते हैं। जिसके कुल का ज्ञान नहीं है विशेष रूप से ऐसे को कभी भी न दीजिए ॥२७॥ हे तपोधन ! उसकी ज्ञाति के सभी लोगो ने और जनक आदि ने उससे कहा था कि हे तात ! हे वीर विक्रम ! आप हमारे वचन भी तो सुनिये ॥२८॥

न ज्ञायते कुलं यस्य देशशीलधनं तथा ।
शीलवयस्तस्य कन्या स्वजनैर्न च दीयते ॥२९

स उवाच द्विजश्रेष्ठ दत्त मे दक्षिणं करम् ।
कदाचिदन्यथा कर्तुं न शक्नोमि च सर्वथा ॥३०

इत्युक्त्वा तान्स विप्राय कन्यां दातं प्रचक्रमे ।
दृष्ट्वेति ज्ञातय.सर्वे विस्मयमद्भुतंययुः ॥३१

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शङ्खचक्रगदाधरः ।
आविर्बभूव सहसा चारुह्य गरुड मुने ! ॥३२

धन्यं ते च कुलं धर्मो धन्यस्ते जननी पिता ।
धन्यं ते वचनं सत्यं धन्य तेदक्षिणकरम् ॥३३

धन्यं कर्म च ते जन्म त्रैलोक्ये नैव विद्यते ।
एवं ते कर्मणा साधो चोद्धार कुरुपे कुलम् ॥३४

एवं ब्रुवति श्रीकृष्णे विमान स्वर्णनिर्मितम् ।
आगत हि गणैर्युक्तं सर्वस गरुडध्वजम् ॥३५

जिस पुरुष के कुल का ज्ञान नही होता है और जिसके देश-गोत्र और धन-सम्पत्ति का भी कुछ ज्ञान नही होता है। जिसके शील-स्वभाव अवस्था आदि का पूर्ण ज्ञान नही होता है उस पुरुष को स्वजनो के द्वारा अपनी कन्या को कदापि नही दी जाया करती है ॥२६॥ उसने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने अपना दक्षिण कर दे दिया है। अब मैं उसको किसी भी प्रकार से अन्यथा नही कर सकता हूँ ॥३०॥ इतना कह कर उसने उस विप्र के लिए अपनी कन्या का दान करने का उपक्रम किया था। इस घटना को देख कर सभी ज्ञाति के लोग एक परम विचित्र विस्मय को प्राप्त होगये थे ॥३१॥ उसके सत्य वचन का श्रवण कर शख, चक्र और गदा के धारण करने वाले भगवान् हे मुने ! तुरन्त ही गरुड पर समारूढ होकर वहा पर प्रकट होगये थे ॥३२॥ श्री भगवान् ने कहा—हे वीर विक्रम ! तेरे धर्म के विषय मे क्या कहा जावे, यह तेरा धर्म-कुल परम धन्य हैं और तेरे माता पिता भी बहुत ही भाग्यशाली हैं। तेरा वचन परम सत्य है और तूने जो अपना दक्षिण कर दिया था वह भी अत्यन्त ही धन्य है ॥३३॥ हे राजन् ! तेरा कर्म और तेरा जन्म परम धन्य है। इसकी समता रखने वाला त्रिभुवन मे भी कोई नही है। हे साधो ! इस प्रकार से आपने अपने इस कर्म के द्वारा अपने पूरे कुल का उद्धार कर दिया है ॥३४॥ सूतजी ने कहा--इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण उससे कह ही रहे थे कि एक सुवर्ण का बना हुआ विमान वहा पर आगया था जोकि गणो से युक्त था और सभी जगह पर गरुड की ध्वजाऐ उसमे लग रही थीं ॥३५॥

सर्वं तस्य कुल ब्रह्मन्स श्वपाकपुरोहितम् ।
रथे चारोपयामास शङ्खपद्मधर स्वयम् ॥३६
गृहीत्वा तान्हरि सर्वान्गतो वैकुण्ठमन्दिरम् ।
तत्र तस्थुश्चिर ते च कृत्वा भोग सुदुर्लभम् ॥३७
वचन लङ्घयेद्यस्तु यस्तु वा दक्षिणकरम् ।
सकुलो निरय याति सत्य सत्य वदाम्यहम् ..

तस्यान्न तु जलं ब्रह्मन्नग्राह्यं पितृदैवतैः ।
त्यक्त्वा धर्मो गृहं तस्य भीत्या याति द्विजोत्तम ॥३९
दत्त्वाऽऽशां यो जनः कुर्यान्निराश्यं चैव मूढधीः ।
स स्वकान्कोटिपुरुषान्गृहीत्वा नरकं व्रजेत् ॥४०
वचनं लङ्घयेद्यस्तु धर्मस्तस्य विलुप्यते ।
नृपाग्नितस्करैर्विप्र सत्यं सत्यं सुनिश्चितम् ॥४१
स्वर्गोत्तरमिमं सम्यक् श्रुत्वा स्वर्गोत्तरं व्रजेत् ।
जीवन्मुक्तस्त्विह ग्रामश्च कल्याणं धाम चोत्तमम् ॥४२

करोड़ों कुल के पूर्व पुरुषों को लेजाकर नरक मे डाल दिया करता है तथा स्वयं भी नरकगामी हो जाता है ॥४०॥ जो अपने मुख से कहे हुए वचनों का उल्लंघन करता है उसका सम्पूर्ण धर्म लुप्त हो जाया करता है। उसके धर्म को नृप-अग्नि और तस्करों के द्वारा लुप्त किया जाता है। हे विप्र ! यह सर्वथा सत्य-सत्य एवं परम सुनिश्चित मैं बतला रहा हूं। इसमें लेश मात्र भी अत्युक्ति एवं मिथ्या नहीं है ॥४१॥ इस सम्वाद का श्रवण करना भी स्वर्ग से भी उत्तर है। इसका श्रवण करके मनुष्य स्वर्ग से भी उत्तर अर्थात् उत्तम पद की प्राप्ति किया करता है। इस लोक में वह जीवित रहते हुए भी एक मुक्त पुरुष की भांति रहा करता है और परलोक मे भगवान् श्रीकृष्ण के नाम वाला जो परम उत्तम धाम है उसको प्राप्त किया करता है ॥४२॥

॥ ब्रह्मवध के कारण राम का पश्चात्ताप ॥

अहो मे पश्यताज्ञानं विमूढस्य दुरात्मनः ।
यद्ब्राह्मणकुले रुष्ठं हतवान्कामलोलुपः ॥१
महिलार्थे त्वहं विप्र वेदशास्त्रविवेकवान् ।
हतवान्वाडवकुलं बुद्धिहीनोऽतिदुर्मतिः ॥२
इक्ष्वाकूणां कुले जातु ब्राह्मणो न दुरुक्तिभाक् ।
ईदृशं कुर्वता कर्म मयैतत्सुकलङ्कितम् ॥३
ये ब्राह्मणास्तु पूजार्हा दानसम्मानभोजनैः ।
ते मया निहता विप्राःशरसङ्घातसंहितैः ॥४
कांल्लोकान्नु गमिष्यामि कुम्भीपाकोऽपि दुःसहः ।
ना तादृशं तीर्थमस्ति यन्मां पावयितुं क्षमम् ॥५
न यज्ञो न तपो दानं न वा चैव व्रतादिकम् ।
यत्तु वै ब्राह्मणद्रोग्धुर्मम पावनताकरम् ॥६
यैःकोपितं ब्रह्मकुलं नरैर्निरयगामिभिः ।
ते नरा बहुशो दुःखं भोक्ष्यन्ति निरयं गताः ॥७

अवतार लेकर लोक के उद्धार के लिए प्रकट हुए हैं॥१२॥सुरापान करने वाला ब्राह्मण की हत्या करने वाला–सुवर्ण की चोरी करने वाला और महान् अघों के करने वाला पुरुष भी सभी आपके नाम के कीर्तन करने से शीघ्र ही पवित्र हो जाया करते है । आपके नाम के बाद का ऐसा महान् प्रभाव होता है,यह देवी महाराज जनक की आत्मजा है,हे महती मति वाले ! यह ही महाविद्या है । इसके स्मरण मात्र से ही महापापी मानव मुक्त होकर सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं । इस देवी के स्मरण का ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है ॥१३-१४॥

रावणोऽपि न वै दैत्यो वैकुण्ठे तव सेवक ।
ऋषीणां शापतोऽवाप्तो दैत्यत्व दनुजान्तकः ॥१५
तस्याऽनुग्रहकर्ता त्व न तु हन्ता द्विजन्मन ।
एव सञ्चिन्त्य मा भूयो निज शोचितुमर्हसि ॥१६
इति श्रुत्वा ततो वाक्य राम परपुरञ्जय. ।
उवाच मधुर वाक्य गद्‌गदस्वरभाषितम् ॥१७
पातक द्विविध प्रोक्त ज्ञाताज्ञातविभेदत ।
ज्ञात यद्बुद्धिपूर्वं हि अज्ञात तद्विवर्जितम् ॥१८
बुद्धिपूर्वं कृत कर्म भोगेनैव विनश्यति ।
नश्येदनुशयादन्यदिद शास्त्रविनिश्चितम् ॥१९
कुर्वतो बुद्धिपूर्वं मे ब्रह्महत्या सुनिन्दिताम् ।
न मे दु.खापनोदाय साधुवादः सुसमत. ॥२०
ब्रूत हि तादृश मह्य तादृश पापदाहकम् ।
व्रत दान मख किञ्चित्तीर्थमाराधन महत् ॥२१
येन मे विमलाकीर्तिर्लोकान्वै पावयिष्यति ।
पापाचाराप्तमालुप्यान्ब्रह्महत्याहतप्रभान् ॥२२

लंकाधिपति रावण भी दैत्य नहीं था प्रत्युत वह तो वैकुण्ठ मे आप का ही पार्षद सेवक था । सनकादि महर्षियों के शाप से ही वह दनु-जान्तक दैत्यत्व को प्राप्त हो गया था ॥१५॥ आपने तो उसके ऊपर शाप मोचन के लिए अनुग्रह ही किया था, हनन नहीं किया था । विना

ऐसा किए उसके शाप से मुक्ति कैसे हो सकती थी। आपने किसी द्विजन्मा की हत्या नहीं की है। इस प्रकार से आप सब विचार करके फिर अब आगे नित्य शोच करने के योग्य आप नहीं होते हैं ।।१६।। इस अगस्त्य महर्षि के वचन को सुनकर शत्रुओं के पुरों को जीतने वाले श्रीराम ने गद्गद् स्वर से समन्वित मधुर वाक्य कहा—श्रीराम ने कहा—हे मुने ! पातक भी दो प्रकार का होता है—एक ज्ञात पातक होता है जिसको जान बूझकर भी किया जाता है। दूसरा अज्ञात पातक होता है जिसका कोई ज्ञान नहीं होता है और अज्ञान दशा में वह बन जाया करता है। बुद्धि पूर्वक पातक ज्ञात और उससे विवर्जित अज्ञात होता है ।।१७-१८।। जो कर्म बुद्धि पूर्वक किया जाता है वह तो भोग से ही विनष्ट होता है जो अन्य अज्ञान पातक होता है वह पश्चात्ताप करने ही से नष्ट हो जाया करता है—ऐसा शास्त्र का निर्णय है ।।१९।। मैंने तो यह सुनिन्दित ब्रह्म हत्या बुद्धि पूर्वक ही की है सो यह सुसम्मत साधु वाद मेरे दुःख का अपनयन करने वाला नहीं हो सकता है ।।२०।। हे मुनिवर ! मुझे तो अब आप कोई उसी प्रकार का उपाय बताइये जोकि मेरे इस किये हुए पाप को दग्ध कर देने वाला हो चाहे वह उपाय कोई किसी प्रकार का व्रत हो दान, मख या कोई महान् तीर्थों का समाराधन हो। इनमें कोई भी हो। जो पाप का उन्मूलन कर सके वही आप बोलिये ।।२१।। जिसके करने से मेरी विमल कीर्ति हो और वह लोकों को पवित्र करे। पापों के आचरण करने से कालुष्य के भागी होते हैं और ब्रह्म हत्या से प्रभाहीन हो जाया करते हैं ।।२२।।

इत्युक्तवन्तं तं रामं जगाद स तपोनिधिः ।
सुरासुरनमन्मौलिमणिनीराजिताङ्घ्रिकम् ।।२३
शृणु राम ! महावीर ! लोकानुग्रहकारक ! ।
विप्रहत्यापनोदाय तव यद्वचनं ब्रुवे ।।२४
सर्वं स पापं तरति योऽश्वमेधं यजेत वै ।
तस्मात्त्वं यज विश्वात्मन्वाजिमेधेन शोभिना ।।२५

सप्ततन्तुर्महीभर्त्रा त्वया साध्यो मनीषिणा ।
महासमृद्धियुक्तेन महाबलसुशालिना ॥२६
स वाजिमेधो विप्राणां हत्यायाः पापनोदनः ।
कृतवान्यमहाराजो दिलीपस्तव पूर्वजः ॥२७
शतक्रतुः शतं कृत्वा क्रतूनां पुरुषर्षभ ।
पदमापामरावत्यां देवदैत्यसुसेवितम् ॥२८

भगवान् शेष जी ने कहा—इस तरह से कहने वाले भगवान् श्री रामचन्द्रजी से उन तप की निधि अगस्त्य मुनि ने कहा था जो श्रीराम स्वयं ऐसे थे कि सभी सुर और असुर जिस समय में उनके चरणों में अपना मस्तक रक्खा करते थे तो उनके शिर में जो भूषण धारण किया हुआ होता था उसकी मणियों की प्रभा से चरणों की आरती सी हुआ करती थी। मुनिवर ने कहा- हे श्रीराम ! आप श्रवण करिये। आप महान् वीर हैं और समस्त लोकों पर परम अनुग्रह करने वाले हैं। ब्रह्महत्या के अपनोद करने के लिए मैं आपको यही वचन बोलता हूँ ॥२३-२४॥ यह मनुष्य अपने सभी पापों का हरन कर दिया करता है जो अश्वमेध यज्ञ का यजन किया करता है। हे विश्वात्मन् ! इस लिए आप भी परम शोभा समन्वित वाजिमेध का यजन करिए ॥२५॥ आप महान् समृद्धि से युक्त और महान् बल से शोभा वाले हैं, परम मनीषी स्वामी आपको यह सप्ततन्तु मही साधने के योग्य है ॥२६॥ यह वाजिमेध यज्ञ ऐसा ही होता है कि इससे विप्रों की हत्या से होने वाले पापों का अपनोद हो जाया करता है। आपके ही पूर्व पुरुष महाराज दिलीप ने इस अश्वमेध यज्ञ को किया था। शतक्रतु अर्थात् इन्द्र ऐसे ही एक सौ अश्वमेध करके ही अमरावती में महेन्द्रासन के पद पर प्राप्त हुआ था। जो भी श्रेष्ठ पुरुष सौ अश्वमेध याग समाप्त कर लेता है वह ही इन्द्रासन पर पहुँच सकता है यह इन्द्रासन ऐसा महान् पद है जिसका सेवन सभी देव और दैत्य किया करते हैं ॥२७-२८॥

मनुश्च सगरो राजा मरुत्तो नहुषात्मजः ।
एते ते पूर्वजा सर्वे यज्ञं कृत्वा पदं गताः ॥२९

तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र ! समर्थोऽसि समन्ततः ।
भ्रातरो लोकपालाभा वर्तन्ते तव भावुकाः ॥३०
इत्युक्तमाकर्ण्य मुने स भाग्यवान्रघूत्तमो ब्राह्मणघातभीतः ।
पप्रच्छ यागे सुमतिं चिकीर्षन्विधिं पुराविस्परिगीयमानः ॥३१

प्राचीन काल में महाराज मनु—महाराज सगर—राजा मरुत और नहुष का पुत्र ये सभी आपके ही पूर्वज हुए हैं। इन सभी ने अश्वमेध यज्ञ करके ही पद की प्राप्ति की थी ॥२६॥ हे राजेन्द्र ! इसीलिए आप भी इस यज्ञ को करें। आप तो सभी प्रकार से शक्तिशाली हैं। आपके सभी भाई परम शक्ति सम्पन्न और लोकपालों के समान आभा वाले हैं और वे सभी आपके आदेश पालक परम भक्त हैं ॥३०॥ *अगस्त्य मुनि* के द्वारा इस प्रकार से कथित वचन का श्रवण करके वह भाग्य वाले रघूत्तम श्रीरामचन्द्र जो ब्राह्मणों के घात से भयभीत हो रहे थे अश्वमेध यज्ञ के करने की इच्छा रखते हुए उन्होंने पुरा वेत्ताओं के द्वारा बताई हुई जो इस यज्ञ की विधि थी उसे विद्वानों से पूछा था कि यह यज्ञ कब, किस तरह, कहाँ किया जाना चाहिए ॥३१॥

॥ राम की आज्ञा से शत्रुघ्न का गमन ॥

एवमाज्ञाप्य भगवान्रामश्चामित्रकर्षणः ।
वीरानालोकयन्भूयो जगाद शुभया गिरा ॥१
शत्रुघ्नस्य मम भ्रातुर्वाजिरक्षाकरस्य वै ।
को गन्ता पृष्ठतो रक्षंस्तन्निदेशप्रपालकः ॥२
यः सर्ववीरान्प्रतियुध्यमागतान्विनिर्जयेन्मर्ममिदस्त्रसङ्घैः ।
गृह्णात्वसौ सेवरवीटकतद् भूमौ यशःस्वप्रथयन्सुविस्तरम् ॥३
इत्युक्तवति रामे तु पुष्कलो भरतात्मजः ।
जग्राह वीटकं तस्माद्रघुराजकराम्बुजात् ॥४
स्वामिन्गच्छामि शत्रुघ्नं पृष्ठरक्षाकरोऽन्वहम् ।
सन्नद्धः सर्वशस्त्रास्त्रचापधारणधरःप्रभो ! ॥५

सर्वमद्य क्षितितलं त्वत्प्रतापो विजेष्यते ।
एतेनिमित्तभूता वै रामचन्द्र ! महामते ! ।।६
भवत्कृपातःसकलं ससुरासुरमानुषम् ।।
उपस्थितं प्रयुद्धाय तन्निषेधे क्षमो ह्यहम् ।।७
सर्वं स्वामी ज्ञास्यति यन्मम विक्रमदर्शनात् ।
एषगन्ताऽस्मि शत्रुघ्नपृष्ठरक्षाप्रकारकः ।।८

भगवान् शेष ने कहा—अमित्रकर्षी श्रीराम भगवान् ने इस प्रकार से आज्ञा प्रदान करके वीरों को देखते हुए उन्होंने पुनः अपनी शुभ वाणी से कहा था—मेरा भाई शत्रुघ्न इस यज्ञ के अश्व की रक्षा करने वाला है। अब इसके पीछे इसकी रक्षा करते हुए इसकी आज्ञा का पालन करने वाला कौन जायगा ? ।।१-२।। यों तो आप लोग सभी वीर हैं परन्तु मैं यह चाहता हूँ कि ऐसा वीर जाना चाहिए जो मुकाबिले पर आये हुए समस्त शत्रु वीरों को मर्म भेदी अस्त्रों के संघातों के द्वारा जीत लेवे अर्थात् सबको परास्त कर विजय प्राप्त करे जो भी ऐसा वीर तयार हो वही मेरे इस करवीटक को ग्रहण करे और इस भूमण्डल में सुविस्तृत यश को फैला देवे ।।३।। भगवान् श्रीराम के ऐसा कहने पर भाई भरत के पुत्र पुष्कल ने श्रीरघुराज राम के कर कमल से वह वीटक ग्रहण कर लिया था। किसी भी महान् उत्तर दायित्व पूर्ण कार्य करने के लिये जो भी प्रस्तुत होता था वही 'पान का बीड़ा' ग्रहण किया करता था—प्राचीन समय में ऐसी प्रथा थी कि इस तरह का बीड़ा रक्खा जाया करता था। पुष्कल ने श्रीराम के हस्त से वह वीटक लेकर फिर उनसे प्रार्थना की थी कि हे स्वामि ! मैं शत्रुघ्नजी के पीछे रक्षा करने वाला होकर जाता हूँ। हे प्रभो ! मैं इसी समय में सम्पूर्ण शस्त्र—अस्त्र—चाप और बाणों को धारण करने वाला होकर बिल्कुल सन्नद्ध होगया हूँ ।।४-५।। हे भगवन् ! आपके प्रताप से आज सम्पूर्ण इस भूमण्डल को जीत लूँगा। हे महामति वाले ! हे स्वामि रामचन्द्र ! आपका प्रताप ही ऐसा शक्तिमान् है, हम लोग तो केवल निमित्त मात्र ही हैं ।।६।। आपकी कृपा से समस्त सुर—असुर और मनुष्यों के समुदाय

को जो कि युद्ध करने को मेरे समक्ष में उपस्थित हो जावे तो मैं उन सबको पराजित कर देने मे समर्थ हो जाऊँगा। आप तो हमारे स्वामी हैं जो भी कुछ मेरा विक्रम हो, उसे देखने से सभी कुछ जान लेंगे। लीजिये,मैं यह शत्रुघ्न की पृष्ठ रक्षा करने के लिए चल दिया ॥७-८॥

एवं ब्रुवन्तं भरतात्मजं स प्रस्तुय साध्वित्यनुमोदमानः ।
शशंस सर्वान्कपिवीरमुख्यान्प्रभञ्जनोद्भूतमुखान्हरिः प्रभुः॥९
भो हनूमन्महावीर ! शृणु मद्वाक्यमादृतः ।
त्वत्प्रसादान्मया प्राप्तमिदं राज्यमकण्टकम् ॥१०
सीतया मम संयोगे यो भवाञ्जलधिं तरेत् ।
चरितं तद्धरे वेद्मि सर्वं तव कपीश्वर ॥११
त्वं गच्छ मम सैन्यस्य पालकः सन्ममाऽऽज्ञया ।
शत्रुघ्नः सोदरो मह्यं पालनीयस्त्वहं यथा ॥१२
यत्र यत्र मतिभ्रंशःशत्रुघ्नस्य प्रजायते ।
तत्र तत्र प्रबोद्धव्यो भ्राता मम महामते ! ॥१३
इति श्रुत्वा महद्वाक्यं रामचन्द्रस्य धीमतः ।
शिरसा तत्समाधाय प्रणाममकरोत्तदा ॥१४

इस प्रकार से बोलने वाले भरत के पुत्र पुष्कल को 'बहुत अच्छा'—ऐसा अनुमोदन करते हुए उन श्रीराम ने उसकी प्रसंसा की थी। प्रभु हरि ने फिर समस्त वीर कपिगण में प्रमुखों से और वायु के पुत्र हनुमान प्रभृति प्रधान कपियों से कहा—॥९॥ हे महान् वीर हनुमान् ! तुम मेरे वाक्य का आदर करते हुए मेरे वचनों का श्रवण करो। मैंने केवल तुम्हारे ही प्रसाद से यह कण्टक रहित विशाल राज्य प्राप्त किया है ॥१०॥ आपने महासागर को पार करके सीता से मेरा संयोग कराया था। हे हरे ! उस आपके चरित को मैं जानता हूँ अर्थात् मुझे उसका ज्ञान है, भूला नहीं हूँ। हे कपीश्वर ! तुमने यह महान् अद्भुत कर्म्म किया था ॥११॥ हे हनुमान् ! मेरी सेना का पालक बनकर तुम मेरी आज्ञा से वहाँ जाओ। शत्रुघ्न मेरा सगा भाई है। मेरी भाँति ही तुमको

उसकी रक्षा करनी चाहिए ॥१२॥ हे महामतिमान्! जिस-जिस स्थल तथा समय पर शत्रुघ्न की मति में कुछ भ्रंशता आजावे वहा पर ही मेरे भाई को प्रबोधन देना चाहिए। क्योंकि आप बुद्धिमान् हैं ॥१३॥ परम धीमान् श्रीराम चन्द्र के इस प्रकार के वचन का श्रवण कर जोकि महावाक्य था हनुमान ने उसे शिर के बल स्वीकार किया और उसी समय मे श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया था ॥१४॥

अथाऽदिशन्महाराजो जाम्बवन्तं कपीश्वरम्।
रघुनाथस्य सेवार्थे कपिपूत्तमतेजसम् ॥१५
अङ्गदो गवयो मैंदस्तथा दधिमुखः कपिः।
सुग्रीवः प्लवगाधीशःशतवल्यक्षिको कपी ॥१६
नीलो नलो मनोवेगोऽधिगन्ता वानराङ्गजः।
इत्येवमादयो यूयं सज्जीभूता भवन्तु भोः ॥१७
सर्वेगंजै सदश्वैश्च, तप्तहाटकभूषणैः।
कवचे.सशिरस्त्राणैर्भू पिता यान्तु सत्वराः ॥१८
सुमन्तमाहूय सुमन्त्रिण तदा जगाद रामो बलवीर्यशोभनः।
अमात्यमौले! वद केऽत्रयोज्या नरा हयंपालयितु समर्था॥१९
तदुक्तमेवमाकर्ण्य जगाद परवीरहा।
हयस्य रक्षणे योग्यान्बलिनोऽत्र नराधिपान् ॥२०
रघुनाथ! शृणुष्वेतान्नव वीरान्सुसंहितान्।
धनुर्धरान्महाविद्यान्सर्वशस्त्रास्त्रकोविदान् ॥२१

इसके अनन्तर महाराज श्रीराम ने कपियो के नायक जाम्बवन्त को आदेश दिया था। जाम्बवन्त समस्त कपियो मे उत्तम तेज वाले थे। उनको श्रीरघुनाथ जी की सेवा करने के लिए आज्ञा दी गई थी ॥१५॥ अंगद-गवय-मैन्द-कपि दधि मुख-सुग्रीव जोकि सब वानरों का स्वामी था-शतवलि-अक्षिक-नील-नल और मन के समान वेग वाला और अधिगन्ता (ज्ञानशील) वानरांगज इत्यादि तुम सभी लोग तुरन्त सज्जीभूत (तयार) हो जाओ। सब हाथियों तथा अच्छे अश्वो के सहित तपाये हुए सुवर्ण के भूषणो से-कवचो और शिरस्त्राणों से भूषित होकर

शीघ्रता पूर्वक चले जाओ ॥१६-१८॥ शेषजी ने कहा —बल और वीर्य्य से शोभा वाले श्रीराम ने सुन्दर मन्त्री सुमन्त को बुलाकर उसी समय में कहा था—हे अमात्यों में शिरोमणि ! आप यह बतलाओ कि यहाँ पर कौन-कौन से पुरुष नियुक्त करने चाहिए जो कि अश्व की रक्षा करने के कार्य में समर्थ हों ? ॥१९॥ इस प्रकार से श्रीराम के कथन को सुन कर शत्रुओं के वीरों का हनन करने वाले ने कहा—यहाँ पर अश्व की रक्षा करने के कार्य में अति योग्य बलवान राजाओं को नियुक्त करना चाहिए ॥२०॥ हे रघुनाथजी ! मेरी प्रार्थना को आप सुनिये, सुमहित जो ये नये वीर हैं उनको नियोजित करें। ये धनुर्धारी हैं, महायुद्ध ज्ञाता हैं और सम्पूर्ण शस्त्र तथा अस्त्रों के अच्छे पण्डित भी हैं ॥२१॥

प्रतापाग्र्य नीलरत्न तथा लक्ष्मीनिधिं नृपम् ।
रिपुताप चोग्रहय तथा शस्त्रविद नृपम् ॥२२
राजन्योऽसौ नीलरत्नो महावीरो रथाग्रणी. ।
स एव लक्ष रक्षेत लक्षयुध्येत निर्भय. ॥२३
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्यातु वाहस्य रक्षणे ।
दशितैस्सशिरस्त्राणैर्महाबाहुभिरुद्धतै. ॥२४
प्रतापाग्र्यो यो ह्यय च रिपुगर्वमशातयत् ।
सव्यापसव्यबाणाना मोक्ता सर्वास्त्रवित्तम ॥२५
एषोऽक्षौहिणिभिर्दशभिर्यातु यज्ञहयावने ।
सन्नद्धो रिपुनाशाय युवा कोदण्डदण्डभृत् ॥२६
तथा लक्ष्मीनिधिस्त्वेष यातु राजन्यसत्तम ।
यस्तपोभि शतधृति प्रसाद्यास्त्राणि चाभ्यमत् ॥२७
ब्रह्मास्त्र पाशुपत्यास्त्र गारुड नागसंज्ञितम् ।
मायूर नाकुल रौद्र वैष्णव मेघसंज्ञितम् ॥२८
वज्र पार्वतसंज्ञ च तथा वायव्यसंज्ञितम् ।
इत्यादि नानास्त्राणि सम्प्रयोगविमर्दवित् ॥२९

स एष निजसैन्यानामक्षौहिण्यैकयायुतः ।
प्रयातु शूरमुकुटः सर्ववैरिप्रभञ्जनः ॥३०

प्रतापाग्र्य—नीलरत्न-नृप लक्ष्मी निधि-रिपुताप-अग्राह्य तथा शस्त्रवेत्ता नृप को नियुक्त करिये ॥२२॥ यह नीलरत्न राजन्य महान वीर और रथाग्रणी है। वह ही एक लाख की रक्षा करने वाला होगा और एक लक्ष सैनिकों से बिल्कुल निडर होकर युद्ध करेगा ॥२३॥ वाह के रक्षण करने मे दश अक्षौहिणी सेना के साथ वह चला जावे जिस सेना के सैनिक शिरस्त्राणों से सयुत-दर्शित-बड़ी २ भुजाओं वाले और महान उद्धत होंगे ॥२४॥ जो यह प्रतापाग्र्य है यह सभी शस्त्र तथा अस्त्रों के प्रयोग करने की कला का बड़ा ही विद्वान है और दाहिने तथा बाँये बाणों से छोड़ने वाला है। इसने बड़े २ शस्त्रओं के गर्व को खण्डित कर दिया है अर्थात् बड़ा भारी शूर-वीर है ॥२५॥ यह भी बीस अक्षौहिणी सेना को साथ मे लेकर यज्ञ के अश्व की रक्षा करने को चला जावेगा। यह युवा है और जो कोई भी शत्रु समक्ष मे आवेगा उसके नाश करने के लिए बिल्कुल सन्नद्ध है। यह कोदण्ड (धनुष) के दण्ड को धारण करने वाला है ॥२६॥ यह लक्ष्मी निधि नामधारी क्षत्रियो मे सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय है। यह भी अश्वमेध के अश्व की रक्षा के लिये चला जावेगा। जिस लक्ष्मी निधि ने तपश्चर्या करके शतधृति को प्रसन्न कर लिया था और फिर अस्त्रों के प्रयोग करने का अभ्यास किया था ॥२७॥ इसने बहुत प्रकार के महान विलष्ट अस्त्रो के प्रयोग करने का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। उनके नाम ये हैं—ब्रह्मास्त्र-पाशुपतास्त्र-गारुडास्त्र- नाम नाम वाला अस्त्र-मायूर-नाकुल-रौद्र-वैष्णव-मेघ सज्ञा वाला अस्त्र—वज्र—पर्वत नामक अस्त्र और वायव्य सज्ञा वाला अस्त्र इत्यादि महान् अस्त्रों का बहुत अच्छी तरह प्रयोग करना तथा उनका विसर्जन करना खूब अच्छी तरह से यह जानता है ॥२८-२९॥ यह अपनी एक अक्षौहिणी सेना से समन्वित होकर शूर मुकुट भी अश्व की रक्षा के लिये जायेगा जोकि समस्त वैरियो के भञ्जन करने वाला है ॥३०॥

॥ विद्युन्माली राक्षस का अश्वहरण ॥

गच्छत्सु रथिवर्येषु शत्रुघ्नादिषु भूरिषु ।
महाराजेषु सर्वेषु रथकोटियुतेषु च ॥१
अकस्मादभवन्मार्गे तमःपरमदारुणम् ।
यस्मिन्स्वीयो न पारक्यो लक्ष्यते ज्ञातिभिर्नरैः ॥२
रजसाव्यावृतं व्योम विद्युत्स्तनितसंकुलम् ।
एतादृशे तु सम्मर्दे महाभयकरे ततः ॥३
मेघा वर्षन्ति रुधिरं पूयामेध्यादिकं बहु ।
अत्याकुला बभूवुस्ते वीराः परमवैरिणः ॥४
आकुलीकृतलोके तु किमिद किमिति स्थितिः ।
तमोव्याप्तानि लोकाना चक्षूंपि प्रथितौजसाम् ॥५
जहाराश्वं रावणस्य सुहृत्पातालसस्थितः ।
विद्युन्मालीति विख्यातो राक्षसश्रेणिसवृतः ॥६
कामगे सुविमाने तु सर्वायसनिषेविणि ।
आरूढोऽश्व तु वीराणा भयकुर्वञ्जहारहा ॥७

भगवान् शेष ने कहा—जिस समय में बड़े २ रथी लोग बहुत बड़ी सख्या मे जा रहे थे तथा शत्रुघ्न आदि समस्त महाराजों ने अश्व की रक्षा के लिए गमन किया था तथा करोड़ो रथो से युक्त जारहे थे इन सबके चले जाने पर मार्ग मे अचानक ही परम दारुण अन्धकार छागया था और वह अन्धकार ऐसा गहरा था कि जिसमे ज्ञाति वाले मनुष्यों को कोई भी अपना और पराया सूझ ही नही पड़ता था ॥१-२॥ सम्पूर्ण आकाश रज से घिर गया था और उसमे विद्युत की चमक मेघो की गर्जना हो रही थी। इस प्रकार का समर्द महान् भयकर होगया था ॥३॥ इसके अनन्तर उस समय मे मेघो ने रुधिर की तथा पूय (मवाद) आदि अपवित्र बहुत से पदार्थों की वर्षा करना आरम्भ कर दिया था। ऐसी दशा मे वे महान् समस्त शूर वीर भी अत्यन्त घबड़ा गये थे ॥४॥ उस समय सम्पूर्ण लोक एकदम बेचैन होगया था

स एष निजसैन्यानामक्षौहिण्यैकयायुतः ।
प्रयातु शूरमुकुटः सर्ववैरिप्रभञ्जनः ॥३०

प्रतापाग्रय्—नीलरत्न-नृप लक्ष्मी निधि-रिपुताप-अग्रह्य तथा शस्त्रवेत्ता नृप को नियुक्त करिये ॥२२॥ यह नीलरत्न राजन्य महान वीर और रथाग्रणी है। वह ही एक लाख की रक्षा करने वाला होगा और एक लक्ष सैनिकों से बिल्कुल निडर होकर युद्ध करेगा ॥२३॥ वाह के रक्षण करने में दश अक्षौहिणी सेना के साथ यह चला जावे जिस सेना के सैनिक शिरस्त्राणों से सयुत्त-दर्शित-बड़ी २ भुजाओं वाले और महान उद्धत होंगे ॥२४॥ जो यह प्रतापाग्रय है यह सभी शस्त्र तथा अस्त्रों के प्रयोग करने की कला का बड़ा ही विद्वान है और दाहिने तथा बाँये बाणों के छोड़ने वाला है। इसने बड़े २ शस्त्रओं के गर्व को खण्डित कर दिया है अर्थात् बड़ा भारी शूर—वीर है ॥२५॥ यह भी बीस अक्षौहिणी सेना को साथ में लेकर यज्ञ के अश्व की रक्षा करने को चला जावेगा। यह युवा है और जो कोई भी शत्रु समक्ष में आयेगा उसके नाश करने के लिए बिल्कुल सन्नद्ध है। यह कोदण्ड (धनुष) के दण्ड को धारण करने वाला है ॥२६॥ यह लक्ष्मी निधि नामधारी क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय है। यह भी अश्वमेध के अश्व की रक्षा के लिये चला जायेगा। जिस लक्ष्मी निधि ने तपश्चर्या करके शतधृति को प्रसन्न कर लिया था और फिर अस्त्रों के प्रयोग करने का अभ्यास किया था ॥२७॥ इसने बहुत प्रकार के महान विलष्ट अस्त्रों के प्रयोग करने का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है। उनके नाम ये हैं—ब्रह्मास्त्र-पाशुपतास्त्र-गारुड़ास्त्र- नाग नाम वाला अस्त्र-मायूर-नाकुल-रौद्र-ऐन्द्र-मेघ सज्ञा वाला अस्त्र—वज्र—पर्वत नामक अस्त्र और वायव्य सज्ञा वाला अस्त्र इत्यादि महान् अस्त्रों का बहुत अच्छी तरह प्रयोग करना तथा उनका विसर्जन करना खूब अच्छी तरह से यह जानता है ॥२८-२९॥ यह अपनी एक अक्षौहिणी सेना से समन्वित होकर शूर मुकुट भी अश्व की रक्षा के लिये जायेगा जोकि समस्त वैरियों के भञ्जन करने वाला है ॥३०॥

।। विद्युन्माली राक्षस का अश्वहरण ।।

गच्छत्सु रथिवर्येषु शत्रुघ्नादिषु भूरिषु ।
महाराजेषु सर्वेषु रथकोटियुतेषु च ॥१
अकस्मादभवन्मार्गे तमःपरमदारुणम् ।
यस्मिन्स्वीयो न पारक्यो लक्ष्यते ज्ञातिभिर्नरैः ॥२
रजसाव्यावृतं व्योम विद्युत्स्तनितसंकुलम् ।
एतादृशे तु सम्मर्दे महाभयकरे ततः ॥३
मेघा वर्षन्ति रुधिरं पूयामेध्यादिकं बहु ।
अत्याकुला बभूवुस्ते वीराः परमवैरिणः ॥४
आकुलीकृतलोके तु किमिदं किमिति स्थितिः ।
तमोव्याप्तानि लोकानां चक्षूंषि प्रथितौजसाम् ॥५
जहाराश्वं रावणस्य सुहृत्पातालसंस्थितः ।
विद्युन्मालीति विख्यातो राक्षसश्रेणिसंवृतः ॥६
कामगे सुविमाने तु सर्वायसनियेविशि ।
आरूढोऽश्वं तु वीराणां भयकुर्वञ्जहारहा ॥७

भगवान् शेष ने कहा—जिस समय में बड़े २ रथी लोग बहुत बड़ी संख्या में जा रहे थे तथा शत्रुघ्न आदि समस्त महाराजों ने अश्व की रक्षा के लिए गमन किया था तथा करोड़ों रथों से युक्त जा रहे थे इन सबके चले जाने पर मार्ग में अचानक ही परम दारुण अन्धकार छागया था और वह अन्धकार ऐसा गहरा था कि जिसमें ज्ञाति वाले मनुष्यों को कोई भी अपना और पराया सूझ ही नहीं पड़ता था ।।१-२।। सम्पूर्ण आकाश रज से घिर गया था और उसमें विद्युत की चमक मेघों की गर्जना हो रही थी। इस प्रकार का समर्द महान् भयकर होगया था ।।३।। इसके अनन्तर उस समय में मेघों ने रुधिर की तथा पूय (मवाद) आदि अपवित्र बहुत से पदार्थों की वर्षा करना आरम्भ कर दिया था। ऐसी दशा में वे महान् समस्त शूर वीर भी अत्यन्त घबड़ा गये थे ।।४।। उस समय सम्पूर्ण लोक एकदम बेचैन होगया था

एतच्छ्रुत्वा तु सचिवःप्राह वाक्यं यथोचितम् ।
वीराग्रणवरे योग्यान्दर्शयस्तरसानतान् ।।२१

शत्रुघ्न को उन अपने साथी वीरों की यह बात सुनकर बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ था और उसने कहा—यह ऐसा कौन-सा राक्षस है जो इतना वीर्य वाला है कि जिसने हमारा यज्ञ का अश्व हरण कर लिया है ।।१५।। वह आज ही मेरे बाणो के समूह से हत होकर विमान के सहित गिर जावेगा और मेरे तीखे बाणो के द्वारा उस वैरी का शिर भी कटकर आज ही गिर जायगा ।।१६।। महान् अस्त्र-शस्त्रो से परिपूर्ण करके सब वीर अपने रथो को तयार कर लेवें और सभी वीर योद्धागण उस दुष्ट अश्व के हरण करने वाले शत्रु को मार डालने के लिये यहा से चले जावें ।।१७।। इतना कह कर क्रोध से लाल नेत्रो वाले शत्रुघ्न ने अपने मन्त्री से कहा था जो मन्त्री न्याय अन्याय मे ज्ञान का बहुत बड़ा विद्वान् था-शूरवीर था–शूरवीर था और युद्ध करने की कार्य प्रणाली का महान् मनीषी था ।।१८।। शत्रुघ्न ने कहा—हे मन्त्रिवर ! अब आप मुझे यह बतलाइये कि इस दुष्ट राक्षस के वध करने को तयार कौन से वीर नियोजित करने चाहिए जो इस काम को पूरा कर देवें ! ऐसे ही किन्हीं वीरों को बतलाइये जो महान् शस्त्रों के प्रयोग करने वाले हो, बहुत भारी शौर्य रखने वाले हों, और परम प्रमुख अस्त्रों के ज्ञान रखने वालो मे अतिश्रेष्ठ हो ।।१९।। इसका निर्णय करके और विचार करके मुझे अति शीघ्र ही बतलाइये सो मैं आपके कथन के अनुसार ही सब कुछ करूँगा । इस रीति से जो सभी अस्त्रो के प्रयोग करने मे दक्ष हों और योग्य हों उन वीरो को कह दो ।।२०।। यह सुन कर उसमन्त्रि ने जो बहुत ही उचित था वह वाक्य कहा और रणक्षेत्र मे श्रेष्ठ जो वीर वेग युक्त थे उनको दिखा भा दिया था ।।२१।।

जेतुं गच्छतु तद्दक्षःसमरे विजयोद्यतः ।
महाशस्त्रास्त्रसंयुक्तः पुष्कलःपरतापनः ।।२२
तथा लक्ष्मीनिधिर्या तु शस्त्रसङ्घसमन्वितः ।
करोतु तस्य यानस्य भङ्गं तीक्ष्णैः स्वसायकैः ।।२३

हनूमान्दृष्टकर्माऽत्र राक्षसैर्योद्धुं क्षमः ।
करोतु मुखपुच्छाभ्यां ताडनं रक्षसां प्रभो ! ।।२४
वानरा अपि ये वीरा रणकर्मविशारदाः ।
गच्छन्तु तेऽखिला योद्धुं तव वाक्यप्रणोदिताः ।।२५
सुमदश्च सुबाहुश्च प्रतापाग्रयश्च सत्तमाः ।
गच्छन्तु सायकैस्तीक्ष्णैस्तान्योद्धुं राक्षसाधमान् ।।२६
भवानपि महाशस्त्रपरिवारो रथेस्थितः ।
करोतु युद्धे विजयं राक्षसं हन्तुमुद्यतः ।।१७
एतन्मम मतं राजन्ये योधास्तत्प्रमर्दनाः ।
ते गच्छन्तु रणे शूराःकिमन्यैर्बहुभिर्भटैः ।।१८

सुमति ने कहा—शत्रुओं को त्रास पहुँचाने वाले जो पुष्कल हैं वह महान् शस्त्र और अस्त्रों से सुसंयुक्त हैं तथा विजय प्राप्त करने के लिए भी उद्यत हैं वह इस दुष्ट राक्षस से समर करने के लिए उसे जीतने को जावे ।।२१।। उसी भाँति जो लक्ष्मी निधि नाम वाले महान् वीर योधा हैं जोकि अनेक शस्त्रों के समुदाय से समन्वित हैं वह भी अपने परम तीक्ष्ण बाणों के द्वारा उस राक्षस के यान का भग कर देगा इसलिये वह भी युद्ध करने लिए चला आवे ।।२३।। श्री हनुमान यहाँ पर दृष्ट कर्म वाले हैं और राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये पूर्ण क्षमता रखते हैं । हे प्रभो ! यह तो मुख और पूँछ इन दोनों से राक्षसों को ताडित करेंगे ।।२४।। रण कर्म के बहुत ही कुशल पण्डित समस्त बन्दर जो भी बड़े वीर हैं वे सभी चले आवें और आपकी आज्ञा से प्रेरित होकर सब चले भी आयेंगे ।।२५।। उन कुछ प्रमुख वानरों के नाम ये हैं जैसे—सुमद–सुबाहु और प्रतापाग्रय–ये सब बहुत ही श्रेष्ठ हैं । ये सभी उन महान् पामर एवं अधम राक्षसों से युद्ध करने के लिये अपने २ तीक्ष्ण बाणों से अवश्य ही उन्हें मार डालेंगे, ये सब आवें ।।२६।। आप भी महान् शस्त्रों के परिवार वाले होकर रथ में विराजमान् होवें और उस राक्षस का हनन करने के हेतु समुद्यत हो जावें । आप युद्ध में विजय प्राप्त करें ।।२७।। मेरा तो हे भगवन् ! यही मत

एतच्छ्रुत्वा तु सचिव.प्राह वाक्यं यथोचितम् ।
वीराग्रणवरे योग्यान्दर्शयस्तरसानतान् ।।२१

शत्रुघ्न को उन अपने साथी वीरो की यह बात सुनकर बडा भारी क्रोध उत्पन्न हुआ था और उसने कहा—यह ऐसा कौन-सा राक्षस है जो इतना वीर्य वाला है कि जिसने हमारा यज्ञ का अश्व हरण कर लिया है ।।१५।। वह आज ही मेरे बाणो के समूह से हत होकर विमान के सहित गिर जावेगा और मेरे तीखे बाणों के द्वारा उस वैरी का शिर भी कटकर आज ही गिर जायगा ।।१६।। महान् अस्त्र-शस्त्रो से परिपूर्ण करके सब वीर अपने रथो को तयार कर लेवें और सभी वीर योधागण उस दुष्ट अश्व के हरण करने वाले शत्रु को मार डालने के लिये यहा से चले जावें ।।१७।। इतना कह कर क्रोध से लाल नेत्रो वाले शत्रुघ्न ने अपने मन्त्री से कहा था जो मन्त्री न्याय अन्याय के ज्ञान का बहुत बडा विद्वान् था-शूरवीर था-शूरवीर था और युद्ध करने की कार्य प्रणाली का महान् मनीषी था ।।१८।। शत्रुघ्न ने कहा—हे मन्त्रिवर ! अब आप मुझे यह बतलाइये कि इस दुष्ट राक्षस के वध करने को तयार कौन से वीर नियोजित करने चाहिए जो इस काम को पूरा कर देवें ! ऐसे ही किन्ही वीरों को बतलाइये जो महान् शस्त्रों के प्रयोग करने वाले हो, बहुत भारी शौर्य रखने वाले हो, और परम प्रमुख अस्त्रों के ज्ञान रखने वालो मे अतिश्रेष्ठ हो ।।१६।। इसका निर्णय करके और विचार करके मुझे अति शीघ्र ही बतलाइये सो मैं आपके कथन के अनुसार ही सब कुछ करूँगा । इस रीति से जो सभी अस्त्रो के प्रयोग करने मे दक्ष हो और योग्य हों उन वीरो को कह दो ।।२०।। यह सुन कर उसमचिव ने जो बहुत ही उचित था वह वाक्य कहा और रणक्षेत्र मे श्रेष्ठ जो वीर वेग युक्त थे उनको दिखा भी दिया था ।।२१।।

जेतुं गच्छतु तद्रक्ष.समरे विजयोद्यतः ।
महाशस्त्रास्त्रसंयुक्त पुष्कल.परतापन. ।।२२
तथा लक्ष्मीनिधिर्वा तु शस्त्रसङ्घसमन्वितः ।
करोतु तस्य यानस्य भङ्गं तीर्णैः स्वसायकैः ।।२३

हनूमान्द्रष्टकर्माऽत्र राक्षसैर्योधितु' क्षमः ।
करोतु मुखपुच्छाभ्या ताडनं रक्षसां प्रभो ! ॥२४
वानरा अपि ये वीरा रणकर्मविशारदाः ।
गच्छन्तु तेऽखिला योद्धु' तव वाक्यप्रणोदिताः ॥२५
सुमदश्च सुबाहुश्च प्रतापाग्रयश्च सत्तमाः ।
गच्छन्तु सायकैस्तीक्ष्णैस्तान्योद्धु' राक्षसाधमान् ॥२६
भवानपि महाशस्त्रपरिवारो रथेस्थितः ।
करोतु युद्धे विजयं राक्षसं हन्तुमुद्यतः ॥१७
एतन्मम मत राजन्ये योधास्तत्प्रमर्दनाः ।
ते गच्छन्तु रणे शूराःकिमन्यैर्बहुभिर्भटैः ॥१८

सुमति ने कहा—शत्रुओं को ताप पहुँचाने वाले जो पुष्कल हैं वह महान् शस्त्र और अस्त्रों से सुसयुक्त हैं तथा विजय प्राप्त करने के लिए भी उद्यत हैं वह इस दुष्ट राक्षस से समर करने के लिए उसे जीतने को जावे ॥२१॥ उसी भाँति जो लक्ष्मी निधि नाम वाले महान् वीर योधा हैं जोकि अनेक शस्त्रों के समुदाय से समन्वित हैं वह भी अपने परम तीक्ष्ण बाणों के द्वारा उस राक्षस के मान का मथन कर देगा इसलिये वह भी युद्ध करने लिए चला आवे ॥२३॥ श्री हनुमान यहाँ पर दृष्ट कर्म वाले हैं और राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये पूर्ण क्षमता रखते हैं। हे प्रभो ! यह तो मुख और पूँछ इन दोनो से राक्षसों को ताडित करेंगे ॥२४॥ रण कर्म के बहुत ही कुशल पण्डित समस्त बन्दर जो भी बड़े वीर हैं वे सभी चले जावें और आपकी आज्ञा से प्रेरित होकर सब चले भी जायगे ॥२५॥ उन कुछ प्रमुख वानरो के नाम ये हैं जैसे—सुमद-सुबाहु और प्रतापाग्रय-ये सब बहुत ही श्रेष्ठ हैं। ये सभी उन महान् पामर एव अधम राक्षसों से युद्ध करने के लिये अपने २ तीक्ष्ण बाणों से अवश्य ही उन्हें मार डालेंगे, ये सब जावें ॥२६॥ आप भी महान् शस्त्रों के परिवार वाले होकर रथ मे विराजमान् होवें और उस राक्षस का हनन करने के हेतु प्रस्तुत हो जावें। आप युद्ध मे विजय प्राप्त करें ॥२७॥ मेरा तो हे भगवन् ! यही मत

है । क्षत्रियों में बड़े प्रमर्दन योद्धा हैं । वे सभी शूरवीर युद्धस्थल में जाने चाहिए । बाकी अन्य बहुत सारे भटों की भीड़ करने की क्या आवश्यकता है ॥२८॥

इत्युक्तवति वीराग्र्येऽमात्ये सुमतिसंज्ञके ।
शत्रुघ्नः कथयामास वीरान्संग्रामकोविदान् ॥२९
भो वीराः पुष्कलाद्या ये सर्वशस्त्रास्त्रकोविदाः ।
ते वदन्तु प्रतिज्ञां वै मत्पुरो राक्षसार्दने ॥३०
श्रुत्वा प्रतिज्ञां विपुलां स्वपराक्रमशोभिनीम् ।
गच्छन्तु रणमध्ये हि भवन्तो बलसंयुताः ॥३१
इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य महाबलाः ।
स्वां स्वां प्रतिज्ञां महतीं चक्रुस्ते तेजसान्विताः ॥३२
तत्रादौ पुष्कलो वीरः श्रुत्वा वाक्यं महीपतेः ।
परमोत्साहसम्पन्नः प्रतिज्ञामूचिवानिमाम् ॥३३
शृणुष्व नृपशार्दूल ! मत्प्रतिज्ञां पराक्रमात् ।
विहितां सर्वलोकानां शृण्वतां परमाद्भुताम् ॥३४
येन मूर्धासुरप्राग्र्यं स्कीर्णं कोदण्डनिर्गतैः ।
दैत्यं मूर्च्छासमाक्रान्तं कीर्णकेशाकुलाननम् ॥३५
कन्यान्यभोक्तृसंतापं मत्पापं देवनिन्दने ।
तत्पापं मम वै भूयाच्चेत्कुर्यां स्वयशोऽनृतम् ॥३६

इस प्रकार से वीरों में परम अग्रणी सुमति नाम वाले महामन्त्री के कहने पर शत्रुघ्न ने संग्राम के महान् कुशल वीरों से कहा था ॥२९॥ हे पुष्कल प्रभृति वीरगणो ! आप जो भी सब प्रकार के शस्त्रास्त्रों में प्रवीण हैं वे सभी मेरे सामने उस दुष्ट राक्षस के प्रमर्दन करने की प्रतिज्ञा करो ॥३०॥ अपने पराक्रम को सुशोभित करने वाली विपुल प्रतिज्ञा करके बल से समन्वित होकर आप सभी लोग वहाँ रण भूमि के मध्य में जावें ॥३१॥ शत्रुघ्न के महान् बल पराक्रम वाले इस प्रकार के वचन को सुन कर वे सब तेज से युक्त होकर अपनी-अपनी

बहुत बड़ी प्रतिज्ञा करने लगे थे ॥३२॥ उनमे सब से आदि मे पुष्कल वीर ने राजा के वाक्य का श्रवण करके परमाधिक उत्साह से सम्पन्न होकर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की थी ॥३३॥ पुष्कल ने कहा—हे नृप शार्दूल ! पराक्रम से आप मेरी प्रतिज्ञा को सुनिये। जिसको सभी लोकों को सुनाते हुए मैं परम अद्भुत यह प्रतिज्ञा करता हूँ ॥३४॥ अत्यन्त तीक्ष्ण शरों के द्वारा यदि मैं अपने धनुष से छोड़े हुए बाणों से उस दुष्ट दैत्य को मूच्छित नहीं करदू और कीर्ण केशों से आकुल मुख वाला न बनादूं तो जो देवो के द्वारा निन्दित अपनी कन्या का उपभोग करने से जो महापाप होता है वही पाप मेरे इस मिथ्या वचन का मुझे लगे और उसका दण्ड भोगने का मैं अधिकारी बन जाऊंगा ॥३५-३६॥

यदि मद्बाणनिर्भिन्नाःसैनिकाःसुमहाबलाः ।
न पतन्ति महाराज ! प्रतिज्ञा तत्र मे शृणु ॥३७
विष्णवीशयोर्विभेदं यः शिवशक्त्यो करोत्यपि ।
तत्पापं मम वै भूयाच्चेन्न कुर्यामृत वचः ॥३८
सर्वं मद्वाक्यमित्युक्त रघुनाथपदाम्बुजे ।
भक्तिर्मे निश्चलायाऽस्ति सेवकस्य करिष्यति ॥३९
पुष्कलस्य प्रतिज्ञा ता श्रुत्वा लक्ष्मीनिधिर्नृपः
प्रतिज्ञा व्यदधात्सत्या स्वपराक्रमशोभिताम् ॥४०
वेदाना निन्दन श्रुत्वा आस्ते यो मौनिवन्नरः ।
मानसे रोचयेद्यस्तु सर्वधर्मबहिष्कृत ॥४१
ब्राह्मणो यो दुराचारो रसलाक्षादिविक्रयी ।
विक्रीणाति च गा मूढो धनलोभेन मोहितः ॥४२
म्लेच्छकूपोदक पीत्वा प्रायश्चित्त तु नाचरेत् ।
तत्पाप मम वै भूयाद्विगुरुक्ने द्भूयाम्यहम् ॥४३

हे महाराज ! यदि मेरे बाणों से छिन्न-भिन्न होकर ये महान् बल वाले सैनिक गिर जावेंगे तो फिर मेरी जो प्रतिज्ञा है उसको भी आप श्रवण कर लीजिएगा । वह यह है कि जो कोई भगवान् विष्णु और महादेव इन दोनों मे विभेद किया करता है अर्थात् इन दोनों महा-

विभूतियों को पृथक समझता है और जो भगवान् शिव तथा जगदम्बा शक्ति इन दोनों को भिन्न समझा करता है इसके करने का जो महा पाप होता है वही पाप मुझे भी लगे यदि मेरा कहा हुआ वचन सत्य न होवे ॥३७ ३८॥ यह सब मेरा वाक्य जो भी मैंने कहा है वह जो मेरी भक्ति श्रीरघुनाथ जी के पादारविन्दु में निश्चल है वही इसको पूर्ण सत्य करेगी ॥३९॥ पुष्कल की की हुई इस प्रतिज्ञा को सुन कर फिर लक्ष्मीनिधि राजा ने अपने बल पराक्रम से सुशोभित सत्य प्रतिज्ञा की थी ॥४०॥ राजा लक्ष्मीनिधि ने कहा—वेदों की निन्दा का श्रवण करके भी जो मनुष्य एक मौनी की भांति खामोश रहता है और मन में जिसे अच्छा रुचिकर प्रतीत होता है वह सभी धर्मों से बहिष्कृत होता है ॥४१॥ जो ब्राह्मण दूषित आचार वाला हो और रस तथा लाक्षा आदि पदार्थों का विक्रय करने वाला हो, जो मूढ़ गाय को बेचता है और धन के लोभ से मोहित हो जाता है ॥४२॥ जो म्लेच्छ जाति के कुए का जल पीकर भी कोई उस दोष के निवारणार्थ प्रायश्चित नहीं किया करता है यही उपर्युक्त पाप कर्मों के करने से जो होता है मुझे भी लगे यदि मैं अपनी की हुई प्रतिज्ञा में किसी प्रकार भी विमुख हो जाऊँ ॥४३॥

तत्प्रतिज्ञामथाश्रुत्य हनूमान्वचनकोविदः ।
रामाङ्घ्रिस्मरणं कृत्वा प्रोवाच वचनं शुभम् ॥४४
मत्स्वामी हृदये नित्यं ध्येयो वै योगिभिर्मुहुः ।
यं देवाः सासुराः सर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः ॥४५
रामः श्रीमानयोध्यायाः पतिर्लोकेशपूजितः ।
तं स्मृत्वा यद्ब्रुवे वाक्यं तद्वै सत्यं भविष्यति ॥४६
राजन्योऽयं लघुर्दैत्यो दुर्बलः कामगेस्थितः ।
कथयाशु मया कायमेवेन विनिपातनम् ॥४७
मेरुं देवेन्द्रसहितं लाङ्गूलाग्रेण तालये ।
जलधिं शोषये सर्वं सायनं वा पिबाम्यहम् ॥४८

राज्ञ:श्रीरघुनाथस्य जानक्या:कृपया मम ।
तन्नास्ति भूतले राजन्यदसाध्यं कदा भवेत् ।।४९
एतद्वाक्यं मयाप्रोक्तमनृतस्याद्यदि प्रभो ! ।
तदैव रघुनाथस्य भक्तिदूरो भवाम्यहम् ।।५०

लक्ष्मीनिधि की प्रतिज्ञा को सुनकर युद्धविद्या के महा पण्डित हनुमान ने श्रीराम के चरण कमल का मन मे सर्व प्रथम स्मरण किया था फिर इसके उपरान्त यह शुभ वचन उन्होने कहे थे ।।४४।। योगिजनों के द्वारा बारम्बार जो ध्यान करने के योग्य है वही मेरे स्वामी श्रीराम हैं जो कि मेरे हृदय मे सर्वदा विराजमान रहते हैं। जिनको असुरों के सहित समस्त देवगण मणियो से भूषित मस्तको से प्रणाम किया करते हैं वह श्रीराम अयोध्या के स्वामी है और लोकपतियों के द्वारा वन्द्यमान हैं। उनका स्मरण करके ही जो वचन मैं बोलता हूँ वह सभी वचन सत्य होगा ।।४५-४६।। हे राजन् ! यह विचारा एक छोटा सा दैत्य क्या चीज है जोकि अत्यन्त दुर्बल है और कामग विमान मे स्थित है। आप कहें तो मैं इसका एक ही के द्वारा विनिपात करदूं।।४७।।देवेन्द्र के सहित इस मेरु पर्वत को अपनी पूंछ से अधर उठालूं-इस महासागर का शोषण करदू—अथवा इसके समस्त जल सहित पान करलूं ।।४८।। राजाधिराज श्रीरघुनाथजी और जगज्जननी जानकी जी की कृपा से मेरे लिये इस भूतल मे ऐसा कोई भी कार्य नही है जो किसी भी समय में असाध्य होवे ।।४९।। यह जो मैंने वाक्य कहा है हे प्रभो ! यदि यह मेरा वचन असत्य हो जावे तो मैं उसी समय मे श्री रघुनाथ जी की भक्ति से दूर हो जाऊं ।।५०।।

य: शूद्र: कपिला गा वै पयोवुद्धयाऽनुपालयेत् ।
तस्य पापं ममैवास्तु चेत्कुर्यामनृतवच: ।।५१
ब्राह्मणी गच्छते मोहाच्छूद्र:कामविमोहित: ।
तस्य पापं ममैवास्तु चेत्कुर्यामनृतंवच: ।।५२
यद्घ्राणान्नरकं गच्छेत्स्पर्शनाच्चापि रौरवम् ।
ता पिबेन्मदिरा यो वा जिह्वास्वादेन लोलुप: ।।५३

तस्य यज्जायते पापं तन्ममैवास्तु निश्चितम् ।
चेन्नकुर्यां प्रतिज्ञातं सत्यं रामकृपाबलात् ॥५४
एवमुक्ते महावीरैर्योद्धारस्तरसायुताः ।
चक्रु प्रतिज्ञा महती स्वपराक्रमशालिनीम् ॥५५
शत्रुघ्नोपि व्यधात्तत्र प्रतिज्ञा पश्यतां नृणाम् ।
साधु साधु प्रशंसन्वै तान्वीरान्युद्धकोविदान् ॥५६

जो कोई शूद्र किसी कपिला गाय को दूध प्राप्त करने की बुद्धि से अनुपालन करता है उसको जो पाप होता है वही पाप मुझे भी लगे यदि मेरा कहा हुआ वचन झूठा हो जावे ॥५१॥ काम से विशेष मोहित होकर जो कोई शूद्र किसी ब्राह्मणी का मोह से अभिगमन करता है उसको जो महापाप होता है वही पाप मुझे भी हो यदि मेरा वचन असत्य हो जावे ॥५२॥ जिसके घ्राण करने से नरक का निवास होता है और जिसके स्पर्श करने से भी रौरव नरक की प्राप्ति होती है उस मदिरा को जो कोई पुरुष जिह्वा के आस्वादन का लोभी होकर पान किया करता है उसको जो पाप लगता है वही पाप निश्चित रूप से मुझे भी लग जावे यदि मैं श्रीराम की कृपा के बल से अपने प्रतिज्ञा किये हुए वचन को सत्य न करदूं ॥५३-५४॥ इस प्रकार से महावीर के कहे जाने पर सभी योद्धागण बड़े वेग से युक्त होकर अपने-अपने पराक्रम से शोभा शाली प्रतिज्ञाऐं करने लगे थे ॥५५॥ इसके अनन्तर शत्रुघ्न ने भी सब मनुष्यों के देखते हुए अपनी प्रतिज्ञा की थी। बहुत अच्छा-बहुत अच्छा—इस प्रकार से युद्ध कुशल समस्त वीरों की अत्यधिक प्रशंसा भी की थी ॥५६॥

कथयामि पुरो वः स्वां प्रतिज्ञां सत्वशोभिताम् ।
तच्छृणवन्तु महाभागा युद्धोत्साहसमन्विताः ॥५७
चेत्तस्य शिर आहृत्य पातयामि न सायकैः ।
विमानाच्च कबन्धाच्च भिन्नं छिन्नं च भूतले ॥५८
यत्पापं कूटसाक्ष्येण यत्पापं स्वर्णचौर्यतः ।
यत्पापं ब्रह्मनिन्दाया तन्ममास्त्वद्य निश्चयात् ॥५९

इति शत्रुघ्नसद्वाक्यं श्रुत्वा ते वीरपूजिताः ।
धन्योऽसि राघवभ्रातः ! कस्त्वदन्यो वदेदिदम् ॥६०

त्वया वै निहतोदैत्यो देवदानवदुःखदः ।
लवणो नाम लोकेश ! मधुपुत्रो महाबलः ॥६१

कोऽयं वै राक्षसो दुष्टः क्वास्य बलमल्पकम् ।
करिष्यसि क्षणादेव तस्य नाशं महामते ! ॥६२

इत्युक्त्वा ते महावीराःसज्जीभूता रणाङ्गणे ।
प्रतिज्ञा स्वाश्रुताकर्त्तु ययुस्ते राक्षसंमुदा ॥६३

शत्रुघ्न ने कहा अब मैं सत्य से शोभित अपनी प्रतिज्ञा भी आप सबके समक्ष मे करता हूं । हे महान् भाग्य वालो ! आप सब उस मेरी प्रतिज्ञा को भी श्रवण कर लेवें क्योंकि आप सभी तो इस समय मे युद्ध करने के उत्साह मे भरे हुए हैं ॥५७॥ यदि मैं अपने छोड़े हुए बाणो से उसका मस्तक भूमि पर काटकर न गिरा दूं और विमान से तथा उसके सबन्ध से इस भूतल मे छिन्न-भिन्न न कर दू तो झूठी गवाही देने पर और सुवर्ण की चोरी करने पर जो भी पाप होता है तथा ब्राह्मण की निन्दा करने से जो महापाप लगता है वही पाप निश्चय रूप से मुझे भी आज होवे ॥५८-५९॥ इस प्रकार के शत्रुघ्न द्वारा कहे हुए अच्छे वाक्य को उन पूजित सब वीरो ने सुना था और वे सब कहने लगे-हे श्रीराघव के भाई ! आप परमधन्य हैं आपके अतिरिक्त इस जगती तल मे अन्य कोई भी नही है जो इस तरह के वचन कह सके ॥६०॥ हे लोको के स्वामिन् ! आपने ही महान् बल वाला मधु का पुत्र लवण का वध किया था जो देवगण और दानवगण सभी को महान् दुःख देने वाला था । जिस दैत्य का हनन आपने किया था उसे अन्य कोई भी मारने वाला नही था ॥६१॥ यह बिचारा दुष्ट राक्षस क्या चीज है और इसका कितना थोड़ा बल-पराक्रम है । आप इसका नाश क्षण मात्र मे ही कर देंगे क्योंकि आप में महती मति विद्यमान है ॥६२॥ इतना कह कर वे सब महान् वीरगण रणाङ्गन मे सुसज्जित हो गये थे । अपनी-

अपनी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण सत्य करने के लिये वे सभी परम प्रसन्नता के साथ युद्ध क्षेत्र में चले गये थे ।।६३।।

रथैःसदश्वैःशोभाढ्यैः सर्वशस्त्रास्त्रपूरितैः ।
नानारत्नसमायुक्तैर्ययुस्ते राक्षसाधमम् ।।६४
तान्दृष्ट्वा कामगेयाने स्थितःप्रोवाच राक्षसः ।
मेघगम्भीरयावाचा तर्जयन्निव भूरिशः ।।६५
स आहतःकपीन्द्रेन चपेटाभिरितस्ततः ।
व्यथितो व्यसृजन्मायां सर्वलोकभयङ्करीम् ।।६६
तदा व्याकुलितालोकाःपरस्परभयाकुलाः ।
पलायनपराजाता महोत्पातममंसत ।।६७
तदा शत्रुघ्न आयातो रथे स्थित्वा महायशाः ।
श्रीरामस्मरणं कृत्वा चापे सन्धाय सायकान् ।।६८
ता मायां स विधूयाथ मोहनास्त्रेण वीर्यवान् ।
शरधाराः किरन्व्योम्नि ववर्ष समरेऽसुरम् ।।६९

भगवान् शेष ने कहा–जिसमे बहुत अच्छे घोड़े जुते हुए थे और सभी प्रकार के बढ़िया अस्त्र-शस्त्रो से परिपूर्ण थे तथा अनेक मूल्यवान् रत्नों से समन्वित थे ऐसे रथो के द्वारा वे सभी वीर योधागण उस अधम राक्षस पर आक्रमण करने के लिये वहाँ से तुरन्त ही चले गये थे।।६४।। कामना के अनुसार ही गमन करने वाले यान मे बैठे हुए उस राक्षस ने इन सबको देखा था और रथ स्वरूप विमान पर बैठे हुए ही उस राक्षस ने उनसे कहा था और मेघ के समान परम गम्भीर रूप से गर्जना करने लगा था ।।६५।। वह हनुमान् द्वारा आहत किया गया तो उसने व्यथित होकर सब लोको को भय देने वाली माया उत्पन्न कर डाली ।।६६।। उस माया से भारी उत्पात होने लगे, जिन्हें देख कर सभी व्याकुल हो कर इधर-उधर भागने लगे ।।६७।। तब शत्रुघ्न ने वहाँ आकर भगवान् राम का स्मरण करते हुए धनुष पर बाण चढाया ।।६८।। उस महा-पराक्रमी मोहनास्त्र से किरणों के समान बाणों की धारा प्रवाह झड़ी लग गई, जिससे राक्षसी माया पूर्णतः नष्ट होगई ।।६९।।

शूलहस्तं समायान्तं विद्युन्मालिनमाहवे ।
सायकैःप्रहरत्तस्य भुजे त्वर्धशशिप्रभैः ॥७०
तैर्बाणैश्छिन्नहस्तः स शिरसा हन्तुमुद्यतः ।
हतोऽसि याहि शत्रुघ्न कस्त्वां त्राता भविष्यति ॥७१
इति ब्रुवाणं तरसा चिच्छेद शितसायकैः ।
मस्तकं तस्य बलिनःशूरस्य सहकुण्डलम् ॥७२
हतशेषाययुःसर्वे राक्षसा नाथवर्जिताः ।
शत्रुघ्नं प्रणिपत्याथ ददुर्वाजिनमाहृतम् ॥७३
ततो वीणानिनादाश्च शङ्खनादाः समन्ततः ।
श्रूयन्ते शूरवीराणां जयनादा मनोहराः ॥७४

तब हाथ में शूल लेकर विद्युन्माली शत्रुघ्न की ओर लपका, परन्तु उन्होंने अपने अर्धचन्द्र के समान प्रभा वाले बाण से राक्षस की भुजा पर प्रहार किया ॥७०॥ उस बाण से छिन्न हुए हाथ वाले राक्षस के शिर को काटने के लिए उद्यत शत्रुघ्न ने कहा कि अरे दुष्ट ! अब मैं तेरा वध किये देता हूँ, देखूँ तुझे कौन बचाता है ॥७१॥ यह कह कर उन्होंने उस राक्षस के कुण्डलयुक्त मस्तक को काट डाला ॥७२॥ शत्रुघ्न ने शेष बचे हुए राक्षसों को भी निर्मूल कर दिया ॥७३॥ तब वीणा और शङ्ख-नाद के सहित वीरों का जयघोष गूँज उठा ॥७४॥

॥ वाल्मीकि आश्रम में लव का अश्व-बंधन ॥

गतः प्रातः क्रिया कर्तुं समिधस्तत्क्रियार्हकाः ।
आनेतुं जानकीसूनुर्वृतो मुनिसुतैर्लवः ॥१
ददर्श तत्र यज्ञाश्वं स्वर्णपत्रेण चिह्नितम् ।
कुङ्कुमागरुकस्तूरीदिव्यगन्धेन वासितम् ॥२
विलोक्य जातकुतुको मुनिपुत्रानुवाच सः ।
अर्वा कस्य मनोवेगः प्राप्तो दैवान्मदाश्रमम् ॥३

आगच्छन्तु मया सार्धं प्रेक्षन्तां मा भयं कृथाः ।
इत्युक्त्वा स लवस्तूर्णं वाहस्य निकटे गतः ॥४
स रराज समीपस्थो वाहस्य रघुवंशज. ।
धनुर्बाणधरः स्कन्धे जयन्त इव दुर्जयः ॥५
गत्वा मुनिसुतै. सार्धं वाचयामास पत्रकम् ।
भालस्थित स्पष्टवर्णराजिराजितमुत्तमम् ॥६
विवस्वतो महान्वशः सर्वलोकेषु विश्रुतः ।
यत्र कोऽपि पराबाधी न परद्रव्यलम्पटः ॥७

शेष भगवान् ने कहा —जानकी जी के पुत्र लव अन्य मुनियों के पुत्रो से परिवृत्त होकर इसके अनन्तर प्रात काल के समय मे क्रिया करने के लिए तथा समिधाओ का आहरण करने के लिये जोकि उनकी क्रिया की उपयोगी वस्तु थी बाहिर अरण्य में गये हुए थे ॥१॥ वहाँ लव ने वह अश्वमेध यज्ञ का अश्व देखा था जो कि स्वर्ण के पत्र से चिह्नों वाला था । उस अश्व के अ ग कु कुम-अगरु-कस्तूरी और दिव्य गन्ध से सुवासित हो रहे थे ॥२॥ ऐसे उस यज्ञ के अश्व को देखकर लव को बडा कौतुक हृदय मे हुआ था और वह मुनि कुमारो से बोला-- यह किसका अश्व है जिसका वेग मन के तुल्य है और दैववश हमारे आश्रम मे यह आकर मे प्राप्त हो गया है॥३॥ हे मुनिकुमारो ! आपसब मेरे साथ आइये और देखिये किसी प्रकार का भय मन मे मत करो । यह कहकर वह जानकीनन्दन लव तुरन्त ही उस अश्व के समीप मे चला गया था ॥४॥ वह रघुवश मे जन्म ग्रहण करने वाला लव जब उस अश्व के समीप मे स्थित हुआ था बहुत शोभित हुआ था । धनुष और बाण उसके कन्धे पर था और जयन्त की भाति वह दुर्जय था ॥५॥ मुनि पुत्रो के साथ जाकर उसने उस पत्र को बांचा था जो कि उसके भाल मे सलग्न हो रहा था और स्पष्ट वर्णों की पक्तियो से शोभित एव उत्तम था ॥६॥ 'भगवान् विवस्वान् का महान् वश है जो कि समस्त लोको मे प्रसिद्ध है । जहा पर भी कोई पराबाधी हो और पर द्रव्य लम्पट न हो ॥७॥

सूर्यवंशध्वजो धन्वी धनुर्दीक्षागुरुर्गुरुः ।
य देवा सानुगाः सर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः ॥८
तस्यात्मजो वीरबलदर्पहारी रघूद्वहः ।
रामचन्द्रो महाभागः सर्वशूरशिरोमणिः ॥९
तन्माता कोशलनृपपुत्री रत्नसमुद्भवा ।
तस्याः कुक्षिभव रत्न रामशत्रुक्षयङ्करः ॥१०
करोति हयमेध स ब्राह्मणेन सुशिक्षितः ।
रावणाभिधविप्रेन्द्रवधपापापनुत्तये ॥११
मोचितस्तेन वाहाना मुख्योऽसौ याज्ञिकोहयः ।
महाबलपरीवारपरिखाभि सुरक्षितः ॥१२
तद्रक्षकोऽस्ति मद्भ्राता शत्रुघ्नो लवणान्तकः ।
हस्त्यश्वरथपादातसङ्कुसेनासमन्वितः ॥१३
यस्य राज्ञ इतिश्रेष्ठो मानोजायेत्स्यकान्मदात् ।
शूरावय धनुर्धारिश्रेष्ठा वयमहोत्कटा ॥१४
ते गृह्णन्तु बलाद्वाह रत्नमालाविभूषितम् ।
मनोवेग कामजव सर्वगत्याधिभास्वरम् ॥१५

जो सूर्यवंश का ध्वज—धनुषधारी-धनुर्विद्या की दीक्षा का गुरु है जिसको समस्त देवगण मणियुक्त मस्तक से बल नमन किया करते हैं ॥८॥ उसका आत्मज-वीरों के बल के दर्प का हरण करने वाले-रघूद्वह श्रीरामचन्द्र महान् भाग्य वाले और सब शूरों में शिरोमणि हैं ॥९॥ उनकी माता कोशल देश के नृप की पुत्री रत्नों से समुद्भव वाली हैं। उनकी कुक्षि से उत्पन्न होने वाला रत्न राम शत्रु भयङ्कर हैं ॥१०॥ वह राम ब्राह्मण के द्वारा भली भाँति शिक्षित होकर हयमेध यज्ञ कर रहे हैं। वह यज्ञ रावण नामक विप्रेन्द्र के वध से होने वाले पापों के निराकरण के लिए ही किया जा रहा है कि ब्रह्म हत्या का दोष दूर हो जावे ॥११॥ उन्हीं श्रीरामचन्द्र भगवान् ने वाहों में परम प्रमुख याज्ञिक अश्व मोचित किया है जो बड़ी भारी सेना से सहित परिवार की परिखाओं से पूर्णतया सुरक्षित है ॥१२॥ उस अश्व का रक्षक मेरा भाई

शत्रुघ्न है जिसने लवणासुर का वध किया था। शत्रुघ्न के साथ हाथी अश्व–रथ-पैदलों के सब वाली सेना भी है ॥१३॥ जिस राजा का यह इस प्रकार का श्रेष्ठ अश्व है उसको अपने मद से जिसका मान समुत्पन्न हो वे बल पूर्वक इसको ग्रहण करें। यह रत्न माला से विभूषित–मन के तुल्य वेग वाला–नाम में सदृश जव से युक्त और सर्व गति से अधिभास्वर है। हम सब शूर धनुर्धारी श्रेष्ठ और महान् उत्कट इसकी रक्षा के लिये सन्नद्ध हैं ॥१४-१५॥

ततो मोचयिता भ्राता शत्रुघ्नो लीलया हठात् ।
शरासनविनिर्मुक्तवत्सदन्तवृतन्यथास् ॥१६
ये क्षत्रियाः क्षत्रियकन्यकाया जाताश्च सत्क्षेत्रकुलेषु सत्सु ।
गृह्णन्तु ते तद्विपरीतदेहा नमन्तु राज्यं रघवे निवेद्य ॥१७
इति सवाच्य कुपितो लवः शस्त्रधनुर्धरः ।
उवाच मुनिपुत्रांस्ताश्चोपगद्गदभाषित. ॥१८
पश्यत क्षिप्रमेतस्य धृष्टस्य क्षत्रियस्य वै ।
लिलेख यो भालपत्रे स्वप्रतापबलं नृपः ॥१९
कोऽसौ रामः क्व शत्रुघ्नः कीटाः स्वल्पबलाश्रिताः ।
क्षत्रियाणां कुले जाता एते न वयमुत्तमा. ॥२०
एतस्य वीरसूर्माता जानकी न कुशप्रसूः ।
या रत्न कुशसत्त्वं तु दधाराग्निमिवारणिः ॥२१

जो भी इस अश्व को पकड़ेगा उससे छुड़ाने को भाई शत्रुघ्न उपस्थित हैं जो लीला से ही या हठ से उसे छुडा लेंगे। शरासन से छोड़े हुए वत्सदन्तों के द्वारा पीडित करके इस अश्व का मोचन कर लिया जायगा ॥१६॥ जो क्षत्रिय क्षत्रिय की कन्या से उत्पन्न हुए हैं और जिनकी उत्पत्ति का क्षेत्र सत् है एवं कुल भी अच्छा है वे उनके विपरीत देह वाले क्षत्रिय श्रीराम की सेवा में अपना राज्य समर्पित करके उनके चरणों में प्रणाम करें ॥ १७ ॥ इस प्रकार के सन्देश को बाँच कर शस्त्र एवं धनुष को धारण करने वाले कुमार लव को बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया था। कुमार लव ने रोष से गद्गद भाषण करते

वाले होते हुए उन मुनि कुमारों से कहा—॥१८॥ इस क्षत्रिय की धृष्टता को आप लोग देखें और शीघ्रता करें जिसके भाल पत्र का राजा होकर अपने प्रताप एवं बल को लिख दिया है ॥१६॥ यह कौन राम और यह शत्रुघ्न कहा पर है ? स्वल्प बल का आश्रय लेने वाले ये कीट हैं। ये क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न हुए हैं क्या हम उत्तम नहीं हैं ? ॥२०॥ इसकी वीर का प्रसव करने वाली माता जानकी है और यह कुश से प्रसूत नहीं हुआ है जिसने कुश संज्ञा वाला रत्न अग्नि को अरणि की भांति धारण किया था ॥२१॥

इदानीं क्षत्रियत्वादि दर्शयिष्यामि सर्वतः ।
यदि क्षत्रियभूरेष भविष्यति च शत्रुहा ॥२२
गृहीष्यति मया बद्धं वाहंयज्ञक्रियोचितम् ।
नोचेत्क्षत्रत्वमुन्मुच्य कुशस्य चरणार्चकः ॥२३
अधुना मद्धनुर्मुक्तैः शरैः सुप्तो भविष्यति ।
अन्ये ये च महावीरा रणमण्डलभूषणाः ॥२४
इत्यादिवाक्यमुच्चार्य लवो जग्राहतं हयम् ।
तृणीकृत्य नृपान्सर्वांश्चापबाणधरोवरः ॥२५
तदा मुनिसुताः प्रोचुर्लवं हयजिहीर्षकम् ।
अयोध्यानृपती रामो महाबलपराक्रमः ॥२६
तस्य वाहं न गृह्णाति शक्रोऽपि स्वयलोद्धतः ।
मा गृहाण शृणुष्वेद मद्वाक्यं हितसयुतम् ॥२७
इत्युक्तं स श्रुतो कृत्वा जगाद स द्विजात्मजान् ।
यूयं बलं न जानीथ क्षत्रियाणां द्विजोत्तमाः ॥२८

मैं इसी समय में सब प्रकार से क्षत्रियत्वादि को दिखला दूंगा। यदि यह क्षत्रिय से समुत्पन्न होने वाला है तो यह शत्रु को हनन करने वाला हो जायगा ॥२२॥ मेरे द्वारा बांधे हुए इस यज्ञ कार्य के योग्य वाह को ग्रहण कर लेगा। नहीं तो क्षत्रियत्व का उन्मोचन करके कुश के चरणों का अर्चक होगा ॥२३॥ अभी मेरे धनुष से छोड़े हुए शरों से सुप्त हो जायगा। और जो अन्य महान् वीर हैं जोकि रण मण्डल

के भूषण स्वरूप हैं वे भी सब मेरे बाणों की मार से भूमि में प्रसुप्त हो जायगे। इस प्रकार कहते हुए लव ने उस अश्व को ग्रहण कर लिया चाप और बाणों को धारण करने वाले वीर ने उन रक्षा करने वाले राजाओं को एक तृण के समान समझ कर उनकीकुछ भी परवाह नही की थी ॥२४-२५॥ उस समय में मुनि कुमारों ने अश्व के हरण करने वाले कुमार लव से कहा था—अयोध्या के महाराज श्रीराम महान् बल और पराक्रम वाले नृप हैं ॥२६॥ उनके वाह को अपने बल पराक्रम से समुद्धत इन्द्र भी नही ग्रहण करता है। अतएव इस श्रीराम के यज्ञीय अश्व को तुम ग्रहण मत करो और हमारा हित समन्वित वचन श्रवण करो ॥२७॥ इस प्रकार के कथन को उसने श्रुतिगत करके वह कुमार लव उन द्विजो के आत्मजों से बोला—हे द्विजो मे उत्तमो ! आप लोग. क्षत्रियों के बल—पराक्रम को नही जानते हैं ॥२८॥

क्षत्रिया वीर्यशौण्डीर्या द्विजा भोजनशालिनः ।
तस्माद्यूयं गृहे गत्वा भुञ्जन्तु जननीहृतम् ॥२९
इत्युक्तास्तेऽभवंस्तूष्णीं प्रेक्षन्तस्तत्पराक्रमम् ।
लवस्य मुनिपुत्रास्तेसन्तस्थुर्दूरतोवहिः ॥३०
एवं व्यतिकरे वृत्ते सेवकास्तस्य भूपतेः ।
आयातास्तं हयं बद्धं दृष्ट्वा प्रोचुस्तदालवम् ॥३१
बबन्ध को हयमहो रुष्टः कस्य च धर्मराट् ।
को बाणं व्रजमध्यस्थः प्राप्स्यते परमां व्यथाम् ॥३२
तदा लवो जगादाशु मया बद्धोऽश्व उत्तमः ।
यो मोचयति तस्याशु रुष्टोभ्राता कुशो महान् ॥३३
यमः करिष्यति किमु ह्यागतोऽपि स्वयं प्रभुः ।
नत्वा गमिष्यति क्षिप्रं शरवृष्ट्या सुतोषितः ॥३४
इति वाक्यं समाकर्ण्य बालोऽयमिति तेऽब्रवन् ।
समागता मोचयितुं हयं बद्धं तु ये हरेः ॥३५

तान्वै मोचयितु प्राप्ताञ्छत्रुघ्नस्य च सेवकान् ।
कोदण्ड करयोर्धृत्वा क्षुरप्रान्समपूमुचत् ।।३६
ते छिन्नबाहव शोकाच्छत्रुघ्न प्रतिसङ्गता ।
पृष्टास्ते जगदु सर्व लवास्त्वभुजकृन्तनम् ।।३७

जो क्षत्रिय होते है वे वीय शौण्डीर्य हुआ करते है और जो द्विज होते है वे तो केवल भोजन करने की ही शोभा से सुसम्पन्न हुआ करते हैं। इसलिए आप लोग तो अपने-अपने घरो मे जाओ और जननी देवे उसे जाकर खाओ-पीओ ।।२६।। इस प्रकार से कह जाने पर वे मुनि कुमार सब चुप ही गये थे और उस कुमार लव के बल पराक्रम को देख रहे थे। वे मुनि पुत्र लव कुमार से दूर बाहिर जाकर सस्थित हो गये थे ।।३०।। इस प्रकार के इस व्यतिकर के हो जाने पर राजा के जो सेवक थे वे वहा पर आये और उन्होने उस अश्व को वहाँ बधा हुआ देखकर कुमार लव से उ होने कहा था ।।३१।। अहो ! यह अश्व यहा किसने बाध लिया है। जिसके ऊपर आज यमराज रुष्ट होगया है अर्थात् किसकी मौत निकट आगई है ? कौन ऐसा है जो वाणो के समूह मे मध्य मे परमाधिक व्यथा भोगना चाहता है अर्थात् किसको वाणो की मार खानी है ।।३२।। उसी समय कुमार लव ने कहा—यह उत्तम अश्व यहाँ पर मैंने ही बाँध लिया है जो इसको आज छुडाने आता है उस पर मेरा भाई कुश बहुत ही अधिक क्रोधित हो रहे हैं ।।३३।। यम-राज यहा आकर क्या करेगा ? यदि स्वय प्रभु भी आजावें तो वह भी क्या करेंगे ? मरे शरो की वृष्टि से सतुष्ट होकर शीघ्र प्रणाम करके यहाँ से चला जायेगा ।।३४।। शौन ने कहा—इस प्रकार से लव कुमार के द्वारा कहे हुए वाक्य का श्रवण करके वे सभी यह कहने लगे—'यह बालक है' जो लोग हरि के बाँधे हुए अश्व को छुडाने के लिये वहा पर आये थे उन्होने लव के वचन को एव बालक का ही कथन समझ लिया था ।।३५।। जो अश्व को छुडाने को वहाँ प्राप्त हुए थे और शत्रुघ्न के जो सेवक थे उन सब पर हाथो मे धनुष धारण करके क्षुरप्र (बाण) छोड़ दिये थे ।।३६।। उन सबकी भुजाएँ उन बाणो से कट गईं थी

और कटी हुई भुजाओं वाले वे सब शोक से शत्रुघ्न के समीप में पहुँचे थे। जब उनसे कारण पूछा गया तो उन्होंने लव के द्वारा अपनी बाहुओं के कट जाने का हाल बता दिया था ॥३७॥

॥ शत्रुघ्न के सेनापति कालजीत और लव का युद्ध ॥

शत्रुघ्नो निजवीराणां छिन्नबाहून्निरीक्षयन् ।
उवाच तान्सुकुपितो रोषसन्दशिताधरः ॥१
केन वीरेण वो बाहुकृन्तनं समकारि भोः ।
तस्याहं बाहूकृन्तामि देवगुप्तस्य वै भटाः ॥२
न जानाति महामूढो रामचन्द्रबलं महत् ।
इदानीं दर्शयिष्यामि पराक्रान्त्या बलं स्वकम् ॥३
स कुत्र वर्तते वीरो हयःकुत्र मनोरमः ।
को वाऽगृह्णात्सुप्तसर्पान्मूढोऽज्ञात्वा पराक्रमम् ॥४
इति ते कथिता वीरा विस्मिता दुःखिता भृशम् ।
रामचन्द्रप्रतिनिधिं बालकं समशंसत ॥५
सश्रुत्वा रोषताम्राक्षो बालकेन हयग्रहम् ।
सेनान्यं वै कालजितमाज्ञापयद्युयुत्सुकः ॥६
सेनानीःसकला सेना व्यूहयस्व ममाऽऽज्ञया ।
रिपुःसम्प्रति गन्तव्यो महाबलपराक्रमः ॥७

भगवान् शेष ने कहा—शत्रुघ्न ने अपने वीरों को कटी हुई भुजाओं वाले देखा तो उनको बड़ा क्रोध आया था और रोष से अपने होठों को काटते हुए कुपित होकर उन से कहा था—भो ! किस वीर ने आप लोगों के बाहुओं को काट डाला है ? हे भट गण ! मैं आज उसकी भुजाओं को काट डालूँगा चाहे कोई देवता भी उसकी रक्षा करने क्यों न चला आवे ॥१-२॥ वह कोई महान् मूढ व्यक्ति है जो श्रीराम चन्द्र के महान् बल-पराक्रम को नहीं जानता है। अब मैं आज अपने बल पराक्रम को पराक्रान्ति से उसे दिखला दूँगा ॥३॥ वह वीर

कहा पर विद्यमान् है और हमारे अश्वमेध यज्ञ का परम सुन्दर अश्व कहां पर बँधा हुआ है ? वह कौन महामूढ है जिसने बल पराक्रम को न जान कर सोते हुए सर्पों को ग्रहण कर लिया है ? ॥४॥ इस प्रकार से जब उन वीरो से कहा गया तो वे बहुत ही दुःखित हुए थे और फिर उन्होंने श्रीरामचन्द्र का प्रतिनिधि एक बालक को शत्रुघ्न के लिए बतलाया था ॥५॥ शत्रुघ्न ने एक बालक के द्वारा अश्व ग्रहण करने का समाचार ज्ञात किया तो रोष से उनके नेत्र इसको सुनकर लाल हो गये थे और फिर कालजित नाम वाले एक सेनानी को युद्ध करने के लिए आज्ञा प्रदान की थी ॥६॥ शत्रुघ्न ने कहा—अब मेरी आज्ञा से सेनानी सम्पूर्ण सेना की व्यूह रचना करें। अब यह शत्रु महान् बल और पराक्रम से युक्त ही होगा ॥७॥

नाय बालो हरिनूनं भविष्यति हयन्धरः ।
अथवा त्रिपुरारिः स्यान्नान्यथा मद्धयापहृत् ॥८
अवश्यं मदनं भावि संग्रस्य बलिनो महत् ।
स्वच्छन्दचारितः सेनान्यास्ते निर्भयधीश्चिराशुः ॥९
तत्र गन्तव्यमस्माभिः सन्नद्धैः रिपुदुर्जयैः ।
एतन्निशम्य वचनं शत्रुघ्नस्य स सैन्यपः ॥१०
सज्जीचकार सेना तां दुर्व्यूढां चतुरङ्गिणीम् ।
सज्जां तां शत्रुजिद्दृष्ट्वा चतुरङ्गयुतां वराम् ॥११
स वाक्यं पवितात्यर्थंभिन्न मुभटर्षेश्वर ।
चुकोप हृदतेऽत्यन्तं जगाद वचनं पुनः ॥१२
यस्मिन्कुले समुत्पत्तिः किन्नामासि च बालक ।
त्वन्नाम नाभिजानामि पुनः शील वयस्तथा ॥१३

यह इस हय का पकड़ने वाला कोई बालक नहीं है बल्कि यह निश्चय ही हरि हो होंगे अथवा त्रिपुरारि ही सकते हैं अन्यथा दूसरा कोई भी मेरे अश्व के हरण करने वाला हो ही नहीं सकता है ॥८॥ इस समय तो ऐसा ही ज्ञात होता है कि अवश्य ही इस महान् बल वाले सेना का संहार होने वाला है कर निर्भय बुद्धि वाला बालक अपने

स्वच्छन्द चरितो के द्वारा क्रीडा कर रहा है ।।८।। वहाँ पर तो रिपुओ के द्वारा दुर्जय हम सब को एकदम भली भाति तयार होकर चलना ही चाहिए । उस सेनापति ने शत्रुघ्न इस वचन का श्रवण करके उस अपनी दुर्व्यूढ चतुरगिणी सेना को सज्जीकृत किया था उस सज्जा(तैयारी) को जो कि चतुरग से समन्वित और परम श्रेष्ठ थी शत्रुघ्न ने स्वय ही अवलोकित किया था ।।१०-११।। भगवान् शेष ने कहा—वह सुभटो मे परम शिरोमणि सेनापति वज्र के तुल्य वाक्यो से भिन्न होकर हृदय मे अत्यन्त क्रोधित हुआ या और फिर वह यह वचन बोला था ।।१२।। कालजित् ने कहा—हे बालक ! आप तो हमको यह तो बतलादो कि आपकी उत्पत्ति किस कुल मे हुई है और आपका नाम क्या है ? मैं आप का नाम तक नही जानता हूँ और आपका कुल-शील तथा वय भी नही जान पाया हू ।।१३।।

पादचार रथस्थाऽहमधर्मेण कथ जये ।
तदाऽत्यन्त कुपितो जगाद वचन पुन ।।१४
कुलेन कि च शीलेन नाम्ना वा सुमनोहृता (वयसा भट्ट !) ।
लवोऽह लवत सर्वाञ्छ्यामि रिपुसैनिकान् ।।१५
इदानी त्वामपि भट्ट करिष्ये पादचारिणम् ।
इत्थमुक्त्वा धनु सज्य चकार स लवोबली ।।१६
टङ्कारयामास तदा वीरानाकम्पयन्हृदि ।
वाल्मीकि प्रथम स्मृत्वा जानकी मातर लव ।।१७
मदोन्मत्त महावेग सप्तधा प्रस्रवान्वितम् ।
गजारूढ तु त दृष्ट्वा दशभिर्धनुषोगतै ।।१८
बाणैर्विव्याध विहसन्सर्वोस्त्रिपुगणाञ्जयी ।
कालजित्तस्य वीर्यं तु दृष्ट्वा विस्मितमानस ।।१९
गदा मुमोच महती महायसविनिर्मिताम् ।
आपतन्ती गदा वेगाद्भारायुतविनिर्मिताम् ।।२०
त्रिधा चिच्छेद तरसा क्षुरप्रं स कुशानुज ।
परिघ निशित घोर वैरिप्राणहरोदितम् ।।२१

मुक्तं पुनस्तेन लवश्चिच्छेद तरसाऽन्वितः ।
छित्वा तत्परिघ घोरं कोपादारक्तलोचनः ॥२२
गजोपस्थे समारुढं मन्यमानश्चुकोप ह ।
तत्क्षणादच्छिनत्तस्य शुण्डा खड्गेन दन्तिनः ॥२३

मैं तो रथ पर स्थित हूँ और आप पादचारी हैं। मैं इस तरह अधर्म से आपको कैसे जीत सकूँगा ? तब तो सेनापति के इस वचन को श्रवण कर लव को बड़ा भारी क्रोध आगया था और फिर उन्होंने ये वचन कहे थे—लव बोले—हे अवस्था में भट ! आपको मेरे कुल–शील और सुमनोहृत् नाम से क्या प्रयोजन है अर्थात् इन सब के पूछने एवं जानने का इस युद्ध भूमि में कोई भी फल नहीं होता है। मैं लव हूँ और लव ही तुम्हारे इन शिशु सैनिकों को जीत लेगा ॥१४-१५॥ रही पादचारी की बात सो मैं अभी आपको भी पादचारी बनाये देता हूँ—इतना कह कर उस महान् बलवान् लव कुमार ने अपना धनुष सज्य कर लिया था ॥१६॥ फिर उस लव ने समस्त वीरों को हृदय में कँपाते हुए अपने धनुष की टङ्कार की थी। सबसे प्रथम उसने महर्षि वाल्मीकि का स्मरण किया था इसके उपरान्त अपनी माता जानकी का स्मरण किया था ॥१७॥ फिर उस लव कुमार ने मद से उन्मत्त—महान् वेग से युक्त—सात प्रकार से प्रस्नवान्वित—हाथी पर आरूढ़ उसको देखकर अपने धनुष से निकले हुए दस बाणों से समस्त रिपुगणों को हँसते हुए उस गज शीश का भेदन किया था। कालजित् रह गया और उसके मन में बहुत ही अधिक विस्मय हुआ था ॥१८-१९॥ कालजित् सेनानी ने महायस अर्थात् सार लोहे (स्टील) से बनाई हुई बड़ी भारी गदा का प्रयोग किया था। इस सहस्र भार वाली बड़े वेग से आती हुई गदा को देखकर उस कुश के अनुज लव ने बाणों से उस गदा को तीन स्थानों में टुकड़े कर दिये थे। इसके अनन्तर महा घोर एवं अधिक पैना परिघ उसने लव पर छोड़ा था जो कि वैरियों के प्राणों का निश्चित रूप से हरण करने वाला कहा गया है। उस परिघ को भी लव ने वेग से युक्त होकर छिन्न कर दिया था। उस घोर परिघ का छेदन करके कोप से

लाल नेत्रों वाले लव ने गज पर समारूढ उसको देखकर अत्यन्त क्रोध किया था और फिर उसी क्षण में अपने खग से उस हाथी की सूंड को काट दिया था ॥२०-२३॥

दन्तयोश्चरणौ धृत्वाऽरोह गजमस्तके ।
मुकुटं शतधा कृत्वा कवचं तु सहस्रधा ॥२४
केशेष्वाकृष्य सेनान्यं पातयामास भूतले ।
पातितःस्वगजोपस्थात्सेनानीः कुपितःपुनः ॥२५
हृदये ताडयामास मुष्टिना वज्रमुष्टिना ।
स आहतो मुष्टिभिस्तु क्षुरप्रान्निशिताञ्छरान् ॥२६
मुमोच हृदये क्षिप्रं कुण्डलीकृतधन्ववान् ।
स रराज रणोपान्ते कुण्डलीकृत चापवान् ॥२७
शिरस्त्रं कवचं विप्रदभेद्यं शरकोटिभिः ।
स विद्धः सायकैस्तीक्ष्णैस्त हन्तुं खड्गमाददे ॥२८
दशन्नोपास्त्वदशनाभिःश्वशन्नुच्छ्वसन्मुहुः ।
खड्गहस्तं समायान्तं शूरं सेनापतिं लवः ॥२६
चिच्छेद भुजमध्यं तुमखड्ग पाणिरापतत् ।
छिन्न खड्गधरं हस्तवीक्ष्यकोपाच्चमूपतिः ॥३०
वामेन गदया हन्तुं प्रचक्राम भुजेन तम् ।
सोऽपिच्छिन्नोभुजस्तस्यसाङ्गदस्तीक्ष्णसायकैः ॥३१

हाथी के दोनों दाँतों पर अपने चरण रख कर वह शिशु गज के मस्तक पर समारूढ होगया था, जो उस गज पर सेनापति बैठा था उसके मुकुट के सैंकडों और कवच के सहस्रों टुकडे कर दिये थे। फिर केशों को पकड़ कर उस सेनानी को भूमि पर डाल दिया था। उस गज की अम्बारी से गिराया हुआ वह सेनानी फिर बहुत ही अधिक कुपित हो गया था ॥२४-२५॥ उसने हृदय में वज्र जैसी प्रहार करने वाली मुट्ठी से उस पर ताड़ना की थी। इस तरह से वह मुष्टियों के प्रहारों से आहत हुआ और फिर उसने जो अत्यन्त निशित(पैने)जो सुरप्र थे वे निकाल लिए थे तथा शर निकाले थे ॥२६॥ उसने उन शरों को शीघ्र ही हृदय पर

छोड दिया था। वह उस समय मे उस रणक्षेत्र मे अपने चाप को कुण्डली कृत करने वाला वह बहुत अधिक शोभित हो रहा था ॥२७॥ करोडों शरो से भी जो भेदन करने के योग्य नही था ऐसे कवच और शिरस्त्र को धारण करने वाला भी वह उन परम तीक्ष्ण सायकों के द्वारा विद्ध हो गया था और उसको हनन करने के लिए उसने खग को ग्रहण कर लिया था ॥२८॥ कुमार लव ने उस सेना पति को अपनी तरफ आते हुए देखा था जिसके हाथ मे खग था और अत्यन्त क्रोध के आवेश मे आकर अपने दाँतो से होठों का काट रहा था तथा बारम्बार ऊँचे-नीचे श्वास ले रहा था ॥२९॥ उस कुमार लव ने अपने शरो से खड्ग के सहित उसकी भुजा को मध्य भाग मे से काट डाला था और वह तलवार लिये हुए ही हाथ नीचे गिर गया था। कटे हुए और खग को धारण किए हुए अपने हाथ को जब उस सेनापति ने देखा तो उसे बडा भारी क्रोध आया था ॥३०॥ फिर उस कुमार को अपनी वाम भुजा से गदा लेकर हनन करने का उपक्रम किया था किन्तु कुमार के तीक्ष्ण बाणों से वह भुजा भी अ गद के सहित कट गयी थी ॥३१॥

सर्वे निपतिता वीरा न केचिज्जीवितास्ततः।
लवो जय रणे प्राप्य वैरिवृन्द विजित्य च ॥३२

अन्यागमनशङ्काया मन कुर्वन्नवैक्षत।
केचिदुर्वरिता युद्धाद्भाग्येन न रणे मृता. ॥३३

शत्रुघ्नसविधे जग्मु शसितु वृत्तमद्भुतम्।
गत्वा ते कथयामासुर्यथावृत्त रणाङ्गणे ॥३४

कालजिन्निधनवालाच्छिन्नकारिरणोद्यमम्।
तच्छ्रुत्वा विस्मय प्राप्त शत्रुघ्नस्तानुवाच ह ॥३५

हसन्नोपादृदशन्दन्तान्वालग्राहहय स्मरन्।
रे वीरा किं मदोन्मत्ता यूय किम्वाछलग्रहा ॥३६

किम्वा वैकल्यमायात कालजिन्मरणं कथम्।
यः शङ्क्ये वैरिवृन्दाना दारणः समितिञ्जय

त कथं बालको जीयाद्यमस्यापिदुरासदम् ।
शत्रुघ्नवाक्यमश्रुत्यवीरा.प्रोचुरसृवप्लुता ॥३८
नास्माकं मदमत्तादि न च्छलो न च देवनम् ।
कालजिन्मरणं सत्यं लवाज्जानीहि भूपते ! ॥३९

कुमार लव ने सभी वीर निपातित कर दिये थे। उस युद्ध मे कोई भी जीवित नही बचे थे। लव ने उस रण मे जय प्राप्त करली थी और समस्त वैरियो के समुदाय को जीत कर पराजित कर दिया था। ॥३२॥ फिर लव ने अन्य किसी के आगमन की शका मे मन करते हुए देखा था। उस युद्ध मे भाग्य वश कुछ लोग जीवित भी बच गये थे और उनकी मृत्यु नही हुई थी ॥३३॥ ये शेष बचे हुए सैनिक शत्रुघ्न के समीप मे गये थे और उस परम अद्भुत युद्ध के वृत्त को कहने के लिये वे वहा पहुँचे थे। वहाँ जाकर उन सैनिको ने रणक्षेत्र मे जो भी जैसा कुछ हुआ था वह सभी समाचार कह कर शत्रुघ्न को सुना दिया था ॥३४॥ उस एक साधारण छोटे बालक से कालजित् की मृत्यु का समाचार, एक विचित्र ही युद्ध का उद्यम था इसका श्रवण करके शत्रुघ्न को बहुत ही अधिक विस्मय हुआ था। इसके उपरान्त शत्रुघ्न ने उनसे कहा था ॥३५॥ हँसते हुए, रोप से दाँतो को पीसते हुए, बालक के द्वारा घोड़े का बाँध लेना—इन सब बातो का स्मरण करते हुए शत्रुघ्न ने कहा—हे वीरो ! क्या आप लोग मद से उन्मत्त होगये हैं ? अथवा किसी ने आप लोगो के साथ यह छल किया है ? अथवा आप लोगो को कुछ विकलता उत्पन्न होगई है ? कालजित् का मरण कैसे हो गया है ? जो कालजित् युद्धस्थल मे शत्रुओ के समुदाय के लिये बहुत ही दारुण था और समिति का जय करने वाला था ॥३६-३७॥ जो यम राज को भी अत्यन्त दुरासह वीर था उस कालजित् भट को उस बालक ने कैसे जीत लिया था ? शत्रुघ्न के इस वचन को सुन कर रक्त से लथ पथ होते हुए वीरो ने शत्रुघ्न से कहा—॥३८॥ न तो हमको मदोन्माद आदि कुछ है—न कोई भी किसी प्रकार का

छल ही है और न देवन ही है। कालजित् का मरण तो बिल्कुल ही सत्य है। इसको लव से हे राजन्! जान सकते हैं ॥३८॥

॥ शत्रुघ्न तथा लव का संग्राम ॥

मूर्च्छित मारुतिं श्रुत्वा शत्रुघ्नः शोकमाययौ ।
किं कर्तव्यं मया संख्ये बालकोऽयं महाबलः ॥१
स्वयं रथे हेममये तिष्ठन्वीरवरैः सह ।
योद्धुं प्रागाल्लवो यत्र विचित्ररणकोविदः ॥२
कस्त्वं बाल! रणेऽस्माकं वीरान्पातयसि क्षितौ ।
न जानीषे बलं राज्ञो रामस्य दनुजार्दिनः ॥३
का ते माता पिता कस्ते सुभाग्यो जयमाप्तवान् ।
नाम किं विश्रुतं लोके जानीयां ते महाबल! ॥४
मुञ्च बाहू कथं बद्ध द्विषुत्यात्तदक्षमामितं ।
आयाहि राम वीक्षस्व दास्यते बहुलं तव ॥५
इत्युक्तो बालको वीरो वचः शत्रुघ्नमादरात् ।
किं ते नाम्नाऽथ पित्रा वा कुलेन वयसा तथा ॥६
युध्यस्व समरे वीर! चेत्त्वं बलयुतोभवः ।
कुश वीर नमस्कृत्य पादयोर्याहि नान्यथा ॥७

भगवान् शेष ने कहा—जिस समय में यह मालूम हुआ कि हनुमान् मूर्च्छित हो गये हैं तो शत्रुघ्न को बड़ा भारी शोक हुआ था। शत्रुघ्न ने मन में विचार किया कि मुझे इस युद्ध में क्या करना चाहिए। यह बालक तो महान् बलशाली है ॥१॥ इसके अनन्तर शत्रुघ्न स्वयं सुवर्ण मय एक रथ में समारूढ़ होकर श्रेष्ठ वीरों को साथ में लेकर युद्ध करने के लिए वहाँ पर पहुँच गये थे जहाँ पर विचित्र रण विद्या के पण्डित लव कुमार स्थित थे ॥२॥ शत्रुघ्न ने लव से कहा—हे बच्चे! तुम कौन हो? तुमने हमारे बड़े २ वीरों को रणाङ्गन में मार गिराया है। क्या तुम दनुजों के मर्दन करने

वाले राजा श्रीराम का बल-पराक्रम नहीं जानते हो ? ।।३।। यह बताओ, तुम्हारी माता कौन है और तुम्हारे पिता का क्या नाम है। तुम बहुत ही सौभाग्य शाली हो कि तुमने युद्ध में विजय प्राप्त की है। तुम्हारा क्या नाम इस लोक में प्रख्यात है। हे महान् बल वाले! मुझे यह बतलादो ।।४।। तुम इस यज्ञ के अश्व को छोड दो। तुमने क्यों बाध लिया है। क्योंकि तुम एक छोटे से बच्चे हो अतएव शिशुत्व समझ कर मैं तुम्हारे इस अपराध को क्षमा करता हूँ। चलो, यहां हमारे साथ आओ, श्रीराम का दर्शन करो। वे तुमको बहुत कुछ प्रदान करेंगे ।।५।। इस प्रकार से शत्रुघ्न के द्वारा कहे जाने पर उस बालक ने आदर पूर्वक शत्रुघ्न से यह वचन कहे थे। आपको मेरे नाम, मेरे पिता के नाम-मेरा कुल और मेरी अवस्था से क्या प्रयोजन है ? हे वीर! यदि आप बलशाली वीर हैं तो मुझसे समर में युद्ध कर लीजिये। वीर कुश को नमस्कार करके उनके चरणों मे मस्तक झुका कर चले जाइये अन्यथा कोई मार्ग नही है ।।६-७।।

भ्राता रामस्य वीरोऽभूर्नावयोर्वलिनांवरः ।
वाहंविमोचय बलाच्छक्तिस्ते विद्यते यदि ।।८
इत्युक्त्वा शरसन्धानं कृत्वा प्राहरदुद्भटः ।
हृदये मस्तके चैव भुजयो रणमण्डले ।।६
तदा प्रकुपितो राजा धनुः सज्यमथाकरोत् ।
नादयन्मेघगम्भीरं त्रासयन्निव बालकम् ।।१०
बाणानपरिसङ्ख्यातान्मुमोच बलिनां वरः ।
बालो बलेन चिच्छेद सर्वास्तान्सायकव्रजान् ।।११
लवस्यानेकधा मुक्तैर्वाणैर्व्याप्तं महीतलम् ।
व्यतीपाते प्रदत्तस्य दानस्येवाक्षयंगताः ।।१२
ते बाणा व्योमसकलं व्याप्नुवंल्लवसंहिताः ।
सूर्यमण्डलमासाद्य प्रवर्तन्ते समन्ततः ।।१३
मारुतेनाविशद्यत्र बाणपञ्जरगोचरे ।
मनुष्याणां तु का वार्ता क्षणजीवितशंसिनाम् ।।१४

हम दोनो के सामने राम का भाई बलियो मे कोई श्रेष्ठ नही हो सकता है । अश्व को यदि छुड़ाना है तो अपने बल-विक्रम से उसका विमोचन करा लेवे । यदि आप मे ऐसी शक्ति विद्यमान है अन्यथा अश्व नही छोडा जायगा ।।८।। इतना कह कर उसने शर का सन्धान करके हृदय मे—मस्तक मे— भुजाओ मे और रण मण्डल मे प्रहार कर दिया था ।।६।। उस समय मे राजा ने भी अपना धनुष सज्य कर दिया था और मेघ के समान गम्भीर गर्जना करके तथा बालक को त्रास दिखलाते हुए धनुष के ऊपर बाण चढा लिया था ।।१०।। बल शालियो मे परम श्रेष्ठ शत्रुघ्न ने अपरि सख्या वाले बाणो को उस पर छोड दिया था किन्तु उस बालक ने भी अपने बल विक्रम से उन सम्पूर्ण बाणो के समुदाय को काट डाला था ।।११।। लव के द्वारा अनेक छोडे हुए बाण तो महीतल मे व्याप्त हो गये थे जिस तरह किसी व्यतीपात के अवसर पर दिया हुआ दान अक्षय पुण्य-फल वाला ही जाया करता है ।।१२।। लव के द्वारा छोडे हुए वे बाणो के समुदाय सम्पूर्ण व्योम मे व्याप्त होते हुए सूर्यमण्डल मे प्राप्त होगये थे और सभी ओर प्रवृत्त हो रहे थे ।।१३।। जहाँ पर वायु का प्रवेश होता है वही पर बाणों का पञ्जर दिखलाई दे रहा था । विचारे मनुष्यो की तो बात ही क्या है जो एक क्षण मात्र मे ही अपना जीवित रखने वाले होते हैं । तात्पर्य यह है कि थोडा सा जीवन धारण करने वाले और एक ही क्षण मे जीवन को नष्ट कर देन वाले मनुष्य हुआ करते हैं ।।१४।।

तद्बाणान्विस्तृतान्दृष्ट्वाशत्रुघ्नो विस्मयगतः ।
अच्छिनच्छतसाहस्र बाणमोचनकोविदः ।।१५
तान्छिन्नान्सायकान्सर्वान्स्वीयान्दृष्ट्वा कुशानुज ।
धनुश्चिच्छेद तरसा शत्रुघ्नस्य महीपतेः ।।१६
सोऽन्यद्धनुरुपादाय यावन्मुञ्चति सायकान् ।
तावद्बभञ्जस रथं सायकैःशिनपर्वभि ।।१७
करस्यमच्छिनच्चापं सुदृढ गुणपूरितम् ।
तत्कर्म पूजयन्वीरा रणमण्डलवर्तिनः ।।१८

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अन्य रथं समास्थाय ययौ योद्धुं लव बलात् ॥१९
अनेकबाणनिर्भिन्नः स्रवद्रक्तकलेवरः ।
पुष्पितःकिंशुक इव शुशुभे रणमध्यगः ॥२०
शत्रुघ्नबाणप्रहत परकोपमुपागमत् ।
बाणसन्धानचतुरः कुण्डलीकृतचापवान् ॥२१
विशीर्णकवच देह शिरो मुकुटवर्जितम् ।
स्रवद्रक्तपरिप्लुष्ट शत्रुघ्नस्य चकार सः ॥२२

उस शिशु लव कुमार के उन विस्तृत बाणों को देख कर शत्रुघ्न को बड़ा भारी विस्मय होगया था जो कि अच्छिन्न सैंकड़ो और सहस्रों बाणो के छोड़ने मे बड़ा ही प्रवीण पण्डित था ॥१५॥ उस कुश के छोटे भाई ने उन अपने छिन्न समस्त अपने सायकों को देखकर बड़े ही वेग से राजा के धनुष को ही छिन्न कर दिया था ॥१६॥ उस शत्रुघ्न ने जब तक अपना दूसरा धनुष उठा कर बाणो के छोड़ने का उपक्रम किया था तब तक तो उस कुमार लव ने अपने शित पर्वों वाले बाणो से उसके रथ का भञ्जन कर दिया था ॥१७॥ जो उस राजा शत्रुघ्न के हाथ मे स्थित परम सुदृढ एवं गुण से पूरित जो चाप था उसको भी छिन्न कर दिया था। ऐसे कर्म करने वाले उसका रण मण्डल मे रहने वाले वीरो ने बहुत ही सत्कार किया था ॥१८॥ वह राजा शत्रुघ्न जिसका धनुष छिन्न हो गया था, रथ से हीन अश्व जिसका मर गया था और सारथि भी नष्ट होगया था, अन्य एक रथ मँगवा कर उस पर समारूढ हुआ था और लव के साथ बल पूर्वक युद्ध करने के लिये युद्ध स्थल मे गया था ॥१९॥ लव के द्वारा छोड़े हुए अनेक बाणो से शत्रुघ्न विद्ध होगया था। उसके शरीर से रक्त का प्रवाह निकल रहा था। उस समय मे शत्रुघ्न का शरीर ऐसा प्रतीत हो रहा था रण के मध्य मे कोई खिले हुए पुष्पो वाला ढाक का वृक्ष हो क्योंकि ढाक के फूल भी रक्त के ही समान लाल होते हैं ॥२०॥ शत्रुघ्न के बाणों मे प्रहत होकर वह लव अत्यन्त क्रोध मे भर गया था और बाणो के सन्धान

करने में परम चतुर उसने अपने धनुष को कुण्डलाकार कर लिया था ॥२१॥ उस लव ने शत्रुघ्न को विशीर्ण कवच वाला कर दिया था अर्थात् कवच को तोड दिया था। शत्रुघ्न के मस्तक का मुकुट काट कर तोड डाला था अतएव उसका मस्तक बिना ही मुकुट वाला नगा हो गया था और शत्रुघ्न के सम्पूर्ण शरीर को बाणों से छिन्न-भिन्न कर ऐसा कर दिया था कि उससे सब जगह रक्त बह रहा था और रुधिर से पूरा लथ पथ हो गया था ॥२२॥

इदानी पश्य मे वीर्यं त्वा सङ्ख्ये पातयाम्यहम् ।
सहस्व बाणमेक त्वं मा पलयस्व बालक ! ॥२३
इत्युक्त्वा समरे बालं शरमेक समाददे ।
यमवक्त्रसमं घोरं लवणो येन घातितः ॥२४
सन्धायबाण निशित हृदिभेत्तुं मनोदधत् ।
लवं वीरसहस्राणा वह्निवत्सर्वदाहकम् ॥२५
▪ बाण प्रज्वलन्त स द्योतयन्त दिशोदश ।
दृष्ट्वा सस्मार वलिन कुश वैरिनिपातिनम् ॥२६
यद्यस्मिन्समये वीरो भ्रातास्याद्वलवान्मम ।
तदा शत्रुघ्नवशता न मे स्याद्भयमुल्बणम् ॥२७
एव तर्कयतस्तस्तस्यलवस्य च महात्मनः ।
हृदिलग्नो महाबाणो घोरःकालानलोपम. ॥२८
मूर्च्छां प्राप तदा वीरो भूपसायकसहनः ।
सङ्गरे सर्ववीराणा शिरोभि.समलङ्कृते ॥२९

क्रोध के महान् आवेश मे भर कर शत्रुघ्न ने उस बालक लव से कहा—हे बालक ! अब तू मेरा वीर्य देख, मैं इस रण स्थल मे तुमको गिराता हूँ। तू मेरा अब एक ही बाण सहन करने को तैयार हो जा। अब तू यहाँ से भाग मत जाना ॥२३॥ यह कह कर उस युद्ध मे उस बालक पर वह एक ही बाण छोडा था जो यमराज के मुख के ही समान प्राण हर जाने वाला महान् दारुण था और जिससे लवणासुर को भी निहत किया था ॥२४॥ उस बाण का सन्धान करके जो अत्यन्त

ही निश्चित था शत्रुघ्न ने उस बालक के हृदय में वेधन करने का मन में विचार किया था जो वाण सहस्रों वीरों को अग्नि की भाँति दग्ध कर देने वाला था ।।२५।। उस जाज्वल्यमान बाण को देखकर जो दशों दिशाओं को प्रद्योतित् कर रहा था उस कुमार लव ने वैरियों के निपात करने वाले अत्यन्त बलवान् अपने भाई कुश का स्मरण किया था ।।२६।। यदि आज इस समय में अत्यन्त बलशाली परम वीर मेरा भाई कुश होता तो अब यह शत्रुघ्न के वश में आजाता और अत्यन्त उल्वण भय का उत्पन्न होना नहीं होता ।।२७।। वह वीर कुमार लव इस प्रकार से मन में तर्कना ही कर रहा था कि उस महान् आत्मा वाले लव के हृदय में वह बाण लगा था। वह महाबाण था और परम घोर कालाग्नि के ही समान भीषण था।।२८।।उसी समय वह वीर लव मूर्च्छा को प्राप्त होगया था और राजा शत्रुघ्न के बाण से अच्छी तरह हत होगया था। उस युद्ध स्थल में वह मूर्च्छित होकर पड गया था जहां बड़े २ वीरों के मस्तक कट-कट कर पड़े हुए उस भूमि को भूषित कर रहे थे ।।२९।।

।। लव को मूर्च्छित देखकर सीता का शोक ।।

लवं विमूर्छितं दृष्ट्वा वलिवैरिविदारणम् ।
शत्रुघ्नो जयमापेदे रणमूर्ध्नि महावलः ।।१
लवं बालं रथे स्थाप्य शिरस्त्राणाद्यलङ्कृतम् ।
रामप्रतिनिधिं मूर्त्या ततो गन्तुमियेष सः ।।२
स्वमित्रं शत्रुणाग्रस्तमितिदुःसमन्विताः ।
बालामात्रेऽस्य सीतायै त्वरिता.संन्यवेदयन् ।।३
मातार्जानकि ! ते पुत्रो बलाद्वाहमपाहरत् ।
कस्यचिद्भूपवर्यस्य बलयुक्तस्य मानिनः ।।४
ततो युद्धमभूद्घोर तस्य सैन्येन जानकि ! ।
तदा वीरेण पुत्रेण तव सर्वं निपातितम् ।।५

पश्चादपि जयंप्राप्तःसुतस्तव मनोहरः ।
त भूप मूर्च्छितं कृत्वा जयमाप रणाङ्गणे ॥६
ततो मूर्च्छां विहायप राजा परमदारुण ।
सङ्कुप्य पातयामास तवपुत्रं रणाङ्गणे ॥७
अस्माभिर्वारित. पूर्वं मा गृहाण हयोत्तमम् ।
अस्मान्सर्वाश्च धिक्कृत्य ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥८

भगवान् शेष ने कहा—लव को विशेष रूप से मूर्च्छित देखकर जो कि बड़े २ बलवान् वैरियो को विदीर्ण करने वाला था उस रण मे शत्रुघ्न ने जय प्राप्त की थी जो कि शत्रुघ्न महान् बलवीर्य से समन्वित थे ॥१॥ इसके अनन्तर सिरस्त्राण आदि धारी लव को रथ मे बैठाया मूर्त्ति से श्रीराम का ही वह प्रतिनिधि था उसने भी वहां जाने की इच्छा की थी ॥२॥ अपने मित्र को शत्रु के द्वारा ग्रस्त देखकर अत्यन्त दुखित हुए सब बालको न शीघ्रता से युक्त होकर लव की माता सीता जी से जाकर यह सब वृत्तान्त कह सुनाया था ॥३॥ बालको न कहा—हे माता जानकी देवि ! आपके पुत्र लव कुमार ने बल पूर्वक अश्वमेध के अश्व का अपहरण किया था जोकि किसी महान् बल से सम्पन्न मानी राजाओं मे श्रेष्ठ का अश्व था ॥४॥ हे माता जानकि ! इसके पश्चात् उस राजा की सेना से बड़ा भारी घोर युद्ध हुआ था । उस युद्ध मे आपके वीर पुत्र न अपने अस्त्रो स सबको मार गिराया था ॥५॥ इसके पश्चात् आपके पुत्र ने जोकि परम मनोहर है विजय प्राप्त करली थी और रण क्षेत्र म उस राजा को मूर्च्छित करके जय का लाभ लिया था ॥६॥ किन्तु इसके अनन्तर यह हुआ कि उस राजा ने मूर्च्छा का त्याग करके बहुत क्रोध किया था और परम दारुण उसने आपके पुत्र को रण भूमि म गिरा दिया है ॥७॥ हमने पहिले ही लव को इस कर्म के करने से रोका था और इससे कह दिया था कि इस अश्व को ग्रहण मत करो किन्तु हम सब वेदो के ज्ञाता ब्राह्मण बालको का इसने तिरस्कार करके अश्व को बलात् हठ करके ग्रहण करके बांध ही लिया था । हमारा वचन इसने कुछ भी नहीं माना था ॥८॥

इतिवाक्यं शिशूनां सा समाकर्ण्य सुदारुणम् ।
पपात भूतलोपस्थे दुःखयुक्ता रुरोदह॥६
कथं नृपो दयाहीना बालेनसह युध्यति ।
अधर्मकृतदुर्बुद्धियों मद्बालं न्यपातयत् ॥१०
लववीर ! भवान्कुत्र वर्त्ततेऽतिबलान्वितः ।
कथंत्व निष्कृपस्याहो राज्ञाऽहार्षीर्हयोत्तमम् ॥११
त्वं बालस्ते दुराक्रान्ताः सर्वशस्त्रविशारदाः ।
रथस्था विरथस्त्वं वै कथं युद्धं समं भवेत् ॥१२
तातांहतु त्वयामाद्य रामत्यागा सुखं जहौ ।
इदानीं रहिता युष्मत्कथं जीवामि कानने ॥१३
एहि मां मुञ्च यज्ञाश्व गच्छत्वेष महीपतिः ।
मद्दुःख नाभिजानासि मम दुःखप्रमार्जकः ॥१४

इस तरह से जब उन ब्राह्मण बालकों ने कहा तो उन वचनों का श्रवण करके जोकि बहुत ही दारुण थे जानकी जी अतिशय दुःख में भर कर भूतल पर गिर पडीं और रुदन करने लगी थीं ॥६॥ सीता ने कहा—यह कैसा दया से हीन राजा है जो एक बहुत ही छोटे से शिशु के साथ युद्ध करता है ? वह राजा बहुत ही अधर्म करने वाला और परम दुष्ट बुद्धि वाला है जिसने मेरे इस छोटे से शिशु को गिरा दिया है ॥१०॥ जानकी जी ने कहा—हे वीर लव ! तुम तो अत्यन्त बल से सम्पन्न हो । आप इस समय कहाँ पर हैं ? तुमने क्यों ऐसे निर्दयी राजा के अश्व का आहरण किया था ? ॥११॥ तू तो एक छोटा सा बालक ही था और वे बड़े दुराक्रान्त थे तथा सभी शस्त्रास्त्रों की विद्या के पूर्ण ज्ञाता थे । वे सभी अपने २ रथों में स्थित होंगे और तू तो बिना ही रथ वाला पैदल ही था । तुम्हारा और उस राजा के सेनानियों का सम युद्ध कैसे हो सका होगा ? ॥१२॥ हे तात ! मैं तो श्रीराम के त्याग से बहुत ही दुःखित थी किन्तु तुम्हारे ही साथ में रह कर अपना समय यापन कर रही थी । इस समय में मैं तुमसे भी रहित हो गई हूँ तो फिर इस कानन में किस तरह जीवित रह सकूँगी ?

बेटा ! तुम यहा आओ और उस अश्व को छोड दो। यह राजा चला जावे। मेरे दु ख का प्रमार्जन करने वाले तुम ही हो। क्या तुम मेरे इस महान् दु ख को नही जानते हो ? ॥१३-१४॥

कुशो यद्यभविष्यत्स रणे वीरशिरोमणिः।
अमोचयिष्यदधुना भवन्त भूपपार्श्वतः ॥१५
सोऽपि मद्दैवतो नास्ति समीपे किं करोम्यतः।
दैवमेव ममाप्यत्र कारण दु.खसम्भवे ॥१६
एवमादि बहुश्रीमत्येषा वै विललाप ह।
पादाङ्गुष्ठेन लिखती भूमि नेत्रद्वयाश्रुभि. ॥१७
बालान्प्रति जगादासौ पृथुका.स च भूपति.।
कथं मत्सुतमापात्य रणे कुत्र गमिष्यति ॥१८
इति वाक्य वदत्येषा जानकी पतिदेवता।
तावत्कुशस्तु सम्प्राप्त उज्जयिन्या महर्षिभिः ॥१९
माघासितचतुर्दश्या महाकाल समर्च्य च।
प्राप्य भूरिवरास्तस्मादागमन्मातृसन्निधौ ॥२०
जानकी विह्वला दृष्ट्वा नेत्रोद्भूताश्रुविक्लवाम्।
शोकविह्वलदीनाङ्गी बभाषे यावदुत्सुक ॥२१

यदि इस समय मे कुश होता तो वह रण मे वीरो मे परम शिरोमणि था, इस समय मे राजा के पास से वह तुमको छुडा लेता ॥१५॥ वह भी मेरे दुर्भाग्य से इस समय मे मेरे पास मे नही है इसलिये अब मैं क्या करूँ ? यहा पर मेरा दैव भी इस दु ख के उत्पन्न होने मे एक कारण हो रहा है ॥१६॥ इस प्रकार से अपने हार्दिक दु खोद्गार को प्रकट करती हुई वह श्रीमती जानकी विलाप कर रही थी और अपने पैर के अगूठे से नेत्रो से निकले हुए आसुओ के द्वारा भूमि पर लिखती जा रही थी ॥१७॥ फिर वह उन बालको से बोली बच्चो ! उस राजा ने क्यों और कैसे मेरे पुत्र को रण में निपातित किया, अब वह कहां जायगा ? ॥१८॥इस प्रकार से वह जानकी देवी यह वाक्य कह ही रही थी जिसका कि पति ही एक देवता था उसी

बीच मे महर्षियों के साथ उज्जयिनी पुरी से कुश वहा पर आगया था।१९। माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन महा कालेश्वर की अर्चना करके उनसे बहुत से अच्छे २ वरदान प्राप्त करके अपनी माता के समीप मे कुश आकर उपस्थित होगया था ।।२०।। जानकी माता को उसने अत्यन्त विह्वल देखा था जोकि नेत्रो से अश्रुपात करने से बहुत ही विक्लव युक्त थी। शोक से अत्यन्त विह्वल और हीन अंगो वाली उसे देख कर जैसे ही अत्यन्त उत्सुकता से युक्त होकर वह कुश बोला था ।।२१।।

तदा स्वबाहुरवदत्स्फुरन्युद्धाभिशंसनः ।
हृदये च रणोत्साहो बभूवतिरथस्य हि ।।२२
स प्रत्युवाच जननी दीनगद्गदभाषिणीम् ।
मातस्तव गत दु:ख मयि पुत्र उपस्थिते ।।२३
मयि जीवति ते नेत्रादश्रूणि भुवि नोऽपतन् ।
प्रत्वं चोवाचाश्रुखिन्ना दीनगद्गदभाषिणीम् ।।२४
कुशो दुःखमितःसद्यो दु:खितां वीरमानसः ।
मम भ्राता लवःकुत्र वर्तते वैरिमर्दन ।।२५
सदा मामागतं ज्ञात्वा प्रहर्षन्सन्निधावियात् ।
न दृश्यते कथं वीर.कुत्रस्तु गतोबली ।।२६
केन वा सह बालत्वाद्गतो मा वै निरीक्षितुम् ।
किं त्व रोदिषि मे मातर्लवः कुत्र स वर्तते ।।२७
तन्मे कथय सर्वं यत्तव दु:खस्य कारणम् ।
तच्छ्रुत्वा पुत्रवाक्य सा दुःखिता कुशब्रवीत् ।।२८

उसी समय में उसकी बाहु मे स्फुरण हुआ जो कि युद्ध करने का संकेत दे रहा था। उसके हृदय मे जो कि अतिरथी था रण का उत्साह उमग आया था ।।२२।।उस कुश ने परम दीन और गद्गद भाषण करने वाली माता से कहा था—हे माता ! अब आपका दु ख सब समाप्त हो गया ही समझो क्योकि मैं आपका पुत्र अब यहा उपस्थित होगया हूँ ।।२३।। मेरे जीवित रहते हुए अब आपके नेत्रो से अश्रुपात नही

होगा—इस तरह से उस महावीर कुश ने परम दीन और गद्गद कण्ठ से भाषण करती हुई अपनी माता से विनम्र निवेदन किया था ।२४।। कुश ने कहा अब यहां से आगे कोई भी दुःख नहीं होगा अतः आप दुःखित न हो। धीर मन वाले कुश ने माता से पूछा मेरा भाई लव इस समय कहां पर है जो शत्रुओं के मर्दन करने वाला है ।।२५।। सर्वदा वह जब भी यह जान जाता था कि मैं यहां आगया हूँ तो वह बड़ा ही हर्षित होता हुआ मेरे समीप में आजाया करता था। इस समय वह वीर यहां दिखलाई नहीं देता है। क्या कहीं वह बलवान् रमण करने के लिए चला गया है ।।२६।। वह किसके साथ चला गया है ? क्या वह मुझसे मिलने के लिये बचपन के कारण कहीं नहीं चला गया है ? हे माता ! आप इस समय में रुदन क्यों कर रही हैं। वह लव कहां है—बताओ ।।२७।। हे जननि ! आप वह सब मुझ से कहो जो भी इस समय में तुम्हारे दुःख का कारण हो। इस प्रकार से पुत्र कुश के द्वारा कहे हुए वाक्य को सुनकर परम दुःखित वह माता जानकी कुश से कहने लगी थी ।।२८।।

लवोधृतो नृपेणात्र केनचिद्धयरक्षिणा ।
प्रबन्ध बालको मेऽस हयं यागक्रियोचितम् ।।२६
तद्रक्षकान्बहूञ्जित्य एकोऽनेकाग्निपूरुस्थली ।
राजा त मूर्च्छितं कृत्वा बबन्ध रणमूर्धनि ।।३०
बालका इति मामूनु सहगन्तार एव हि ।
ततोऽहं दुःखिता जाता निशम्य लवमाधृतम् ।।३१
त्वं मोचय बलात्तस्मात्काले प्राप्तो नृपोत्तमात्
निशम्य मातुर्वचनं कुशःकोपसमन्वितः ।
जगाद तां दशन्नोष्ठं दन्तैर्दन्तान्विनिष्पिषन् ।।३२
मातर्जानीहि तं मुक्तं लवं पाशस्य बन्धनात् ।
इदानीं हन्मि तं बाणैःसमग्रबलवाहनम् ।।३३
यदि देवोऽमरो वापि यदि शर्वःसमागतः ।
तथापि मोचये तस्माद्बाणैर्निशितपूर्वभिः ।।३४

जानकी देवी ने कहा—किसी अश्व की रक्षा करने वाले राजा ने लव को पकड़ लिया है। मेरे बालक ने यहाँ पर यज्ञ कर्म के योग्य अश्व को बाँध लिया था ॥२९॥ इस अकेले ही बालक ने बहुत से शत्रुओं को अपने बल से जो कि उस अश्व के रक्षक थे जीत लिया था किन्तु इसके उपरान्त उस राजा ने रणक्षेत्र मे उसको मूर्च्छित करके बाँध लिया था ॥३०॥ जो बालक उसके साथ गमन करने वाले थे उन सब ने यहाँ आकर मुझसे कहा था तभी से अत्यन्त दुःखित होगई हूँ कि लव आवृत्त होगया है यह सुन कर मुझे बड़ा ही दुःख है ॥३१॥ अब तुम जाकर उसे वहा पर पर बलपूर्वक उस नृप से छुड़ाओ क्योंकि तुम इसी काल मे यहाँ आगये हो । माता के यह वचन श्रवण कर कुश को बड़ा भारी क्रोध उत्पन्न होगया था और फिर अपने दाँतों से ओष्ठों को काटते हुए और दाँतो से दाँतों को पीसते हुए उसने अपनी माता से कहा था —कुश बोला—हे माता ! तू अब उस लव को पाश बन्धन से मुक्त हुआ ही समझले । मैं अभी उसको समग्र बल और वाहनो के सहित हनन किये देता हूँ ॥३२-३३॥यदि वह कोई देवता हो, या अमर हो अथवा साक्षात् शर्व ही क्यों न हो तो भी मैं उससे अपने बाणों के द्वारा लव का मोचन तो करा ही लूंगा। मेरे बाण बहुत पैने पर्वों वाले होंगे ॥३४॥

मा रोदिषि मातरिह वीराणां रणमूर्जितम् ।
कीर्तयेऽत्र भवत्येव पलायनमकीर्तये ॥३५
देहि मे कवचं दिव्यं धनुर्गुणसमन्वितम् ।
शिरस्त्राणं च मे मातःकरवालं तथाशितम् ॥३६
इदानीं यामि समरे पातयामि बलं महत् ।
मोचयामि भ्रातरं स्वं रणमध्याद्विमूर्च्छितम् ॥३७
इतिवाक्येन सन्तुष्टा जानकी शुभलक्षणा ।
सर्वं प्रादादस्त्रवृन्दं जयाशीर्भिर्नियुज्य तम् ॥३८
प्रययौ कुश संग्रामे वाणान्धनुषि सन्दधे ।
चिच्छेद कुशमुक्तं स सायकं शितपर्वकम् ॥३९

हे माता ! तू रुदन न कर रणभूमि मे मर जाना वीरों के लिये यश दायक और युद्ध छोड कर भागना निन्दा दायक है ॥३५॥ इसलिये गुण युक्त दिव्य धनुप, कवच, शिरस्त्राण और तलवार इत्यादि मुझे प्रदान करो ॥३६॥ इस प्रकार मैं उस महान् सेना को भी युद्ध मे हरा कर युद्ध मे मूर्च्छित हुए अपने भाई को छुडा लाऊगा ॥३७॥ शेषजी ने कहा—कुश के इन वचनो से सन्तुष्ट हुई सीता ने सब प्रकार के शस्त्रास्त्र उसे प्रदान किये और उस जयाशी कुश को रण के लिए नियुक्त किया ॥३८॥ कुश ने रणभूमि मे जाकर धनुष पर बाण चढाया और कुश द्वारा छोडा गया वह बाण शत्रुघ्न द्वारा काट दिया गया ॥३९॥

तदाऽत्यन्त प्रकुपितःकुशो बाणस्य कृन्तनात् ।
अपर सायक चापे दधारशितपर्वकम् ॥४०
स यावत्तदुरोभेत्तु करोति च बलोद्धुरः ।
त तावदच्छिनत्तस्य शर कालानलप्रभम् ॥४१
तदा कुशो मातृपादौ स्मृत्वा रोषसमन्वितः ।
तृतीय चापके स्वीये दधार शरमद्भुतम्॥४२
शत्रुघ्नस्तमपि क्षिप्र छेत्तु बाण समाददे ।
तावद्विद्धः शरेणासौ पपात धरणीतले॥४३
हाहाकारो महानासीच्छत्रुघ्ने विनिपातिते ।
जयमाप कुशस्तत्र स्वबाहुबलदर्पितः ॥४४

उस समय मे बाणो के कृन्तन कर देने से कुश को अत्यन्त ही कोप उत्पन्न हुआ था और फिर उसने दूसरा शित पर्वों वाला सायक चाप पर चढा लिया था ॥४०॥ वह जब तक बल से उद्धुर उसके उर: स्थल का भेदन करने के लिए प्रस्तुत होता है तब तक उसके कालानल के समान प्रभा वाले उस बाण को भी छिन्न-भिन्न कर दिया गया था ॥४१॥ उस समय मे कुश ने अपनी माता के चरणों का स्मरण किया था और रोष से समन्वित होकर फिर तीसरा बाण जो कि परम अद्भुत था अपने चाप पर चढ़ाया था ॥४२॥ शत्रुघ्न ने उस बाण को शीघ्र

ही काटने को अपना बाण जब तक ग्रहण किया था तब तक तो वह विद्ध होकर धरणी तल मे शर के द्वारा निपतित होगये थे ।।४३।। शत्रुघ्न के गिरने से वहा रणस्थल म महान् हा हाकार हो गया था और कुश ने अपनी बाहुओं के बल से दर्पित होकर विजय प्राप्त करली थी ।।४४।।

।। कुश का सीता से युद्ध वर्णन ।।

शत्रुघ्नं पतितं वीक्ष्य सुरथः प्रवरो नृपः ।
प्रययौ मणिनासृष्टे रथे तिष्ठन्महाद्भुते ।।१
पुष्कलस्तु रणे पूर्वं पातितः विचारयन् ।
लवं ययौ तदायोद्धुं महावीरवलोन्नतम् ।।२
सुरथ.कुशमासाद्य बाणान्मुञ्चन्ननेकधा ।
व्यथयामास समरे महावीरशिरोमणिः ।।३
सुरथं विरथं चक्रे बाणैर्दशभिरुच्छ्रिखैः ।
धनुश्चिच्छेद तरसा सुदृढं गुणपूरितम् ।।४
अस्त्रप्रत्यस्त्रसंहारैः.क्षेपणै.प्रतिक्षेपणैः ।
अभवत्तुमुलं युद्धं वीराणां रोमहर्षणम् ।।५
अत्यन्त समरोद्युक्ते सुरथे दुर्जये नृपे ।
कुशः सञ्चिन्तयामास किं कर्तव्यं रणे मया ।।६
विचार्य निशितं घोरं सायकंसमुपाददे ।
हननाय नृपस्यास्य महाबलसमन्वितः ।।७
तमागतं शरं दृष्ट्वा कालानलसमप्रभम् ।
छेत्तुं मतिं चकाराशु तावल्लग्नो महाशरः ।।८
मुमूर्च्छ समरे वीरो महावीरवलस्ततः ।
पपात स्यन्दनोपस्थे सारथिस्तमुपाहरत् ।।९

भगवान् शेष ने कहा—उस युद्धस्थल मे जब शत्रुघ्न पतित हो गये तो यह देख कर परम श्रेष्ठ सुरथ नृप महान् अद्भुत मणियो से

निर्मित रथ पर समारूढ़ होकर वहां पर गये थे ॥१॥ उसने यह विचार किया था कि पुष्कल युद्ध में पहिले ही निपातित कर दिया गया था। अतः उस समय में महान् वीर और उन्नत बलशाली लव से वह युद्ध करने को गया था ॥२॥ सुरथ ने कुश के पास पहुँच कर अनेक बाणों को छोड़ा था और उस महान् वीर शिरोमणि ने समर स्थल में उसको व्यथित कर दिया था।३।कुश ने उस सुरथ नृप को रथ से हीन कर दिया था और अत्यन्त तीव्र दश बाणों के द्वारा वेग से उसके धनुष को छिन्न कर दिया था जो परम सुदृढ़ और गुण से पूरित था ॥४॥ इस प्रकार अस्त्र एवं प्रत्यस्त्रों के सहारों से और क्षेपण-प्रति क्षेपणों से वीरों का बहुत ही सुमन युद्ध हुआ था जो रोम हर्षण था ॥५॥राजा सुरथ बहुत ही दुर्जय नृप था। उस समय में कुश ने सोचा अब मुझे क्या करना चाहिए।।६॥ ऐसा विचार करके उसने अत्यन्त घोर सायक ग्रहण किया था। यह सायक उस महान् बल से समन्वित कुश ने उस राजा के हनन करने के लिए ही ग्रहण किया था।।७॥ उस कालाग्नि के समान शर को आता हुआ देखकर ज्योंही उसे काटने का विचार किया था वैसे ही तब तक वह आकर लग ही गया था। उस महान् शर से वह वीर मूर्च्छित होगया था और रथ के ही समीप में गिर पड़ा था। सारथि ने उसे उठा लिया था ॥८-९॥

सुरथे पतिते दृष्ट्वा कुश जयसमन्वितम् ।
सामयन्त वीरगण निपाय पवनात्मजः ॥१०
समीरमनु प्रबलमायान्त वीक्ष्य वानरम् ।
जग्राम दर्शयन्दन्ता-कोपयन्निव तं प्रभा ॥११
उवाच स हनूमन्तमेहि त्व मम सम्मुखम् ।
भेत्स्ये बाणसहस्रेण मृतो यास्यसि यामिनीम् ॥१२
इत्युक्तो हनुमाञ्ज्ञात्वा रामसूनुं महाबलम् ।
स्वामिकार्यं प्रकर्तव्यमिति कृत्वा प्रजग्मिवान् ॥१३
शालमुत्पाट्य तस्मा विशाल शालाग्निनम् ।
कुशं वक्षसि संताड्य यौवराजं महाबलः ॥१४

शालहस्त समायान्तं हनुमन्त महावलम् ।
त्रिभिःक्षुरप्रै विव्याध सोऽर्धचन्द्रोपमैर्वली ॥१५

जिस समय में सुरथ पतित होगया था और कुश विजयी होगया था जोकि वहां पर सभी को त्रास दे रहा था पवन के पुत्र हनुमान् उनके समीप में पहुंच गये थे ॥१०॥ महान् प्रबल समीर पुत्र को आते हुए देखकर बहुत हँसे और उस वानर को देखकर दाँत दिखाते हुए क्रोध से बहुत ही कुपित होकर बोले ॥११॥ कुश ने हनुमान् से कहा—आओ, तुम मेरे सामने युद्ध करोगे अभी एक सहस्र बाणों से मर कर यमपुरी में चले जाओगे ॥१२॥ इस प्रकार से कहे जाने पर हनुमान् ने राम के पुत्र को महान् बलवाली समझ लिया था किन्तु अपने स्वामी का काम तो करना ही था—यह विचार कर उन्होंने प्रहार छोड़ दिया था ॥१३॥ फिर हनुमान् ने बड़े ही वेग के साथ एक सौ शाखा वाले साल के वृक्ष को उखाड़ लिया था और उछल कर कुश के वक्षःस्थल पर प्रहार करके वह महाबली युद्ध करने को तत्पर थे ॥१४॥ हाथ में साल वृक्ष को लेकर आते हुए महान् बलशाली हनुमान् को देखकर उस बली कुश ने अर्धचन्द्र के सदृश तीन बाणों के द्वारा उनको बेध दिया था ॥१५॥

स बाणविह्वलस्तत्र कुशेन बलशालिना ।
शालेन हृदि महाले दन्तानिष्पिष्य मारुतिः ॥१६
शालाहतस्तदा बालः किञ्चिन्मारस्मरात् स्मयात् ।
तदा वीराः प्रयाता सु प्रयासुस्तस्य बान्धवाः ॥१७
स शालेन हतो वीरः संहारास्त्रं समाददे ।
गन्तुं संहित कोपात्तु कुशः परमास्त्रवित् ॥१८
संहारास्त्रं समालोक्य दुर्जयं कुशमोचितम् ।
दध्यौ रामं स्वमनसा भवक्लेशविनाशकम् ॥१९
तदा कुशः कृतान्तास्त्रमस्त्रं हृदि मारुतेः ।
अस्त्र महाबलहारीर तेन मूर्च्छित एव पुनः ॥२०

बलशाली कुश के द्वारा वेग से वह हनुमान् बाण से विद्ध होगये थे किन्तु मारुति ने फिर भी उस शाल वृक्ष से कुश के हृदय पर प्रहार कर ही दिया था और क्रोध में अपने दांतों को पीस कर ही प्रहार किया था ।।१६।। शाल से आहत होकर भी वह बालक कुछ भी कम्पित नहीं हुआ—यह देखकर सबको बहुत ही विस्मय हुआ था और उस समय में सभी वीरों ने उस बालक की बहुत अधिक प्रशंसा की थी ।।१७।। शाल से हत होकर उस वीर ने फिर सहारास्त्र ग्रहण किया था कुश परमास्त्रों के वेत्ता थे । उसने कोप से वैरी का संहार करने को ही यह अस्त्र ग्रहण किया था ।।१८।। कुश के द्वारा छोड़े हुए दुर्जय सहारास्त्र को देख कर हनुमान् ने भक्तों के विघ्नों को विनाश करने वाले श्रीराम का हृदय में ध्यान किया था ।।१९।। उस समय में कुश के द्वारा मुक्त वह अस्त्र मारुति के हृदय में आकर लगा था । उसके लगने से हनुमान् को बहुत ही अधिक व्यथा हुई थी और उससे वह मूर्च्छित होगये थे ।।२०।।

मूर्च्छां प्राप्तं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं बलसंयुतः ।
विव्याध सायकैस्तीक्ष्णैः सैन्यं तत्सकलं महत् ।।२१
तस्य बाणायुतैर्भग्नं बलं सर्वं रणाङ्गणे ।
पलायनपरं जातं चतुरङ्गसमन्वितम् ।।२२
तदा कपिपतिः कोपात्सुग्रीवो रक्षको महान् ।
अभ्यधावन्नगान्नैकानुत्पाट्य कुशमुद्भटम् ।।२३
कुशः सर्वान्प्रचिच्छेदलीलया प्रहसन्नगान् ।
पुनरप्यागतान्वृक्षाश्चिच्छेद तरसा बली ।।२४
अनेकबाणव्यथितः सुग्रीवः समराङ्गणे ।
जग्राह पर्वतं घोरं कुशमस्तकमध्यतः ।।२५
कुद्धस्तं नगमायान्तं वीक्ष्य बाणैरनेकधा ।
निष्पिपेष चकाराशु महारुद्राङ्गयाग्यताम् ।।२६
सुग्रीवस्तन्महत्कर्म दृष्ट्वा बालेन निर्मितम् ।
जयाशा प्रतिनिवृत्तो बभूव समराङ्गणे ।।२७

सुग्रीवं पतितं दृष्ट्वा वीरा सर्वत्र दुद्रुवुः ।
जयमाप लवभ्राता महावीरशिरोमणिः ॥२८

मूर्च्छा को प्राप्त होने वाले उस वानर को देखकर बल से संयुत कुश ने फिर अपने अत्यन्त तीखे बाणों से उस सम्पूर्ण सेना को विद्ध कर दिया था ॥२१॥ उस समय में सहसा उसके बाणों से भग्न वह सैन्य बल उस युद्ध क्षेत्र में भागने लगा था जो कि चतुरंग से युक्त था। उस समय में सभी ओर भगदड़ मच गयी थी ॥२२॥ उस समय में कपियों के स्वामी सुग्रीव क्रोध से आक्रामक हुए थे क्योंकि यह सभी के सबसे बड़े रक्षा करने वाले थे। सुग्रीव ने अनेकों वृक्षों को उखाड़ कर उद्भट कुश पर प्रहार किया था किन्तु कुश ने लीला ही से हँसते २ सब को काट डाला था। फिर उसने पुनः आये हुए वृक्षों को भी वेग से छिन्न कर दिया था ॥२३-२४॥ अनेक बाणों से महान् व्यथित होकर सुग्रीव ने उस समर क्षेत्र में एक घोर पर्वत को उठाया था और कुश के मस्तक पर ठीक मध्य में उसे डाल दिया था किन्तु कुश ने उसको आता हुआ देख कर अपने अनेक बाणों से उसे ऐसा पीस दिया था कि वह पिस कर महारुद्र के अंग में लगाई जाने वाली भस्म जैसा होगया था ॥२५-२६॥ सुग्रीव ने जब यह ऐसा महान् कर्म बालक के द्वारा किया हुआ देखा तो अपनी जय की आशा ही उनकी छूट गयी थी और समर में हतोत्साह होगये थे ॥२७॥ सुग्रीव को भी जब उस युद्ध स्थल में पतित देखा तो सभी ओर से वीर भाग खड़े हुए थे और सब कहने लगे—अब तो लव के भाई ने जय प्राप्त करली है क्योंकि यह समस्त वीरों में इस समय सर्वोपरि शिरोभूषण है ॥२८॥

तावल्लवो भटाञ्जित्वा पुष्कलं चाङ्गदं तथा ।
प्रतापाग्र्यं वीरमणिं तथाऽन्यानपिभूभुजः ॥२९
जयं प्राप्य रणे वीरो लवो भ्रातरमागमत् ।
सङ्ग्रामे जयकर्तारं वैरिकोटिनिपातकम् ॥३०
परस्परं प्रहृषितौ परिरम्भं प्रकुर्वतः ।
जयप्राप्तौ तदा वार्तां मुने चक्रतुरुत्तमौ ॥३१

भ्रातस्तव प्रसादेन निस्तीर्णो रणतोयधिः
इदानीं वीर ! रणकं शोधयावः सुशोभितम् ॥३२

इत्युक्त्वा राजसविधे जगाम सलवः कुशः ।
राज्ञो मौलिमणिं चित्रं जग्राह कनकाचितम् ॥३३

पुष्कलस्य लवोवीरो जग्राह मुकुटं शुभम् ।
अङ्गदे च महानर्घ्ये शत्रुघ्नस्यापरस्य च ॥३४

गृहीत्वा शस्त्रसङ्घात हनूमन्त कपीश्वरम् ।
सुग्रीवं सांवयं गत्वा उभावपि बबन्धतुः ॥३५

पुच्छे वायुसुतस्याथ गृहीत्वा तु कुशानुजः ।
भ्रातरं प्रत्युवाचेदं नेष्यामि स्वकमन्दिरम् ॥३६

उसी समय में लव भी पुष्कल और अंगद इन दोनों महान् नरों को जीतकर तथा वीरमणि प्रतापाग्र्य एवं अन्य भी राजाओं पर विजय प्राप्त करके वीर लव अपने भाई के समीप में आ गया था जो कि इस संग्राम के विजय करने वाला और करोड़ों शत्रुओं का संहार करने वाला था ॥२९-३०॥ उस समय में परस्पर में दोनों भाई लव और कुश अत्यन्त ही प्रसन्न हुए थे और एक दूसरे से परिरम्भण करने लगे थे। दोनों ने विजय प्राप्त की थी और उन्माद युक्त होकर उस समय में वार्तालाप करने लगे थे ॥३१॥ लव ने कहा—हे भाई ! यह आपके ही प्रसाद से रण रूपी सागर को पार किया है। वीर ! अब इस रण को सुशोभित करके शोधन करेंगे ॥३२॥ इतना कह कर लव और कुश राजा के निकट में गये थे। राजा का जो मौलिमणि चित्र कनकाचित था उसे ग्रहण कर लिया था॥३३॥ लव वीर ने पुष्कल का शुभ मुकुट ले लिया था। महान् अर्घ्य अंगद और शत्रुघ्न के जो अपरों का मुकुट था वह ग्रहण कर लिया था ॥३४॥ कपीश्वर हनुमान् और सुग्रीव के समीप में जाकर इन दोनों को बांध लिया था ॥३५॥ कुश के अनुज ने वायु पुत्र हनुमान् की पूंछ पकड़ कर ग्रहण कर लिया था और अपने भाई से कहा था इसको अपने मन्दिर में ले जाऊंगा ॥३६॥

ताभ्यां पुच्छगृहीतौ तौ वानरौ वीक्ष्य जानकी ।
हनूमन्त च सुग्रीवं सर्ववीरं कपीश्वरम् ॥३७
जहास पाशवद्धौ तौ वीक्षमाणा वराङ्गना ।
उवाच च विमोक्षार्थं वदन्ती वचन वरम् ॥३८
पुत्रौ ! प्रमुञ्चत कीशौ महावीरौ महाबलौ ।
द्रक्ष्यतो मां यदि स्फीतौ प्राणत्यागं करिष्यतः ॥३९
अय वै हनुमान्वीरो यो ददाह दनोः पुरीम् ।
अयमप्यृक्षराजो हि सर्ववानरभूमिपः ॥४०
किमर्थं विधृतौ कुत्र किंवा कृतमनादरात् ।
पुच्छे युवाभ्यां विधृतौ स महान्विस्मयोऽस्ति मे ॥४१

उन दोनों भाइयों के द्वारा पूंछ से ग्रहण किए हुए दोनों वानरों को जानकी ने देखा था उन दोनों मे एक तो हनुमान् थे और दूसरे सर्ववीर कपीश्वर सुग्रीव थे ॥३७॥ उन दोनो को बंधे हुए देखती हुई वह वराङ्गना जानकी देवी खूब हंसी और फिर बोली कि इन दोनो का विमोक्ष कर देना चाहिए ॥३८॥ जानकी जी ने कहा—हे पुत्रो ! ये दोनो महान् बल वाले महान् वीर हैं। दोनो कीशो को छोड दो । यदि ये बधे हुए मुझे देखेंगे तो दोनो अपने प्राणों का त्याग कर देंगे ॥३९॥ यह तो वीर हनुमान् है जिसने दनु की पुरी का दाह कर दिया था। और यह ऋक्षराज समस्त वानरो का राजा है ॥४०॥ इनको किस लिए कहाँ पर पकड लिया था ? अथवा कोई इनने अनादर किया था ? तुम दोनों ने इनकी पूंछ पकड रक्खी थी । मुझे वहुत अधिक विस्मय हो रहा है ॥४१॥

इति मातुर्वचःश्लक्ष्णं श्रुत्वा ता पुलकौ तदा ।
ऊचतुर्विनयश्रेष्ठौ महाबलसमन्वितौ ॥४२
मातःकश्चन भूपालो रामो दाशरथिर्बली ।
तेन मुक्तोहयःस्वर्णभालपत्र सुशोभित. ॥४३

तत्रैवं लिखितं मातरेकवीरा प्रसूर्मम ।
ये क्षत्रियास्ते गृह्णन्तु नोचेत्पादतलार्चका ॥४४
तदा मया विचारो वै कृतः स्वान्ते पतिव्रते ! ।
भवती क्षत्रिया किं न वीरसूः किं न वा भवेत् ॥४५
धाष्टर्यं तद्वीक्ष्य भूपस्य गृहीतोऽश्वो मया बलात् ।
जितं कुशेन वीरेण सैन्यं तत्पातितं रणे ॥४६
जानीहि मुकुट स्वस्य मणिमुक्ताविराजितम् ।
अश्वोऽयं मे मनोहारी कामयानो हि भूपतेः ॥४७
आरोहणाय मद्भ्रातुर्जानीहि बलिनोवरे ।
इमौ कीशौ मयाऽरन्तुमानीतौ बलिनावरौ ॥४८
कौतुकार्थं तवैवैतौ सङ्ग्रामे युद्धकारकौ ।
इति वाक्यं समाकर्ण्य जानकी पतिदेवता ॥४९
जगाद पुत्रौ तौ वीरौ वीरवातरमुक्तये ५०

उस समय मे माता के अत्यन्त वनक्षण इस वचन को उन दोनो पुत्रो ने सुनकर माता से यह कहा था । वे दोनों ही पुत्र अत्यन्त विनयशील और महान् बल से समन्वित थे । उनने कहा—हे माता ! कोई बली दशरथ का पुत्र राम नाम का राजा है । उसी ने यह अश्व छोड़ा है जिसके मस्तक पर एक स्वर्ण पत्र सुशोभित हो रहा था ॥४२-४३॥ उस पत्र मे लिखा हुआ था हे माता ! यह समस्त भूमि एक ही वीर वाली मरी है । जो भी कोई क्षत्रिय हो वे ग्रहण करें अन्यथा मेरे पाद तल के अर्चक हो जावें । अर्थात् जिनको अपने क्षत्रियत्व का अभिमान हो वे इस अश्व को बांधें और युद्ध करें अगर ऐसा नहीं कर सकते है तो मेरे अधीनस्थ होकर रहें यह उस पत्र मे लिखे हुए वाक्यों का भाव था ॥४४॥ हे पतिव्रते ! इसे बांच कर मैंने अपने मन में विचार उस समय मे किया था कि आप मेरी माता भी क्षत्रिय कुल मे उत्पन्न हुई हैं । क्या आप वीरो को प्रसव प्रदान करने वाली नहीं हैं अथवा क्या नहीं हो सकता ॥४५॥ उस राजा की

ऐसी धृष्टता देखकर मैंने वल पूर्वक यह अश्व ग्रहण कर लिया था फिर युद्ध हुआ और कुश वीर ने उसकी समस्त सेना को जीत लिया था तथा सबको समर भूमि मे निपतित कर दिया था ॥४६॥ यह मुकुट है जो मणियो और मोतियो से सुशोभित हो रहा है। इसे आप जान लेवें। यह अश्व भी बहुत सुन्दर है जो कि राजा की कामना वाला है ॥४७॥ यह अश्व मेरे भाई के आरोहण के लिये काम मे आया करेगा। बल शालियो मे परम श्रेष्ठ ये दोनो वानर मैंने अपने दिल बहलावा करने के लिये बाँध कर रक्खा है और इन्हें मैं यहाँ ले आया हूँ ॥४८॥ संग्राम स्थल में युद्ध करने वाले ये दोनो हैं। यहाँ आपके कौतुक के लिये ही लाये गये है। इस पुत्र के वचन का श्रवण कर पति देवता जानकी ने कहा —हे पुत्रो ! ये दोनो वीर हैं और इन वानरो की मुक्ति करदो ॥४६-५०॥

युवाभ्यामनय.सृष्टो हृतो रामहयो महान् ।
अनेके पातिता वीरा इमौ बद्धौ कपीश्वरौ ॥५१
पितुस्तव हयो वीरौ यागार्थं मोचितोऽमुना ।
तस्यापि हृतवन्तौ किं वाजिन मखसत्तमे ॥५२
मुञ्चतं प्लवगावेतौ मुञ्चत च जिनावरम् ।
क्षाम्यता भूपतेर्भ्राता शत्रुघ्नः परकोपनः ॥५३
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा ऊचतुस्ता बलान्वितौ ।
क्षात्रधर्मेण त भूप जितवन्तौ बलान्वितम् ॥५४
नास्माकमनयो भावि क्षात्रधर्मेण युध्यताम् ।
वाल्मीकिना पुरा प्रोक्तमस्माकं पठतापुरः ॥५५
दुष्यन्तेन समयुद्धं भरतेन कृतपुरा ।
कण्वस्याश्रमके वाह धृत्वा यागक्रियोचितम् ॥५६

सीताजी ने कहा—तुम दोनो ने बडा भारी अन्याय किया है कि यह महत्त्वशाली श्रीराम का अश्व हरण कर लिया है। बहुत से वीरों को तुमने मार डाला है और इन दोनो कपीश्वरो को भी बाँध लिया है ॥५१॥ ये हय और ये दोनो वीर तुम्हारे पिता के ही हैं। यह अश्व

अश्वमेध यज्ञ को पूर्ण करने के लिये ही तुम्हारे पिताजी ने छोड़ा है। क्या उस उत्तम यज्ञ में छोड़े हुए उनके अश्व को भी तुमने हरण कर लिया है ? ।।५२।। इन दोनों वानरों को छोड़ दो और उस अश्व को भी छोड़ दो। ये परम श्रेष्ठ अश्व है। तथा राजा के छोटे भाई से जाकर अपना क्षमापन कराओ वह तो शत्रुओं पर कोप करने वाले शत्रुघ्न हैं ।।५३।। अपनी माता के यह वचन श्रवण करके उन दोनों ने उनसे कहा था। वे दोनों ही भाई पूर्ण बल में सम्पन्न थे। हे माता, क्षात्र धर्म से तो उस राजा को चाहे वह कैसा भी बलान्वित हो हम दोनों ने जीत लिया है। युद्ध करने वाले इनके साथ हमारा क्षात्र धर्म से अब भविष्य में कोई युद्ध नहीं होने वाला है। जब पहिले पढ़ते थे तो उस समय वाल्मीकि ने हमको यह बताया था ।।५४-५५।। पुराने समय में भरत ने दुष्यन्त के साथ युद्ध किया था। कण्व ऋषि के आश्रम में याग किया के उचित अश्व को रक्खा गया था ।।५६।।

तस्मात्सुत. स्वपित्राऽपि युध्येद् भ्रात्राऽपि चानुज ।
गुरुणा शिष्य एवापि तस्मान्नो पापसम्भव: ।।५७
त्वदाज्ञातोऽधुना चावां दास्यावो हयमुत्तमम् ।
मोक्ष्याव. कीशावेनौ हि करिष्यावो वचस्तव ।।५८
इत्युक्त्वा मातरं वीरौ गतौ रणे कपीश्वरौ ।
अमुञ्चतां हयं चापि हयमेधक्रियोचितम् ।।५९
सीतादेवी स्वपुत्राभ्यां श्रुत्वा सैन्य निपातितम् ।
श्रीराम मनसा ध्यात्वा भानुमैक्षत साक्षिणम् ।।६०
यद्यहं मनसावाचा कर्मणा रघुनायकम् ।
भजामि नान्य मनसा तर्हि जीवेदयं नृप ।।६१
सैन्य चापि महत्सर्वं यन्नाशितमिद बलात् ।
पुत्राभ्यां तत्तु जीवेत मत्सत्याज्जगताम्पते ! ।।६२
इति यावद्वचो ब्रूते जानकी पतिदेवता ।
तावद्बलं च तत्सर्वं जीवितं रणमूर्द्धनि ।।६३

इसलिये सुत भी अपने पिता से और भाई भी अपने छोटे भाई से युद्ध कर सकता है। इसी भाँति शिष्य भी अपने गुरु के साथ युद्ध कर सकता है—इस प्रकार के युद्ध से जो कि क्षत्रिय का धर्म-कृत्य ही है कोई भी पाप की उत्पत्ति नहीं होती है ॥५७॥ धार्मिक दृष्टि से तो हमने कोई भी पाप कर्म या अनुचित कृत्य नहीं किया है किन्तु माता की आज्ञा तो सर्वोपरि स्थित होती है अतः आपके आदेश से हम दोनों ही उस उत्तम अश्व को दे देंगे और इन दोनों वानरों को भी छोड़ देंगे तथा आपके वचनों का पूर्ण परिपालन करेंगे ॥५८॥ यह कह कर वे दोनों वीर और दोनों कपीश्वर रणभूमि में गये थे वहाँ पर अश्वमेध कार्य के योग्य अश्व को भी छोड़ दिया था ॥५९॥ सीता देवी ने अपने पुत्रों से निपातित हुई सेना का हाल सुना था। देवी ने श्रीराम का मन में ध्यान किया था और सूर्य को साक्षी किया था और प्रार्थना की थी कि यदि मैं नित्य ही मन-वाणी और कर्म से श्रीरघुनायक का भजन करती हूँ और कभी किसी अन्य का मन में ध्यान भी नहीं करती हूँ तो यह नृप जीवित हो जावे ॥६०-६१॥ यह सभी सेना जो बलपूर्वक नष्ट करदी गई है और मेरे ही पुत्रों ने इसका विनाश किया है हे जगतों में स्वामिन्! मेरे सत्यव्रत के प्रभाव से वह सब जीवित हो जावे ॥६२॥ ये वचन जब सब पति को ही अपना देवता मानने वाली देवी जानकी बोलती है वैसे ही उस सतीत्व से वह सम्पूर्ण बल अर्थात् सेना जीवित हो गई थी ॥६३॥

॥ अश्व के साथ शत्रुघ्न का अयोध्याआगमन ॥

तावन्मूर्च्छां जहौ वीरः शत्रुघ्नः समरान्गणे ।
अन्येऽपि वीरा बलिनो मूर्च्छां प्राप्ता सुजीविता ॥ १
शत्रुघ्नो वाजिनश्रेष्ठं ददर्श पुरतःस्थितम् ।
आत्मानं चापि सम्प्राप्तरहितं सैन्यजीवितम् ॥२

वीक्ष्य चित्रमिदं स्वान्ते चकार च जगाद ह ।
सुमतिं मन्त्रिणा श्रेष्ठं मूर्च्छाविरहितं तदा ॥३
कृपां कृत्वा हयं प्रादाद् बालो यज्ञस्य पूर्तये ।
गच्छाम रामं तरसा हयागमनकाङ्क्षिणम् ॥४
इत्युक्त्वा स रथेस्थित्वा हयमादाय वेगतः ।
ययौ तदाश्रमाद्दूरं भेरीशङ्खविवर्जितः ॥५
तत्पृष्ठतो महासैन्यं चतुरङ्गसमन्वितम् ।
चचाल कुर्वन्सम्भग्नं स्वभारेण फणीश्वरम् ॥६
जवेन जाह्नवी तीर्त्वा कल्लोलजलशालिनीम् ।
जगाम विषये स्वीये स्वकीयजनशोभिते ॥७

शेष भगवान् ने कहा—वीर शत्रुघ्न ने क्षण भर में ही उस समरांगण में अपनी मूर्च्छा का त्याग कर दिया था और अन्य जो भी वीर युद्ध में मूर्च्छित हो गये थे वे सभी बलशाली पुनः जीवित हो गये थे ॥१॥ शत्रुघ्न ने उस श्रेष्ठ अश्व को अपने सामने स्थित देखा था और अपने आपको शिरस्त्राण से रहित एवं सम्पूर्ण सेना को जीवित देखा था। ॥२॥ इस एक अति अद्भुत बात को देखकर अपने मन में बड़ा ही विस्मय किया था और शत्रुघ्न ने उस समय में अपने मन्त्रियों में परम-श्रेष्ठ सुमति से कहा था जो मूर्च्छा से रहित हो गया था ॥३॥ उस बालक ने अश्वमेध यज्ञ की पूर्ति के लिये स्वयं ही कृपा करके यह अश्व प्रदान कर दिया है। अब हम सब को तेजी से श्रीराम के समीप में ही चलना चाहिए क्योंकि वे इस समय इस अश्व के आगमन की आकांक्षा वाले हो रहे होंगे ॥४॥ यह कहकर वह शत्रुघ्न अपने रथ में समारूढ़ हो गये थे और अश्व को साथ में ले लिया था। बड़े वेग के साथ उस आश्रम से दूर भेरी तथा शंख के वादन को न करते हुए ही चले गये थे ॥५॥ उनके पीछे-पीछे वह चतुरंगिणी सेना जो बहुत विशाल थी अपने भार से शेष नाग को संलग्न करती हुई चली गई थी ॥६॥ बड़े वेग के साथ जाह्नवी नदी को पार करके जो महान् तरंगों से युक्त जल से शोभा वाली थी अपने ही मनुष्यों से सुशोभित देश में चले गये थे ॥७॥

पुष्कलेनयुतो राजा सुरथेन समन्वितः ।
रथे मणिमये तिष्ठन्महाकोदण्डधारकः ॥८
हय तं पुरतःकृत्वा रत्नमालाविभूषितम् ।
श्वेतातपत्रं तस्यैव मूर्ध्नि चामरभूषितम् ॥९
अनेकरथसाहस्रैःपरीतो बलिभिर्नृपैः ।
उग्रकोदण्डललितैर्वीरनादविभूषितैः ॥१०
क्रमेण नगरी प्राप सूर्यवंश विभूषिताम् ।
अनेकै:केतुभि:श्रेष्ठैर्भूषितां दुर्गराजिताम् ॥११
राम:श्रुत्वा हयप्राप्तं शत्रुघ्नेन सहामुना ।
पुष्कलेन च वीरेण ययौ हर्षमनेकधा ॥१२
कटकं निर्दिदेशासौ चतुरङ्गं महाबलम् ।
लक्ष्मणं प्रेषयामास भ्रातरं बलिनावरम् ॥१३
लक्ष्मणः सैन्यसहितो गत्वा भ्रातरमागतम् ।
परिरेभे मुदाक्रान्तः क्षत शोभितगात्रकम् ॥१४

महान् कोदण्ड का धारण करने वाला राजा पुष्कल से युक्त तथा सुरथ से समन्वित होकर मणियो से परिपूर्ण रथ मे स्थित हो गया था ॥८॥ रत्नो की मालाओ से विभूषित उस अश्व को आगे करके उसके मस्तक पर श्वेत वर्ण का आतपत्र था और चामरो से वह शोभित हो रहा था ॥९॥ अनेक प्रकार के सहस्रो रथो से वह परिवृत हो रहा था। उग्र कोदण्ड मे ललित और वीरनाद से भूषित बलशाली नृपो के द्वारा भी वह चारो ओर से घिरा हुआ था ॥१०॥ इस प्रकार से सूर्यवंश से विभूषित–जिसमे परम श्रेष्ठ अनेक ध्वजाएँ लगी हुई थी और इनकी शोभा से विभूषित–दुर्ग से राजित उस अयोध्या नगरी मे क्रम से वह अश्व प्राप्त हो गया था ॥११॥ श्रीराम ने शत्रुघ्न के साथ वह यज्ञ का अश्व आ गया है और साथ मे पुष्कल वीर भी है—ऐसा श्रवण किया तो उनको अपार हर्ष हुआ था ॥१२॥ इन्होने तुरन्त ही सेना को निर्देश किया था जो कि चतुरंग से समन्वित एवं महान् बल से युक्त थी। लक्ष्मण को भी भेजा था जो कि बलशालियो में परम श्रेष्ठ भाई था

॥१३॥ सैन्य के सहित लक्ष्मण आने वाले भाई के स्वागत के लिये गये थे और वहां पहुंचकर लतो से शोभित गात्र वाले शत्रुघ्न से बड़े ही आनन्द के साथ लक्ष्मण ने परिरम्भण किया था ॥१४॥

सुमते मन्त्रिणाश्रेष्ठ मम मे वाग्मिनांवर ! ।
क एते भूमिपाःसर्वे कथमत्र समागताः ॥१५
कुत्रकुत्र हयःप्राप्तःकेनकेन नियन्त्रितः ।
कथं वै मोचितो भ्राता महाबल सुशालिना ॥१६
इत्युक्तो मन्त्रिणा श्रेष्ठः सुमतिः प्राह राघवम् ।
प्रहसन्मेघगम्भीरनादेन च सुबुद्धिमान् ॥१७
सर्वज्ञस्य पुरस्तेऽद्य मया कथमुदीर्यते ।
पृच्छसि त्व लोकरीत्या सर्वं जानासि सर्वदृक् ॥१८
तथापि त्वन्निदेश शिरस्याधाय सर्वदा ।
ब्रवीमि तच्छृणुष्वाद्य सर्वराज शिरोमणे ॥१९
त्वत्प्रसादादहो स्वामिन्सर्वत्र जगतीतले ।
पर्यटन्नामतेवाहो भालपत्रसुशोभित. ॥२०
न कश्चित्त निजग्राह स्वनाम यत्र दर्पित. ।
स्वस्व राज्य समर्प्याथ प्रणेमुस्ते पदाम्बुजम् ॥२१
को वा राघवसंदर्शनं निरन्तुर्वाजिगन्तम् ।
गृह्णाति विजयाराद्क्षो अग्नमस्तगजितः ॥२२

ने कहा था ।।१७।। सुमति ने कहा—हे भगवन् ! आप तो स्वय ही सर्वज्ञ हैं। आपके सामने आज मैं क्या कहूं। आप तो लोक की जैसी रीति होती है उसी के अनुसार मुझ से पूछ रहे हैं। आप स्वय सभी कुछ जानते हैं और सब देखने वाले हैं ।।१८।। तो भी आपका निर्देश है कि मैं अपने मुख से सुनाऊं तो मैं उसको सर्वदा शिर पर धारण कर बोलता हू। हे समस्त राजाओ मे शिरोमणि महाराज ! अब आप श्रवण करिये ।।१९।। हे स्वामिन् ! यह आपका ही प्रसाद है कि उसके प्रभाव से सब जगह इस जगतीतल मे आपका यज्ञाश्व परिभ्रमण कर चुका है जिसके भाल पर सुवर्ण पत्र लगा था और वह इससे परम शोभा से सुसम्पन्न था ।।२०।। किसी ने भी उसको ग्रहण नही किया था चाहे कोई अपने नाम और बल के दर्पवाला भी क्यो न रहा हो। अपना-अपना राज्य समर्पित करके सबने आपके चरण कमलो मे प्रणाम ही किया था ।।२१।। ऐसा इस जगती तल मे हो ही कौन सकता है जो दैत्यो मे शिरोभूषण रावण के निहनन करने वाले के यज्ञाश्व को ग्रहणकर सके और विजय की आकांक्षा रखने वाला तथा जरा एव मरण से रहित हो ।।२२।।

विद्युन्माली हतोदैत्य सत्यवान्सङ्गतस्ततः ।
सुरथेन समंयुद्धं जानासि त्व महामते ।।२३

ततःकुण्डलकान्मुक्तो हयो बभ्राम सर्वतः ।
न कश्चित्त निजग्राह स्ववीर्यबलदर्पितः ।।२४

वाल्मीकेराश्रमेरम्ये हय प्राप्तो मनोरमः ।
तत्र यत्कुतुकजात तच्छृणुष्व नरोत्तमः ! ।।२५

तत्राभंस्तव सारूप्य बिभ्रत्षोडशवार्षिकः ।
जग्राह वीक्ष्यपत्राङ्कं वाजिन बलवत्तमः ।।२६

तत्र कालजितायुद्धं महज्जात नरोत्तम ।
निहतस्तेन वीरेण शितधारेणहेतिना ।।२७

अनेके निहताःसङ्ख्ये पुष्कलाद्या महाबलाः ।
मूर्च्छित चापि शत्रुघ्न चक्रे वीरशिरोमणिः ।।२८

विद्युन्माली दैत्य मारा गया था। इसके पश्चात् सत्यवान् सगत हुआ। सुरथ के साथ युद्ध हुआ था। आप सभी कुछ जानते हैं और महान् मति वाले हैं।।२३।। इसके अनन्तर कुण्डलक से मुक्त हुआ अश्व सर्व ओर भ्रमण करने वाला हो गया था। फिर अपने बल-वीर्य के दर्प से युक्त किसी ने भी उस अश्व को ग्रहण नहीं किया था।।२४।। इसके उपरान्त महर्षि वाल्मीकि का आश्रम आ पहुंचा था जो कि परम सुरम्य एवं मनोरम था। वहां अश्व पहुंच गया था। हे नरोत्तम! वहां जो एक अति अद्भुत कौतुक घटित हुआ उसका अब आप श्रवण करें।।२५।। वहां पर एक बहुत छोटा-सा बालक था जिसका रूप-लावण्य आपके ही समान था। लगभग सोलह वर्ष की आयु वाला वह था। उस बलवान ने अश्व का पत्राक बाँधकर इसको पकड़ लिया था।।२६।। हे नरों में अति श्रेष्ठ! वहां पर कालजित के साथ महान् घोर युद्ध हुआ था। परिणाम यह हुआ कि उस वीर कुमार ने अपने पैनी धार वाले आयुध से उस कालजीत का वध कर दिया था।।२७।। एक कालजीत ही क्या उस वीरकुमार ने पुष्कल आदि महान् बल वाले बहुत-से वीरों को समरांगण में मार दिया था। उस वीरों में शिरोमणि छोटे से कुमार ने शत्रुघ्न को भी युद्ध क्षेत्र में मूच्छित कर दिया था।।२८।।

तदा राजा महद्दुःख विचार्य हृदि सयुगे।
कोपेन मूच्छित चक्रे वीरोहि बलिनावरः।।२९
यावन्मूच्छितो राजा तावदन्य समागत।
तेनैतेन च सक्षोभ्य नाशित कटक तव।।३०
सर्वेषा मूच्छितानां तु शस्त्राण्याभरणानि च।
गृहीत्वा वानरौ बद्धौ जग्मतु स्वाश्रम प्रति।।३१
कृपाकृत्वा पुनस्तेन दत्तोऽश्वो यज्ञियो महान्।
जीवन प्रापितमथ कटक नष्टजीवितम्।।३२
अथ गृहीत्वा त याहि प्राप्तास्तव समीपतः।
एतदेव मया ज्ञात तदुक्त ते पुरोवचः।।३३

उस समय मे राजा ने उस युद्ध मे अपने हृदय म महान् दु.ख का विचार किया था और क्रोध स बलशालियो म परम श्रेष्ठ वह वीर भी मूच्छित कर दिया था ॥२६॥ तब तक राजा ने उसको मूच्छित किया था तब तक एक वैसा ही दूसरा कुमार वहा पर आगया था । उसन तो इसको सञ्जीवित करके आपकी सम्पूर्ण सेना का नाश कर दिया था ॥३०॥ जो सब वहाँ पर मूच्छित दशा मे रण स्थल मे भूतल पर पडे हुए थे उनके सब आभूषण और अस्त्र-शस्त्र ग्रहण करके सुग्रीव एव हनुमान इन दोनो वानरो को बाँध कर वे दोनो कुमार अपने आश्रम मे ले गये थे ॥३१॥ इसके अनन्तर कृपा करके फिर उनने यह यज्ञ का महान् अश्व वापिस स्वय ही दे दिया था । जिन सब सेना के महान् वीरो का जीवन नष्ट हो गया था और मर गये थे वे भी सभी पुन जीवित हो गये थे ॥३२॥ फिर हमने उस अश्व को ग्रहण किया था और अब वहाँ से चल कर आपके समीप म आगये हैं । मैंने यही वहाँ का समाचार ज्ञात किया है वही श्रीमान् के सामने कह सुनाया है ॥३३॥

॥ श्रीराम और वाल्मीकि सवाद ॥

कथितौ वै सुमतिना वाल्मीकेराश्रमे शिशू ।
पुत्रौ स्वीयाविति ज्ञात्वा वाल्मीकिम्प्रति सञ्जगौ ॥१
कौ शिशू मम सारूप्यधारकौ वलिनावरौ ।
किमर्थं तिष्ठतस्तत्र धनुर्विद्याविशारदौ ॥२
आ मात्य कथितौ श्रुत्वा विस्मयो मम जायते ।
यौ शत्रुघ्न हनूमन्तलीलयाङ्ग वबन्धतु ॥३
तस्माच्छस मुने सर्व बालयोश्च विचेष्टितम् ।
यथा मे परमाप्रीतिर्भवत्येवमभीप्सिता ॥४
इति तत्कथित श्रुत्वा राजराजस्य धीमत ।
उवाच परमवाक्य स्पष्टाक्षर समन्वितम् ॥५
तवान्तर्यामिणो नृणा कथ ज्ञान च नो भवेत् ।
तथापि कथयाम्यत्र तव सन्तोषहेतवे ॥६

राजन्यौ बालको मह्यमाश्रमे वलिनावरौ ।
त्वत्सारूप्यधरौ स्वाङ्ग मनोहरवपुर्धरौ ॥७

भगवान् शेष ने कहा—सुमति ने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम मे दो शिशु बतलाये थे । वे दोनो अपने ही पुत्र हैं—ऐसा जानकर श्रीराम वाल्मीकि के आश्रम की ओर गये थे ॥१॥ श्रीराम ने कहा—ये दोनो शिशु कौन हैं जो मेरी समान रूपता को धारण करने वाले हैं—बहुत अधिक बलवान् हैं और धनुर्विद्या के महान् पंडित हैं । वहाँ पर वे किस कारण से ठहरे हुए हैं ॥२॥ मेरे अमात्य ने उनका सब समाचार बताया है । मुझे यह सुन कर हृदय मे बडा भारी विस्मय हो रहा है कि जिसने शत्रुघ्न को और हनुमान को भी लीला ही से बाध डाला था ॥३॥ अतएव हे मुनिवर ! इन दोनो बालको के विषय मे सभी कुछ इनका विचेष्टित बतलादो । मेरी इस सबको जानने की उत्कट अभिलाषा है और पूर्ण जानकारी हो जाने पर मुझे अत्यधिक प्रीति भी होगी ॥४॥ परम धीमान् राजाधिराज श्रीराम के इस कथन का श्रवण कर महर्षि ने स्पष्ट अक्षरो वाली वाणी मे यह वचन कहे थे ॥५॥ वाल्मीकि ने कहा—समस्त प्राणियो के अन्दर अन्तर्यामी रूप से विराजमान रहने वाले आपको यह सभी ज्ञान न हो—यह कैसे हो सकता है ? अर्थात् आप तो स्वय सभी कुछ जानते हैं । तो भी मैं आपके सतोष के लिये कहता हूँ ॥६॥ ये दोनो क्षत्रिय बालक हैं । ये बलशालियो मे परम श्रेष्ठ हैं मेरे आश्रम मे निवास करते हैं । ये आपके ही समान रूपता को धारण करने वाले और अपने सभी अ गो की मनोहरता को धारण करने वाले हैं ॥७॥

त्वया यदा वनेत्यक्ता जानकी येनिरागसी ।
अन्तर्वत्नी वनेघोरे विलपन्ती मुहुर्मुहु ॥८
कुररीमिव दुःखार्ता वीक्ष्याह तववल्लभाम् ।
जनकस्यसुता पुण्याभाश्रमे त्वानय यदा ॥९
तस्या.पर्णकुटिरम्या रचिता मुनिपुत्रकै. ।
तस्यामसूतपुत्रौ द्वौ भासयन्तौ दिशोदश ॥१०

तयोरकरव नाम कुशोलव इतिस्फुटम् ।
ववृधातेऽनिश यत्र शुक्लपक्षे यथा शशी ॥११
कालेनोपनयाद्यानि सर्वाणि कृतवानहम् ।
वेदान्साङ्गानह सर्वान्ग्राहयामास भूपते ! ॥१२
सर्वाणि सरहस्यानि शृणुष्व मुखतो मम ।
आयुर्वेद धनुर्विद्या शास्त्रविद्या तथैव च ॥१३
विद्या जालन्धरी चाथ सङ्गीतकुशलौ कृतौ ।
गङ्गाकूले गायमानौ लताकुञ्जवनेषु च ॥१४
चञ्चलौ चमत्कृतौ तौ सर्वविद्याविशारदौ ।
तदाऽहमतिसन्तोष प्राप्त परमबालयो ॥१५

जब आपने ही किसी अपराध वाली जानकी को वन मे त्याग कर छोड दी थी उस समय वह बिचारी गर्भवती थी और इस महान् घोर वन मे बारम्बार विलाप करती हुई घूम रही थी ॥८॥ मैने उस विलाप करने की दशा मे एक हिरनी की भाँति दुःख से पीडित आपकी वल्लभा को देखा था । वह राजा जनक की पुत्री और आपकी पतिव्रत परायणा पत्नी थी मैं उसको जब अपने आश्रम मे ले आया था ॥९॥ उसी समय मे मुनियो के पुत्रो ने उसके रहने के लिये एक परम सुन्दर पर्णकुटी तयार करदी थी । उसी पर्णकुटी मे उस जानकी देवी ने वशो दिशाओ को भासित करने वाले दो पुत्र उत्पन्न किये थे ॥१०॥ उन दोनो के कुश-लव ये स्फुट नाम रक्खे गये थे । वे दोनो जिस प्रकार से शुक्ल पक्ष मे चन्द्रमा प्रतिदिन-वृद्धिशील हुआ करता है उसी भाँति वे भी, निरन्तर बढने लगे ॥११॥ हे राजन् ! जैसे ही समुचित समय उपस्थित हुआ था मैने उपनयन आदि सब आवश्यक सस्कार करा दिये थे और साग वेद भी मैने यथाविधि सिखा एव पढा दिये थे ॥१२॥ मेरे ही मुख से सभी शास्त्र रहस्य के अर्थात् गूढ तत्व के सहित सुन लिये थे, आयुर्वेद–धनुर्वेद-शस्त्रविद्या–जाल-धरीविद्या आदि सब सिखादी थी और इनके अतिरिक्त सगीत शास्त्र मे भी कुशल बना दिया था । दोनो ही गंगा के तट पर गायन करते हुए तथा लताओ के कुज वनो मे गान करने वाले थे प्रमण

किया करते थे ॥१३-१४॥ ये दोनों बालक बहुत ही चचल और मला-मान चित्त वाले तथा समस्त विद्याओ मे विशारद थे। ऐसा परम प्रवीण दोनों बालकों को देख कर मुझे अत्यन्त सन्तोष प्राप्त हो गया था कि ये सब प्रकार से सुयोग्य हो गये हैं ॥१५॥

अस्मत्साक्षिकमेतस्याः पावन चरित सदा ।
सद्यस्ते सिद्धिमायान्ति ये सीतापदचिन्तकाः ॥१६
यस्याःसङ्कल्पमात्रेण जन्मस्थितिलयादिकाः ।
भवन्ति जगता नित्यं व्यापारा ऐश्वरा अमी ॥१७
सीता मृ युःसुधाचेय तपत्येषा च वर्षति ।
स्वर्गो मोक्षस्तपो योगो दान च तव जानकी ॥१८
ब्रह्माण शिवमन्यांश्च लोकपालान्मदादिकान् ।
करोत्येषाकरोत्येव नान्या सीता तव प्रिया ॥१९
त्वं पिता सर्वलोकानां सीता च जननीत्यत ।
कुदृष्टिरस्त तु क्षेमयोग्या न तव कर्हिचित् ॥२०
वेत्ति सीता सदाशुद्धा सर्वज्ञो भगवान्स्वयम् ।
भवानपि सुताभूमेः प्राणादपि गरीयसीम् ॥२१
आदर्तव्या त्वया तस्मात्प्रिया शुद्धेति जानकी ।
न च शापपराभूति सीताया त्वयि वा विभो ॥२२

इस देवी के चरित्र के विषय मे हमारा साक्ष्य है कि इसका चरित सदा परम पावन रहा है। जो पुरुष श्री सीता के चरणारविन्द का ध्यान किया करते हैं वे पुरुष तुरन्त ही सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥१६॥ जिस महापुरुष के हृदय के केवल संकल्प करने ही से इस विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति-स्थिति और लय आदि हो जाया करते हैं और हमेशा ही होता रहता है ये ही इन महापुरुष के ऐश्वर्य पूर्ण व्यापार होते हैं ॥१७॥ यह सीता मृत्यु और सुधा है—यह तपती है और बरसती भी है—यह आपकी जानकी स्वर्ग-मोक्ष-तप-योग और दान है ॥१८॥ ब्रह्मा-शिव और अन्य लोकपालों को मदादिक यही सीता करती और कराती ही है। आपकी प्रिया सीता अन्य नहीं है ॥१९॥ आप समस्त लोकों

के पिता हैं और अतएव सीता सब की जननी हैं। इसके विषय में जो आपकी कुदृष्टि है वह कभी भी क्षेम करने के योग्य नहीं होती है ॥२०॥ आप सीता को सर्वदा शुद्ध जानते हैं क्योंकि आप स्वयं सब कुछ के ज्ञाता भगवान् हैं। और आपकी भूमि भी सुता जानकी के लिए जो कि प्राणों से भी अधिक महत्व पूर्ण एवं बड़ी हैं उसी भाँति प्रिय हैं ॥२१॥ अतएव वह प्रिया जो परम शुद्धा है सदा ही आपके द्वारा आदर करने के योग्य है। हे विभो ! आप में और जानकी में शाप की पराभूति नहीं होती है ॥२२॥

इति वाल्मीकिना राम. सर्वज्ञोऽप्यवबोधितः ।
स्तुत्वा नत्वा च वाल्मीकिं प्रत्युवाच सलक्ष्मणम् ॥२३
गच्छताताधुना सीतामानेतु धर्मचारिणीम् ।
सपुत्रा रथमास्थाय सुमन्तसहितःसखे ! ॥२४
श्रावयित्वा ममेमानि मुनेश्च वचनान्यपि ।
सम्बोध्य च पुरीमेतां सीतां प्रत्यानयाशु ताम् ॥२५
यास्यामि तव सन्देशात्सर्वेषां नः प्रमोविभो ।
देव्यायास्यति चेद्द् व यात्रा मे सफला ततः ॥२६
मयि सा साध्यमूयैव पूर्वदोषवशात्सती ।
अनागताया तस्या तु क्षमस्वागन्तुक हि माम् ॥२७
इत्युक्त्वा लक्ष्मणो राम रथे स्थित्वा नृपाज्ञया ।
सुमित्रमुनिशिष्याभ्यां युतोऽगाद्भूमिजाश्रमम् ॥२८

शेष भगवान् ने कहा—इस प्रकार से भगवान् श्रीराम जोकि सर्वज्ञ हैं वाल्मीकि मुनि के द्वारा प्रबोधित किये गये थे। श्रीराम ने वाल्मीकि के प्रबोधात्मक उपदेश को सुन कर उनकी स्तुति की थी और प्रणाम भी किया था। उन्होंने लक्ष्मण से कहा—॥२३॥ हे तात ! अभी चले जाओ और धर्म का आचरण करने वाली सीता को ले आओ। पुत्रों के सहित उसे रथ पर बिठा कर लाना ! तुम हे सखा। सुमन्त के सहित ही तुरन्त ही चल जाओ ॥२४॥ देखो, मेरे इन वचनों का श्रवण कराना और महर्षि वाल्मीकि के वचनों को भी जानकी जी को सुनाना और इस पुरी

का भली प्रकार से सम्बोधन करना । उम जानकी को शीघ्र ही ले आओ ॥२५॥ लक्ष्मण ने कहा—हे विभो ! मैं तो प्रभु आपका सेवक हूँ और सभी का सेवक आज्ञाकारी हूँ आपके सन्देश से मैं अवश्य जाऊंगा किन्तु हे देव ! यदि देवी आजायेंगी तो मेरी यात्रा सफल हो जायगी ॥२६॥ मेरे विषय मे वह अभ्यसूया ही हैं क्योंकि उन सती को वन में छोड़ने के लिये पहिले भी मैं ही गया था, उसी पूर्व दोष से उन्हें मुझ से अभ्यसूया उत्पन्न होगई थी । यदि वह यहाँ वापिस न आवें तो खाली लौटकर आये हुए मुझे आप क्षमा कर देना ॥२७॥ श्रीराम जी से लक्ष्मण ने यह कहकर रथ पर महाराज की आज्ञा से समारोहण किया था । सुमित्र और मुनि के शिष्यों के साथ वहा पर गये जहाँ भूमिजा जानकी देवी का आश्रम था ॥२८॥

कथं प्रसादनीयास्यात्सीताभगवती मया ।
पूर्वदोष विजानन्ती रामाधीनस्य मे सदा ॥२९

एव सञ्चिन्तयन्नन्तर्हर्षसङ्कोच मध्यगः ।
लक्ष्मणःप्राप सीताया आश्रम श्रमनाशनम् ॥३०
रथात्सोऽप्यवरुह्याराद‌श्रुरुद्धविलोचनः ।
आर्ये पूज्ये भगवति शुभे इति वदन्मुहुः ॥३१
पपात पादयोस्तस्या वेपमानाधिलाङ्गकः ।
उत्थापितस्तया देव्या प्रीतिविह्वलया स च ॥३२
किमर्थमागतःसौम्य ! वन मुनिजनप्रियम् ।
आस्ते स कुशलीदेव.कौशल्या शुक्तिमौक्तिकः ॥३३
अरोपो मयि कश्चिदस्य कीर्त्यांकेवलादृतः ।
कीर्त्यते सर्वलोकैश्च कल्याणं गुणसागरः ॥३४
अकीर्तिभीतिमापन्नस्त्यक्तु मा त्वां नियुक्तवान् ।
यदि तत्तश्च लोकेषु कीर्तिस्तस्यामलाऽभवन् ॥३५
मृत्राऽपि पतिसत्कीर्ति कुर्वन्त्या मे हि सुस्थिरा ।
पतिसामीप्यमेयाणु भूयादेव हि देवर ! ॥३६

त्यक्तयाऽपि मया तेन नासौत्यक्तो मनागपि ।
फल हि साधनामत्त हेतुः फलवशो न तु ।।३७

लक्ष्मण मन में यही विचार करते हुए जारहे थे कि मेरे द्वारा भगवती सीता को कैसे प्रसन्न करना चाहिए क्योंकि वह मेरे पूर्व दोष को भी जानती है कि मैं तो सर्वदा श्रीराम के ही अधीनता मे रहने वाला सेवक हूं ।।२६।। इस तरह से लक्ष्मण चिन्तन करते हुए चले आरहे थे और हर्ष एवं शोक दोनो के मध्य में स्थित थे । लक्ष्मण सीता जी के उस आश्रम मे पहुंच गये थे जहां पर सभी प्रकार का श्रम नष्ट हो जाया करता है । लक्ष्मण वहा पहुंचकर रथ से उतरे और अपनी आंखो मे अश्रु भर कर हे आर्ये ! हे पूज्ये ! हे भगवति ! हे शुभे !--इस प्रकार से बारम्बार मुह से कहते हुए सीता के निकट पहुंच गये थे ।।३०।। लक्ष्मण का उस समय मे सम्पूर्ण शरीर काप रहा था और वे सीताजी के चरणो मे गिर पड़े थे । उस देवी ने प्रीति से विह्वलित होकर दोनो हाथो से पकड कर लक्ष्मण को उठाया था ।।३१।। सीता जी ने कहा--हे सौम्य ! आप इस समय यहाँ पर किस लिये आये हो ? यह तो महान् घोर वन है जिसमे केवल मुनिजन ही रहा करते हैं और उन्हे ही यह प्रिय भी लगता है । यह तो बताओ वह देव-चरण कुशल पूर्वक तो हैं जो कौशल्या रूपिणी शुक्ति के मुक्ता के समान हैं ? ।।३२।। कहो, वे इस समय मे दोष से रहित तो हैं क्योंकि उन्होने तो केवल अपनी कीर्ति का ही समादर किया था । हे परम कल्याण स्वरूप ! वे तो गुणो के सागर हैं सभी लोको के द्वारा उनके गुणो का गान किया जाता है ।।३३।। अकीर्ति के भय से युक्त होकर ही उन्होने मुझे त्याग देने को और इस घोर वन मे छोड देने को आपको नियुक्त किया था । बहुत ही अच्छा है यदि इसमे ही देव-चरण की कीर्ति लोको मे मल रहित हो गई है ।।३४।। मैं तो अपने प्राणों का त्याग करके भी पतिदेव की कीर्ति को सुस्थिर करने वाली सवदा हू । हे देवर ! मैं तो यही अभिलाषा करती हूँ कि मेरा पतिदेव के चरणो मे सामीप्य शीघ्र से शीघ्र हो जावे ।।३५।। उन्होने तो मेरा त्याग कर दिया है किन्तु त्यागी हुई मैंने अपने

हृदय से थोड़ा भी त्याग उनका नहीं किया है। फल तो साधन के ही अधीन होता है किन्तु हेतु फल के वश मे रहने वाला कभी नही होता है ।३६।लक्ष्मण ने कहा था कि हे देवि ! श्रीराम अब आप के साथ सयोग चाहते है और उन्होने आपके गुणो से परम प्रसन्न होकर यही सन्देश आपको दिया है। अतएव अब आप भी अपने पतिदेव के चरण कमलो के दर्शन करने के लिये दयायुक्त अपना मन बना लीजिये ॥३७॥

इत्युक्ता भवती तेन प्रीयमाणेन ते गुणैः ।
पत्यु पादाम्बुजे द्रष्टुं करोतु सदय मनः ॥३८
वासासि रमणीयानि भूषणानि महान्ति च ।
अङ्गरागस्तथा गन्धा मनोज्ञास्त्वयि योजिताः ॥३९
रथोदास्यश्च रामेण प्रेपिता उत्सवायते ।
छत्र च चामरे शुभ्रे गजा अश्वाश्च शोभने ॥४०
गजारूढौ कुमारौ च पुरस्कृत्यजनेश्वरी ।
मयानुगम्यमाना च गच्छायोध्यानिजापुरीम् ॥४१
त्वयि तत्र गतायां तु सङ्गताया प्रियेणते ।
सर्वासा राजनारीणामागताना च सर्वश. ॥४२
सर्वासामृषिपत्नीना कोसलाना तथैव च ।
मङ्गलैर्वाद्यगीताद्यैर्भवत्वद्यमहोत्सवः ॥४३

ये परम सुन्दर वसन और अति रमणीय भूषण-अगराग और मनोज्ञ गन्ध युक्त विविध पदार्थ आपके लिये योजित किए गये हैं ॥३८॥ रथ-दासिया श्रीराम ने प्रेषित की हैं जो कि आप को प्रसन्नता देपगे। छत्र-शुभ्र चमर-हाथी-अश्व हे शोभने ! सभी आपके लिए प्रस्तुत हैं ॥३९॥ जनेश्वरी आप हाथियो पर दोनो कुमारो को बिठा कर उन्हें अपने आगे करदो । मैं आपके पीछे चलूगा—इस प्रकार अब अपनी पुरी अयोध्या को आप गमन करें ॥४०॥ जब आप वहा पर पहुंच जायगी और अपने प्रिय पतिदेव के साथ सगत हो जायगी तो वहा पर एक महान् उत्सव होगा। जिसमें सभी राजनारियाँ होंगी जो सभी ओर से उस समय मे आकर अयोध्या मे एकत्रित होंगी। सभी ऋषियों

की पत्नियाँ उसमें सम्मिलित होकर उल्लास मनायेंगी। कौशल देशों की बहुत सी नारियों का विशाल समाज होगा। बड़ा भारी मंगल मनाया जायेगा और गीत–वाद्यादि सभी कुछ होगा ॥४१-४३॥

इति विज्ञापनां देवी श्रुत्वा सीता तमाह सा ।
नाहं कीर्तिकरी राज्ञो ह्य पकीर्तिः स्वयंत्वहम् ॥४४
किं मया तस्य साध्यं स्याद्धर्मकामार्थशून्यया ।
सत्येवंभवतां भूपेकोविश्वासोनिरङ्कुशे ॥४५
प्रत्यक्षा वा परोक्षा वा भर्तु र्दोषा मनःस्थिताः ।
न वाच्या जातु मादृश्या कल्याणकुलजातया ॥४६
पाणिग्रहणकाले मे यद्रूपो हृदयेस्थितः ।
तद्रूपोहृदयान्नासौ कदाचिदपसर्पति ॥४७
लक्ष्मणेमौ कुमारौ मे तत्तेजोंशसमुद्भवौ ।
वंशाङ्कुरौ महाशूरौ धनुर्विद्याविशारदौ ॥४८
नीत्वा पितुःसमीपं तु लालनीयौ प्रयत्नतः ।
तपसाराधयिष्यामि रामंकाममिहस्थिता ॥४९

भगवान् शेष ने कहा—इस प्रकार से लक्ष्मण के द्वारा जब श्री सीता विज्ञापित की गई तो यह सभी कुछ श्रवण करके उन्होंने लक्ष्मण से कहा था—मैं तो राजा की कीर्त्ति करने वाली नहीं हूँ प्रत्युत मैं तो महाराज की अपकीर्ति करने वाली ही हूँ ॥४४॥ मैं तो धर्म-अर्थ-काम इन सभी से रहित हूँ मुझसे अब महाराज का क्या साध्य हो सकता है। ऐसा होने पर जब कि मेरे द्वारा कुछ भी साध्य नहीं है तो आपके निरंकुश भूप में क्या विश्वास हो सकता है ॥४५॥ प्रत्यक्ष या परोक्ष अथवा मन में स्थित स्वामी के दोष कभी भी नहीं कहने चाहिए और खास कर मुझ जैसी सती के द्वारा तो ऐसा हो ही नहीं सकता जो कि एक कल्याणकारी कुल में ही समुत्पन्न हुई है ॥४६॥ पाणि-ग्रहण के समय में जो भी अपने पतिदेव महाराज का स्वरूप मेरे हृदय से कभी भी अपसर्पित नहीं होता है अर्थात् दूर नहीं जाता है ॥४७॥ हे लक्ष्मण ! ये दोनों कुमार उन्हीं महाराज के तेजोंश से समुत्पन्न

हुए हैं। ये दोनों उनके वंश के अंकुर स्वरूप-हैं—महान् शूरवीर हैं और धनुर्विद्या के महान् पण्डित है ॥४८॥ इन दोनो को आप ले जाओ। और प्रयत्न पूर्वक इनका लालन करो। मैं तो अब तपश्चर्या के द्वारा यहाँ पर ही स्थित रहती हुई श्रीराम के चरणो की आराधना करूंगी ॥४६॥

वाच्यं त्वया महाभाग पूज्यपादाभिवन्दनम् ।
सर्वेभ्यः कुशलं चापिगत्वेतो मदपेक्षया ॥५०
पुत्रौ समादिशत्सीता गच्छतपितुरन्तिकम् ।
शुश्रूषणीय एवासौ भवद्भ्यास्वपदप्रदः ॥५१
आज्ञामावप्यनिच्छन्तौ तौ कुमारौ कुशीलवौ ।
वाल्मीकिवचनातत्रजग्मतुश्चसलक्ष्मणौ ॥५२
वाल्मीकेरेव पादाब्जसमीपं तस्थुतौ गतौ ।
लक्ष्मणोऽपि ववन्देत गत्वाबालकसयुतः ॥५३
वाल्मीकिर्लक्ष्मणस्तौ तु कुमारौ मिलिता अमी ।
सभायां सुस्थितं रामं ज्ञात्वा ते जग्मुरुत्सुकाः ॥५४
लक्ष्मणः प्रणिपत्याथ सीतावाक्यादि सर्वशः ।
कथयामास रामाय हर्षशोकयुतःसुधीः ॥५५
सीतासन्देशवाक्येभ्यो रामो मूर्च्छा समन्वभूत् ।
सज्ञामवाप्य चोवाच लक्ष्मणं नयकोविदम् ॥५६

सीताजी ने लक्ष्मण से कहा—हे महाभाग ! आप वेद-चरणो में मेरी अभिवन्दना कह देना और सबका कुशल यहाँ से जाकर मेरी अपेक्षा से कह देना ॥५०॥ इसके अनन्तर जानकी जी ने अपने दोनो पुत्रों को आदेश प्रदान किया था कि अब तुम दोनो अपने पूज्य पिता जी के सन्निधि मे चले जाओ। आप दोनो को अपना पद प्रदान करने वाले वे है अतएव आप दोनो का कर्त्तव्य है कि उनकी भली भाँति शुश्रूषा करनी चाहिए ॥५१॥ यद्यपि वे दोनो लव और कुश नामधारी कुमार माता को छोड कर वहां जाना नही चाहते थे, तो भी उनको आज्ञा देदी गई थी। वाल्मीकि महर्षि के वचन से वे दोनो लक्ष्मण के

साथ वहाँ चले गये थे ॥५२॥ महर्षि वाल्मीकि के समीप में वे दोनो पुत्र उपस्थित हुए थे। लक्ष्मण ने भी महर्षि की वन्दना की थी उनके साथ वे दोनो बालक भी थे ॥५३॥ वाल्मीकि महर्षि-लक्ष्मण और वे दोनों कुमार ये सब परस्पर मे मिल गये थे । सभा मे सस्थित श्रीराम को जान कर ये उत्सुकता से वहा गये थे ॥५४॥ लक्ष्मण ने श्रीराम को प्रणाम करके सीता जी के द्वारा कहे हुए समस्त वचन कह दिये थे । उस समय मे जब लक्ष्मण से सीताजी के द्वारा कथित वचनो को कह रहे थे तब लक्ष्मण हर्ष और शोक से युक्त थे ।५५।सीता जी के सन्देश वचनो का श्रवण कर श्रीराम ने मूर्च्छा होने का अनुभव किया था । स्वल्प समय के पश्चात् सज्ञा प्राप्त कर नय शास्त्र के विद्वान लक्ष्मण से श्रीराम ने कहा—॥५६॥

गच्छमित्र पुनस्तत्र यत्नेन महता च ताम् ।
शीघ्रमानय भद्रं ते मद्वाक्यानि निवेद्य च ॥५७
अरण्ये किन्तपस्यन्त्या गतिरन्या विचिन्तिता ।
श्रुता दृष्टाऽथ वा मत्तो यन्नागच्छसि जानकि ॥५८
स्वदिच्छया त्वमेवेना गतारण्य मुनिप्रियम् ।
पूजिता मुनिपत्न्यस्ता दृष्टा मुनिगणास्त्वया ॥५९
पूर्णो मनोरथस्तेऽद्य किं नागच्छसि भामिनि ! ।
न दोष मयि पश्येस्त्व स्वात्मेच्छायाविलोकनात् ॥६०
गत्वा गत्वाऽथ वामोरु ! पतिरेव गतिः स्त्रिया ।
निर्गुणोऽपि गुणाम्भोधि कि पुनर्मनसेप्सितः ॥६१
या या क्रियाकुलस्त्रीणा सा सा पत्यु प्रतुष्टये ।
पूर्वमेव प्रतुष्टोऽहमिदानी सुतरा त्वयि ॥६२
यागो जपस्तपो दान व्रत तीर्थं दयादिकम् ।
देवाश्च मयि सन्तुष्टे तुष्टमेतदसशयम् ॥६३

हे मित्र ! तुम पुन वहा पर जाओ और महान् प्रयत्न कर उस जानकी को शीघ्र ही यहा ले आओ । तुम्हारा कल्याण होगा । तुम ये मेरे वाक्य उनसे निवेदन कर देना ॥५७॥ तुम जानकी से मेरी ओर से

करना—इस अरण्य में तपश्चर्या करती हुई तुमने क्या कोई अन्य गति सोचली है अथवा देखी या मुझसे सुनी है ? हे जानकि ! जिस कारण से तुम यहां मेरे समीप में नहीं आरही हो ? ॥५८॥ आप अपनी ही इच्छा से यहां से उस अरण्य में गई हो जोकि मुनिजन का परम प्रिय होता है। आपने वहां पर मुनिपत्नियों का अर्चन किया था और वहाँ पर अनेक मुनिगणों के दर्शन का लाभ प्राप्त किया था ॥५९॥ हे भामिनि ! अब तक वह मनोरथ तो पूर्ण होगया होगा। अब यहां वापिस क्यों नहीं आरही हो ? तुमको मेरे अन्दर कोई भी दोष नहीं देखना या विचारना चाहिए क्योंकि तुम अपनी इच्छा से अरण्य का अवलोकन करने को गई थीं ॥६०॥ सब पर खूब गहन विचार कर-करके देखलो। हे वामोरु ! स्त्री की गति तो उसका एक मात्र पति ही होता है अर्थात् पति की सेवा शुश्रूषा से ही स्त्री का कल्याण सम्भव हो सकता है। चाहे वह पति गुण हीन हो अथवा अनेक गुणों का सागर हो फिर क्या कहा जावे वही उस स्त्री के लिये मन में अभिलषित होना चाहिए ॥६१॥ कुलीन स्त्रियों के लिये जो-जो भी क्रियाऐं होती हैं वे सब इसी ध्येय को रखकर की जाती है कि उनके पति को पूर्णतया सन्तोष एवं प्रसन्नता होवे। मैं तो तुम्हारे कर्म कलाप से पहिले ही बहुत सन्तुष्ट था और अब तो तुम से मुझे सुतरां बहुत अधिक सन्तोष है ॥६२॥ यज्ञ-जप-तप-दान-व्रत-तीर्थ और दया आदि कर्म और देव वृन्द मेरे सन्तुष्ट होने पर ही सब तुष्टि कारक होते हैं यह निश्चित है ॥६३॥

॥ लक्ष्मण के साथ सीता का यज्ञ में आना ॥

अथ सौमित्रिरागत्य जानकीं नतवान्मुहुः ।
प्रेमगद्‌गदया शसन्वाच रामप्रणोदिताम् ॥१
सीता समागतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं विनियान्विताम् ।
तन्मुखाद्रामसन्देशं श्रुत्वोवाच विलज्जिता ॥२

सौमित्रे कथमागच्छे रामत्यक्ता महावने ।
तिष्ठामि राम स्मरन्ती वाल्मीकेराश्रमे स्वहम् ॥३
तस्या मुखोदित वाक्य श्रुत्वा सौमित्रिरब्रवीत् ।
मात. ! पतिव्रते ! रामस्त्वामाकारयते मुहुः ॥४
पतिव्रता पतिकृत दोष नानयते हृदि ।
तस्मादागच्छ हि मया स्थित्वा स्यन्दन उत्तमे ॥५
इत्यादिवचन श्रुत्वा जानकी पतिदेवता ।
मनो रोष परित्यज्य तस्थौ सौमित्रिणा रथे ॥६
तापसी सकला नत्वा मुनींश्च निगमोज्ज्वलान् ।
राम स्मरन्ती मनसा रथे स्थित्वाऽगमत्पुरीम् ॥७

भगवान् शेष ने कहा—इसके अनन्तर पुन. लक्ष्मण श्री राम की आज्ञा प्राप्त कर जानकी जी के समीप मे उपस्थित हुए थे और उनके चरणो मे प्रणाम किया था। श्री राम के द्वारा प्राप्त प्रेरणा से वाणी को प्रेम से अत्यन्त गद्गद होकर लक्ष्मण ने जानकी से कहा था ॥१॥ सीताजी ने पुन आये हुए और अत्यन्त विनय से समन्वित लक्ष्मण को देखा था और फिर लक्ष्मण के मुख से श्रीराम का सन्देश वचन सुना तो उनका विशेष लज्जा हो आई थी। अत्यन्त लज्जित होकर जानकी जी ने कहा—॥२॥ हे सौमित्रे ! मैं तो इस महान् अरण्य मे श्रीराम के द्वारा त्याग दी गई थी अब मैं वहाँ कैसे आऊ ' मैं तो श्रीराम का स्मरण करती हुए इसी वाल्मीकि महर्षि के आश्रम मे रहूँगी ॥३॥ जानकी के मुख से कहे हुए ऐसे वचन श्रवण करके लक्ष्मण ने कहा—हे माता ! आप तो परम पतिव्रता हैं। श्रीराम आपको बारम्बार बुला रहे हैं ॥४॥ जो पतिव्रता नारी होती है वह पति के द्वारा यदि कोई दोष बन भी जाता है तो उसका विचार किंचित मात्र भी हृदय मे नही किया करती है। इसलिये आप आइये और मेरे साथ इस परमोत्तम रथ मे विराजमान हो जाइये ॥५॥ इत्यादि लक्ष्मण के नीति युद्ध विनम्र वचन श्रवण करके पति को ही अपना सर्वोपरि अभीष्ट देवता मानने वाली जानकी जी ने मन मे जो रोष था उसका त्याग कर दिया और लक्ष्मण क साथ रथ पर समा-

रूढ हो गई थी ॥६॥ वहाँ पर जितनी भी तपस्विनी थी उनको और निगमोज्वल जो मुनिगण थे उनको जानकी जी ने प्रणाम किया था। मन मे श्रीराम के चरणों का ही स्मरण करके हुए रथ मे बैठ कर अयोध्यापुरी को रवाना हो गई थी ॥७॥

क्रमेण नगरी प्राप्ता महार्हाभरणान्विता ।
सरयू सरित प्राप यत्र राम स्वय स्थितः ॥८
रथादुत्तीर्य ललिता लक्ष्मणेन समन्विता ।
रामस्य पादयोर्लग्ना पतिव्रतपरायणा ॥९
रामस्तामागता दृष्ट्वा जानकी प्रेमविह्वलाम् ।
साध्वि ! त्वया सहेदानी कुर्वे यज्ञसमापनम् ॥१०
वाल्मीकि सा नमस्कृत्य तथान्यान्विप्रसत्तमान् ।
जगाम मातृपदयो सन्नति कर्तुमुत्सुका ॥११
रामस्तदा यज्ञमध्ये शुशुभे सीतयासह ।
तारयानुगतो यद्वच्छशीव शरदुत्प्रभ ॥१२
प्रयोगमव रोत्तत्र काले प्राप्ते मनोरमे ।
वैदेह्या धर्मचारिण्या सर्वपापापनोदनम् ॥१३
सीतया सहित राम प्रसवत यज्ञकर्मणि ।
निरीक्ष्य जहृपुस्तत्र कौतुकेन समन्विताः ॥१४

क्रम से चल कर श्री जानकी अयोध्या नगरी मे प्राप्त हो गई थी। उस समय मे बहुमूल्य आभरणो से वे विभूषित थी। सरयू नदी पर पहुच कर देखा था कि वहाँ पर श्री राम स्वय स्थित थे ॥८॥ रथ से उतर कर परम ललित रूप वाली जानकी जोकि लक्ष्मण के सहित थी श्री राम के चरणो मे सलग्न हो गई थी क्योकि पतिव्रत मे ही सर्वदा तत्पर रहने वाली थी ॥९॥ श्रीराम ने भी आई हुई जानकी जी को देखा जो कि उस समय मे प्रेम से अत्यन्त विह्वल हो रही थी श्रीराम ने जानकी जी से कहा था—हे साध्वि ! अब मैं आपके ही साथ अश्वमेघ यज्ञ की समाप्ति करूँगा ॥१०॥ उस अति सुन्दर सम्मिलन के अवसर पर जानकी जी ने इसके उपरान्त महर्षि वाल्मीकि को प्रणाम किया और अन्य विप्र-

वृन्द जो परमश्रेष्ठ वहाँ पर वर्त्तमान थे उनकी वन्दना की थी। फिर माताओं के चरण कमलों का अभिवादन करने के लिए समुत्सुक होकर अन्दर चली गई थी ॥११॥ उस समय में श्रीराम उस अश्वमेध यज्ञ के मध्य में सीता के साथ सुशोभित हुए थे जिस तरह तारा से अनुगत होकर शरत् काल का उदित चन्द्रमा शोभा प्राप्त किया करता है ॥१२॥ मनोरम काल प्राप्त होने पर धर्म चारिणी वैदेही के साथ समस्त पापों के अपनोदन करने वाला प्रयोग भी वहाँ पर किया था ॥१३॥ सीता के साथ श्रीराम उस यज्ञ कर्म में प्रसक्त हो गये थे। उस समय में समस्त ऋषि-महर्षि वृन्द यह देखकर अत्यन्त कौतुक से युक्त हो गये थे ॥१४॥

वसिष्ठ प्राह सुमतिं रामस्तत्र क्रतौ वरे।
किं कर्तव्यं मया स्वामिन्नतः परमवश्यकम् ॥१५
रामस्य वचनं श्रुत्वा गुरुः प्राह महामतिः।
ब्राह्मणानां प्रकर्तव्या पूजा सन्तोषकारिका ॥१६
मरुत्तेन क्रतुः सृष्टः पूर्वं सम्भारसम्भृतः।
ब्राह्मणास्तस्य वित्तौघैस्तोषिता अभवस्तदा ॥१७
अत्यन्त वित्तसम्भारं नेतुं तमशकन्नहि।
प्राक्षिपन्नहिमवद्देशे वित्तभारासहाद्विजाः ॥१८
तस्मात्त्वमपि राजाग्र्य लक्ष्मीवान्नृपसत्तम !।
देहि दानादि विप्रेभ्यो यथा स्यात्प्रीतिरुत्तमा ॥१९
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं सर्वसत्त्वोपबृंहितम्।
अत्यन्तमभवद्घृष्टं पुरं पुंस्त्रीसमावृतम् ॥२०
दानं ददन्तं सर्वेषां वीक्ष्य कुम्भोद्भवो मुनिः।
अत्यन्तपरमप्रीतिं ययौ क्रतुवरे द्विजः ॥२१

उस परम श्रेष्ठ यज्ञ में श्रीराम ने सुन्दर मति वाले वसिष्ठ मुनि से प्रार्थना की थी कि हे स्वामिन् ! अब और इससे आगे मुझे क्या-क्या करना चाहिए ॥१५॥ श्रीराम के इस वचन को श्रवण कर महामतिमान् गुरु ने कहा था कि अब तो समस्त ब्राह्मणों की अर्चना करनी चाहिए

जो कि ब्राह्मणों को सन्तोष कर देने वाली हो ॥१६॥ मरुत्त ने पहिले इस क्रतु की सृष्टि की थी जिसमें सभी सम्भार परिपूर्ण थे। उसमें भी सब ब्राह्मण वित्तादि के द्वारा पूर्ण रूप से तोषित किये गये थे ॥१७॥ उस समय में इतना अधिक धन का भार ब्राह्मणों को प्रदान किया गया था कि वे उसे साथ नहीं ले जा सके थे और वित्त के भारों को सहन न करते हुए उन ब्राह्मणों ने उसमें से बहुत कुछ तो हिमवान् पर्वत पर ही प्रक्षिप्त कर दिया था ॥१८॥ इसलिये हे राजाओं में परम शिरोमणि ! आप भी महान् लक्ष्मीमान् नृप हैं। विप्रगणों को इतना अधिकाधिक दान आदि देवें कि जिससे ब्राह्मणों को बहुत ही उत्तम प्रीति समुत्पन्न होवे ॥१९॥ उस समय में वहाँ पर वह स्थल हृष्ट-पुष्ट जनों से समाकीर्ण हो गया था और सभी जीवों से परिपूर्ण था। पुरुष और स्त्रियों से वह स्थल अत्यन्त ही धृष्ट हो गया था और पुर भी भर गया था ॥२०॥ सब को दान देते हुए देख कर कुम्भ से उद्भूत मुनि अगस्त्य उस यज्ञ में द्विज अत्यन्त प्रीति को प्राप्त हुए थे ॥२१॥

तदाभिषेकतोयार्थं पानीयममृतोपमम् ।
आनेतुं च चतुःषष्टिनृपान्सस्त्रीन्समाह्वयत् ॥२२
रामस्तु सीतया सार्द्धमानेतुमुदकं ययौ ।
घटेन स्वर्णवर्णेन सर्वालङ्कारशोभया ॥२३
सौमित्रिरप्यूर्मिलया माण्डव्याभरतो नृपः ।
शत्रुघ्नः श्रुतकीर्त्या च कान्तिमत्या च पुष्कलः ॥२४
सुबाहुः सत्यवत्या च सत्यवान्वीरभूपया ।
सुमदस्तत्र सत्कीर्त्या राज्ञ्या च विमलो नृपः ॥२५
राजा वीरमणिस्तत्र श्रुतवत्या मनोज्ञया ।
लक्ष्मीनिधिः कोमलया रिपुतापोऽङ्गसेनया ॥२६
विभीषणो महामूर्त्या प्रतापाग्र्यः प्रतीतया ।
उग्राश्वः कामगमया नीलरत्नोऽधिरम्यया ॥२७

उस समय में अभिषेक करने को जल के लिये अमृत के तुल्य जल लाने के लिये स्त्रियों के सहित चौंसठ नृपों को बुलाया था ॥२२॥ श्रीराम

भी सीता के साथ जल लेने के लिये गये थे। सम्पूर्ण आभरणों की शोभा से सयुत स्वर्ण वर्ण वाले घट को लेकर जल ग्रहण करने को उन्होंने प्रस्थान किया था ॥२३॥ सभी नृप अपनी-अपनी पत्नियों के साथ जल के आवयन के लिये गये थे। लक्ष्मण उर्मिला के साथ गये थे। भरत अपनी पत्नी माण्डवी के साथ गये और शत्रुघ्न श्रुतकीर्ति को साथ मे लेकर गये थे। राजा पुष्कल कान्तिमती के साथ गये थे ॥२४॥ सुबाहु सत्यवती के साथ, सत्यवान् वीरभूषा के साथ, सुमद सत्कीरी के साथ और विमल नृप राज्ञी के साथ गये ॥२५॥ राजा वीरमणि मनोज्ञ श्रुतवती के सहित-लक्ष्मीनिधि कोमला को लेकर, रिपुताप अनंगसेना के साथ गये थे ॥२६॥ विभीषण महामूर्ति को लेकर-प्रतापाग्रय प्रतीता के सहित-उग्राश्व कामागमा के साथ और नीलरत्न अधिरम्या के साथ जल ग्रहण करने को गये थे ॥ २७॥

॥ अर्जुन का स्त्रीत्व प्राप्त होना ॥

एकदा रहसि श्रीमानुद्धवो भगवत्प्रियः ।
सनत्कुमारमेकान्ते ह्यपृच्छत्पार्षदःप्रभो ॥१

यत्र क्रीडति गोविन्दो नित्यं नित्यसुरास्पदे ।
गोपाङ्गनाभिर्यत्स्थानं कुत्र वा कीदृशं परम् ॥२

तत्तत्क्रीडनवृत्तान्तमन्यद्यद्यत्तदद्भुतम् ।
ज्ञात चेत्तव तत्कथ्य स्नेहोमे यदि वर्त्तते ॥३

कदाचिद्यमुनाकूले कस्यापि च तरोस्तले ।
सुवृत्तेनोपविष्टेन भगवत्पार्षदेन वै ॥४

यद्रहोऽनुभवस्तस्य पार्थेनापि महात्मना ।
दृष्ट कृतं च यद्यत्तत्प्रसङ्गात्कथित मयि ॥५

ततोऽहं कथयाम्येतच्छ्रुणुष्वावहितःपरम् ।
किं त्वेतदत्र कुत्रापि न प्रकाश्य कदाचन ॥६

ईश्वर ने कहा—एक बार एकान्त में भगवान् का परम प्रिय प्रभु का पार्षद श्रीमान् उद्धव ने सनत्कुमार से पूछा था ॥१॥ हे भगवन् ! जहां पर भगवान् गोविन्द नित्य सुरों के स्थान में गोपाङ्गनाओं के साथ नित्य क्रीड़ा किया करते हैं वह स्थान कहाँ पर है और कैसा है ? ॥२॥ वही वही क्रीड़ा का वृत्तान्त और अन्य भी जो-जो और अद्भुत हो उसे यदि आपको ज्ञात हो तो मुझे सभी बतलाने की कृपा करें। यदि मेरे ऊपर आपका पूर्ण स्नेह है तो अवश्य ही बतलाइये ॥३॥ सनत्कुमार ने कहा—किसी समय में एक बार यमुना के तट पर किसी वृक्ष के नीचे सुन्दर चरित्र वाले भगवान् के पार्षद ने जो रहस्य का अनुभव किया था उसे मैं अब आपको बतलाता हूँ। वह महात्मा पार्षद थे उन्होंने देखा और जो किया था। वही प्रसंग वह मुझसे कहा था। अब आप सावधान होकर उसका श्रवण करें किन्तु यह परम रहस्य गोपनीय है। इसे यहीं पर भी किसी से भी प्रकाशित नहीं करना चाहिए और पूर्णतया छिपा कर रखना ॥४-६॥

शङ्कराद्यैर्विरिञ्च्याद्यैरदृष्टमश्रुतं च यत् ।
सर्वमेतत्कृपाम्भोधे ! कृपया कथय प्रभो ! ॥७
कियत्यः कथिता पूर्वमाभीर्यस्तव वल्लभाः ।
तास्ताः कतिविधा देव कति वा मद्विधा पुनः ॥८
नामानि कति वा तासां का वा कुत्र व्यवस्थिताः ।
तासां वा कतिकर्माणि वयोवेषश्च कः प्रभो ! ॥९
याभिःसार्द्धं सदा वा देव विहरिष्यसि गोरहः ।
नित्ये नित्यसुखे नित्यविभवेन वनेवने ॥१०
तत्स्थानं गोपितं गुह्यं सात्वतां परमं महत् ।
कृपावेशात्त्वमो तन्मे सर्वं मनुमिहार्हसि ॥११
मत्पृष्टं मयाऽप्येवमज्ञातं यत्तुन्नय ।
आर्तिघ्न ! महाभाग ! सर्वं तत्कथयिष्यसि ॥१२

अर्जुन ने कहा—शङ्कर आदि विरिञ्चि प्रभृति ने जो कभी नहीं देखा था और न कभी सुना ही था उस सबको हे कृपा के सागर ! हे प्रभो !

कृपा करके मुझे बतलाइये ॥७॥ क्या आपने ही पूर्व में यह कहा था कि आभीरी सब आपकी वल्लभा हैं ? तो अब यह बतलाइये हे देव ! वे, सब कितने प्रकार की हैं और संख्या में भी कितनी हैं ? ॥८॥ उन सबके कितने नाम हैं और उनमें से कौन कहाँ पर व्यवस्थित हैं ? उन सबके कितने प्रकार के कर्म्म हैं ? हे प्रभो ! यह भी बतलाने की कृपा करें कि उनकी उम्र क्या है और उनका वेष कैसा होता है ? ॥६॥ हे देव ! किस स्थान पर किनके साथ एकान्त में आप विहार किया करते हैं क्योंकि विहार करने का आपका जीवन है वह तो नित्य है और नित्य वैभव से भी सम्पन्न है ॥१०॥ वह स्थान किस प्रकार का है और कहाँ पर है जो कि सर्वदा रहने वाला और परम महान् है। यदि आपकी मुझ पर वैसी ही कृपा है तो यह सभी कुछ आप मुझे बताने के योग्य होते हैं ॥११॥ मैंने जो भी नहीं पूछा है और जो रहस्य आपका मुझे ज्ञात नहीं है। हे आर्त्तों की पीड़ा का हनन करने वाले ! हे महाभाग ! उस सब को मुझे बतला देवेंगे ॥१२॥

तत्स्थान वल्लभास्ता मे विहारस्तादृशो मम ।
अपि प्राणसमानाना सत्यं पुंसामगोचरः ॥१३
कथिते द्रष्टुमुत्कण्ठा तव वत्स भविष्यति ।
ब्रह्मादीनामदृश्यं यत्किं तदन्यजनस्य वै ॥१४
तस्माद्विरम वत्सैतत्किं तु तेन विनातव ।
एवं भगवतस्तस्य श्रुत्वावाक्यं सुदारुणम् ॥१५
दीनः पादाम्बुजद्वन्द्वे दण्डवत्पतितोऽर्जुनः ।
ततो विहस्य भगवान्दोर्भ्यामुत्थाप्य तं विभुः ॥१६
उवाच परमप्रेम्णा भक्ताय भक्तवत्सलः ।
तत्किं तत्कथनेनात्र द्रष्टव्यं चेत्त्वया हि यत् ॥१७
यस्या सर्वंसमुत्पन्नं यस्यामद्यापि तिष्ठति ।
लयमेष्यति ता देवी श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥१८
आराध्य परया भक्त्या तस्यै स्वं च निवेदय ।
ता विनैतत्पदं दातुं न शक्नोमि कदाचन ॥१६

श्रुत्वैतद्भगवद्वाक्यं पार्थो हर्षाकुलेक्षणः ।
श्रीमत्यास्त्रिपुरादेव्या ययौ श्रीपादुकातलम् ॥२०

श्रीभगवान् ने कहा—मेरे विहार का वह स्थान वे मेरी वल्लभाएं और मेरा वह विहार भी उसी प्रकार का है कि जो मेरे प्राणों के समान भी पुरुष है उनको सत्य रूप से अप्रत्यक्ष रहता है अर्थात् वे भी उसे नहीं देख या जान पाते हैं ॥१३॥ मैं यदि तुमसे वह सभी कहता हूं तो फिर उसे देखने की भी तुम्हारी उत्कण्ठा जाग्रत हो जायगी। हे वत्स! जो ब्रह्मा आदि के द्वारा भी अदृश्य है वह अन्य जन को तो दिखलाई दे ही कैसे सकता है ॥१४॥ अतएव हे वत्स! तुम चुप रहो जाओ। उस सब के जाने बिना तुम्हारा क्या बिगड़ता है अर्थात् उसे तुम नहीं जानो तो तुम्हारी कोई हानि नहीं है। इस प्रकार के उन भगवान् के सुदारुण वचनों को सुनकर बड़ी दीनता का अनुभव होने लगा ॥१५॥ फिर तो अत्यन्त दीन होकर अर्जुन भगवान् चरण कमलों में एक दण्ड की भांति गिर गया था। तब सब व्यापक भगवान् ने कुछ हँस कर दोनों हाथ से उस अर्जुन को उठा लिया था ॥१६॥ भक्तों पर प्यार करने वाले भगवान्ने उस अपने परम भक्त अर्जुन से अत्यन्त प्रेम पूर्वक कहा—यहाँ पर इस कथन से क्या प्रयोजन है यदि तुमको वह सब देखने की ही अभिलाषा है तो एक उपाय करो ॥१७॥ जिसमें यह चराचर समस्त विश्व ब्रह्माण्ड समुत्पन्न हुआ है और जिसमें यह सम्पूर्ण अब भी स्थित है तथा अन्त में जिसमें लय को प्राप्त होगा उस श्रीमती त्रिपुर सुन्दरी देवी की समाराधना करो ॥१८॥ पराभक्ति के साथ उस देवी की आराधना करके फिर उसी से अपने अभिप्राय को निवेदन करो और अपने आपको उसी की सेवा में समर्पित कर दो। उसके बिना अर्थात् उसकी कृपा दृष्टि के बिना यह पद मैं किसी भी प्रकार से और कभी भी दे नहीं सकता हूँ ॥१९॥ श्रीभगवान् के इन वचनों को श्रवण कर अर्जुन हर्ष से समाकुलित नेत्रों वाला हो गया था और फिर वह श्रीमती त्रिपुर सुन्दरी की के श्री पादुका तल की शरण में चला गया था ॥२०॥

अस्मिन्नवसरे देवी तमागत्य स्मितानना ।
उवाच गच्छ वत्स ! त्वमधुनातद्गृहान्तरे ॥२१
ततः ससम्भ्रमः पार्थ- समुत्थाय मुदान्वितः ।
असङ्ख्यहर्षपूर्णात्मा दण्डवत्तां ननाम ह ॥२२
ततस्तयाकरे तस्य धृत्वा तत्पददक्षिणे ।
प्रतिपेदे सुदेशेन गत्वा चोक्तमिद वचः ॥२३
स्नानायैतच्छुभं पार्थ विशत्वं जलविस्तरम् ।
सहस्रदलपद्मस्थसस्थानं मध्यकोरकम् ॥२४
यस्तावतार कृष्णस्य स्तुवन्त्येव दिवानिशम् ।
भवेद्यत्तस्तरणादेव मुनेः स्वान्ते स्मराङ्कुरः ॥२५
ततोऽस्मिन्सरसि स्नात्वा गत्वा पूर्वसरस्तटम् ।
उपस्पृश्य जलं तस्य साधय स्वमनोरथम् ॥२६
रत्नावद्धचतुस्तीरे मन्दानिल रत ङ्गिते ।
मग्ने जलान्तः पार्थे तु तत्रैवान्तर्दधेऽस्य सा ॥२७
उत्थाय परितो वीक्ष्य सम्भ्रान्ता चारुहासिनी ।
सद्यः शुद्धस्वर्णरश्मि गौरकान्ततनूलताम् ॥२८
स्फुरत्किशोरवर्पाया शारदेन्दुनिभाननाम ।
सुनीलकुटिलस्निग्धविलसद्रत्नकुन्तलाम् ॥२९

इसी अवसर मे मन्द-मन्द मुस्कराहट करती हुई वह देवी अर्जुन के समीप मे आ गई और अर्जुन से कहने लगी—हे वत्स ! तुम अब उस गृह के अन्दर चले जाओ ॥२१॥ इसके अनन्तर सभ्रम पूर्वक अर्जुन बहुत ही आनन्द के सहित उठ खडा हुआ और अपरिमित हर्ष से परिपूर्ण आत्मा वाला वह उस देवी के श्री चरणो मे दण्ड की भाँति गीरकर उसने उसे प्रणाम किया था ॥२२॥ इसके अनन्तर उस देवी ने उसके ऊपर अपना हाथ रक्खा और उसके चरण को दक्षिण की ओर एक सुन्दर भाग मे उसे ले गई । वहा पर उसने अर्जुन से यह वचन कहा था ॥२३॥ हे पार्थ ! यह स्नान के लिये परम शुभ है । तुम इस जल मे प्रवेश करो । एक सहस्र दलों वाले पद्म के मध्य मे स्थित सस्थान है जो

कि मध्य कोरक है ॥२४॥ जहां पर अहर्निश कृष्ण के अवतार की स्तुति किया करती हैं जिसके स्मरण मात्र से ही मुनि के भी हृदय में स्मरण का अंकुर हो जाया करता है ॥२५॥ इसके अनन्तर इस सरोवर में स्नान करके और पूर्व सर के तट पर जाकर उसके जल का उपस्पर्शन करके फिर अपने मनोरथ को सफल करो ॥२६॥ उस सरोवर के चारों तट रत्नों से आबद्ध थे और मन्द वायु से तरंगित वह जलाशय था। जल के अन्दर अर्जुन के मग्न हो जाने पर वह श्रीमती त्रिपुर सुन्दरी देवी वहीं पर अन्तर्हित हो गई थी और फिर दिखलाई नहीं दी थी ॥२७॥ अर्जुन ने उठकर देखा कि वह देवी चार हाथ वाली सम्भ्रान्त हो गई है। फिर तुरन्त ही अर्जुन ने शुद्ध सुवर्णमयी किरणों से गौर और सुरम्य तनु लता वाली का दर्शन किया था ॥२८॥ स्फुरमाण किशोर अवस्था वाली और शरद काल के चन्द्रमा के समान मुखाकृति से सुसम्पन्न तथा सुन्दर नीले एवं कुटिल स्निग्ध शोभायुक्त रत्नों से परिपूर्ण केशों वाली को अवलोकन किया था ॥२९॥

काऽसि त्वं कस्य कन्याऽसि कस्य त्वं प्राणवल्लभा।
जाता कुत्राऽसि केनास्मिन्नानीता वाऽऽगता स्वयम् ॥३०
एतच्च सर्वमस्माकं कथ्यतां चिन्तया किमु।
स्नानेऽस्मिन्परमानन्दे कस्यापि दु:खमस्ति किमु ॥३१
इति पृष्टा तया सा तु विनयावनतिंगता।
उवाच सुस्वरं तासां मोहयन्ती मनांसि च ॥३२
का वाऽस्मि कस्य कन्या वा प्रजाता कस्य वल्लभा।
आनीता केन वा चात्र किं वाऽथ स्वयमागता ॥३३
एतत्किञ्चिन्न जानामि देवी जानातु तत्पुनः।
कथितं श्रूयतां तन्मे सद्भावे प्रत्ययो यदि ॥३४
अस्यैव दक्षिणेपार्श्वे एकमस्ति सरोवरम्।
तत्राहं स्नातुमायाता जाता तत्रैव संस्थिता ॥३५
विषमोत्कण्ठिता पश्चात्पश्यन्ती परितो दिशम्।
एतस्मादागमद्भूत ध्वनिमत्योरमद्भुताम् ॥३६

आगताऽस्यजलं स्पृष्ट्वा नानाविधशुभध्वनिम् ।
अश्रौषञ्च ततःपश्चादपश्यं भवतीः पराः ॥३७
एतन्मात्रं विजानामि कायेन मनसा गिरा ।
एतदेव मया देव्यः ! कथितं यदि रोचते ॥३८

प्रिय मुदा ने कहा—तू कौन है और किसकी पुत्री है तथा किसकी प्राणों की प्रिया है ? कहां पर जन्म हुआ है और यहाँ पर तुझे कौन लाया है अथवा तू स्वयं ही यहाँ पर आगई है ॥३०॥ यह सभी कुछ हमको बतलाओ और अब चिन्ता की कोई भी आवश्यकता नहीं है। इस परमानन्द में स्नान करने पर किसी को भी कोई दुःख नहीं होता है ॥३१॥ इस प्रकार से पूछे जाने पर उसने विनयपूर्वक अवनति करके उन सबके मनों को मोहित करते हुए सुन्दर स्वर में कहा ॥३२॥ अर्जुन ने कहा—(यही अर्जुन स्त्री स्वरूप में हो गया था) मैं कौन हूं—किसकी कन्या हूँ कहां उत्पन्न हुई हूं और किसकी प्यारी हूँ—कौन मुझे यहाँ लाया है अथवा मैं स्वय ही आ गई हूँ—यह सब कुछ मैं नहीं जानती हूं। इसे देवी ही जानती है। यदि मेरे वाक्य में आपका विश्वास है तो जो कुछ भी मेरे द्वारा कहा जाता है उसका आप श्रवण करें ॥३३-३४॥ इसी के दक्षिण पार्श्व में एक सरोवर है। वहां पर मैं स्नान करने को आई थी और वहीं पर संस्थित होगई थी। फिर विषमोत्कण्ठिता मैं चारों ओर दिशाओं में देख रही थी तो उसी समय मैंने आकाश से समुत्पन्न एक परम अद्भुत ध्वनि मैंने सुनी थी ॥३५-३६॥ इसके जल का स्पर्श करके मैं आई तो अनेक प्रकार की ध्वनि मैंने सुनी थी। इसके पश्चात् आपको मैंने देखा है ॥३७॥ इतना मात्र ही काय-मन और वाणी से मैं जानती हूं। हे देवियो ! मैंने इतना ही कहा है यदि आपको वह अच्छा लगता हो ॥३८॥

मत्सखीनां वचः सत्यं तेन त्वं मे प्रियासखी ।
समुत्तिष्ठ समागच्छ कामं ते साधयाम्यहम् ॥३९
अर्जुनी सा वचो देव्याः श्रुत्वा चात्ममनोप्सितम् ।
पुलकाङ्कुरमुग्धाङ्गी बाष्पाकुलविलोचना ॥४०

पपात चरणे देव्याः पुनश्च प्रेमविह्वला ।
ततः प्रियम्वदां देवी समुवाच सखीमिमाम् ॥४१
पाणौ गृहीत्वा मत्सङ्गे समाश्वास्य समानय ।
ततः प्रियम्वदादेव्या आज्ञया जातसम्भ्रमा ॥४२
तां तथैव समादाय सङ्गे देव्या जगामह ।
गत्वोत्तरसरस्तीरे स्नापयित्वा विधानतः ॥४३
सङ्कल्पादिकपूर्वन्तु पूजयित्वा यथाविधि ।
श्रीगोकुलकलानाथमन्त्रं तत्र सुसिद्धिदम् ॥४४
ग्राहयामास तां देवी कृपया हरिवल्लभा ।
यत्त गोकुलनाथाख्य पूर्वं मोहनभूषितम् ॥४५
सर्वसिद्धिप्रद मन्त्र सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
गोविन्देरितविज्ञाऽसौ ददौ भक्तिमचञ्चलाम् ॥४६
ध्यानञ्च कथितं तस्यै मन्त्रराजञ्च मोहनम् ।
उक्तञ्च मोहने तन्त्रे स्मृतिरप्यस्य सिद्धिदा ।
नीलोत्पलदलश्याम नानालङ्कारभूषितम् ॥४७
कोटिकन्दर्पलावण्य ध्यायेद्रासरसाकुलम् ।
प्रियम्वदामुवाचेद रहस्यं पावनेच्छया ॥४८
अस्या यावद्भवेत्पूर्ण पुरश्चरणमुत्तमम् ।
तावद्धि पालयैनात्व सावधाना सहालिभिः ॥४९

देवी ने कहा— मेरी सखियो ! वचन बिल्कुल सत्य हैं। इसने तुम मेरी प्यारी सखी हो। उठो आओ, तुम्हारी कामना को सिद्ध करू ॥३९॥ वह अर्जुनी सखी अर्थात् सखी रूप में प्राप्त हुआ अर्जुन ने देवी के वचन सुनकर जो कि अपनी आत्मा के मनोषित थे उस अर्जुनी का सारा अग पुलकों के अंकुर उठ आने से मुग्ध होगया था और वाष्पों से नेत्र समाकुलित होगये थे ॥४०॥ वह प्रेमातिशय में विह्वल होकर फिर देवी के चरणो में गिर पड़ी थी। इसके अनन्तर इस सखी को प्रयम्वदा देवी से कहने लगीं ॥४१॥ हाथ पकड़ कर मेरे संग में समाश्वासित करके ले आओ। इसके पश्चात् देवी की आज्ञा से सम्भ्रम उत्पन्न

हो जाने वाली प्रयम्वदा ने उसको उसी प्रकार से लाकर देवी के साथ सग मे चली गई थी। वहा पहुच कर उत्तम सरोवर के तट पर स्नान कराकर और विधान से सगत्यादिक पूर्वक यथाविधि पूजा करके फिर उसको श्री गोकुल कलानाथ का सुसिद्धि प्रदान कराने वाला मन्त्र ग्रहण कराया था। हरिवल्लभा देवी कृपा करके ही गोकुलनाथ नाम वाला व्रत जो पूर्व मे ही मोहन से भूषित है और समस्त सिद्धियो का देने वाला मन्त्र है एव समस्त तन्त्रो मे गोपित भी है। गोविन्द के द्वारा कही गई बात की ज्ञाता इसने अचञ्चला भक्ति भी प्रदान की थी ॥४२-४६॥ उसका ध्यान भी बतलाया था और उसको मोहन मन्त्रराज भी बताया था और मोहन तन्त्र मे इसकी सिद्धि देने वाली स्मृति भी बतलाई थी। नील उत्पल के दल के समान श्याम वर्ण वाले-अनेक अद्भुत बहुमूल्य आभरणो से विभूषित-करोडो कामदेव के लावण्य से भी अद्भुत लावण्य युक्त और रास के रसानन्द मे समाकुल रहने वाले का ध्यान करना चाहिए। पावन करने की इच्छा से ही यह रहस्य प्रियम्वदा को बतलाया था ॥४७-४८॥ श्री राधिकाजी ने कहा—इसका जब तक यह उत्तम पुरश्चरण पूर्ण न हो तभी तक तुम अपनी सम्पूर्ण अलियों के साथ अत्यन्त सावधान होकर इसका पालन करो ॥४९॥

अन्यत्क्रीडाभव यद्यत्तत्सर्वं च पृथक्पृथक् ।
रसाल विविध यन्त्र कलयन्तीभिरादरात् ॥५०
यथास्थाननियुक्ताभिः पश्यन्तीभिस्तदिङ्गितम् ।
तन्मुखाम्भोजदत्ताक्षि चञ्चलाभिरनुक्रमात् ॥५१
श्रीमत्या राधिकादेव्या वामभागे ससभ्रमम् ।
आराधयन्त्या ताम्बूलमर्पयन्त्या शुचिस्मितम् ॥५२
रमालोक्यार्जुनीयाऽसौ मदनावेशविह्वला ।
ततस्ना च तथा ज्ञात्वा हृषीकेशोऽपि सर्ववित् ॥५३
ततस्तस्या. स्कन्धदेशे प्रदत्तभुजपल्लवः ।
आगत्य शारदा प्राह पश्चिमेऽस्मिन्सरोवरे ॥५४

शीघ्रं स्नापय तन्वङ्गी क्रीडाश्रान्ता मृदु स्मिताम् ।
ततस्ता शारदादेवी तस्मिन्क्रीडासरोवरे ॥५५
स्नानं कुर्वित्युवाचैना सा च श्रान्तातथाऽकरोत् ।
जलाभ्यन्तरमाप्ताऽसौपुनरर्जुनतागत. ॥५६

इतना पर कहकर वह श्री राधिका श्रीकृष्ण के चरण कमल की सन्निधि मे चली गई थी । इसके अतिरिक्त अन्य जो भी क्रीडा से समुत्पन्न हुआ वह-वह सब पृथक् पृथक् था । विविध प्रकार का रसाल यन्त्र को बड़े आदर के साथ कहती हुई और यथा स्थान पर नियुक्त हुई-उसके इ गति को देखती हुई इन श्री राधिका के मुख कमल से नभ लगा कर चचल होने वाली अनुक्रम से वहाँ स्थिति की थी ॥५०-५१॥ इस प्रकार से समाराधन करती हुई तथा ताम्बूल को समर्पित करती हुई-शुचि स्मित को भली भाँति अवलोकन करके यह अर्जुनीया मदन के आवेश से विह्वल हो गई थी । इसके अनन्तर तत्वों के ज्ञाता भगवान् हृषीकेश ने भी उसको उस प्रकार के आवेश म सस्थित जान लिया था ॥५२-५३॥ इसके पश्चात् उसकी कामना पूर्ण करके फिर उसके स्कन्ध भाग पर हाथ रख कर अर्थात् अपनी भुजा पल्लव को गलबाही मे देकर आकर शारदा से कहा था—इसको पश्चिम सरोवर के तट पर शीघ्र स्नान कराओ । यह तन्वगी है और काम क्रीडा के कारण परम श्रान्त होगई है एव मृदु स्मित वाली है । इसके अनन्तर शारदा देवी ने उस क्रीडा सरोवर मे स्नान करो—ऐसा इससे कहा था और वह भी श्रान्त थी ही उसने वहाँ पर स्नान किया था । जैसे ही यह जल के अन्दर पहुचा वैसे ही यह पुन अर्जुन एक पुरुष के स्वरूप मे पूर्व की ही भाँति हो गया था ॥५४-५६॥

उत्तस्थौ यत्र देवेश श्रीमद्वृन्दावनायन॰ ।
दृष्ट्वा तमर्जुन कृष्णो विषण्ण भग्नमानसम् ।
मायया पाणिना स्पृष्ट्वा प्रकृत विदधे पुन. ॥५७
धनञ्जयत्वामाशसे मदा-प्रियमगो मम ।
त्वत्समो नास्तिमेकोऽपिरहो वेत्ता जगत्त्रये ॥५८

यद्रहस्य त्वया पृष्टमनुभूत च तत्पुन. ।
कथ्यते यदि तत्कस्मै शपसे मा तदाऽर्जुन ! ॥५९
इति प्रसादमासाद्य शपथैर्जातनिर्णय ।
ययौ हृष्टमनास्तस्मात्स्वधामाद्भुतसस्मृति ॥६० ।
इति ते कथित सर्वं रहो यद्गोचर मम ।
गोविन्दस्य तथा चास्मै कथने शपथस्तव ॥६१

वह अर्जुन खड़ा हो गया था जहाँ पर देवों के ईश श्रीमान् वैकुण्ठ के नायक विराजमान थे । भगवान् श्रीकृष्ण ने उस अर्जुन को विषाद से परिपूर्ण और खेद युक्त मन वाला देखा था । भगवान् ने अपने हाथ से उसका स्पर्श करके माया के द्वारा उसे पुन अहृत कर दिया था ॥५७॥ श्रीकृष्ण ने कहा—हे धनञ्जय ! मैं तुमको कहता हूँ कि आप मेरे परम प्रिय सखा हो । इस त्रिभुवन मे जैसा तू मेरे रहस्य को जानता है वैसा तेरे समान अन्य कोई एक भी नहीं है ॥५८॥ जो रहस्य तुमने पूछा है और पुन. उसका अनुभव भी किया है उस समय मे हे अर्जुन ! यदि वह किसी को भी कहा जाता है तो मुझको बुरा कहेगा ॥५९॥ सनत्कुमार ने कहा—इस तरह से प्रसाद को प्राप्त कर शपथो के द्वारा निर्णय पर पहुँचा हुआ फिर प्रसन्न मन वाला होकर उस स्थल से अपने घर की अद्भुत सस्मृति करता हुआ चला गया ॥६०॥ सनत्कुमार ने कहा कि यह सम्पूर्ण रहस्य जो भी मुझको ज्ञात था तुमको बता दिया है । गोविन्द तथा इसके विषय म कथन करने मे तुमको शपथ दिलाई हुई है ॥६१॥

॥ नारद का स्त्रीरूप बनना ॥

वृन्दावनरहस्य च बहुधा कथित विभो ।
येन पुण्यविशेषेण नारद प्रकृति गत ॥१
एकदाश्चर्य वृत्तान्त यथा जिज्ञासित पुरा ।
ब्रह्मणा कथित गुह्य श्रुत कृष्णमुखाम्बुजात् ॥२

नारदः पृष्टवान्मह्यं तदाऽहं प्राप्तवानिदम् ।
अहं वक्तुं न शक्नोमि तन्माहात्म्यं कथञ्चन ॥३
किं कुर्वे श्रवणं तस्य स्मृत्वा सीदामि मानसे ।
इति श्रुत्वा मम वचो दुर्मनाः सोऽभवद्यदा ॥४
तदा ब्रह्माणमाहूय अहमादिष्टवान्प्रिये ।
त्वया यत्कथितं मह्यं नारदाय वदस्व तत् ॥५
ब्रह्मा तदा मम वचो निशम्य सह नारदः ।
जगाम कृष्णसविधं नत्वा पृच्छत्तदेव ते ॥६
किमिदं द्वात्रिंशद्वनं वृन्दारण्यं विशांपते ! ।
श्रोतुमिच्छामि भगवन्यदि योग्योऽस्मि मे वद ॥७

पार्वती देवी ने कहा—हे विभो ! आपने प्रायः श्री वृन्दावन का रहस्य तो कहा था । अब यह बतलाइये कि किस पुण्य विशेष से देवर्षि नारद प्रकृति को प्राप्त हुए थे । ईश्वर ने कहा—यह तो बहुत आश्चर्य भरा हुआ वृत्तान्त है जिसने पहिले जाना था । ब्रह्माजी ने इस परम गुप्त विषय को बताया था जोकि श्रीकृष्ण के मुख कमल से पहिले श्रवण किया था॥१-२॥श्रीनारद मुनि ने मुझसे पूछा था । उसी समय में मैंने इसे प्राप्त किया था, किन्तु, इसे बता नहीं सकता हूँ । उसका माहात्म्य ऐसा है कि मेरी क्षमता के बाहिर है । मैं किसी प्रकार भी उसे नहीं कह सकता हूँ ॥३॥ मैं उसका श्रवण तो क्या करूँ केवल स्मरण करके मन में दुःखित होता हूँ । इस प्रकार के मेरे वचन का श्रवण कर जिस समय में वह दुर्मना होगया था ॥४॥ हे प्रिये ! उस समय में ब्रह्माजी को बुला कर मुझे आज्ञा दी गई थी । तुमने जो मुझसे कहा है वह नारद से कह दो । ब्रह्माजी ने उस समय में मेरा वचन सुन कर नारद के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के समीप में गये थे वहाँ जाकर उनको प्रणाम किया था और यही पूछा था ॥५-६॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे विशाम्पते ! यह बत्तीस वन वाला वृन्दावन क्या और कैसा है ? हे भगवन् ! इसके श्रवण करने की अत्यन्त उत्कट अभिलाषा है । यदि मुझे आप

इसके लिए योग्य पात्र समझते हैं तो आप कृपा कर मुझ से कहने का कष्ट करें ।।७।।

इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम् ।
यत्रेमे पशवः साक्षाद्वृक्षाः कीटा नरामराः ।।८
ये वसन्ति ममान्त्येते मृता यान्ति ममान्तिकम् ।
अत्र या गोपपत्न्यश्च निवसन्ति ममालये ।।९
सर्वतो व्यापकश्चाहं न त्यक्ष्यामि वनं क्वचित् ।
आविर्भावस्तिरोभावो भवेदत्र युगेयुगे ।।१०
तेजोमयमिदं स्थानमदृश्यं चर्मचक्षुषाम् ।
रहस्य मे प्रभावश्च पश्य वृन्दावन युगे ।।
ब्रह्मादीनां देवतानां न दृश्यं तत्कथञ्चन ।।११
तच्छ्रुत्वा नारदो नत्वा कृष्णं ब्रह्माणमेवच ।
आजगाम ह भूलोके मिश्रकं नैमिषंवनम् ।।१२
ततासौ सत्कृतश्चापि शौनकाद्यैर्मुनीश्वरैः ।
पृष्टश्चाप्यागतो ब्रह्मन्कुतस्त्वमधुना वद ।।१३
तच्छ्रुत्वा नारदः प्राह गोलोकादागतोऽस्म्यहम् ।
श्रुत्वा कृष्णमुखाम्भोजाद् वृन्दावनरहस्यकम् ।।१४

श्रीभगवान् ने कहा—यह परम रम्य वृन्दावन केवल मेरा ही धाम है। जहा पर ये पशु-साक्षात् वृक्ष-कीट-नर-अमर जो भी निवास किया करते हैं वे सब मेरे ही हैं और मृत होकर मेरी सन्निधि ही मे पहुँच जाया करते हैं। यहाँ पर जो ये गोपो की पत्नियाँ मेरे स्थान में निवास करती है वे भी योगिनी हैं ।।८-९।। मैं सर्व प्रकार से व्यापक हूँ और मैं इस वन को कभी भी नही छोडूँगा। यहाँ पर युग-युग मे आविर्भाव और तिरोभाव होता है ।।१०।। यह स्थान तेजोमय है और साधारण चर्म चक्षुओं से देखने के योग्य नही है। युग मे इसका रहस्य, मेरा प्रभाव और वृन्दावन को देखो। यह ऐसा अद्भुत एवं परम गोपनीय है कि ब्रह्मा आदि देव वृन्द को भी किसी प्रकार से भी देखने योग्य नही होता है ।।११।। ईश्वर ने कहा—यह सुन कर देवर्षि नारद

ने श्रीकृष्ण को और ब्रह्मा को प्रणाम किया था। फिर इस भूलोक में मिश्रक नैमिष वन में वह आगये थे ॥१२॥ वहाँ पर शौनकादि मुनिश्वरों के द्वारा इनका अच्छा सत्कार किया गया था। सभी ने इनसे पूछा था—हे महान्! इस समय आपका आगमन कहाँ से हुआ है—यह हमको बतलाइये ॥१३॥ यह सुनकर नारद ने कहा—मैं इस समय में गोलोक से आया हूँ और मैंने श्रीकृष्ण के मुख कमल से इस वृन्दावन का रहस्य सुना है ॥१४॥

तत्र नानाविधाः प्रश्ना कृताश्चैव पुनः पुनः ।
समस्ता मनवस्तत्र योगाश्चैव मयाश्रुताः ।
तानेव कथयिष्यामि यथाप्रश्नं च तत्त्वतः ॥१५
वृन्दारण्यरहस्यं हि यदुक्तं ब्रह्मणा त्वयि ।
तदस्माकं समाचक्ष्व यद्यस्मासु कृपा तव ॥१६
इदं तु परमं गुह्यं रहस्यातिरहस्यकम् ।
पुरा मे ब्रह्मणा प्रोक्तं तादृग्वृन्दवनोद्भवम् ॥१७
रहस्यं यद् देवेश ऽवृन्दारण्यस्य मे पितः ।
इति जिज्ञासितं श्रुत्वा क्षणं मौनी स चाभवत् ॥१८
ततोमामाह महाविष्णुं गच्छ वत्सप्रभुं मम ।
मयाऽपि तत्र गन्तव्यं त्वया सह न संशयः ॥१९
इत्युक्त्वा मां गृहीत्वा च गतो विष्णोश्च धामनि ।
महाविष्णौ च कथितं मयोक्तं यन्तदेव हि ॥२०
तच्छ्रुत्वा च महाविष्णुः स्वयम्भुवमथादिशत् ।
त्वमेवादेशतो मह्यं नीत्वा वै नारदं मुनिम् ॥२१

अब मैं प्रश्न के अनुसार उन्हीं का वास्तविक रूप से तुम्हारे समक्ष में कहूँगा ॥१५॥ श्रीनारदजी ने कहा—वह जो रहस्य का भी अति रहस्य परम गोपनीय है। मुझ से पूर्व मुनि ब्रह्माजी ने कहा था। मैंने इस सम्बन्ध में ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी कि हे पिताजी! आप तो देवों के भी स्वामी हैं। उस प्रकार का वृन्दावन में उत्पन्न होने वाला वृन्दावन का रहस्य सुनना चाहिए। मेरी इस जिज्ञासा के वचन को सुन

कर वह भी एक क्षण भर के लिए मौनी होगये थे ॥१६-१८॥ इसके अनन्तर उन्होने मुझसे कहा था—हे वत्स ! मेरे प्रभु श्री महा विष्णु के समीप मे चलो । मैं भी वहा पर तुम्हारे साथ चलूंगा—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥१९॥ इतना कह कर ब्रह्माजी मुझे साथ मे लेकर भगवान् विष्णु के धाम मे गये थे । वहा पर जो मैंने उनसे प्रश्न किया था वही उन्होने श्री महाविष्णु से कहा था ॥२०॥ यह सुन कर श्री महाविष्णु ने स्वयम्भू को आदेश प्रदान किया था कि आप ही मेरी आज्ञा से नारद मुनि को लेजाकर वहा चले जावें ॥२१॥

स्नानाय विनियुङ्क्ष्वामुं सरस्यमृतसञ्ज्ञके ।
महाविष्णुसमादिष्टः स्वयम्भूर्मां तथाऽकरोत् ॥२२
तत्रामृतसरश्चाह प्रविश्य स्नानमाचरम् ।
तत्क्षणात्तत्सरः पारे योषित सविधेऽभवम् ॥२३
सर्वलक्षणसम्पन्ना योषिद्रूपातिविस्मिता ।
मा दृष्ट्वा ता समायन्तीमपृच्छच्च मुहुर्मुहु ॥२४
का त्व कुत समायाता कथमात्मविचेष्टितम् ।
तासा प्रियकथा श्रुत्वा मयोक्त तन्निशामय ॥२५
कुत कोऽह समायात कथ वा योषिदाकृति ।
स्वप्नवद् दृश्यते सर्वं किं वा मुग्धोऽस्मि भूतले ॥२६
तच्छ्रुत्वा मद्वचो देवी प्रोवाच मधुरस्वनैः ।
वृन्दा नाम्नी पुरी चेय कृष्णचन्द्रप्रियासदा ॥२७
अह च ललितादेवी तुर्यातीता च निष्कला ।
इत्युक्तवाच महादेवी करुणासान्द्रमानसा ॥२८

वहा पर अमृत सज्ञा वाले सरोवर मे इनको स्नान करने के लिये विनियोजित कर देवें । महाविष्णु के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाले ब्रह्माजी ने मुझको वैसा ही कर दिया था ॥२२॥ वहा पर जो अमृतसर था, मैंने उसमे प्रवेश किया था और स्नान भी किया था । उसी क्षण मे उस सर के पार मे निकट आते ही मैं एक योषित् होगया था ॥२३॥ नारी भी मैं ऐसा बन गया था जो सम्पूर्ण सुलक्षणो से सम्पन्न और

अत्यन्त रूप लावण्य से युक्त अति विस्मय करने वाली थी। आती हुई मुझे देख कर वे सब वहाँ आगईं और बार-बार मुझसे पूछने लगी थी ॥२४॥ स्त्रियों ने कहा—तुम कौन हो? कहाँ से यहाँ पर आई हो? किस कारण से तुमने यहाँ आगमन करने की यह चेष्टा की है? उन सबकी इस भाँति परम प्रिय कथा सुन कर मैंने फिर उनसे कहा था। उसे श्रवण करो ॥२५॥ मैं कौन हूँ और कहाँ से यहाँ पर आया हूँ तथा किस प्रकार से मेरी यह योषित की आकृति होगई है—यह सभी कुछ एक स्वप्न की भाँति ही दिखलाई दे रहा है। अथवा मैं भूतल में मुग्ध हो गया हूँ ॥२६॥ इस प्रकार के मेरे वचनों को सुनकर देवी मधुर ध्वनि से मुझसे बोली—देखो, यह वृन्दा नाम वाली पुरी है जो सर्वदा श्रीकृष्ण को परम प्रिय है ॥२७॥ और मैं ललिता देवी हूँ जो तूर्यातीत और निष्कला हूँ। इस तरह करुणा से सान्द्र चित्त वाली देवी ने मुझसे कहा था ॥२८॥

मा प्रत्याह पुनर्देवी समागच्छ मया सह।
अन्याश्च योषितः सर्वा. कृष्णापादपरायणाः ॥२६

ताश्च मा प्रवदन्त्येव समागच्छानया सह।
ततोऽनुकृष्णचन्द्रस्य चतुर्दशाक्षरो मनुः ॥३०

कृपया कथितस्तस्या देव्याश्चापि महात्मनः।
तत्क्षणादेव तत्साम्यमलभ विधिद्योपमा ॥३१

ताभिः सह गतास्तत्र यत्र कृष्ण. सनातनः।
केवल सच्चिदानन्दः स्वय योषिन्मय प्रभुः ॥३२

योषिदानन्दहृदयो दृष्ट्वा मा प्राब्रवीन्मुहुः।
समागच्छ प्रिये! कान्ते! भक्त्या मा परिरम्भय ॥३३

अह च ललिता देवी पु रूपा कृष्णविग्रहा।
आवयोरन्तर नास्ति सत्य सत्य हि नारद ॥३४

एव यो वेत्ति मे तत्त्व समयं च तथा मनुम्।
ससमाचारसङ्कृत ललितावत्स मे प्रियः ॥३५

उस महादेवी ललिता ने मुझसे फिर कहा था अब तुम मेरे साथ आओ। यहा पर श्रीकृष्ण के चरण कमलों मे सर्वदा तत्पर रहने वाली अन्य भी बहुत सी ललनाऐं है॥२६॥ वे सब भी मुझसे इसी प्रकार से कहती थी कि इसके साथ चली आओ। इसके अनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण का चौदह अक्षरों वाला मन्त्र कृपा करके मुझे बताया गया था। फिर महान् आत्मा वाले की उस देवी का ही सम स्वरूप मैंने उसी क्षण मे प्राप्त कर लिया था और मैं उस समय में विविध उपमा वाली देवी बन गया था॥३०-३१॥ फिर उन सबके साथ वहाँ पर गयी थी जहाँ पर सनातन भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान थे। भगवान् श्रीकृष्ण केवल सच्चिदानन्द स्वरूप वाले और स्वयं योषिन्मय प्रभु थे॥३२॥ योषितों को आनन्द प्रदान करने वाले हृदय को रखने वाले उन्होने मुझे देखा और मुझसे वे बार २ कहने लगे। हे प्रिये! हे कान्ते! चली आओ। भक्ति के साथ मेरा परिरम्भण करो॥३३॥ मैं तो ललिता देवी हूँ। जो पुरुष के रूप वाली और श्रीकृष्ण के विग्रह को धारण करने वाली हूँ हम दोनों मे कोई भी अन्तर नही है,हे नारद! यह बिल्कुल सत्य एवं महा सत्य है॥३४॥जो इस प्रकार से मेरे तत्व को और समय को एव मन्त्र को जानता है जो कि समाचार के सकेत के सहित ही है वह ललिता की भाँति ही मेरा प्रिय है॥३५॥

इदं वृन्दावनं नाम रहस्यं मम वै गृहम्।
न प्रकाश्य कदा क्वापि वक्तव्यं न पशौ क्वचित्॥३६
ततोऽनु राधिका देवी मां नीत्वा तत्सरोवरे।
स्थित्वा सा कृष्णचन्द्रस्य चरणान्ते गता पुनः॥३७
ततो निमज्जनादेव नारदोऽहमुपागतः।
वीणाहस्तो गानपरस्तद्रहस्यं मुहुर्मुदा॥३८
स्वयम्भुवं नमस्कृत्य तत्रागां विष्णुपार्षदम्।
स्वयम्भुवा तथा दृष्टं नोक्तं किञ्चित्तदा पुनः॥३९
इति ते कथितं वत्स! सुगोप्यं च मया त्वयि।
त्वयाऽपि कृष्णचन्द्रस्य केवलं धाम चित्कलम्॥४०

यह वृन्दावन नाम वाला रहस्य मेरा पर है। इसे कभी भी कहीं प्रकाशित नहीं करना चाहिए किसी भी पशु वृत्ति वाले मनुष्य से तो कहीं भी कभी न बोलना चाहिए ॥३६॥ इसके पश्चात् श्रीराधिका देवी मुझे उसी सरोवर के निकट ले गयी थी। वहां पर स्थित होकर फिर वह कृष्णचन्द्र के चरणो के समीप में चली गई थी ॥३७॥ इसके अनन्तर मैंने उसी सरोवर मे निमज्जन किया था और मैं पुनः नारद हो गया था मेरे हाथ मे पहिले ही के भाँति वीणा हो गया था और मैं गान मे तत्पर होकर बड़े ही आनन्द से बारम्बार उसी रहस्य का गायन करता था ॥३८॥ स्वयम्भू को प्रणाम करके वहाँ पर विष्णु पार्षद के समीप चला गया था। स्वयम्भू ने मुझे उसी प्रकार का देखा था और फिर उस समय मे कुछ भी नही बोले थे ॥३९॥ उन्होने यह कहा था—हे वत्स! मुझे तुम्हारे विषय मे यह भली भाँति गोपनीय रखना चाहिए और तुम को भी भगवान् कृष्णचन्द्र का केवल विश्वलधाम गोपनीय ही रखना चाहिए ॥४०॥

॥ वैसाखमास व्रत विधान ॥

इतितस्य वच श्रुत्वानारदस्य महात्मनः ।
अम्बरीषश्च राजर्षिविस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥१
मार्गशीर्षदिकान्मासान्हित्वा पुण्यान्महामुने ! ।
सर्वमासाधिक मास वैशाख कि प्रशससि ॥२
सर्वेभ्योऽप्यधिक. कस्मान्माधवो माधवप्रियः ।
को विधिस्तत्र कि दान किंतपः का च देवता ॥३
अथ मन्दमृदुस्मेरस्फुरद्दन्तप्रभानुगः ।
अम्बरीष प्रत्युवाच नारदो मुनिसत्तम. ॥४
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि हिताय जगतव ।
विधिर्माधवमासस्य यन्द्रुतो ब्रह्मणः पुरा ॥५
दुर्ल्लभ भारते वर्षे जन्म तस्मान्मनुष्यता ।
मानुष्ये दुर्ल्लभे लोके स्वस्वधर्मप्रवर्त्तनम् ॥६

ततोऽपि भक्तिर्भूपाल वासुदेवेऽति दुर्लभा ।
तत्रापि दुर्लभो मासो माधवो माधवप्रिय. ।।७

सूतजी ने कहा—महात्मा नारद देवर्षि के इस प्रकार के वचन को सुन करके राजा अम्बरीष बहुत ही विस्मित होगये थे और उन्होने यह वाक्य कहा था—।।१।। राजा अम्बरीष ने कहा—हे महामुने ! परम पुण्य स्वरूप मार्गशीर्ष आदिक मासो को त्याग करके समस्त अन्य परम पवित्र मासो से भी अधिक वैशाख मास की क्यो आप प्रशसा करते है ? ।।२।। अन्य समस्त मासो से भी अधिक यह माधव मास माधव को क्यों प्रिय होता है ? इस मास मे कुछ कर्म करने की क्या विधि है और उस मास मे क्या दान दिया जाता है तथा क्या तपश्चर्या करनी चाहिए एव इस मास का देवता कौन है ? ।।३।। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर मुनियो मे परम श्रेष्ठ नारद देवर्षि मन्द २ और मृदुल मुस्कराहट से चमकते हुए दाँतो की प्रभा को प्रकट करते हुए अम्बरीष राजा से कहने लगे ।।४।। नारद जी ने कहा—हे राजन् ! आप इस विषय मे सावधान होकर सुनिये । मैं आपके हित और सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के लिए कहता हू । मैंने पहिले ब्रह्माजी से सुना था वही माधव मास का विधान मैं आपको बतला रहा हूँ ।।५।। इस परम पुण्यमय भारत वर्ष देश मे जन्म ग्रहण करना ही बहुत दुर्लभ है अर्थात् महान् पुण्यो का जब उदय होता है तभी भारत देश मे यह प्राणी जन्म लिया करता है अतएव ऐसा सौभाग्य का अवसर बहुत कठिनाई से प्राप्त हुआ करता है । उसमे भी मनुष्य देह प्राप्त कर लेना अतीव दुर्लभ है । इस मनुष्य देह को प्राप्त करके अपने शास्त्रोक्त धर्म का परिपालन करना अत्यन्त दुर्लभ होता है ।।६।। यह सभी कुछ प्राप्त कर लेने पर भी भगवान् मे भक्ति की भावना हो । हे भूपाल ! यह तो महान् दुर्लभ है । उस मे भी माधव (वैसाख) मास नितान्त दुर्लभ होता है अर्थात् वैसाख मे समुचित कर्म करने का अवसर प्राप्त हो जाना बहुत ही दुर्लभ होता है ।।७।।

तमवाप्य ततो मासं स्नानदानजपादिकम् ।
कुर्वन्ति विधिना ये तु धन्यास्ते कृतिनो नराः ॥८
तेषां दर्शनमात्रेण पापिनोऽपि विकिल्विषाः ।
भवन्ति भगवद्भावभाविता धर्मकाङ्क्षिणः ॥९
यथा न वारिधिसमो लोके कोऽपि जलाशय. ।
तथा मासो न वैशाखसदृशो माधव प्रिय ॥१०
तावत्पापानि तिष्ठन्ति मनुष्याना कलेवरे ।
यावत्कलिमलध्वंसी मासो नायाति माधवः ॥११
वैशाखे पूजितो देवो माधवो मधुहा तु यै. ।
नानोपचारै राजेन्द्र तै प्राप्त जन्मन फलम् ॥१२
किं किं न दुर्लभतर प्राप्यते मासि माधवे ।
स्नानेन परमेशस्य पूजनेन यथाविधि ॥१३
न दत्त न हुत जप्त न तीर्थे मरण कृतम् ।
यैर्हि नारायणो नैव ध्यातो निखिलतापहा ॥१४
तेषा जन्मनृणा लोके ज्ञातव्य निष्फल नृप ।
द्रव्येषु विद्यमानेषु कृपणो यो भवेन्नर ॥१५

इस मनुष्य जीवन में भगवान् वासुदेव की भक्ति यदि प्राप्त हो जावे तो वैसाख मास पाकर स्नान-दान-जप आदि जो विधि विधान पूर्वक किया करते हैं वे मनुष्य परम धन्य तथा महान् सुकृती एव कुशल हैं अर्थात् पुरुष महान् पुण्यशाली हुआ करते हैं ॥८॥ ऐसे महान् पुण्यात्मा पुरुषो का यदि दर्शन मात्र भी हो जाय तो उनका ही ऐसा विलक्षण प्रभाव होता है कि केवल दर्शन से ही पापात्मा पुरुषो के भी किल्विषों का नाश हो जाया करता है। और विशुद्ध होकर भगवान् की भक्ति से भावित होकर व धर्म की आकाङ्क्षा करने वाले बन जाया करते हैं ॥९॥ जिस तरह वारिधि संसार में सबसे बड़ा जलाशय होता है और उसकी समानता रखने वाला अन्य दूसरा कोई भी जलाशय नहीं होता है उसी भाँति भगवान् माधव का परम प्रिय वैसाख या सबसे अधिक महिमाशाली मास है जिसकी समता रखने वाला

दूसरा कोई भी मास नहीं होता है ॥१०॥ मनुष्यो के शरीर में पाप तभी तक निवास किया करते हैं जब तक कलि के मलो का ध्वंस करने वाला माधव मास नही आता है ॥११॥ मधु दैत्य के हनन करने वाले भगवान् माधव देव वैशाख मास मे जिनके द्वारा पूजित होता है। हे राजेन्द्र ! अनेक उपचारो के द्वारा जो पूजन किया करते हैं उन्होंने तो इस मनुष्य जन्म के धारण करने का वास्तविक फल ही प्राप्त कर लिया है ॥१२॥ ऐसा क्या-क्या अति दुर्लभ पदार्थ इस माधव मास मे प्राप्त नही होता है अर्थात् दुर्लभ पदार्थ मात्र भी सभी कुछ माधव मास मे प्राप्त कर लिया जाता है यदि यथाविधि इस मास मे स्नानादि किया जावे और परमेश का समर्चन किया जावे।१३।जिन्होने समस्त पापों के हनन करने वाले भगवान् नारायण का ध्यान नही किया है उन्होंने चाहे अन्य सभी दानादिक किये हों सभी व्यर्थ हैं उन्होंने दान,तप या मृत्यु कुछ भी नही किया है यही समझना चाहिए अर्थात् उनका यह सभी कुछ निष्फल होता है ॥१४॥ हे नृप ! ऐसे पुरुषों का मनुष्य शरीर धारण कर जन्म ही लोक मे ग्रहण करना निष्फल समझना चाहिए जो सभी प्रकार के द्रव्यों के विद्यमान रहते हुए भी कृपण(कंजूसी करने वाला)होता है॥१५॥

अनेकजन्मार्जितपातकावली विलीयते माधवमज्जनेन ।
सूर्योदये भूप यथा तमिस्र वचः स्वयम्भुरिदमादिशन्मे ॥१६
चकार विष्णुर्विपुलप्रचार मासस्य वै माधवसञ्ज्ञकस्य ।
यमस्य गुप्तं वचसा विचिन्त्य मनुष्यलोक गमितं चकार ॥१७
तस्मादस्मिन्समायाते माधवेमासि वैष्णवैः ।
स्नात्वा पुण्यजले तीर्थे गङ्गायाः पावने नृणाम् ॥१८
रेवाया वा महाराज यामुने शारदेऽथवा ।
प्रातस्त्वनुदिते भानौ विधानेन नृपोत्तम ! ॥१९
पूजयित्वा च देवेशं मुकुन्द मधुसूदनम् ।
पुत्रपौत्रधनं श्रेयो वाञ्छितानि सुखानि च ॥२०
अनुभूय तपस्त्वन्ते स्वर्गमक्षयमाप्नुयात् ।
एव ज्ञात्वा महाभाग मधुसूदनमर्चय ॥२१

भगवान् स्वयम्भू ने मुझे यही आदेश प्रदान किया है कि भगवान् माधव के ही स्वरूप वाले इस वैशाख मास मे मज्जन (स्नान) करने से अर्थात् तीर्थ मे सविधि नहाने से अनेक जन्मो के किये हुए पापो के समूह का विलय हो जाता है जिस प्रकार हे भूप ! सूर्य के उदय होते ही घोर अन्धकार विनष्ट हो जाया करता है वैसे ही पापो का विनाश होता है ।।१६।। भगवान् विष्णु ने इस माधव सज्ञा वाले मास का वडा भारी प्रचार किया है । यमराज के शुभ वचन का वाणी से विचार करके मनुष्य लोक मे गमन किया था ।।१७।। इसलिये इस माधव मास के उपस्थित होने पर वैष्णवजनो को पुण्यजल वाले तीर्थ मे स्नान करके अथवा मनुष्यो को पावन करने वाले गगा के जल मे स्नान करना चाहिए ।।१८।। हे महाराज ! हे नृपो मे परम श्रेष्ठ ! रेवा-यमुना अथवा शारदा के जल मे स्नान करे । जब तक भुवन भास्कर सूर्य उदित न हों तभी तक विधि पूर्वक स्नान कर लेना चाहिये ।।१६।। फिर देवो के स्वामी भगवान् मुकुन्द का पूजन करे । ऐसा करने वाला मनुष्य पुत्र-पौत्र-धन-श्रेय और अन्य सभी अभीष्ट सुखो का अनुभव करके तथा पूर्ण तपश्चर्या करके अन्त समय मे अक्षय मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । ऐसा समझकर हे महाभाग ! भगवान् मधुसूदनकी अर्चना करो।२०-२१।

स्नात्वा सम्यग्विधानेन वैशाखे तु विशेषत ।
देवमाराध्य गोविन्द नारायणमनामयम् ।।२२
प्राप्स्यसित्व सुख पुत्र धनानि च हरे पदम् ।
देवदेव नमस्कृत्य माधव पापनाशनम् ।।२३
प्रारभेत व्रतमिद पौर्णमास्या मधौ नृप ।
यमैश्च नियमैर्यु क्तःभक्त्या किश्चत्प्रदाय च ।।२४
हविष्यभुग्भूमिशायी ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
कृच्छ्रादि तपसा क्षामो ध्यायन्नारायण हृदि ।।२५
एव प्राप्य च वैशाखी दद्यान्मधु तिलादिकम् ।
भोजन द्विजमुख्येभ्यो भक्त्या धेनु सदक्षिणाम् ।।२६
अच्छिद्रं प्रार्थयेच्चापि तस्य स्नानस्य भूसुरान् ।
यथा लक्ष्मीःप्रिया भूप ! माधवस्य जगत्पतेः ।।२७

तथैव माधमोमासो मधुसूदनवल्लभः ।
एवं विधियुतो मर्त्यःस्नात्वा द्वादशवत्सरम् ।।२८
उद्यापनं चरेच्छक्त्या मधुसूदनतुष्टये ।
इद माधवमासस्य माहात्म्य कथितं तव ।।२९

इस तरह सम्यक् रीति एव विधि से वैशाख मास मे विशेष रूप से स्नान करके और आमय रहित देव गोविन्द नारायण की आराधना करने से आप भी पूर्ण-सुख-पुत्र-धन और अन्त मे हरि का पद को प्राप्त कर लेंगे । देवो के भी देव को नमस्कार करे जोकि भगवान् माधव पापो के विनाश करने वाले हैं ।।२२-२३।। हे नृप ! इस महत्व पूर्ण व्रत का आरम्भ मधु मास मे पूर्ण मासी के दिन मे ही करना चाहिए । समस्त यम और नियमों से समन्वित होकर रहे और कुछ दान भी करता रहे ।।२४।। हविष्य पदार्थों का आहार करे-भूमि मे शयन करे तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे । कृच्छ्र आदि तप से क्षाम होकर हृदय मे यदि नारायण का ध्यान करे तो अधिक उत्तम है ।।२५।। इस प्रकार से वैशाखी पूर्णिमा को प्राप्त कर मधु-तिल आदि का दान करना चाहिए । जो परम श्रेष्ठ द्विज हो उनको भोजन करावे और भक्तिभाव से युक्त होकर दक्षिणा के सहित धेनु का दान देवे ।।२६।। बिना किसी छिद्र अर्थात् कपट भाव के प्रार्थना करे । भूसुरों से उसके स्नान के करने के विषय में प्रार्थना यह करे कि किस प्रकार से लक्ष्मी जगत्पति माधव की प्रिया है, हे भूप ! ठीक उसी प्रकार से यह माधव मास भी मधु सूदन भगवान् को अत्यन्त प्रिय है । इस विधि-विधान से युक्त मनुष्य बारह वर्ष तक निरन्तर स्नान करके फिर इसका उद्यापन अपनी शक्ति के ही अनुसार भगवान् मधु सूदन के लिए अर्थात् उनकी तुष्टि के लिए करना चाहिए । यह मैंने माधव मास का माहात्म्य तुमको बतला दिया है ।।२७-२९।।

।। वैशाख मास की संक्षिप्त विधि वर्णन ।।

यातु तमद्यत नत्वा मुनि राजा ततो मुदा ।
विधि पप्रच्छ संक्षिप्त स्नानदानक्रियोचितम् ।।१

मुने ! वैशाखमासेऽस्मिन्को विधिः किं तपोऽधिकम् ।
किं च दानं कथं स्नानं कथं केशवपूजनम् ॥२
कृपया वद विप्रर्षे सर्वज्ञस्त्वं हरिप्रियः ।
विशेषतोऽपि पूजाया विधिं तीर्थपदे वद ॥३
मेषसङ्क्रमणे भानोर्माधवे मासि सत्तम ! ।
महानद्या नदीतीरे नदे सरसि निर्झरे ॥४
देवखातेऽथ वा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये ।
दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन् ॥५
मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ।
पञ्चदश्या च वा वीर ! मेषसङ्क्रमणेऽपि वा ॥६
वैशाखस्नानवियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया ।
मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्सुस्नानपूर्वकम् ॥७

सूतजी ने कहा—गमन करने के लिये उद्यत मुनि को प्रणाम करके फिर राजा ने बहुत ही प्रसन्नता के साथ स्नान दान आदि की समुचित विधि का संक्षेप में वर्णन करने के बाबत पूछा था ॥१॥ राजा अम्बरीष ने कहा—हे महामुने ! इस वैशाख मास में क्या विधि है और इसमें कौन सा तप अधिक माना जाता है ? क्या दान करना चाहिए और किस प्रकार से स्नान करे तथा भगवान् केशव का पूजन किस विधान से करना चाहिए ?॥२॥ हे विप्रर्षे ! आप मेरे ऊपर परम अनुग्रह करके यह सब वर्णन कीजिए । आप तो सर्वज्ञ हैं और भगवान् हरि के प्यारे हैं । तीर्थ स्थल में विशेष रूप से पूजा की विधि बतलाइये ॥३॥ नारद जी ने कहा—हे सत्तम ! सूर्यदेव के मेष राशि पर संक्रमण करने पर माधव मास में किसी भी महानदी में—नदी के तट पर,नदमें,सरोवर में, निर्झर में अथवा देवखात में जो भी कोई जलाशय उन उनमें में प्राप्त हो सके स्नान करना चाहिए । अथवा नियत आत्मा वाला होकर श्री हरि का स्मरण करते हुए स्नान करे ॥४-५॥ मधु मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी में उपवास करे । हे वीर ! पूर्णिमा में अथवा मेष के संक्रमण समय में वैशाख-स्नान के नियमों का धारण करे और ब्राह्मणों

की आज्ञा प्राप्त करके ही आरम्भ करना चाहिए। भगवान् मधुसूदन की अभ्यर्चना करके सुन्दर स्नान पूर्वक ही अर्चन करना चाहिए ।।६-७।।

वैशाखं सकलं मासं मेषसङ्क्रमणे रवेः ।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ।।८
मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् ।
निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ।।९
माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन ! ।
प्रातःस्नानेन मे नाथ यथोक्तफलदो भव ।।१०
यथा ते माधवो मासो वल्लभो मधुसूदन ! ।
प्रातःस्नानेन मे तस्मिन्फलदः पापहा भव ।।११
एवमुच्चार्य तत्तीर्थे पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः ।
स्मरन्नारायणं देवं स्नानं कुर्याद्विधानतः ।।१२
तीर्थं प्रकल्पयेद्धीमान्मूलमन्त्रमिमं पठन् ।
ॐ नमो नारायणाय मूलमन्त्र उदाहृतः ।।१३
दर्भपाणिस्तु विधिवदाचान्तःप्रणतो भुवि ।
चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्त्रं समन्ततः ।।१४
प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गा मन्त्रेणानेन मानवः ।
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता।। १५

सर्व प्रथम निम्न प्रकार से संकल्प करना चाहिए—इस सम्पूर्ण वैशाख मास में रवि के मेष राशि पर संक्रमण होने पर प्रातः काल में नित्य ही नियमों के सहित मैं स्नान करूँगा। भगवान् मधुसूदन प्रभु मुझ पर प्रसन्न होवें ।।८।। मधु दैत्य के हनन करने वाले भगवान् के प्रसाद से और ब्राह्मण देवों के परम अनुग्रह से मेरा यह पुण्यमय वैशाख मास का स्नान प्रति दिन बिना किसी विघ्न-बाधा के पूर्ण हो जावे ।।९।। सूर्य के मेष राशि पर संक्रमण करने पर इस माधव मास में हे मुरारे मधुसूदन ! हे नाथ ! मेरे इस प्रातः काल के स्नान से आप यथोक्त फल के प्रदान करने वाले हो जावें ।।१०।। हे मधुसूदन ! जिस प्रकार से यह माधव मास आपको प्रिय है। इस मास में मेरे प्रातः

काल के स्नान करने से फलों के प्रदान करने वाले आप पापों के हनन करने वाले हो जावें ॥११॥ इस प्रकार से अपने मुख से उच्चारण करके उस तीर्थ में पादों का प्रक्षालन करके मौन व्रत धारी होवे। नारायण देव का स्मरण करते हुए विधान पूर्वक फिर स्नान करना चाहिए ॥१२॥ धीमान् पुरुष को तीर्थ की प्रकल्पना कर लेनी चाहिए और निम्न मूल मन्त्र का पाठ करे। 'ओं नमो नारायणाय'—यह मूल मन्त्र कहा गया है ॥१३॥ हाथ में कुशा लेकर विधि पूर्वक आचमन करे और भूमि में प्रणाम करे। चार हाथ प्रमाण में युक्त और सभी ओर से चौकोर भूमि की कल्पना करे और मनुष्य को निम्न मन्त्र से वहाँ पर भागीरथी गंगा का आवाहन करना चाहिए। हे भागीरथि! आपने तो भगवान् विष्णु के चरणों से जन्म ग्रहण किया है और आप परम वैष्णवी तथा विष्णु के देवता वाली हैं ॥१४-१५॥

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य तु विधानतः।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधापयेत् ॥१६
ततस्तु तर्पणं कुर्य्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै।
ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् ॥१७
आचम्य विधिवत्सम्यगालिखेत्पद्ममग्रतः।
साक्षतैश्च सपुष्पैश्च सलिलारुणचन्दनैः ॥१८
अर्घं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनः।
नमस्ते विष्णुरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥१९
सहस्ररश्मये रार्यं नमस्ते सर्वतेजसे।
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल ॥२०
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषिते।
नमस्ते सर्वलोकेश सुप्तानामुपबोधन ॥२१

इस प्रकार से स्नान करके इसके अनन्तर आचमन विधि सहित करे। फिर उठ कर शुद्ध एवं शुक्ल वस्त्रों को धारण करे ॥१६॥ इसके अनन्तर त्रिभुवन की तृप्ति के लिये तर्पण करना चाहिए। सब से प्रथम ब्रह्मा को तृप्त करे फिर विष्णु की तृप्ति करे और पुनः रुद्र प्रजा-

पति आदि का तर्पण करना चाहिए ॥१७॥ विधि पूर्वक आचमन करके फिर अपने सामने एक पद्म का आलेखन करे। अक्षत-पुष्प और रक्त चन्दन के सहित जल से अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। प्रयत्न के साथ सूर्य के नामो का सकीर्तन करे। विष्णु के स्वरूप वाले आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूप के धारण करने वाले आपको सेवा मे नमस्कार है ॥१८ १९॥ हे सूर्य देव ! सहस्र किरणो वाले तथा सर्व तेज स्वरूपी आपके लिए नमस्कार है। रुद्र वपुधारी आपकी सेवा मे हे भक्त वत्सल ! हमारा नमस्कार है ॥२०॥ हे पद्मनाभ ! कुण्डलो और अगदो से विभूषित शरीर के धारण करने वाले आपको नमस्कार है। हे सुतप्तों के लिए उपबोधन देने वाले ! हे लोको के ईश ! आपकी सेवा मे हमारा नमस्कार समर्पित है ॥२१॥

सुकृत दुष्कृत चैव सर्वं पश्यसिसर्वदा ।
सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु ! प्रसीद मम भास्कर ! ॥२२
दिवाकर नमस्तऽस्तु ! प्रभाकर नमऽस्तुते ! ।
एव सूर्यं नमस्कृत्य सप्तकृत्वा प्रदक्षिणम् ॥२३
द्विज गा काञ्चन स्पृष्टवा पश्चाच्च स्वगृह व्रजेत् ।
आश्रमस्थास्तत पूज्य प्रतिमा चापि पूजयेत् ॥२४
पूर्वं भवत्यैव गोविन्द गृही च नियतात्मवान् ।
पूजयेद् भक्तितो राजन्नुभयत्र यथाविधि ॥२५
विशेषादपि वैशाखे योऽर्चयेन्मधुसदनम् ।
सर्व सवत्सर यावदर्चितस्तेन माधव ॥२६
माधवे मासि सम्प्राप्ते मेषस्थे कर्मसाक्षिणि ।
कशवप्रीतये कुर्यात्केशवव्रतसञ्चयम् ॥२७
वैशाख सकल मास नित्यस्नायी जितेन्द्रिय ।
जपन्हविष्य भुञ्जान सर्वपापै प्रमुच्यते ॥२८

हे सत्यदेव ! आप समस्त मानवो के पुण्य एव पापो का सवदा देखते रहा करते हैं क्योकि आप से छिपा कर कोई कुछ भी कभी नही कर सकता है। आपके लिए नमस्कार है। हे भास्कर देव ! मुझ पर

आप प्रसन्न होइये ।।२२।। हे दिवाकर ! हे प्रभाकर ! आपको प्रणाम हो । इस प्रकार से सूर्य्य देव को नमस्कार करके फिर सात बार उनकी प्रदक्षिणा करे ।।२३।। इसके अनन्तर द्विज—गो और स्वर्ण का स्पर्श करके पीछे अपने घर को जावे । आश्रम मे जो भी निवास करने वाले महान् भाव हो उन सब का अर्चन करे और प्रतिमा का पूजन करना चाहिए ।।२४।। सर्व प्रथम भक्तिभाव से ही गृही पुरुष को नियतात्मा होकर श्री गोविन्द का पूजन करना चाहिए । हे राजन् ! भक्ति से अर्चना करने पर दोनो लोकों मे कल्याण होता है किन्तु विधि पूर्वक ही करे।।२५।।विशेष रूप से वैसाख मास मे जो मधुसूदन प्रभु का अर्चन किया करता है उसका इतना पुण्य—फल होता है उसने एक मास मे ही पूजन नही किया प्रत्युत पूरे वर्ष उसने मधुसूदन का अर्चन कर लिया है ।।२६।। माधव मास के सम्प्राप्त होने पर जब कि कर्मों के साक्षी स्वरूप सूर्यदेव मेष राशि पर स्थित होते हैं उसी समय मे भगवान् केशव की प्रीति के लिए केशव के व्रत का सञ्चय करना चाहिए ।।२७।। पूरे वैसाख मास मे इन्द्रियो पर नियन्त्रण रख कर नित्य स्नान करने वाला पुरुष हविष्य पदार्थों का आहार करके रहे और जाप करता रहे तो वह सभी प्रकार के पाप से मुक्त हो जाया करता है ।।२८।।

।। पुरा कल्पीय रामायण ।।

सद्यावन्दनकर्मं क्रियतामिति रामो मुनिमाचष्टायम् ।
उष्णद्युतिरस्तमुपैति द्विजकुलमेतन्नोडमुपैति ।।१

सुखस्थित नृपमभिवीक्ष्य स द्विजो वचस्तदा समुचितमाह दाम्भुः । इह स्थितो भवनि समस्तपूजितः यथा यथा नृपवर ! वर्तते गुहायाम् । आकर्ण्याथ रघूद्वहो द्विजवचः शुश्रूषुरासीत्तथा, तत्रस्थो निपुणं निवार्य वचन सर्वः श्रुतं तत्क्षणात् । शुश्रूषामि यथ महाद्भुततया स्वात्माश्रयामन्यथा, रक्षोबाधनवादिनीमथ

नृप. विरचेतदित्याह च ॥२॥ कुम्भश्रोत्रवधः पुरा समजनि प्राप्तो दशास्यो वधं, पश्चादित्ययमन्यथा विरचितं रामायणं भापते। कोऽयं विप्रवरः समस्तजनतानास्तिक्यसम्पादको, राज्ञः स्थानमुपेत्य वक्ति स मया दण्ड्योऽथ पूज्योऽथ वा ॥३॥ अथाह जाम्बवानमुं रघूत्तमं कथाप्रति रामायणं न तावकंत्विदं हि कल्पितं मतम् ॥४॥ समस्तमत्र विस्तराद्वदामि देव ! तच्छृणु यद्केस्य सूनुतो मया श्रुतं पुरा ह्यभूत् जाम्बवन्तं विज्ञाप्य रामचन्द्रो वचनमाह ॥५॥

श्री सूतजी ने कहा—श्रीराम ने अब सन्ध्यावन्दन कर्म करिये—यह वचन मुनिवर से कहा था क्योंकि उष्णद्युति अर्थात् सूर्य देव अस्तता को प्राप्त हो रहे हैं और पक्षियों का यह समुदाय अपने घोंसलों मे जा रहा है ॥१॥ उस ब्राह्मण ने गुहा मे संस्थित नृप को देखा था उस समय मे समुचित वचन कहा था—यहाँ पर स्थित हुए आप सभी के द्वारा पूजित हैं हे नृपवर ! गुहा मे कथा किस प्रकार की है—यह बताइये। इसके अनन्तर रघुवंश के उद्वहन करने वाले श्रीराम ने ब्राह्मण के वचनो का श्रवण किया था और कथा के सुनने की इच्छा रखने वाले थे। वहाँ पर स्थित ने निपुणता से वचन का निवारण किया और तत्क्षण में सब ने श्रवण किया था। अपनी आत्मा का आश्रय करने वाली कथा के महान् अद्भुत होने से अन्यथा कैसे सुनने की इच्छा करूं जोकि राक्षसो के वाधन को बताने वाली है। इसके पश्चात् राजा ने कहा था कि वह क्या है ॥२॥ पहिले कुम्भकर्ण का वध हो गया था और दशास्य (रावण) भी वध को प्राप्त हो गया था। किन्तु यह पश्चात् हुआ—ऐसा अन्यथा रचित रामायण को कहता है। यह कौन विप्रवर है जोकि समस्त जनता की नास्तिकता को प्रतिपादित करता है ? राजाओं का स्थान प्राप्त कर वह कहता है मेरे द्वारा दण्ड देने के योग्य है अथवा पूजा करने के योग्य है ॥३॥ इसके अनन्तर इन श्री रघुत्तम भगवान् से रामायण की कथा के प्रति जाम्बवान् ने कहा—यह आपका कल्पित मत नहीं है ॥४॥ हे देव ! मैं यह

सम्पूर्ण विस्तार पूर्वक वतलाता हूँ। उसका श्रवण करियगा। मैंने पकेरहु के पुत्र के मुख से पहिले ही सुना था। जाम्बवान् को विज्ञापित करके श्रीरामचन्द्र ने वचन कहा था—॥५॥

कीतय पुराण मे शुश्रूषु कुतूहलादह प्रणीत तत्केन च विज्ञातम्। जाम्ववानथ वभापे हि विधात्रे नमो नमस्तथैव विधु-भूपणकेशवाभ्याम्। अथ पुरातन रामायण कथयामि। यस्य श्रवणेनाखिलजन्मसम्पादितपापक्षयो जायत्ते।अथ तथापि दशरथो दशरथसमानरथी महीयसा बलेन सुमानसनामनगरजिगीषया पङ्करुहसुतसुत वसिष्ठमाहूय नमस्कृत्य मुनिदत्तानुज्ञ शताक्षौहि-णीसेनया सहारुह्य तुरङ्गम चन्द्रसमानशरीरमतिरोपसमाविष्टो विष्टरश्रवसमाराध्य दण्डयात्रा चकार। साध्योनाम स्वीयया सेनयाऽऽवृतो, दशरथाभिमुखमाययौ योद्धु युद्ध चान्योन्यम-भूत् ॥६॥

भगवान् श्रीराम बोले—मेरे सामने आप पुराण का कीर्तन करो। मुझे इसके विषय मे हृदय म बडा भारी कुतूहल है अतएव मैं सुनने की इच्छा वाला हूँ—वह किसने रचना की है और किसने उसका ज्ञान प्राप्त किया है? इसके अनन्तर जाम्बवान् ने विधाता के लिये नमस्कार और उसी भाँति चन्द्रभूषण शिव एव केशव के लिए नमस्कार किया था। इसके अनन्तर पुरातन रामायण को कहता हू जिसके श्रवण करने से सम्पूर्ण जीवन म किये हुए पापो का क्षय हो जाता है। इसके अनन्तर दशरथ दशरथ के समान रथी बडे भारी बल स सुमानस नाम वाले नगर को जीतने की इच्छा स पकेरुह सुत (ब्रह्मा) के सुत (पुत्र) वसिष्ठ मुनि को प्रणाम करके मुनि के द्वारा दी हुई आज्ञा को ग्रहण करने वाला वह नृप सौ अक्षौहिणी सेना के साथ अश्व पर समारूढ़ होकर अत्यन्त रोष मे समाविष्ट होता हुआ चन्दन के तुल्य शरीर वाले भगवान् विष्टरश्रवा की आराधना करके दण्डयात्रा की थी। साध्य नाम धारी अपनी सेना से समावृत होकर युद्ध करने के लिए दशरथ के सामने आया था और परस्पर म वह युद्ध हुआ था ॥६॥

मासमेक युद्ध कृत्वा दशरथस्त साध्यं जग्राह । अथ साध्यसूनुर्भूपणो नामाल्पपरिवारो युयुधे दशरथेन । दशरथोऽपिसाध्यसूनु भुवो भूपणमवलोक्य योद्धुमेव नेच्छत् । कथमेताद्दृश हन्मि चास्मिन्हतेऽस्य कथ पिता भविष्यति कथ पिता भविष्यति कथं तन्माता कथमप्रौढयौवना प्रियाभार्या । अमुष्य हि देहे समालिङ्गनचुम्बनपरिवर्तननवीनतरदलारविन्दपदानि कुसुमानीव दृश्यन्ते । एतत्समानवर्णवया एताद्दृशःसुभगःपरमप्रीतिवर्द्धनो नामपुत्रो भल्लूकभक्षितो मृतः स्मृतिपथ प्राप्यापि मा रक्षयितुमिच्छतीव मम हृदयमन्यथाकरोति इति मनसा वितर्क्यातिबालक ग्रहीतुमारतभत् । स चासाध्योऽपि पराधीनो बभूव । स च कुमारेण सह पराजयखेदममत्वा सुखमध्युवास च । दशरथोऽपि तत्र मास स्थित्वा तत्पुत्रसन्दर्शनसुखमवलोक्याचिन्तयत् ॥७॥

एक मास पर्यन्त युद्ध करके दशरथ ने उस साध्य को ग्रहण कर लिया था अर्थात् पकड़ लिया था । इसके उपरान्त उस साध्य का पुत्र भूपण नामक था । उसका परिवार बहुत ही अल्प था । दशरथ ने भी साध्य के पुत्र भू के भूपण को देखकर उससे युद्ध करने की ही इच्छा नहीं की थी मैं ऐसे सुन्दर को कैसे मारूँगा और इसके मारे जाने पर इसके पिता कैसे रहेंगे इसकी माता कैसे रहेगी और किस प्रकार से इसकी प्रिय भार्या रहेगी जिसने अभी यौवन की प्रौढता भी प्राप्त नहीं की है,इसके शरीर में अच्छी तरह आलिंगन-चुम्बन-परिवर्त्तन-अधिक नवीन दलारविन्द पद कुसुमों की तरह ही दिखलाई देरहे हैं । इसी के समान वर्ण और अवस्था वाला ऐसा ही सुन्दर परम प्रीति की वृद्धि करने वाला (प्रीतिवर्द्धन)नाम वाला पुत्र भालू के द्वारा खाया हुआ मर गया था,ऐसा स्मृति पथ में आकर भी मुझको उसकी रक्षा करने की इच्छा करते हुए ही मेरा हृदय अन्यथा कर देता है—यह मन से वितर्क करके अति बालक को ग्रहण करने का आरम्भ किया था और वह असाध्य भी पराधीन हो गया था । और वह कुमार के साथ पराजय के दुःख को न मान कर सुख से

रहता था। दशरथ भी वहां एक मास रहकर उसके पुत्र के दर्शन करने के सुख का अवलोकन करके उसने मन में सोचा था॥७॥

अहो सर्वदु खापनोदनक्षममेतन्मुखावलोकन पुत्रसवर्द्धन नाम सर्वराष्ट्रिको मम जय पुत्रवियोगमनुस्मरतो दु खाय केवल भवति। तदस्य पृच्छा करोमि कथमीदृशो जायते पुत्र इति वितर्क्य तमपृच्छत्। साध्योऽपि सकलमोक्षमार्गं क्षितीशायादिशत्। हरीशानी सहाराध्य सर्वैकादशीरुपोष्य द्वादशीषु ब्राह्मणानाराध्य तत्तत्कालभव फलपूर्वमन्नाद्य व्यञ्जन पुष्प च न्यायेन सम्पाद्य कपिलाघृतेन केशव स्नापयित्वा मुद्गचूर्णेन सँलिप्य स्वादूदकेनस्नापयित्वा सुरभिप्राटीर न्चयमुद्घृष्ट मृगनाभ्यागुरुसारेण वा समेत देवाङ्ग सर्वमुपलिप्य सतुलसीदलयू थिकाकरवीरनीलोत्पलकमलकोकनदद्रोणकुसुममरुवदमनकगिरिकर्णिकाकेतकीदलपूर्वैर्यथासम्भवमभ्यर्च्य द्वादशाक्षरेण पुरुषसूक्तेन वा नाम्ना षोडशोपचारेण वाऽऽराध्य प्रणम्य नृत्य कृत्वा देव क्षमापयेत्। तथा व्रतानि विचित्राणि नारायणप्रीणनाय कुर्यात्॥८

ओहो! समस्त प्रकार के दु खो को दूर करने म समय पुत्र के मुख का अवलोकन करना होता है। पुत्र सवर्द्धन नाम सर्व राष्ट्रिक मेरा जय पुत्र वियोग का स्मरण करते हुए केवल दु ख के ही लिये होगा। सो इसकी पूछताछ करता हूँ कि कैसे ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है—ऐसा वितर्क करके उस से पूछा था। साध्य ने भी सम्पूर्ण मोक्ष का मार्ग राजा को समझा दिया था। हरि और ईशान दोनो को साथ २ आराधना करके समस्त एकादशियो का व्रतोपवास करके द्वादशी के दिन प्रथम ब्राह्मणो की आराधना करके उस उस समय मे होने वाले फलो के साथ अन्न आदि व्यञ्जन और पुष्प का न्याय पूर्वक सम्पादन करके कपिला गौ के घृत से केशव भगवान् का स्नपन कराके मू ग के चून से भरी भांति लेपन करे स्वादु युत जल से स्नान कराकर सुरभि प्राटीर (सुगन्धित चन्दन) जो स्वय अपने ही हाथ से घिसकर तैयार किया गया हो और कस्तूरी तथा अगुरु सार से युक्त हो उससे देवता के सम्पूर्ण अगों म

लेपन करे । फिर तुलसी के दलों से और यूथिका-करवीर-नीलोत्पल-कमल-कोकनद-द्रोण कुसुम-मरुव-दमनक-गिरि कर्णिका-केतकी दल आदि के पुष्पों से जो भी सम्भव हो सकें भगवान् की समभ्यर्चना करनी चाहिए। फिर द्वादशाक्षर मन्त्र से अथवा पुरुष सूक्त से (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) यह द्वादशाक्षर मन्त्र है सोलह उपचारों के द्वारा (अर्घ्य-पाद्य-आचमन-स्नान-गन्ध-अक्षत-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य पुनराचमनीय-प्रणाम-प्रदक्षिणा-दक्षिणा-स्तवन-स्तोत्रपाठ) ये सभी षोडश उपचार होते हैं। पूजन करे। फिर प्रणाम करके नृत्य करे और देव से क्षमापन करना चाहिए तथा विचित्र व्रतों को भगवान् नारायण की प्रसन्नता के लिये करे ॥८॥

प्रसन्नो भगवान्मुनिरीप्सितं पुत्रं यच्छति तदमुमाराधयस्वेति दशरथमुक्तवान्। स चापि साध्यं तत्र स्थाप्य गत्वाऽयोध्यां तथा सर्वं कृतवान्। अथ पुत्रकामेष्टौ समाप्तायामाहवनीयाद्यज्ञमूर्तिः शङ्खचक्रगदापाणिरुदतिष्ठत्। राजानं च वरंवृणीष्वेत्युक्तवान्। स च राजा वव्रे पुत्रानतिधार्मिकान्दीर्घायुषश्चतुरो लोकोपकारकान्देहीति।

अथ राजमहिष्यस्तस्य: कौशल्या सुमित्रा सुरूपा सुवेषा चेति। राजानमब्रुवन्देव प्रतियोपमेकैकेन पुत्रेण भवितव्यम्। एष यदि प्रसन्नो देवस्तदाऽयमुच्यतां मम। मम यदिष्टं तदयं प्रार्थ्यसे हरिः। विष्णो! प्रसीद देवेश! कमलापते शङ्खचक्रगदाधर! विभीषण! सृष्टिसमस्तलोकपालादिपूजितपादयुगल! शाश्वत! हरे! नमस्ते एवं स्तुतो भगवानथ राजानमाह ॥९॥

९ इस प्रकार से अभ्यर्चन करने पर भगवान् मुनि प्रसन्न होकर अपना अभीष्ट पुत्र प्रदान किया करते हैं सो तुम इनका समाराधना करो—यह दशरथ से कहा था। उनने भी साध्य को वहीं पर स्थापित करके अयोध्या पहुँच कर उसी प्रकार से सभी कुछ किया था। इसके अनन्तर पुत्रकामेष्टि यज्ञ के समाप्त हो जाने पर आहवनीय अग्नि से शंख-चक्र-गदा हाथों में धारण किये हुए भगवान् यज्ञ मूर्ति उठकर

खड़े हुए थे। उन्होंने उठकर राजा से कहा था—'वर की याचना करलो'। और उस राजा ने अत्यन्त धार्मिक दीर्घ आयु वाले चार पुत्रों के प्राप्त होने का वरदान मांगा था। इसके अनन्तर राजा दशरथ के चार रानियां थीं। उनके नाम कौशल्या–सुमित्रा–सुरूपा और सुवेषा ये थे। उन्होंने राजा से प्रार्थना की थी कि प्रत्येक पत्नी के एक-एक पुत्र ही होना चाहिए। कौशल्या ने कहा–यह देव यदि प्रसन्न हैं तो मैं यही चाहती हूँ कि यह देव स्वयं ही मुझ में समुत्पन्न होवें। राजा ने कहा–मुझे जो भी इष्ट है वह इन हरि से प्रार्थना की जाती है। हे विष्णो ! आप तो देवगण के भी ईश हैं, मुझ पर प्रसन्न होइये। हे कमला के पतिदेव ! हे शंख, चक्र, गदा के धारण करने वाले। हे विभीषण ! आप तो समस्त सृष्टि तथा लोकपाल आदि से पूजित चरण युगल वाले हैं। हे शाश्वत ! हे हरे। आपको नमस्कार है—नमस्कार है—इस प्रकार से स्तुति किये हुए भगवान् राजा से बोले–॥६॥

तव पुत्रो भविष्यामि कौशल्यायाम्। अथ चरु प्राविशद्धरि। त चरु हि चतुर्धा विभज्य भार्याभ्यो दत्तवान्। अथ कौशल्याया रामो लक्ष्मण सुमित्राया सुरूपाया भरत सुवेषाया शत्रुघ्नो जज्ञे। खात्पुष्पवृष्टिश्च पपात।

अथ चतुरानन स्वयमुपेत्य जातकर्मादिकाः क्रियाश्चके। त्रिभुवनाभिरामतया राम इति नाम चक्र रूपशौर्यादिलक्ष्मीयोग्यतया लक्ष्मण इत्यपरस्य भुव भारात्तारयतीति भरत. शत्रून्हन्तीति शत्रुघ्न इति नामानि कृत्वा ब्रह्मा स्वभवन जगाम। शिशवश्च वृद्धिमीयु ॥१०

भगवान् माधव ने कहा—मैं तुम्हारा पुत्र कौशल्या में जन्म ग्रहण करके होऊँगा। इसके अनन्तर भगवान् हरि ने चरु म प्रवेश किया था। उस चरु के चार भाग करके एक-एक भाग चारों भार्याओं को देदिया गया था। इसके अनन्तर कौशल्या में राम, सुमित्रा में लक्ष्मण, सुरूपा म भरत और सुवेषा मे शत्रुघ्न ने जन्म ग्रहण किया था। उस समय में जब इन चारों पुत्रों का जन्म हुआ था आकाश से देवागनाओं के

द्वारा पुष्पों की वृष्टि गिरी थी। इसके उपरान्त चतुरानन ब्रह्माजी ने स्वयं यहाँ आकर उन बालकों की जात कर्म आदि संस्कारों की क्रिया सम्पन्न की थी। तीनों भुवनों में अत्यन्त (अभिराम) सुन्दर होने के कारण इनका (राम)—यह नाम रक्खा गया, (लक्ष्मण)—यह शुभ अन्वर्थ नाम रक्खा था। भूमण्डल का भार उतारने के कारण 'भारात् तारयति' इस व्युत्पत्ति से (भरत)—यह सुनाम रक्खा था। शत्रुओं का हनन करने वाले होने के कारण 'शत्रुघ्न'—नाम रक्खा गया। इस तरह से चारों बालकों के ये चार प्रतिताथ नाम रखकर ब्रह्माजी अपने भवन को वापिस चले गये थे। वे चारों बालक शनैः शनैः बड़े होने लग गये थे ॥१०॥

अथ कदाचित् क्रीडमाने रामे बाल्यारामपात यद्रामश्च रुदन्नपतत्। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मराक्षसोराममगृह्णात्। रामश्च मूर्च्छामाप। अथ सहचरो बाल इतस्ततो रोरूयमाणो राम तथाविध राज्ञे व्यज्ञापयत्। अथ राजा राममादाय वशिष्ठमाह किमिद रामस्येति। अथ वसिष्ठो भस्मादायाभिमन्त्र्य ब्रह्मराक्षस मोचयामास। पप्रच्छ कोभवानिति स चाहाह वेदगर्वितो ब्राह्मणो बहुधा परधनमपहृत्य ब्रह्मराक्षसो जातो मे निष्कृति विचारय ॥११॥

किसी समय में राम खेल रहे थे उस समय बालकों ने राम को गिरा दिया था और श्रीराम रुदन करते हुए गिर पड़े थे। इसी बीच में एक ब्रह्मराक्षस ने श्रीराम को पकड़ लिया था और श्रीराम मूर्च्छा को प्राप्त होगये थे। इसके अन्तर साथ में रह कर क्रीडा करने वाला एक बालक इधर उधर रोरूयमान होता हुआ उस दशा में स्थित श्री राम को देख कर उसने राजा से जाकर यह समाचार बताया था। इसके पश्चात् राजा ने श्रीराम को लेजाकर वसिष्ठ मुनि से कहा था कि यह राम को क्या होगया है। इसके अनन्तर वसिष्ठ मुनि ने भस्म लेकर उसे अभिमन्त्रित किया और उस ब्रह्मराक्षस को छुड़ा दिया था। फिर उससे पूछा था कि आप कौन हैं? इस प्रश्न पर उसने उत्तर दिया था कि मैं वेद गर्वित ब्राह्मण था, मैंने बहुत सारे पराये

धन का अपहरण किया था और फिर मैं इसी महा पाप कर्म के कारण अब महा राक्षस हो गया हूँ। अब आप मेरे उद्धार का कोई उपाय विचारिये ॥११॥

अथ राम प्राप्ते काले उपनीय वसिष्ठो वेदानध्यापयामास षडङ्गानि मीमांसाद्वय नीतिशास्त्र च। अथ धनुर्वेदमायुर्वेद भरतगान्धर्ववास्तुशाकुनविविधयुद्धशास्त्राणि च। अथ विवाहं कर्तुकामेन राजा दशरथेन नानादेशजनपतीन्प्रतिदूताः प्रेरिताः। अथ कश्चिच्छीघ्रमागत्य राजानमिदमब्रवीत्। राजन्विदर्भदेशाधिपतिर्विदेहो नाम राजा। तस्य पुत्री वैदेही होमलब्धा रूपेण लक्ष्मीसमा सर्वलक्षणसम्पन्ना रामयोग्या विद्यते। स च ता दातु राजा रामायोद्यत.। तद्गम्यता शीघ्रमिति। अथ वसिष्ठादीन्प्रेषयामास। ते च तत्र गत्वा तां च निरीक्ष्य लग्न निश्चित्यायोध्यामेत्य राजा (राजान) मुक्त्वा रामसहिता. पृथिवीपति समेताः शीघ्र विविधकरितुरगशकटशिबिकान्दोलिकाभिः ॥१२

इसके अनन्तर—जब समुचित समय उपस्थित हो गया तो वसिष्ठ मुनि ने श्रीराम का उपनयन संस्कार कर दिया था और समस्त वेदों का अध्यापन भी करा दिया था। वेदो के ज्योतिष-निरुक्त आदि जो छैः अंग शास्त्र हैं उनका और पूर्वोत्तर दोनो प्रकार के मीमांसा दर्शन तथा नीति शास्त्र भी पढ़ा दिये थे धनुर्वेद,आयुर्वेद भरत गान्धर्व(संगीत)शास्त्र-वास्तु शास्त्र-शकुन शास्त्र और अनेक प्रकार के युद्ध करने के शास्त्रों को भी पढ़ा दिया था। इसके अनन्तर जब कि श्रीराम समस्त शास्त्रों में पूर्ण निष्णात होगये थे तब राजा की इच्छा हुई थी कि श्रीराम का विवाह भी कर दिया जावे तो राजा दशरथ ने बहुत से देशों में राजाओ के पास अपने दूतो को प्रेषित किया था। इसके पश्चात् किसी एक दूत ने बहुत ही शीघ्र आकर राजा से यह कहा था कि हे राजन्! विदर्भ देश का स्वामी एक विदेह नाम का नृप है। उसकी एक पुत्री है जो होम में उसे प्राप्त हुई थी। वह कन्या रूप-लावण्य मे साक्षात् ही सुन्दरी तथा लक्ष्मी के ही तुल्य है।

समस्त सुलक्षणों से सम्पन्न है और श्रीराम की पत्नी होने के योग्य है। और वह राजा भी उस अपनी पुत्री को श्रीराम को देने के लिए तयार हो गया है सो अब आप बहुत ही शीघ्र वहाँ गमन करिये। इसके पश्चात् राजा ने वसिष्ठ आदि मुनि गणों को वहां पर प्रेषित किया था। इन्होने वहां जाकर उस राजा की पुत्री को देखा था और लग्न निश्चित करके अयोध्या मे वापिस आकर राजा से समस्त वृत्तान्त सुना कर श्रीराम के सहित पृथिवी पति को साथ लेकर विविध साधनों द्वारा वहाँ पर चल दिये थे ॥१२॥

तदानीं मंगलतूर्यघोषा देवदुन्दुभिभेरीनिसाणमर्दलशङ्खादिनादाः प्रादुर्बभूवुः। गायकाश्च मङ्गलानि जगुः॥ मङ्गलवेदवाक्यानुपाठेन वैदिका ब्राह्मणाः कुलपाठका भेरीघोषेण च कृत्स्नमाकाशमापूरयन्॥ अथान्योन्याक्षतपूर्वमङ्गीकुर्वन्तः सूतवन्दिजनादिभिः स्तूयमानाः पुरं प्रविविशुः॥ विदेहनगरात्पश्चिमभागे निर्मितं मन्दिरं दशरथः प्रविवेश। अवशिष्टाश्च यथा योग्यं भवनं विविशुः॥

अथ नारदो मिथिलां तदानीमेवागच्छत्। विदेहोऽपि देवर्षिमभिपूज्य स्वागतं पृष्ट्वा भोजनं कारयित्वा सुखासीनाय मुनये सघनसारं ताम्बूलं दत्वा व्यज्ञापयत्। श्वो विवाहे भवान्स्थातुमर्हति कारयितुं विवाहम् ॥१३॥

उस समय मे मगल तूर्यों की ध्वनि हो रही थी। देवगण भी दुन्दुभि–भेरी–निसाण-मर्दल और शखो की ध्वनियाँ प्रादुर्भूत होगई थी। गायक गण मंगल गान करने लगे थे। वैदिक ब्राह्मण मगल वेद वाक्यो का पाठ कर रहे थे। कुल पाठक लोग भेरी के घोष (ध्वनि)से सम्पूर्ण आकाश मण्डल को पूरित कर रहे थे इसके अनन्तर अन्योन्य परस्पर मे अक्षत पूर्वक अंगीकार करते हुए सूत-वन्दीजन आदि के द्वारा स्तूयमान होते हुए सब लोगो ने उस राजा के नगर मे प्रवेश किया था। विदेह नगर से पश्चिम दिशा की ओर एक भाग मे निर्माण किया हुआ एक मन्दिर था उसमे महाराज दशरथ ने प्रवेश किया था। शेष

अन्य समस्त वर यात्री गण ने जो जिस प्रकार का था उसी के अनुसार भवनो मे प्रवेश कर संस्थिति की थी। इसके उपरान्त यह हुआ कि जैसे ही यह वर यात्रा आयी थी उसी समय मे वहा देवर्षि नारद भी आगये थे। राजा विदेह ने देवर्षि नारद जो का अभिपूजन करके स्वागत प्रश्न करके उन्हे भोजन कराया था। फिर सुख पूर्वक आसन पर बिठा कर मुनिवर के लिए घनसार (कपूर) से समन्वित ताम्बूल समर्पित करके विज्ञापन किया था। कल मेरी पुत्री का विवाह होगा आप कृपा कर जब यहा पधारे हैं तो कल तक अपनी स्थिति आप रखने के योग्य हैं और इस विवाह को करा दीजिए ॥१३॥

श्वो हि नक्षत्र सूर्यनक्षत्रदर्शन मत्र विवाहो न कर्तव्य इति। श्रीमन्ममकन्या वैदेही रामाय दित्सिता स्वयवरे कुलरूपबलोत्साहसम्पन्नानेकभूपराक्षसविप्रादिसर्वप्राणिसमागमे रामाधिकबलो यदि तामग्रहीष्यत्तदावचनमनृतं मम पाप च भविष्यति।

प्रत्युत दशरथोऽपि सर्वानेवागतान्विजेतुमल क्षत्रक्दनश्च रामो यद्यायास्यति तर्हि मम सुता किं करिष्यति वा कि किं वा प्रेषयिष्यति कीदृश करयिष्यति मम किंवाकरिष्यतिसर्वथा हि प्रभूतबलवाहनो नरपतिरशेषमपि त्रिभुवन हन्यात्। किमुतमामल्पसत्त्व किमुतबहुना भवानेव शरण ममोपाय वद यथा विवाहे श्रेयो भविष्यति रामश्च जामाता भविष्यति। शम्भुरपि तथा करोमीत्युवाच। राम एव नाथः सीताया भविष्यति। राम च कृत्वा स्वस्त्ययनंव करिष्यामि गृहाणाजगव धनुरिदम् ॥१४॥

राजा ने कहा—हे श्रीमन्! मेरी कन्या वैदेही राम को देने की इच्छा वाली है और स्वयम्वर मे तो कुल-रूप-बल और उत्साह से सम्पन्न अनेक नृप राक्षस और विप्र आदि सभी प्राणियो का समागम होगा। उसमे यदि राम से भी कोई अधिक बल शाली हुआ और उस मेरी कन्या को उसने ग्रहण कर लिया तो फिर मेरा यह दिया वचन मिथ्या हो जायगा और मुझे बडा भारी पाप लगेगा। प्रत्युत दशरथ भी समस्त आये हुए लोगो को जीत लेने के लिये पर्याप्त हैं और

क्षत्रियो के संहार करने वाले श्रीराम भी हैं यदि आजायेंगे तो फिर वे मेरी पुत्री का क्या करेंगे अथवा क्या भेजेंगे—कैसा करायेंगे अथवा मेरा क्या करेंगे । सर्वथा अधिक बल और वाहन वाला राजा अशेष त्रिभुवन को भी मार गिरायेगा । मेरे जैसे थोड़े से बल वाले की क्या बात है । अधिक कहने से क्या लाभ है । अब तो आप ही हे शकर देव ! मेरे शरण हैं । मुझे आप कोई उपाय बतलाइये जिस प्रकार से इस विवाह मे कल्याण हो और मेरे राम ही जामाता होवें । भगवान् शकर ने विदेह के इस अभीष्ट का श्रवण कर कहा था कि मैं ऐसा ही करता हू । जैसा तुम चाहते हो वह श्रीरामचन्द्र ही सीता देवी के स्वामी होगे । और श्रीराम को स्वस्ति करके आज ही मैं उपाय करूंगा। आप इस अजगव धनुष को ग्रहण कीजिए ॥१४॥

किमेतेनाजगवेन धनुषा स्वयंवरे सीता रामं प्रापय ॥ इदं धनुरसज्यं मे यस्तु सज्य करिष्यति । यस्मै देया मया सीताप्रतिज्ञामेवमाचर ॥ इत्येवमुक्त्वा भगवान्गणैरन्तर्दधे हरः । अथादातुं धनू राजा न शशाकातियत्नतः ॥ अथोज्ज्वल शतसहस्रगजवलंसभाहूय गृहाणेत्युवाच ॥ स चापि मातुल नत्वाऽट्टहासं कृत्वोत्प्लुत्य धनुर्द्वाभ्या कराभ्यामुद्धार जानुपर्यन्तं मातुलो मारीचः श्रुत्वाएकाकी विप्रवेष कृत्वा विदेहमयाचत । वैश्वदेवान्ते प्राप्तमतिथि मामवेहि ॥१५॥

राजा ने कहा—इस अजगव धनुष से क्या होगा । स्वयम्वर मे सीता को श्रीराम को प्राप्त कराइये । भगवान् शकर ने कहा—यह मेरा धनुष असज्य है । इस धनुष को जो भी कोई सज्य कर देगा । उसी को मैं अपनी पुत्री जानकी को प्रदान करूंगा । इस प्रकार की तुम प्रतिज्ञा करो । इतना भर वह कर भगवान् शकर तो वही पर अपने गणो के साथ अन्तर्हित हो गये थे । इसके पश्चात् राजा ने बहुत कुछ यत्न किया था किन्तु उस धनुष को ग्रहण करने मे समर्थ न हो सका । इसके उपरान्त उज्वल शत सहस्र हाथियों के बल का समाह्वान करके इस धनुष को ग्रहण करो—यह राजा ने आज्ञा प्रदान की थी । और वह

भी मातुल को प्रणाम करके अट्टहास करके उछलकर दोनों हाथों से धनुष को ग्रहण करके जानुपर्यन्त उसे ऊपर उठा लिया था। मातुल मारीच मुनवर एकाकी विप्र का वेष धारण कर वहाँ आया और विदेह से उसने याचना की थी। वैश्वदेवान्त म प्राप्त अतिथि मुझको जानो ॥१५॥

स्वागत भो इद ब्रह्मन्नासन तत्र निषीदेति। स चातिविस्तथेत्युक्त्वा निषसाद॥ अथ राजा जलमादाय पादौ प्रक्षाल्य गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य महाऽज तस्मै निवेद्य भोजनाय प्रार्थयामास। स चापि तदन्न षड्रसोपेत सौवर्णभाजनगतमीक्षमाण इतेतस्ततो विलोकयामास। तस्मिन्नेवावसरे सीता पद्मकिञ्जल्कप्रभेपदवर्णवसन बिभ्रती नील कुटिलकुन्तलैरलङ्कृता मनाग्याकर्षयद्भि प्रेक्षमाणदृष्टिभ्रमरलैरिव स्त्रीणां चित्तमीदृशमिति दर्शयद्भिरिवोपशोभितललाटान्त चापभ्रू पद्मपत्रायतविलोचना तिलप्रसून नासा मृदुस्निग्धरोमदावपोलान तवारक्तोष्ठा रक्तासनमाणिक्यनिभदाडिमीदशना जपाकुसुमाम्लाधरानिशोभितग्रीवा शुक्तिकर्णा समदीर्घकण्ठाऽनिमामन्यदा पीनोद्धृत्तकुचद्वयमलानेहारोपशोभिता मुक्तावारलतिमागन बाहुलता मध्यायतसमानाङ्गुलिशिखापद्मारुणपरनखा विविधवटुरत्नाङ्गुलिभूषणा मुष्टिग्राह्यमध्या सुरोमराजि गम्भीरनाभि पृथुजघना परिवरोरुस्तूणीरजङ्घा सुगादाभरा नूपुरादिनादविभूषणा पादाङ्गुली-भूषिता विचित्रगोर्ण वदक विभ्रती मञ्जानमारीचस्य पुरःआगता॥ सीदागतायति यदा रयमपश्यामि तदमालिङ्गामि-मयमन्यति शिरोगेमी यवयवगम्भलयमा तूष्णीमेव विनिर्गत ॥१६॥

राजा ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपका स्वागत है। यह आपके लिए आसन है। इस पर आप विराजमान होइये। उसने अतिथि ने ऐसा कहकर उसने राजा का कथन स्वीकार किया था और आसन पर स्थित हो गया था। इसके उपरान्त राजा ने जल लाकर उसके चरणों का प्रक्षालन

किया था और गन्धाक्षत पुष्प आदि से उसकी अर्चना करके उसकी सेवा में महाजन को निवेदन कर राजा ने भोजन करने के लिये उससे प्रार्थना की थी। उसने भी षड् रस से सम्पन्न उस अन्न को सुवर्ण के पात्र में रक्खा हुआ देखकर इधर-उधर देखा था। उसी समय में सीता देवी पद्म के किंजल्क की प्रभा के समान थोड़ा अरुण वर्ण का वस्त्र धारण किये हुए वहाँ पर आई थी। नीले वर्ण के चचल कुन्तलो के द्वारा युवको के मन को हरण करने वाले केश थे। प्रेक्षमाण दृष्टि के भाग की कला के द्वारा यह प्रकट किया जा रहा था कि स्त्रियो के चित्त की दशा भी इसी प्रकार की हुआ करती है। जिस सीता देवी के पर शोभा से युक्त ललाट पर भृकुटियाँ ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो ये कामदेव के धनुष हैं। पद्मपत्र के समान अरुण लोचन वाली थी। जानकी देवी की नासिका तिल के पुष्प के समान सुन्दर थी। मृदु और स्निग्ध रोम वाले कपोलो के अनन्तर थोड़ी रक्तता वाले जिस देवी के ओष्ठ थे। रक्त वर्ण के आसन पर माणिक्य के सदृश दाडिम (अनारदाना) के समान दशन वाली थी। जपा के पुष्प के तुल्य अरुण वर्ण के अधरो से अत्यन्त शोभा वाली जानकी की चिबुक थी। सीता देवी के कान शुक्ति के सदृश थे। यह देवी समान और दीर्घ कण्ठ वाली थी। अत्यन्त माँसल वक्ष स्थल वाली थी। वह देवी पीन एव उन्नत उड्मल के सदृश स्तनो वाली थी। अनेक हारो से परम शोभा से युक्त थी। सुभग आकार और नीति से युक्त माँसल (माँसयुक्त) बाहुलता वाली थी। अत्यन्त सुन्दर-आयत एवं समान अगुली रूपिणी शिखाओ से समन्वित पद्म के अरुण पल्लव सयुक्त थी अर्थात् कर कमल के सदृश है और अँगुलियाँ उसकी शिखाओ के समान प्रतीत हो रही थी। जानकी देवी अनेक प्रकार के बहुत से रत्नो से युक्त अगुलि के भूषणो से समन्वित थी। जानकी देवी का मध्यभाग अर्थात् कटि इतनी कृश थी जो मुष्टि से ही ग्राह्य हो सकती थी। वह सुन्दर शोभावली से समन्वित गम्भीर नाभि से भूषित थी। पृथु अर्थात् परिपुष्ट जघनों से युक्त थी। हाथी की सूंड के सदृश ऊरुओं वाली थी। तूणीर के समान जघनो वाली थी, कमल के तुल्य चरणो से शोभित थी।

जिस देवी ने नूपुर आदि चरणों के भूषण धारण कर रक्खे थे। और पादांगुलियों से भूषित चरणों वाली थी। विकसित पुष्प के समान सुगन्ध को फैलाती हुई वह जानकी देवी भोजन करते हुए मारीच के आगे आगई थी। उसने ऐसी अनुपम सौन्दर्य सम्पन्न जानकी के रूप लावण्य को देखकर मन में सोचा था मैं इसका किस प्रकार से अपहरण करूं। मैं इसके साथ कैसे आलिंगन करूं। और क्या कुछ करूं—यही मन में सोचकर अवसर न प्राप्त करता हुआ वहां से चुपचाप ही निकल गया था। तात्पर्य यह है कि मारीच जो विप्र के वेष में था जानकी के सौन्दर्य से विमुग्ध हो गया था और उसके अपहरण की बात सोचकर निकल गया था ॥१६॥

अथ देवा धनुः सज्जीकरणाय यतमाना अहम्पूर्विकया विद्यमाना अन्योन्यतिरस्कारेण महेन्द्रः प्राप धनुरुत्तमं प्राप्तद्वयात्परं नावनमयितुं शशाक। अथ सूर्यो धनुरादाय नभ यन्नेव निपपात। वायुर्बलवत्तां श्रेष्ठो जग्राहाजगवमथ स्वेनेव करेणोत्कर्षयन्नधः पपात धनुश्च वायोरुपरि पपात अहसस्तदा सर्वे। एतस्मिन्नन्तरे तुरगवरमारुह्य वाणासुर. सहस्रबाहुरनेकानेकशिरोभिर्दैत्यैः परिवृतः प्रह्लादसमेतो विदेहपुरीमाजगाम। अथ स्वविभूषणोद्भासिता दिशः कुर्वन्स्वतेजसाऽपयशमो देवताः कुर्वन्नानाविधिगीतं शृण्वद्द्वयङ्गुलमात्रेण शक्तो विरराम। प्रह्लादो बलिश्च य धावातेऽथ विरेमतु। अथ राक्षसेषु तूष्णीभूतेषु राजानोऽतिबलिनः समागता ज्याबन्धाशक्ता अपसृत्य तस्थुः ॥१७॥

इसके अनन्तर देवगण धनुष को सज्जीकरण के लिये वहाँ पर विद्यमान हुए थे। मैं पहिले इसे सज्जीकृत करूंगा, मैं तुमसे भी पहिले सज्जय करूंगा—इस प्रकार की अहम्पूर्विका से संयुत होते हुए सब देव वृन्द आपस में एक दूसरे का तिरस्कार करते हुए वहाँ उपस्थित हुए थे। इसी बीच में महेन्द्र भी आ पहुंचे थे। महेन्द्र ने प्रयत्न किया था कि उस धनुष को सज्ज्य करें किन्तु वह उस उत्तम धनुष को प्राप्त द्वय से आगे न झुका सके थे। इसके अनन्तर सूर्य ने धनुष को लेकर

नमित कर ही रहे थे कि स्वयं ही गिर गये थे। समस्त बलवानों में परम श्रेष्ठ वायुदेव ने उस अजगव धनुष को अपने ही कर से खींचते हुए ही नीचे गिर पड़े थे और वह धनुष वायु देवता के ऊपर गिर गया था और सभी उस समय में हँस पड़े थे। इसी बीच में बहुत ही श्रेष्ठ अश्वपर समारूढ होकर बाणासुर तथा सहस्रबाहु अनेकानेक प्रमुख दैत्यों के साथ परिवृत होकर प्रह्लाद के सहित वहाँ विदेह पुरी में आगये थे। इनके पश्चात् अपने आभरणों से दिशाओं को उद्भासित करते हुए और अपने तेज से देवगण को अपयश वाले करते हुए अनेक प्रकार के गीतों को सुनते हुए केवल दो अंगुल भर उसे करके खामोश होगये थे। प्रह्लाद और वन्हि भी दौड़े थे इनके पश्चात् वे भी रुक गये थे। इनके अनन्तर जब समस्त राक्षस खामोश होकर बैठ गये थे तो अत्यन्त बली राजा-लोग वहाँ आये किन्तु वे भी ज्याबन्ध करने में असमर्थ होकर अलग हट कर स्थित हो गये थे ॥१७॥

अथ विश्वामित्रो धनुरादाय एकाङ्गुलापर्यन्तं सज्यं कृत्वा विरराम। अथ दिनमात्रे धनुषि तूष्णीभूतेषु राघवः सहानुजैरागत्य धनुर्निरीक्ष्यास्पृशत्। अथ राजकुमाराः शतशः समागताः। सर्वाभरणभूषितो धनुर्दृष्ट्वा पस्पृशुर्नचालनक्षमाः। अथ दाशरथिप्रमुखाः कुमारा समागताः। अथ वेत्रझर्झरपाणयः समागमन्सर्वानेवापसारयामासु.। अथ रामो लक्ष्मणहस्तं गृहीत्वा सर्वाभरणभूषितो धनुरासाद्य स्पृष्ट्वा नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य धनुरादायोद्दधार। तदादानसमये सव एवैत्य सहासमूचु.। अत्र भग्ना महारथा इति। अथ स रामो धनुर्ज्यास्थानमवनमय्य धनुषि जानु कृत्वा सज्यमेककरेणोत्पादयन्कोट्यामनामयत्। अथ सज्जीकृतं दृष्ट्वा सर्व एव नासाग्रन्यस्ताङ्गुलयोऽभवन्। रामोऽपीज्यामन्वनादयत्। तेन नादेन सर्वेपा मनासि क्षुभितान्यासन्। रामेण सज्जितं धनुरिति सर्वत्र वादः सञ्जात.। जनकोऽपि ता रामाय ददौ राजभिश्च युद्धं कृत्वा तान्निर्जित्य स्वपुरीमागात्।

अथैकदा दशरथो रामं यौवराज्येऽभिषिच्य सुखी बभूव सर्वप्रजारञ्जनाच्च रामो राजानुमत इति सर्वप्रजावादोऽभूत् ॥१८॥

इसके अनन्तर ब्राह्मण आये । विश्वामित्र ऋषि ने धनुष को लेकर एक अंगुल पर्य्यन्त ही उसे सज्य किया था और विरत होकर बैठ गये थे । अन्य विप्रगण भी निवृत्त होकर रह गये थे । इसके अनन्तर दिन मात्र धनुष मे सबको तूष्णीभूत हो जाने पर अर्थात् सज्य करने मे असमर्थ होकर चुप होने पर श्री राघव ने अपने भाइयो के सहित वहा पर आकर उस धनुष को देख कर उसका स्पर्श किया था और उसके चालन मे समर्थ नही हुए थे । इसके अनन्तर दाशरथि प्रमुख कुमार वहा आये थे । इसके उपरान्त हाथों मे वेत्र और झर्झर लेकर वे वहा आगये थे और उन्होने सभी को वहा से हटा दिया था । इसके अनन्तर श्रीराम ने लक्ष्मण के हाथ को ग्रहण करके समस्त भूषणो से विभूषित होते हुए उस अजगव धनुष को उठाकर- स्पर्श करके-झुकाकर प्रदक्षिणा करके फिर धनुष को लेकर ऊपर उठा लिया था । उसके आदान के समय मे सभी वहाँ आकर एक साथ कहने लगे थे—यहा पर महारथ लोग भग्न हो गये हैं । अर्थात् बडे २ वीर गण परास्त हो गये है । इसके अनन्तर उन श्रीराम ने धनुष के ज्यास्थान को झुकाकर धनुष मे जानु करके एक ही हाथ से सज्य करते हुए कोठी मे उसे नमित कर दिया था । इसके पश्चात् धनुष को सज्जीकृत देख कर सब ही आश्चर्य से अपनी २ नाक पर अंगुली धरने वाले होगये थे । श्रीराम ने भी धनुष की ज्या को टकारित कर दिया था फिर जनक ने पुत्री श्रीराम को देदी-राजाओ से युद्ध मे विजय पाकर अपनी पुरी मे आगये । राजा ने श्री राम को युवराज बनाना चाहा था ॥१८॥

अथ कैकयदेशाधिपतितनया सुवेषा रामं राजानमसहमाना राजानमुवाच मम वरदानावसर इति राजा चिन्तयत्किंदेयमिति चतुर्दशवर्षाणि रामो वन विशतु पालयुत राज्यं भरतः । राजाऽनृतवचन ! दोषभयात्कथं कथमपि स्वीचकार । अथ वसिष्ठं भावितयाऽवोचत रामो वनाय निर्गच्छति अस्य किं वा भवेदिति

विचार्य शुभाशुभं ब्रूहि । वसिष्ठो विचार्य सहर्षं राजानमुवाच । गत्वा वनं निखिलदानववीरहन्ता शम्भोरनेकविधपूजनमातनोति । सीतावियोगरुषितः कपिसेनया च तीर्त्वोदधिं दशमुखं च निहन्ति रामः । आगम्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि बहूनि वर्षाणि समातनोति । प्रशस्तकीर्तिर्निखिलेऽपि लोके शर्वेण देवेन चिरं न्यवात्सीत् । सुपुत्रयुक्तो बहुयज्ञयाजी परिवृढः सर्वगुणादिकश्च ॥१६॥

इसके अनन्तर केकय देश के अधिपति की तनया सुवेषा श्रीराम को राजा होते हुए न सहन कर राजा दशरथ से कहने लगी थी कि यही मेरे वरदान देने का अवसर है राजा ने सोचा क्या देना है देवी ने कहा—चौदह वर्ष तक श्रीराम वन में प्रवेश करें और भरत राज्य का पालन करे । सत्य वचन बोलने वाला राजा था दोष के भय से राजा ने किसी प्रकार से उसे स्वीकार किया था । इसके उपरान्त राजा भावित्ता के कारण वसिष्ठ मुनि से बोले कि श्रीराम वन को निकल कर जारहे है । इसका शुभाशुभ क्या होगा—यह विचार कर बतलाइये । वसिष्ठ मुनि ने अच्छी तरह विचार कर हर्ष के सहित राजा से कहा था । वसिष्ठ मुनि बोले—श्रीराम वन मे जाकर सम्पूर्ण दानव वीरो का हनन करेंगे और भगवान् शम्भु की विविध प्रकार की अर्चना का विस्तार भी करेंगे । सीता के साथ वियोग होगा और उसके क्रोध से परिपूर्ण होकर वानरो की सेना के साथ सागर को पार करेंगे तथा फिर युद्ध मे दशमुख का हनन करेंगे । इस सब घटना के घरित हो जाने के पश्चात् श्री रघुनन्दन राज्य मे आकर बहुत अधिक वर्षों तक यहा शासन करेंगे । लोक मे बडी भारी कीर्त्ति का प्रसार होगा और शर्व देव के साथ चिरकाल तक निवास करेंगे । अपने अच्छे पुत्रो से युक्त होकर बहुत यज्ञो का यजन करेंगे और सब प्रकार गुण गण से परिवृढ होगे ॥१६॥

इति वसिष्ठवचनं श्रुत्वा दशरथो रामगुणाननुस्मरन्निरयुवाच श्रेयो मे मरणं रामस्य निर्गमनं इति । अथ रामो मातरं पितरं गुरुं च वसिष्ठं पितृपत्नीर्नमस्कृत्य वनाय जगाम । अथोपवने

दिनमेकं स्थित्वा जटाः कारयित्वा वल्कलं वासो धृत्वं कोपवीतीकृतदन्तशुद्धिरेकेनोपवीतेन जटा बद्ध्वा भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गोगसितनिष्ठुर कायोमुक्ताफलदाममणिव्यत्यस्तरुद्राक्षमालागुरसिदधानोऽल्पभूषणाधिभूषितसीतास ह्ययो लक्ष्मणानुचरो विवेश वनान्तरम् । अथानेकराक्षसास्तस्मिन्निजधान भवानिव निखिलं चकार सीतापहरणादिनिखिलमपि भवतो यथा तथाऽस्याथ सुग्रीवाश्रममृष्यमूकपर्वत रामो जगाम निविडच्छाय चूतवृक्षमासाद्य लक्ष्मणसहायः परिश्रयमकल्पयत् ॥२०॥

इस तरह से वसिष्ठ मुनि के वचनो का श्रवण कर महाराज दशरथ श्रीराम के गुणो का स्मरण करते हुए कहने लगे–यदि ऐसा है तो मेरा मरण और श्रीराम का वन गमन कल्याण करने वाला ही है इसके उपरान्त श्रीराम माता-पिता–गुरु वसिष्ठ और पितृ पत्नियो को प्रणाम करके वन को चले गये थे। इसके उपरान्त उपवन मे एक दिन निवास करके जटाओ की रचना करके वल्कल वसन धारण कर एकोप वीती होकर, दातो की शुद्धि करके एक उपवीत से जटाओ को बाँध कर, समस्त शरीर के अ गो को भस्म से उद्धूलित करके, सम्पूर्ण शरीर को भसित एव निष्ठुर बनाकर मुक्ताफल एव मणियो से व्यत्यस्त रुद्राक्ष की माला को कण्ठ मे पहन कर, थोडे से भूषणो से अधिभूषित सीता देवी को साथ मे लेकर और अनुगमन करने वाले लक्ष्मण के सहित श्रीराम ने अन्य वन मे प्रवेश किया था। इसके उपरान्त वहा वन मे अनेक राक्षसो का हनन किया था। आपकी ही भाँति सम्पूर्ण कर्म किये थे। सीता का अपहरण आदि सभी कुछ जैसा आपका हुआ था वैसा ही इनका भी हुआ था। इसके अनन्तर सुग्रीव के आश्रम ऋष्यमूक पर्वत पर श्रीराम गये थे। घनी छाया वाले आम्र के वृक्ष के निकट पहुँच कर लक्ष्मण के साथ वहाँ पर परिश्रय किया था। वृक्ष पर धनुषो को टाग कर बैठे हुए लक्ष्मण की गोद मे अपना शिर रखकर मृगचर्म की शय्या पर शयन कर रहे थे ॥२०॥

वृक्षे तु धनुषी आरोप्यासीनलक्ष्मणांके शिरः कृत्वा हरिचर्मशय्याशयनो लक्षिता गीतिं शृण्वन्वृक्षफलं निरीक्षमाणो वानरमेक मणिकुण्डलं हेमपिङ्गलं सुदृढबद्धमौञ्जीकौपीनमच्छोपवीतिनमतिचञ्चल फलमादायात्मनि विक्षिपन्त पुष्पमञ्जरीश्च किरन्तं गानमनुकुर्वन्त व्यजनेन रामं वीजयन्तमारुह्य शाखामपि तथा वीजयन्तमाबद्धचूतफलमात्रं रामो वीक्ष्य लक्ष्मणमभाषत। लक्ष्मण कोऽयं कपिरिति। लक्ष्मणोऽपि न जान इत्युवाच। अथ रामः समाहूय कस्य त्वं किं नामेत्य पृच्छत्। स च सुग्रीवस्य हनुमानित्युवाच। रामं नत्वा सुग्रीवमेत्य नत्वा देव! नारायण इवापरः पुरुषो युवा मेघश्यामा जटी आजानुबाहुरतियशस्वी सूर्यसंकाशेन सहापरेण इहास्ते ॥२१॥

एक लक्षित गीति का श्रवण करते हुए और वृक्ष के फल को देखते हुए एक वानर को देखा जो मणियों के कुण्डल पहिने हुये था और हेम के तुल्य पिंगल वर्ण वाला था। उस वानर ने सुदृढ मौञ्जीबन्ध की कोपीन लगा रक्खी थी और स्वच्छ उपवीत धारण कर रक्खा था। वह अत्यन्त चञ्चल था। फल लेकर अपने ऊपर डाल रहा था और पुष्पों की मञ्जरी को गिरा रहा था। वह गान का अनुकरण कर रहा था तथा व्यजन से श्रीराम की हवा करता जारहा था तथा शाखा पर चढ कर भी वैसा ही कर रहा था। आवद्ध आम के फल मात्र को देखकर श्रीराम लक्ष्मण से कहा था—हे लक्ष्मण! यह कौन सा बन्दर है? लक्ष्मण ने भी यही उत्तर दिया था कि मैं नहीं जानता हूं। इसके अनन्तर राम ने उसे अपने पास बुलाकर पूछा था कि तू किसका है और तेरा क्या नाम है? उसने उत्तर दिया था कि मैं सुग्रीव का हूँ और मेरा नाम हनुमान् है। फिर हनुमान् ने श्रीराम को प्रणाम कर सुग्रीव के समीप जाकर कहा—हे देव! दूसरे नारायण के समान एक युवा पुरुष हैं जिनका वर्ण मेघ के समान श्याम है—जटाधारी है तथा जानुपर्यन्त बाहुओं वाले और अत्यन्त

यशस्वी हैं। सूर्य के तुल्य एक दूसरे भी उनके साथ हैं और यहीं पर स्थित हैं ॥२१॥

रावणेनापहृतया कयाचिद्ध्रियमाणागतया विभूषणानि कानि चित्परित्यक्तानि गतानि मया सङ्गृहीतानि तानि दर्शयामीत्याभाष्य रामं मन्दिरमागमय्य दर्शयामास। रामोऽपि निरीक्ष्य निश्चित्य प्ररुद्य क्व गतोऽसौ रावण इति पप्रच्छ स च दक्षिणामाशां गत इति बभाषे। अथ रामस्तेन सख्यमकरोत्।

अपृच्छच्च किमर्थमिह भार्याहीनः स्थित इति। मम भ्राता वाली महाबलो मम भार्यां राज्यं चापहृत्य किष्किन्धायामास्ते युद्धेन चाहं पराजितस्तद्वधाय सर्वथा मम चिन्ता यथाऽसौ त्वया निहन्यते तथाऽहमपि सागरं बद्ध्वा परतीरे लंकायां स्थितां सीतां रावणेनापहृतां तव समर्पयामीत्याभाष्य शपथं कृत्वा सुग्रीवो वालिनाऽतिबलिना युद्धायाहूतेन युयुधे। रामोऽप्यनन्तरमनिश्चयद्वालिनं नाहन्॥ अथ सुग्रीवः पलायितो राममिदमभाषत। तव चित्तमविज्ञाय प्रवृत्तोऽहं मरणाय। रामोऽपि युवयोर्विशेषाज्ञानान्मयातूष्णीभूतं चिह्नितं त्वां निरीक्ष्य तं हन्मि। अथ सुग्रीवश्चिह्नं कृत्वा वालिनं युद्धायाहूय समतिष्ठत। तारा बभाषे वालिनम्। सहायवानिव लक्ष्यते सुग्रीवो नोचेदेव नाह्वयति ज्ञातं मया रामलक्ष्मणौ दशरथतनयौ नारायणांशौ भूभारावतरणाय समागतौ तावस्य सहायभूतौ ॥२२॥

सुग्रीव ने कहा—रावण के द्वारा अपहरण की गई एक महिला थी जो कि अपहृत होकर यहा से ले जाई जा रही थी उसने कुछ अपने भूषण यहा डाल दिये थे और मैंने उनको उठा लिया था। उनको मैं अभी आपको दिखलाता हूँ—यह कहकर सुग्रीव ने राम को अपने मन्दिर मे लाकर उन भूषणो को दिखलाया था। राम ने उन्हें देखकर निश्चय कर लिया था और रुदन करके पूछने लगे—यह दुष्ट रावण किधर चला गया है। सुग्रीव ने उत्तर दिया था कि वह दक्षिण दिशा की ओर चला गया था। राम ने उस सुग्रीव के साथ मित्रता करली थी

और फिर सुग्रीव से राम ने पूछा था कि आप बिना अपनी भार्या के यहा पर क्यो रहते हैं ? सुग्रीव ने कहा–मेरा भाई बाली महान् है। उसने मेरी भार्य्या का और मेरे राज्य का अपहरण कर लिया है। वह किष्किन्धा मे रहता है। युद्ध मे उसने मुझे हरा दिया है। उसके वध करने के लिए सर्वदा मुझे अधिक चिन्ता बनी रहती है। जिस तरह अभी आप उसका हनन करें तो मैं भी फिर उसी प्रकार का यत्न करूँगा कि सागरको बाध कर दूसरे तट पर स्थित सीता को जिसको रावण ने अपहृत कर लिया है लाकर आपको दे दूगा। इतना कह कर शपथ लेकर सुग्रीव ने अत्यन्त बलवान् बाली को बुला कर उसके साथ युद्ध किया था। राम ने भी अन्तर म निश्चय न करके बाली को नही मारा था। इसके पश्चात् सुग्रीव वहा से भाग खडा हुआ और राम से बोला : मैंने आपके हृदय को न समझ कर ही मरने के लिए यह प्रवृत्ति की थी। राम ने भी कहा था कि तुम दोनो म विशेष ज्ञान न होने से ही मैं चुप रहा था। अब चिह्न युक्त आपको देख कर उसको मार दूगा। इसके पश्चात सुग्रीव ने चिन्ह धारण करके फिर बाली को युद्ध के लिये बुलाया था। उस समय मे तारा ने बाली से कहा था–ऐसा दिखलाई देता है कि सुग्रीव किसी की सहायता लेकर आया है, नहीं तो ऐसा कभी नही बुलाता। मुझे ज्ञात हुआ है कि दशरथ के पुत्र राम लक्ष्मण जो नारायण के अंश हैं, भूमि के भार उतारने के लिए ही आये हैं। वे ही इस सुग्रीव के सहायक हैं ॥२२॥

नीतिमान्राम इति मया श्रुतम्। नहि बलवन्त विहाय दुर्बल भजते तादृश. समायातु वा राम. प्रतिपन्नमधिक कृत्वा बिभेति वीरो यदि राम स्वय युद्धाय यातस्तदा युद्धं कर्तव्यमित्याभाष्य तारा सम्भाव्य सुग्रीवयुद्धाय निर्यात.। अथ मुष्टियुद्धमन्योन्यम-भूत्। रामोऽपि वालिन जघान। अथ तारा चागदश्च समागत्य व्यथितौ बभूवतु। अथ राघव वानरा. समायाता। अथ तारा राम बभाषे शास्त्रकुशला शूरा. धार्मिका राघवा. पुरा चापि

राम ! कथं पापमकार्षीः । न क्षत्त्रधर्मं जानीषे राजगणसेवितम् ॥२३॥

वाली ने कहा—मैंने सुना है कि राम नीतिमान् हैं। बलवान् को त्याग कर वैसा पुरुष कभी भी दुर्बल को नहीं भजा करते हैं। अथवा राम भी आजावें। अधिक प्रतिपन्न को करके वीर डरा करता है। यदि राम स्वयं युद्ध को आते हैं तो मुझे युद्ध करना ही चाहिए। यह कह कर तारा को समझा कर सुग्रीव से युद्ध के लिए वाली निकल आया था। दोनों में परस्पर में मुष्ठि युद्ध हुआ था। राम ने भी वाली को मार दिया था। इसके पश्चात् तारा और अंगद आकर व्यथित हुए थे। इसके अनन्तर वानर राघव के पास आगये। उस समय तारा ने राम से कहा—जो पुरुष शास्त्रों के ज्ञाता एवं परम कुशल विद्वान् शूर वीर थे उन्होंने राम से कहा था—हे राम ! आपके वंशधर रघु के वंश में होने वाले सभी राघव पहिले परम धार्मिक थे फिर आपने यह पाप कर्म क्यों किया है ? क्या आप राजाओं के समुदाय के द्वारा सेवित क्षत्रियों का धर्म्म नहीं जानते हैं ? ॥२३॥

मया पितुरनुशासनाद्राज्यगतदुष्टनिग्रहणं कृतम् । गुरुवचनस्यानुल्लङ्घनीयत्वात्तदपहरणवेलायां यो राजा स नाचरद् । अथवा स्वतन्त्री मृगो मृगयोर्हतश्च वाला मृगाणामन्योन्यदारगाद्यजुगुप्सा च । यतो मम मृगयावदाथवा मृगाणाम् । चलितस्थितवद्धाया चलदभ्रान्तपलायिनाम् । अथवावमृजतासङ्गमुञ्चितामृगया तथा मृगया शास्त्रविधितो मृगयेयं मयाकृता ॥२४॥

चलित-स्थित और बद्ध हैं और चलते हुए भ्रान्त एवं पलायन करने वाले हैं शिकार की है। इसके अनन्तर संग को त्याग करने वाली मृगया मैंने की है। मृगया शास्त्र की विधि से ही मैंने की है ॥२४॥

यदि प्रसन्नो भगवान्मम सद्गतिं देहि। अयं सुग्रीवस्तथा रक्षणीयोऽङ्गदोऽथ तारा च मया पापिनाऽपराधः कृतस्तत्फल-मनुभूतम्। अथ रामं पश्यन्नेव वाली ममार स्वर्गं च गतः। अथ सुग्रीवं राज्येऽभिषिच्य स्वयं वनं विवेश। अथ तेन सहायेन जलधिसमीपं गत्वा क्व लङ्का क्व सीता क्व चारातिरिति सुग्रीव-माह रामः। अथ हनुमानाह प्रविश्य लङ्कां विचित्य सीता सर्व-तत्त्वमवगत्य युद्धं सन्धिर्वा कर्तव्यस्तदुदधिलङ्घनाय कश्चित्समा-दिशतु भगवान्। अथ सुग्रीवमाह रामः। कथमेतद् घटत इति ॥२५॥

कपि ने कहा—यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे कृपा कर सद्गति प्रदान कीजिए। यह सुग्रीव है इसका तथा मेरे पुत्र अंगद की रक्षा करिये और तारा की भी आप रक्षा करिये। मुझ पापी ने अवश्य महान् अपराध किया है उसका फल भी मैंने प्राप्त कर लिया है। इसके अनन्तर श्रीराम के स्वरूप का दर्शन करते हुए ही बाली ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था और वह सीधा स्वर्गलोक में चला गया था। इसके अनन्तर श्रीराम ने सुग्रीव को राज्यासन पर अभिषिक्त करके फिर स्वयं वन में प्रविष्ट हो गये थे। इसके उपरान्त उसकी सहायता से श्रीराम जलधि के समीप में जाकर कहां लंका है—कहां सीता है और कहां पर वह शत्रु विद्यमान है—यह सब उन्होंने सुग्रीव से कहा था। इसके पश्चात् हनुमान ने लंका में प्रवेश करके और सीता की खोज करके वहां का पूरा तत्त्व ज्ञात करके अब युद्ध करना है या सन्धि करनी है। क्या करना चाहिए। समुद्र के लंघन करने के लिये आप किसी को आदेश प्रदान करें। इसके पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव से कहा—यह किस प्रकार हो सकता है ॥२५॥

मम वानरा भल्लूप्रमुखाः कोटिशः सन्ति । एकं नियुज्य सर्व-माकलय्य यथायुक्तं तथा करणीयम् । अथ जाम्ववानाह । हनुमानेको गच्छतु बुध्यतु लङ्काम् । अथ हनुमानगमल्लङ्कापुरं विचित्य । सीतामशोकवनिकायामासीनां तया सम्भाष्य च विश्वास कृत्वा वनं बभञ्ज वनरक्षकांश्च । बद्धो रक्षसा लंकां दग्ध्वा उत्तरकूलं गत्वा रामं दृष्ट्वा वृत्तान्तं कथयित्वा तूष्णी-मतिष्ठत् । अथ रामः सर्वैविचारयामास जाम्बवानुवाच रामेण लंका कपिभिर्विनश्यतीति नारदेन ममोक्तम् । अथ सागरोत्तरणे यत्न आस्थेयः । अथ रामः शंकरमाराध्य सर्वं निवेदयित्वा त्वदुक्तंकरोमीति वचनमुक्त्वा शिवमभ्यर्च्य प्रणतोभूत्वा व्यजि-ज्ञपत् ॥२६॥

सुग्रीव ने श्रीराम से निवेदन किया—मेरे पास करोड़ो की सख्या मे भल्लू प्रमुख बन्दर विद्यमान हैं । एक को नियुक्त करके उससे यह सभी कुछ कह कर जो भी यथा युक्त हो वही इस समय मे करना चाहिए । इसके अनन्तर जाम्बवान् ने कहा—हनुमान एक ही परम प्रवीण है यह चला जावे और लका को भली-भाँति जान लेवे । इसके अनन्तर हनुमान लका पुरी गया था और खोज की थी । सीता को वहाँ पर अशोक वाटिका मे स्थित देखा था तथा जानकी जी से सम्भाषण भी हनुमान ने किया और उनको पूर्ण समाश्वासन देकर फिर वन का भञ्जन किया था तथा उस वन के रख वालो का भी भजन किया था । राक्षस (मेघनाद) के द्वारा बद्ध होकर फिर हनुमान ने लकापुरी का दहन किया था । इसके पश्चात् उत्तर सागर के तट पर वापिस आकर श्रीराम का दर्शन करके उनसे सम्पूर्ण लका का वृत्तान्त सुना दिया था और फिर स्वय श्रीराम के समीप मे चुपचाप स्थित हो गये थे । इसके उपरान्त श्रीराम ने सबके साथ विचार (मन्त्रणा) की थी । जाम्बवान् ने कहा—श्रीराम के द्वारा कपियों की सहायता से लकापुरी विनष्ट हो जायगी—ऐसा देवर्षि नारद ने मुझसे कहा था । इसके अनन्तर अब तो समुद्र के पार करने का यत्न करना चाहिए । इसके पश्चात्

श्रीराम ने भगवान् शंकर की समाराधना की थी। सभी कुछ शंकर से निवेदन करके जो उनकी उक्ति होगी वही मैं करूंगा यह कहकर श्रीराम ने शिव की अभ्यर्चना की और प्रहृत होकर उनसे प्रार्थना की थी ॥२६॥

लंका गमिष्यामि समुद्रतरणे उपायमेकं मम देहि शम्भो। ममाजगवं धनुरस्ति तत्कालरूपमविकल्पं वा भवति। तदारुह्य समुद्रं तीर्त्वा लंकामाप्नुहि। रामस्तथेतिनिश्चित्य सस्माराजगवम्। आगतं धनुस्ततश्च रामोऽप्यूजयत्। अथ हरो धनुरादाय रामाय दत्तवान्। रामोऽपि जलधावपातयद्। आरुरुहुः सर्वे वानरा रामलक्ष्मणौ च षष्टिपरार्द्धं तेषामसङ्ख्येषु वानरेषु धनुरारूढेषु निकामं ययौ! धनुस्तटं वानराश्च ततस्ततो गत्वा निरीक्षयामासुः। अथातिकायो नाम राक्षसः कपिबलमालोक्य रावणायोक्तवान्। रावणोऽपि किं कपिभिः शाखामृगैः किं वा मानुषाभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां किमायात दैवागतमस्माकं भोजनमित्युवाच। अथ सुग्रीवः पश्चिमावलम्बिनि भास्वति हनूमज्जाम्बवदादिमहाबलैश्चातिकायैरसङ्ख्यातैर्लङ्कापार्श्वं गत्वा उपवनं प्रविश्य नाना फलानि खादित्वा पयः पीत्वोपवनरक्षिराक्षसान्विद्राव्य सर्वविपिनमेकैकशो गृहीत्वा प्राद्रवँल्लङ्कां गोपुरं च गत्वा समारुह्य प्रासादं च विशीर्यैकैकशः केचित्स्तम्भमादाय रक्षोभिर्युयुधुः। एके च शाला बभञ्जुर्गृहाणि चूर्णयामासुर्बालवृद्धस्त्रीजनादिकं सर्वमेव निजघ्नुः ॥२७॥

श्रीराम ने कहा—हे शम्भो! मैं लंका में जाऊंगा अत. अब इस सागर के तरण करने का कोई एक उपाय आप मुझे बतलाइये। भगवान् शम्भू ने कहा—मेरे पास एक अजगव धनुष है। वह तत्काल रूप वाला अथवा अविकल्प होता है। उस पर समारोहण करके सागर को पार करके आप लंकापुरी को प्राप्त कर लीजिए। श्रीराम ने—ऐसा ही किया जायगा ऐसा निश्चय करके फिर अजगव धनुष को स्मृति पथ में लाये। यह अजगव धनुष वहाँ पर स्मरण करते ही आ गया था और श्रीराम ने उसका पूजन किया था एवं स्वागत किया था। इसके अनन्तर भगवान्

-शंकर ने उस धनुष को लेकर श्रीराम को दे दिया था। श्रीराम ने भी उस धनुष को समुद्र मे डाल दिया था। उस पर समस्त वानर और राम तथा लक्ष्मण समारूढ़ हो गये थे। उनके असंख्य वानरो में जो कि उस धनुष पर समारूढ हुए थे पष्टि परार्ध स्वेच्छा पूर्वक चले गये थे। इसके अनन्तर वानर उस धनुप के तट को वहा पर जा-जा कर देखने लगे थे। इसके उपरान्त एक अति काय-नाम वाला राक्षस था उसने इस प्रकार के कपियो के बल को देखा था और फिर उसने रावण से जाकर कहा था। रावण भी कहने लगा—क्या शाखामृग बन्दर और क्या मनुष्य राम लक्ष्मण आगये हैं ? ये तो सब दैव के प्रदान किये हुए हमारे सब भोजन ही है। इसके अनन्तर सुग्रीव ने कहा—भगवान् सूर्य-देव के पश्चिम दिशा मे चले जाने पर अत्यन्त विशाल शरीर वाले महान् बल से सुसम्पन्न असख्य हनुमान और जाम्बवान् आदि वानर लका के पार्श्व मे चले गये है और उपवन में प्रवेश करके उन्होने अनेक प्रकार के फलों को खाकर तथा जल पीकर उपवन के रक्षा करने वाले राक्षसों को मार गिराया है। उस समस्त विपिन को एक-एक करके घेर लिया है और उस पर आक्रमण कर दिया है। लका और गोपुर पर पहुच कर तथा रावण के प्रासाद पर चढ कर एक-एक करके उन्होने उसको विशीर्ण कर डाला है। कोई-कोई स्तम्भ लेकर राक्षसों से युद्ध कर रहे हैं। कुछ ने उसकी शाला का भञ्जन कर दिया है। कुछ वानरो ने वहाँ के घरो का विनाश कर दिया है। जो भी कोई बालक-वृद्ध और स्त्रीजन उन्हें मिले हैं सब का निहनन उन्होने करा दिया है ॥२७॥

अथैक प्राकारं निर्जितमाज्ञाय रावण इन्द्रजितं सन्दिदेश। इन्द्रजिता च युद्धं वनरा: कृत्वा भीता: पालयिताश्च। अथ हनुमानखिलं निर्गतमाज्ञाय रावणं ज्ञात्वा वानरानाहूय निर्भर्त्स्य सेनां महती कारयित्वा दशमुखं कल्पयित्वा मोदयामास। अथ खस्थ एवेन्द्रजिद् युधे न च वानरास्तं दृष्टवन्त:। अथ हनुमज्जाम्बवन्तौ खमुत्पत्य पर्वतशिखाराभ्यामिन्द्रजितं निजघ्नतु:। अथ

भुवि पापात तं लक्ष्मणश्च यमलोकगामिनं चकार। अथातिकाय-महाकायौ वानरसैन्यं बहुशो हत्वा लक्ष्मणं पीडयित्वा रामेण संयुध्य सुग्रीवं कृत्वा हनूमज्जाम्बवद्भ्यां युयुधाते पराजितौ गृहीत्वा च योद्धारावादाय रामसमीपं गत्वा रामाय न्यवेदयताम्। अतिकायमभाषत रामः। रावणस्य मम युद्धं ब्रूहि सचिवाना-मन्येषां महाभयानाञ्च ॥२८॥

इसके अनन्तर एक प्राकार को विजित जान कर रावण ने इन्द्रजीत मेघनाद को सन्देश दिया था। इन्द्रजीत ने—वानरों से जब युद्ध किया तो सब वानर भयभीत होकर भाग खड़े हुए थे। इसके उपरान्त हनुमान ने सबको निर्गत जान कर रावण को जान कर सब बन्दरों को बुलाया और उन्हें भर्त्सना दी फिर अपनी एक विशाल सेना बना कर दशमुख की कल्पना करके उसे छुका दिया था। इसके पश्चात् वह इन्द्रजीत आकाश में ही स्थित होकर युद्ध करने लगा था और बन्दर उसे देख भी नहीं पाते थे। इसके पश्चात् हनुमान और जाम्बवान ने आकाश में उछाल मारी थी और पर्वतो की चोटियाँ उखाड़ कर उस पर प्रहार किया था। इससे वह मेघनाद भूमि पर गिर पड़ा फिर तुरन्त ही लक्ष्मण ने उसको मार दिया था। अतिकाय और महाकाय नाम वाले राक्षसों ने बहुत-सी वानरों की सेना का हनन किया था तथा लक्ष्मण की भी दशा उत्पीड़न युक्त कर दी थी। उन्होंने श्रीराम से भी युद्ध किया था और सुग्रीव से भी किया था। फिर हनुमान और जाम्बवान ने उससे युद्ध किया था। दोनों को पराजित करके पकड़ लिया था और फिर दोनों योधाओं को लाकर श्रीराम के समीप मे पहुंच कर उन्हें उनके सामने उपस्थित कर दिया था। श्रीराम ने अतिकाय से कहा था—तुम जाकर रावण से मेरे युद्ध के विषय में बतलादो और जो महान् भयंकर उसके सचिव हों उनसे भी कह दो ॥२८॥

वाणं धनुपश्चलितं तौ राक्षसौ बाणमार्गं निरीक्षमाणौ दारु-बाणेन पश्चधाच्छिन्नंनिरीक्ष्य राम व्यज्ञापयतामावयोः शिशवो रक्षणीयास्त्वयेति तथेत्याह रामः। राक्षसौ लङ्कां प्रविष्टौ। अथ

प्राकारयुद्ध कर्तुं वानरा गत्वा सर्वतो वरणमात्रं हि पाणिभिः पादैर्जानुभि करैं पृष्ठैश्च तलसम कृत्वा द्वितीयप्राकार गतास्तदा च रावण समागत्य सर्वानिषुभिर्द्रावयित्वा तदनुगच्छन्राममगात् ॥२६॥

श्रीराम के धनुष से बाण चला दिया था। वे दोनो राक्षस श्रीराम के बाण-मार्ग देख रहे थे। दारु (काष्ठ) के बाण से पाँच प्रकार से छिन्न होता हुआ देखकर उन दोनो ने श्रीराम से प्रार्थना की थी—हे भगवन्! हम दोनो के बच्चो की आप रक्षा कीजिए। श्रीराम ने भी—ऐसा ही किया जायगा—यह कह कर स्वीकार कर लिया था। फिर उन दोनो राक्षसो ने लकापुरी मे प्रवेश किया था। इसके उपरान्त प्राकार (बहार दीवारी) के युद्ध को करने के लिये वानरो ने प्रस्थान किया था। सभी ओर वरणमात्र पाणियो से—पादो से—जानुओ से—करो से और पृष्ठ भागो से तल समान करके फिर वे बन्दर दूसरे लका के प्राकार पर पहुंच गये थे। उस समय मे वहा रावण ने स्वय आकर सभी वानरो को बाणो के द्वारा भगाकर उनके ही पीछे उन्हे खदेडते हुए श्रीराम के समीप मे पहुँच गया था ॥२६॥

अथ राममपि पञ्चभिर्बाणैर्विव्याध अथ रामो दशभिर्बाणै रावण सव्रण चकार। अनयोरतिदारुणमन्योन्य युद्ध बभूव। रावणो दशभिर्बाणैर्विव्याध। अथ रामबाणैश्च क्षतशरीरो राक्षस पलायनपरोऽभवत्। वानरा लक्ष्मणश्च कोटि-कोटि राक्षसानघ्नन्। अथ परस्मिन्नहनि विभीषणो रावण विचार्यदमुवाच। तृतीयोपायकालोऽय चतुर्थ न विचारय। चतुर्थो विपरीतो न शस्त्र शस्त्रार्थवारिण। परस्य चाऽऽत्मन शक्ति विदित्वा चाऽऽत्मनोऽधिकाम्। तदा युद्ध प्रशस्त स्याद्विपरीत विनाशकम् ॥३०॥

इसके पश्चात् उस रावण ने श्रीराम पर भी पाँच बाणों से प्रहार किया था। श्रीराम ने दश बाणो से रावण को व्रणो से युक्त कर दिया था। इन दोनो श्रीराम और रावण का अत्यन्त परस्पर मे दारुण युद्ध

हुआ था। फिर रावण ने दश बाणों से श्रीराम को व्यथित किया था। इसके पश्चात् श्रीराम के लगातार जो बाणों की वृष्टि हुई उससे उस राक्षस राज रावण का समस्त शरीर क्षतयुक्त हो गया था और वह वहाँ से भाग गया था। बन्दरों ने और लक्ष्मण ने करोड़ों ही राक्षसों को मार गिराया था। इसके उपरान्त दूसरे दिन में विभीषण ने रावण से विचार करके यह कहा था—यह तीसरा उपाय काल है अब चौथे के विषय में तो कुछ भी विचार ही नहीं करना चाहिए। जो शास्त्रार्थ करने वाले होते हैं उनको चतुर्थ विपरीत ही होता है प्रशस्त नहीं होता है। दूसरे की और अपनी शक्ति का ज्ञान प्राप्त करके जब यह समझले कि मेरी अपनी शक्ति शत्रु से प्रबल या अधिक है तभी युद्ध का करना प्रशस्त होता है और यदि इसके विपरीत हो अर्थात् अपनी शक्ति से शत्रु की शक्ति अधिक प्रबल हो तो वह युद्ध विनाश कर देने वाला अप्रशस्त ही माना जाता है ॥३०॥

न शूरो राजधर्मं च न च जानासि शाश्वतम् । परनारीपरद्रव्यपरराज्यनिषेवया शूराणामुत्तमो धर्मो न पंढानां भवादृशाम् । शत्रुपक्षं समालिङ्ग्य निर्गच्छेच्छा हि चेन्नृप । अथ विभीषणो मन्दिरंगत्वा रामान्तिकं गत्वा तं शरणमभजत् । अथ रावणः पुरान्निर्गत्य रामेण लक्ष्मणवानरं राक्षसाअपि युयुधिरे । अथ रावणं महाबलं हन्तुमशक्तो रामो विभीषणमुखमवलोक्य तदुक्तचिन्हपदं बाणेन निर्भिद्यामारयत् । अथ कुम्भकर्णो महागदामादाय सर्वं निष्पाद्य वानराननेकशो भक्षयित्वा रामोत्तमाङ्गं गदयाऽहन् । अथ रामो निशितबाणशतेन तमहन्ममार कुम्भकर्णः ॥३१॥

रावण ने श्रीराम से कहा था—आप न तो कोई शूर वीर ही हैं और जो शाश्वत राजधर्म होता है उसे भी आप नहीं जानते हैं। पराई स्त्री-पराया द्रव्य और पराया राज्य का निषेवण करना शूरों का उत्तम धर्म होता है। आप जैसे पण्ढों (नपुंसकों) का यह धर्म नहीं हो सकता है। शत्रु पक्ष का समालिगन करके हे नृप ! यदि इच्छा हो तो यहाँ

युद्ध क्षेत्र से निकल कर चले जाओ ॥४८॥ इसके पश्चात् विभीषण ने मन्दिर में जाकर श्री राम की शरणागति ग्रहण की थी। इसके उपरान्त रावण अपने पुर से निकलकर युद्ध स्थल में आगया था और उसने फिर श्रीराम-लक्ष्मण और वानरों के साथ युद्ध किया था तथा राक्षसों ने भी युद्ध किया था। इसके पश्चात् जब श्रीराम महान् बलवान् रावण को मार गिराने में असमर्थ हो गये तो उन्होंने विभीषण के मुख की ओर देखा था। विभीषण ने उस समय में रावण की नाभि में जो अमृत का निवास था वह संकेत से श्रीराम को बतला दिया था। फिर श्रीराम ने उसी जगह पर अपना बाण छोड़ कर रावण को मार गिराया था। इसके पश्चात् रावण का सहोदर छोटा भाई कुम्भकर्ण अपनी विशाल गदा को लेकर वहां आगया था। उसने बहुत से वानरों का भक्षण कर लिया था और अपनी गदा से श्री राम के मस्तक पर प्रहार किया था। इसके उपरान्त श्रीराम ने अपने तीखे बाणों से, जो कि सैकड़ों की संख्या में चलाये गये थे, उस कुम्भ का निहनन कर दिया था और कुम्भकर्ण मर गया था ॥३१॥

अथ विभीषणेन रावणादे श्राद्धादिकं कारयित्वा शिवालयं तन्नाम्ना कारयित्वा तमेव लङ्काराज्ये विभीषणमभिषिच्य सीतामग्निप्रवेशशुद्धामुमामहेश्वराभ्यां नमयित्वा पुरहरेण दत्ताखिलामृतवलायुष्य सुपुष्पकामारुह्य जलधिमुत्तीर्य पारावारतटे सेना समवस्थाप्य शिवप्रतिष्ठां तत्र कृत्वा मुनिभिर्देवैरभ्यर्चितोऽयोध्यामगमत्। अथ भरतादि समुपेतो नागरैर्वसिष्ठेन मुनिभिश्चाभ्यर्चित स्वगृहमगमत्। आत्मनाऽऽगतानि ब्रह्मादि देवानासनादिनाऽभ्यर्च्य वानरान्सम्पूज्य मुक्तजटोऽभिषिक्तो राज्ये रावणवधहर्षितादेवा राममूचुः। त्वयाऽऽत्मराज्ये स्थापिता वय न सर्वदा तान्परिपालयत्वमादिनारायणो देवो क्षितितलदुष्टनिग्रहार्थमवतीर्णो रावण स यान्धव हत्वा लोकत्रयरक्षकोऽसि श्रियासह सुखी भवेत्युदीर्य स्वर्गं गता.। अथायोध्यावासिनो राम प्रहर्षिता ऊचुः ॥३२॥

इसके अनन्तर विभीषण के द्वारा रावण प्रभृति का श्राद्ध आदि सम्पूर्ण अन्त्येष्टि कर्म सांगोपांग करा कर शिवालय को उसके नाम से करा कर उसी विभीषण को उस लंका के राज्यासन पर अभिषिक्त करके सीता की अग्नि में शुद्धि परीक्षा की थी और यह सब सम्पन्न करके उमा महेश्वर को प्रणाम कराया था। शिव के द्वारा जो भी वीर वानर युद्ध स्थल में मर गये थे उनको आयु एवं बल प्रदान करके जीवित करा दिया था। फिर पुष्पक विमान पर समारूढ़ होकर सागर का तरण करके पारावार तट पर सेना को सम व स्थापित कराकर वहाँ पर भगवान् शिव की प्रतिष्ठा की थी। समस्त मुनिगण तथा देव वृन्द के द्वारा अभ्यर्चित होकर श्रीराम अयोध्या पुरी को चले गये थे। स्वयं समागत जो इन्द्रादि देवगण थे उनका आसन आदि प्रदान कर भली भाँति अभ्यर्चन किया था तथा वानरों का भी अभ्यर्चन किया था। फिर राम के शिर पर जो जटाजूट थी उनका त्याग कर दिया था। इसके पश्चात् अयोध्या के राज्यासन पर अभिषेक हुआ था। रावण के वध कर देने से देवगण को अत्यधिक हर्ष हुआ था। वे सब देवगण राम से बोले—हे भगवन्! आपने हम सब को हमारे गये हुए राज्यासनों पर पुनः स्थापित कर दिया है। अब प्रार्थना यही है कि आप हम सब का सर्वदा पालन करते रहें। आप तो आदि नारायण भगवान् हैं। इस भूमण्डल में अवतीर्ण हुए हैं। आपने रावण आदि समस्त दुष्टों के निग्रह करने के लिए ही अवतार लिया है। अब इस महादुष्ट रावण को बन्धु-बान्धव सहित मारकर आपने तीनों लोकों की रक्षा की है। हम लोग यही चाहते हैं कि आप लक्ष्मी महारानी के साथ परम सुख पूर्वक निवास करें। इतना कहकर समस्त देवगण स्वर्गलोक में चले गये थे। इसके अनन्तर अयोध्या पुरी के निवासी परम प्रहर्षित होकर राम से बोले ॥३२॥

हत्वा शत्रून्समायातो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि वै शिवम्।
दिष्ट्या त्वं राजसे राम दिष्ट्या पालयसे प्रजाः ॥३३
त्वयि राजनि काकुत्स्थ! सर्वं स्वस्थं तपस्विनाम्।

गच्छामहे पदमितः किं वा त्वं मन्यसे नृप ॥३४
यस्य विप्राःप्रसीदन्ति तस्य शम्भुःप्रसीदति ।
यस्यप्रसीदतीशानस्तस्य भद्रं भविष्यति ॥३५
तत्कृत्वा भोजनमिह गन्तुमर्हा अनन्तरम् ।
तथेत्युक्त्वा मुनिगणाः कृत्वा भोजनमुत्तमम् ॥३६
अभिवर्द्ध्य तमाशीर्भिर्हृष्टास्वंस्वंपदं ययुः ।
रामोऽपि परमप्रीतः सभार्यश्च सहानुजः ।
अकण्टकं स कृतवान्राज्यं सर्वजनप्रियः ॥३७
शृणोत्येतदुपाख्यानं यःकश्चिदपिपातकी ।
सर्वपापविनिर्मुक्तःपरंब्रह्माधिगच्छति ॥३८
न दुर्गतिमवाप्नोति यश्चैतत्स्मरते नरः ।
यश्चापि कीर्तयेत्तस्य एवमेतदुदीरितम् ॥३९

सभी लोग वापिस अपने २ आश्रमों को जाने के इच्छुक हैं तो ठीक है किन्तु मेरी यह प्रार्थना है कि यहाँ आप लोग अपनी भोजन चर्या करने के योग्य होते हैं भोजन करने के अनन्तर ही आप यहा से पदार्पण कीजिए। मुनिगण ने राम के इस विनम्र निवेदन को 'तथास्तु'—यह कह कर स्वीकार कर लिया था और समस्त मुनिवर्ग ने भोजन किया था जोकि परमोत्तम था ॥३६॥ फिर सब मुनियों ने राम का आशीर्वादों के द्वारा समभिवर्द्धन किया था। फिर अतीव प्रसन्न होते हुए सब लोग अपने-अपने आश्रमो को वापिस चले गये थे। राम को भी अब अत्यन्त प्रसन्नता हुई थी और अपनी भार्य्या जानकी के सहित तथा अपने छोटे भाइयों के साथ उन्होंने कण्टक रहित राज्य का शासन किया था। भगवान् राम सभी प्रजाजनो के परम प्रिय थे ॥३७॥ यह राम का उपाख्यान परम पुण्यमय है। जो इस उपाख्यान का श्रवण किया करता है वह चाहे कितना भी घोर पातकी क्यो न हो वह अपने सभी प्रकार के महान् से भी महान् पापो से छुटकारा पाजाया करता है और अन्त समय मे इस देह का त्यागकर परम ब्रह्म की प्राप्ति करता है ॥३८॥ जो मनुष्य इस परम पवित्र महिमा मय उपाख्यान का स्मरण भी एक बार कर लिया करता है उस पुरुष की दुर्गति तो कभी भी हो ही नही सकती है ॥३९॥

॥ धर्म वीज समुच्चय वर्णन ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वती व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२
श्रुत पातालखण्डं च त्वयाऽऽख्यातं विदांवर ।
नानाख्यानसमायुक्तं परमानन्ददायकम् ! ॥३
अधुना श्रोतुमिच्छामो भगवद्भक्तिवर्धनम् ।
पाद्मे यच्छेपमस्तीह तद्ब्रूहि कृपया गुरो ! ॥४

शृणुध्वं मुनयः सर्वे. यदुक्तं शङ्करेण हि ।
पृच्छते नारदायैव विज्ञानं पापनाशनम् ।।५
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः ।
गतोऽद्रि मन्दरं शम्भुं प्रष्टुं किञ्चन्मनोगतम् ।।६
तत्रासीनमुमानाथ प्रणिपत्य शिवाज्ञया ।
उपविष्टः समादिष्ट आसनेऽभिमुखो विभोः ।
पप्रच्छ चेदमेवेशं यन्मा पृच्छथ सत्तमाः ।।७

मंगलाचरण किया जाता है—सर्व प्रथम भगवान् नारायण को तथा सर्वोत्तम नर को नमस्कार करके फिर देवी सरस्वती और महर्षि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास जी को नमस्कार करके 'जय'—इस शब्द का समुच्चारण करना चाहिए ।।१।। जिन गुरुचरण ने अज्ञान स्वरूपी अन्धकार के कारण अन्धीभूत अर्थात् दृष्टिहीन चक्षु को ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका से उन्मीलित (खुली हुई) अर्थात् तत्व दर्शन करने के योग्य बना दिया है । उन गुरु देव की सेवा मे प्रणाम समर्पित है ।।२।। ऋषियो ने कहा—हे विशवर अर्थात् विद्वानो मे परम श्रेष्ठ ! आपने जो पाताल खण्ड का वर्णन किया था वह हमने श्रवण किया है जो कि अनेक आख्यानो से सयुत था और अत्यन्त अधिक आनन्द का प्रदान करने वाला था ।।३।। अब हम सब लोग भगवान् की भक्ति की वृद्धि करने वाला विषय श्रवण करने इच्छुक हैं । हे गुरुदेव ! इस पद्म पुराण मे जो भी शेष हो उसे ही कृपा करके आप बतलाइये ।।४।। सूत जी ने कहा—हे मुनि वृन्द ! आप सब लोग उसे श्रवण कीजिए जोकि भगवान् शकर ने कहा है जब कि देवर्षि नारद जी ने उनसे पूछा था । वह सब विज्ञान पापों का नाश कर देने वाला है।।५।। एक बार देवर्षि नारद जी जो कि भगवान् मे परम भक्त हैं अनेक लोकों मे भ्रमण करते हुए भगवान् शम्भु का दर्शन प्राप्त करने के लिए मन्दर गिरि पर गये थे । उस समय मे नारद जी के मनमे कुछ भगवान् से पूछने का अभिप्राय था ।।६।। वहा पर भगवान् उमा के स्वामी विराजमान थे । नारदजी ने उनको सादर प्रणाम किया था और फिर शिव

की आज्ञा प्राप्त करके बैठ गये थे। शिव ने यह आज्ञा दी थी कि उनके सामने ही मुख करके आसन पर स्थित होवें। नारदजी उसी प्रकार बैठ गये थे। फिर उनने ईश्वर से यही पूछा जो कि इस समय ये आप सब श्रेष्ठ लोग मुझसे पूछ रहे हैं ॥७॥

॥ बदरी नारायण माहात्म्य ॥

एकलक्षं पञ्चविंशत्सहस्राःपर्वतास्तथा ।
तेषां मध्ये महत्पुण्यं बदर्याश्रममुत्तमम् ॥१
नरनारायणो देवो यत्र तिष्ठति नारद ।
तस्य स्वरूपं तेजश्च वक्ष्यामीह चसाम्प्रतम् ॥२
हिमपर्वतशृङ्गे च कृष्णाकारतया द्विज ! ।
पुरुषौ तत्र वर्तेते नरनारायणावुभौ ॥३
श्वेत एकस्तु पुरुषः कृष्णो ह्येकतमः पुनः ।
पिङ्गलश्वेतवर्णश्च जटाधारी महाप्रभुः ॥४
कृष्णो नारायणो ह्यपि जगदादिर्महाप्रभुः ।
चतुर्बाहुर्महाञ्छ्रीमान्व्यक्तोऽव्यक्तः सनातनः ॥५
उत्तरायणे महापूजा जायते तत्र सुव्रत ! ।
षण्मासादिकपर्यन्तं पूजा नैव च जायते ॥६
हिमव्याप्तं तदा जातं यावद्वै दक्षिणं भवेत् ।
अत एतादृशो देवो न भूतो न भविष्यति ॥७

भगवान् महेश्वर ने कहा—एक लाख पच्चीस सहस्र पर्वत हैं। उन समस्त पर्वतों के मध्य मे बदर्याश्रम का जो पर्वत है वह सबसे उत्तम है और महान् पुण्य का प्रदान करने वाला है ॥१॥ हे नारद ! वहाँ पर बदर्याश्रम मे नरनारायण देव विराजमान् रहते हैं। उनका स्वरूप और जो तेज है उसको मैं अभी तुमको बतलाता हूँ ॥२॥ हे द्विज ! हिमवान् पर्वत की चोटी पर कृष्णाकार के रूप में दो पुरुष वर्त्तमान हैं। वे दोनों ही नर और नारायण के नाम से प्रख्यात हैं ॥३॥ उनमे एक पुरुष तो श्वेत वर्ण वाले हैं और उनमें एक कृष्ण वर्ण वाले हैं। वह

महा प्रभु जटाओ के धारण करने वाले और पिंगलश्वेत वर्ण से युक्त हैं । इस जगत् के आदि महा प्रभु जो कृष्ण हैं वह नारायण हैं ।।४।। यह प्रभु चार भुजाओ के धारण करने वाले हैं और महान् श्रीमान् हैं । इनका स्वरूप व्यक्त है और यह सनातन स्वरूप अव्यक्त भी है ।।५।। हे सुन्दर व्रत वाले ! उत्तरायण जब सूर्य्य होते हैं उसी समय मे उनकी महापूजा होती है । फिर छः मास तक उनकी कोई भी अर्चना नही होती है । फिर तो वह सम्पूर्ण स्थल हिम से समाच्छादित हो जाता है जब तक सूर्य दक्षिणायन में रहते हैं। अतएव यह देव सभी देवो से परम विलक्षण ही हैं ऐसा देव अब तक न तो कोई हुआ ही है और न भविष्य मे भी होगा ।।६-७।।

तत्र देवा वसन्तीह ऋषीणा चाश्रमास्तथा ।
अग्निहोत्राणि वेदानाध्वनि.प्रश्रूयते सदा ।।८
तस्य वै दर्शनं कार्यं कोटिहत्याविनाशनम् ।
अलकनन्दा यत्र गङ्गा तत्रस्नानसमाचरेत् ।।९
कृत्वा स्नान तु वै तत्र महापापात्प्रमुच्यते ।
यत्र विश्वेश्वरो देवस्तिष्ठत्येव न सशयः ।।१०
एकस्मिन्समये तत्र सुतपस्तप्तवानहम् ।
तदा नारायणो देवो भक्ताना हि कृपाकरः ।।११
अव्यय. पुरुषःसाक्षादीश्वरो गरुडध्वज ।
सुप्रसन्नोऽब्रवीन्मा वै वर वरय सुव्रत ! ।।१२
य यमीप्ससि देव ! त्व त त काम ददाम्यहम् ।
त्व कैलासविभु साक्षाद्रुद्रो वै विश्वपालकः ।।१३

वहाँ पर बदर्याश्रम में देवगण निवास किया करते हैं और वहाँ महर्षिगण के भी बहुत आश्रम विद्यमान हैं । वहाँ निरन्तर अग्निहोत्र हुआ करते हैं और सर्वत्र वेद मन्त्रों की ध्वनियाँ श्रवणों में पड़ती रहती हैं ।।८।। उसका दर्शन अवश्य ही करना चाहिए क्योंकि वह करोड़ों हत्या के पाप को नष्ट कर देने वाला है । वहाँ अलकनन्दा नाम वाली गङ्गा बहती रहती है । उसमें स्नान अवश्य ही करना चाहिए ।।९।।

वहा पर अलकनन्दा में स्नान करके मनुष्य महापापो से भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है क्योंकि जहाँ पर साक्षात् विश्वेश्वर देव विराजमान रहा करते हैं—इसमे लेश मात्र भी सशय नही है ॥१०॥ एक समय ऐसा आया था कि मैंने स्वय वहा पर सुन्दर तपश्चर्या की थी। उस समय में अपने भक्तो पर पूर्ण कृपा करने वाले नारायण देव जिनका अभय स्वरूप है और जो पुरुष गरुडध्वज साक्षात् ईश्वर है मुझ पर सुप्रसन्न हो गये थे उन्होने परम प्रसन्न होकर मुझ से कहा था—हे सुव्रत! तुम अपना अभीष्ट वरदान माँगलो ॥११॥ भगवान् श्री नारायण ने कहा था—हे देव! जो-जो भी कामना तुझे हो और जो-जो भी तू इच्छा रखता है मैं उस-उसी को तुझे दे दूंगा अर्थात् पूर्ण कर दूँगा। तुम कैलास पर व्यापक साक्षात् रुद्र हो और निश्चय ही इस सम्पूर्ण विश्व के पालन करने वाले भी हो ॥१२-१३॥

अल गृह्णामि भोदेव सुप्रसन्नो जनार्दन।
द्वौ वरौ मम दीयेता यदिदातु त्वमिच्छसि ॥१४
तव भक्तिः सदैवास्तु भक्तराजो भवाम्यहम्।
सर्वे लोका ब्रु वन्त्वेवमम भक्त सदैवहि ॥१५
तव प्रसादाद्देवेश मुक्तिदाता भवाम्यहम्।
ये लोका माभजिष्यन्तितेपादातान सशय. ॥१६
विष्णुभक्त इतिख्यातो लोके चैव भवाम्यहम्।
यस्याहवरदाता नु तस्यमुक्तिर्भवेत्प्रभो ॥१७
जटिलो भस्मलिप्तोह ह्यह वै तव सन्निधौ।
तव देव प्रसादेन लोकेख्यातो भवाम्यहम् ॥१८

श्रीरुद्रदेव ने कहा—हे देव! हे जनो की पीडा दूर करने वाले प्रभो! आप मुझ पर सुप्रसन्न है—मुझे यही बहुत कुछ प्राप्त हो गया है। यदि आप मुझे वरदान प्रदान करने की कृपा करें तो मुझे दो वर प्रदान कीजिए ॥१४॥ एक तो उन दो वरो मे मेरा यही है कि आपके चरणारविन्द की भक्ति सदा सर्वदा बनी रहे। मैं भक्तो का राजा अर्थात् सर्व शिरोमणि भक्त हो जाऊँ। सभी लोग मुझे यही कहें कि यह सदा

ही भक्ति करने वाला है ॥१५॥ हे देवेश ! मैं भी आपके प्रसाद से प्राणियों को मुक्ति का देने वाला हो जाऊँ। जो लोग मुझ को भजेंगे उनका मैं बिना किसी संशय के दाता हो जाऊँ ॥१६॥ मैं संसार मे भगवान विष्णु का भक्त इसी नाम से विख्यात होकर रहूँ और मैं जिसको भी वरदान दूं हे प्रभो ! उसकी मुक्ति हो जानी चाहिए ॥१७॥ जटाधारी और भस्म से लिप्त मैं अब आपके सामने समीप मे ही उपस्थित हूँ। हे देव ! आपके प्रसाद से मैं लोक मे विख्यात रहूँगा ॥१८॥

॥ जालन्धर की उत्पत्ति ॥

एकदा नारदोद्रष्टु पाण्डवान्दुःखकर्शितान् ।
ययौ काम्यवनविप्रः सत्कृतस्तैर्यथाविधि ॥१
अथ नत्वा मुनिश्रेष्ठ युधिष्ठिर उवाच ह ।
भगवन्कर्मणा केन दुःखाब्धौ पतिता वयम् ॥२
तमुवाच ऋषिर्दुःख त्यजत्वं पाण्डुनन्दन ! ।
सुखदुःखसमाहारे ससारे कः सुखी नरः ॥३
ईश्वरोऽपि हि न स्थायी पीडयते देहसश्रयैः । .
न दुःखरहित कश्चिद्देही दुःखसहो यतः ॥४
शरीरं सवितुर्यस्माद्राहुस्तद्ग्रसते बली ।
राहोरपि शिरश्छिन्न शौरिणाऽमृतभोजने ॥५
सोऽपि शार्ङ्गधरो देव क्षिप्तः सागरगह्वरे ।
जालन्धरेण वीरेण निहतः सोऽपि शम्भुना ॥६
कोऽसौ जालन्धरोवीरःकस्यपुत्रःकुतो बली ।
कथ जालन्धरंसख्ये हृतवान्वृषभध्वजः ॥७
एतत्सर्व समाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन ! ।
राज्ञा स एव मुक्तस्तु कथयामास नारदः ॥८

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र ! एक बार देवर्षि नारद दुःख से अत्यन्त कर्शित पाण्डवो से मिलने के लिये काम्यवन मे गये थे। उन्होंने नारदजी का यथाविधि स्वागत-सत्कार किया था। इसके उपरान्त राजा

युधिष्ठिर ने श्री नारदजी को प्रणाम करके उनसे कहा था ।।१।। युधिष्ठिर बोले—हे भगवन् ! कृपा कर यह तो बतलाइये कि कौन सा बुरा कर्म हमारा बन गया है जिससे हम इस समय में दुःख के सागर में पड़े हुए हैं ।।२।। सूतजी ने कहा—उस समय में देवर्षि नारद ने उस राजा युधिष्ठिर से कहा था—हे पाण्डु नन्दन ! अब आप दुःख का त्याग कर दो । यह तो सम्पूर्ण संसार ही ऐसा है कि इसमें सुख और दुःख का समाहार रहा करता है । इस ऐसे संसार में आप ही बताइये कौनसा मनुष्य सुखी है ? तात्पर्य यह है कि यहाँ कोई भी आकर सुखी नहीं रहता है ।।३।। साक्षात् ईश्वर भी तो स्थायी नहीं है । वह भी देह में सञ्चरण करने वाले दुःखों से उत्पीडित किया ही जाया करता है । यहाँ दुःख से रहित कोई भी देहधारी नहीं है क्योंकि यह देही दुःखों के सहन करने वाला ही होता है । क्योंकि यह शरीर तो सविता का है और बलवान् राहु इसका ग्रास किया करता है । उस राहु के भी शिर को अमृत का पान करने के समय में भगवान् वासुदेव ने मार डाला था ।।३-४।। वह भी शार्ङ्ग धारी देव एक परम गहन समुद्र में डाल दिये गये हैं अर्थात् अथाह सागर में ही निवास किया करते हैं । वह भी जालन्धर वीर ने यह किया था और वह जालन्धर भी शम्भु के द्वारा मार गिराया गया था ।।५-६।। राजा युधिष्ठिर ने फिर प्रश्न किया था । यह जालन्धर वीर कौन था ? वह किस का पुत्र था और वह ऐसा बलशाली कैसे हो गया था ? इसका 'जालन्धर'—यह नाम कैसे पड़ा था और वृषभध्वज ने क्यों मार डाला था ? ।।७।। हे तपोधन ! यह सभी कुछ विस्तार के साथ मुझे बतलाइये । सूतजी ने कहा—वह भी राजा के द्वारा मुक्त हुआ था—यह श्री नारदजी ने कहा था ।।८।।

शृणुभूपकथादिव्यामशेषाघौघनाशिनीम् ।
ईशानसिन्धुसून्वोश्च सङ्ग्राम परमाद्भुतम् ।।९
एकदा गिरिशं स्तोतुं प्रययौ पाकशासनः ।
अप्सरोगणसंकीर्णो देवैर्वृन्दैभिरावृत्तः ।।१०

भोभोगणवरश्रेष्ठ शृणु मे वाक्यमुत्तमम् ।
समाज्ञापय शीघ्रं त्व नृत्यार्थमिहमागतम् ।
ईश्वर प्रति देवेशं सर्वदेवैः समावृतम् ॥११
इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा गिरिशं नन्दिरब्रवीत् ।
प्रभोऽयमागतः सर्वदेवराजः पुरन्दरः ॥१२
नृत्यार्थमथ तं प्राहानय शीघ्रं शचीपतिम् ।
प्रवेशयामास तदा नन्दी तैः सह वासवम् ॥१३
स दृष्ट्वा गिरिशं देवं तुष्टाव वृषभध्वजम् ।
रम्भाद्यास्तास्तदा सर्वा नर्तक्यो हरसन्निधौ ॥१४
मृदङ्गवीणावादित्रं मुदा नाट्यं प्रचक्रिरे ।
कांस्यवाद्यान्प्रगृह्यान्या वंशतालान्सकाहलान् ॥१५

श्री नारदजी ने कहा—हे भूप ! अब आप इस सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली दिव्य कथा का श्रवण कीजिए। इस कथा में ईशान और सिन्धु के पुत्र का परम ही अद्भुत युद्ध का वर्णन है ॥६॥ एक अवसर पर पाकशासन (इन्द्र) गिरिश श्रीशिव की स्तुति करने के लिये गये थे। उस समय में इन्द्र अप्सराओं के समुदाय से तथा बहुत से देव-गण से आवृत थे ॥१०॥ इन्द्रदेव ने कहा—हे-हे श्रेष्ठ गणों में भी परम-श्रेष्ठ ! आप मेरा यह उत्तम वचन सुनिए और शीघ्र ही मुझे आज्ञा प्रदान करें। मैं यहाँ पर नृत्य के लिये उपस्थित हुआ हूँ। मैं देवों के स्वामी ईश्वर की सन्निधि में सब देवगण से समावृत होकर ही आया हूँ ॥११॥ नारदजी ने कहा—इन्द्र देव के इस वचन को सुन कर नन्दि ने भगवान् गिरिश से प्रार्थना की थी—हे प्रभो ! यह देवराज महेन्द्र सब देवों के सहित यहाँ आया है ॥१२॥ यह यहाँ नृत्य के लिये ही उपस्थित हुआ है। इसके उपरान्त भगवान् ने उसे आदेश दिया था कि शची के पति को अन्दर प्रवेश कराओ। उसी समय नन्दी ने देवों के सहित देव-राज को प्रविष्ट करा दिया था ॥१३॥ तब इन्द्र ने गिरिश का दर्शन कर फिर वृषध्वज का स्तवन किया था। फिर रम्भा आदि जो समस्त नर्तकियाँ वहाँ हर की सन्निधि में उपस्थित थीं उन्होंने बड़े ही हर्ष

मृदंग– वीणा आदि वाद्यों के द्वारा नाच करना आरम्भ कर दिया था ॥१४॥ दूसरी नर्त्तकियों ने कांस्य वाद्यों को ग्रहण करके तथा उन्होंने सकाहल वंश तालों को ग्रहण किया था ॥१५॥

चक्रुस्ता नृत्यसंरम्भं स्वयं देवः पुरन्दरः ।
अतीवनर्तनं चक्रे सुन्दरं देवदुर्लभम् ॥१६
ईश्वरस्तोषमापन्नो वासवं वाक्यमब्रवीत् ।
प्रसन्नोऽहं सुरश्रेष्ठ जातस्ते व्रियतां वरः ॥१७
इत्युक्तवति देवेशे स्ववाहुवलगर्वितः ।
प्रत्युवाच हरं वाक्यं सङ्ग्रामः संवृतो मया ॥१८
यत्र त्वत्सदृशो योद्धा तद्युद्धं देहि मे प्रभो ! ।
इत्युक्त्वा निर्गतो जिष्णुर्लब्ध्वा शम्भोर्वरं प्रभो ! ।
तस्मिन्गते तदा शक्रे गिरिशो वाक्यमब्रवीत् ॥१९
गणा मे श्रूयतां वाक्यं देवराजोऽतिगर्वितः ॥२०

स्वयं पुरन्दर देव ने भी उनके ही साथ नृत्य का सरम्भ कर दिया था। वह नर्त्तन अत्यन्त सुन्दर और देवों को भी दुर्लभ था ॥१६॥ ईश्वर उस परमोत्तम नृत्य को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए थे और फिर वासव से उन्होंने कहा—हे सुरों में श्रेष्ठ देव ! मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। अब आप वरदान माँगलो ॥१७॥ देवों के स्वामी के ऐसा कहने पर अपने बाहुबल के गर्व से संयुत इन्द्र भगवान शम्भु से बोला—मैंने संग्राम तो संवृत कर लिया है ॥१८॥ जहाँ पर आपके समान योद्धा हो वही युद्ध हे प्रभो ! अब मुझे प्रदान कीजिए। इन्द्र के चले जाने पर उस समय मे भगवान् गिरिश ने यह वाक्य कहा था—श्री शकर बोले—हे गणो ! मेरा वचन आप लोग सुनिए। देवराज इन्द्र अब अत्यन्त गर्व से युक्त हो गया है ॥१९-२०॥

इत्युक्त्वा क्रोधसंयुक्तोबभूव चततो हरः ।
आविरासात्ततः क्रोधोमूर्त्तिमान्पुरतः स्थितः ॥२१
घनान्धकारसदृशो मृडं क्रोधस्ततोऽब्रवीत् ।
देहिमे त्वं हि सन्देशंकि करोमि तवप्रभो ॥२२

उमापतिस्तदोवाच गच्छ त्वं वासवं जय ।
स्वर्गसिन्धुं समासाद्य सागरस्थ च वीर्यवान् ॥२३
इत्युक्तोऽन्तर्दधे क्रोधो गणास्ते विस्मयं ययु ।
ईशानकल्पे जाते तु कामेनार्णवसङ्गमे ॥२४
नार्कसिन्धुस्तदा मत्ता स्वयौवनभरोष्मणा ।
ता दृष्ट्वा सिन्धुराजश्च जलकल्लोलवानभूत् ॥२५
तदाबभूव राजेन्द्र गङ्गासागरसङ्गमः ।
महानदी तदा प्राप्य रेमे चात्मबलेन च ॥२६
अत्रान्तरे समुद्रस्य बभूव सुभटस्तन ।
सूनुस्तस्या महानद्या समुद्रादभवद्बली ॥२७
महार्णवतनूजेन जातमात्रेण पार्थिव ।
रुदतोत्कम्पिता पृथ्वी त्रिलोका नादिताऽभवत् ॥२८

नारदजी ने कहा—इसके अनन्तर यह इतना मात्र कह कर भगवान् हर अत्यन्त क्रोध से सयुक्त हो गये थे । उसी समय मे मूर्तिमान क्रोध हर के सामने प्रकट होकर स्थित हो गया था ॥२१॥ अत्यन्त घनीभूत अन्धकार के तुल्य वह मूर्तिमान् क्रोध भगवान् शिव से बोला—हे प्रभो ! अब आप मुझे सन्देश प्रदान करे कि मैं अब क्या कर्म करू ॥२२॥ उस समय मे उमा के पति ने कहा—तुम जाओ, इन्द्र को पराजित करो । तुम तो अतीव वीर्यवान् हो, सागर के स्वर्ग सिन्धु पर पहुच जाओ ॥२३॥ इस प्रकार से कहे गये क्रोध देव उसी समय अन्तर्हित हो गये । सब गण लोगो को बडा भारी विस्मय हुआ था । इच्छा से ही ईशान के समान अर्णव सगम के समुत्पन्न होने पर अपन यौवन के भार की ऊष्मा से उस समय मे नाक (स्वर्ग) सिन्धु मत्त हो गयी थी । उसको देखकर सिन्धुराज जल की कल्लोलो से युक्त हो गया था ॥२४-२५॥ उस समय मे हे राजेन्द्र ! गगा सागर का संगम हुआ था। उस अवसर पर महानदी प्राप्त करके आत्म बल से उसने रमण किया था ॥२६॥ इसी बीच मे समुद्र का सुभट हुआ था । इसके पश्चात् उस महानदी मे समुद्र से एक बलवान् पुत्र हुआ था ॥२७॥ हे पार्थिव !

उस महार्णव के पुत्र ने उत्पन्न होते हुए ही जब रुदन किया था तो सम्पूर्ण पृथ्वी कम्पित हो गई थी और तीनों लोक सुनादित हो गये थे ॥२८॥

समाधिबद्धमुद्रां च सन्तत्याज चतुर्मुखः ।
अत्रान्तरे परित्रस्ता तां संवीक्ष्य जगत्त्रयीम् ॥२९
धातासुरेन्द्रवाक्येन प्रजगाम महार्णवम् ।
आश्चर्यमिति सञ्चिन्त्य हसारूढोजवाद्ययौ ॥३०
ब्रह्माणमागतं वीक्ष्य सपर्यां विदधेऽर्णवः ।
तमुवाचततो ब्रह्मा किं गर्जसि वृथाऽम्बुधे ! ॥३१
नाहं गर्जामिगर्जामि मत्सुतो बलवान्प्रभो ।
शिशोर्वै कुरु रक्षां च दुर्लभं तव दर्शनम् ॥३२
सन्दर्शयता च तनयो भार्यां प्राहातिशोभनाम् ।
ययौ सा भर्तुरादेशात्सपुत्रा ब्रह्मणोऽन्तिके ॥३३
उत्सङ्गदेशे चतुराननस्य विधाय पुत्रं चरणौ ननाम ।
तदा समुद्रात्मजमद्भुतं तं
दृष्ट्वा विधातुः किल विस्मयोऽ- भूत् ॥३४
गृहीतकूर्चस्य शिशोः करं च
यदा विरिञ्चिर्न शशाक मोचि- तुम् ।
तदा समुद्रः प्रहसन्प्रयातः कूर्चं प्रगृह्यार्भकर विमोचयन् ॥३५
तादृश तस्य बालस्य दृष्ट्वा विक्रममात्मभूः ।
प्रीत्या जालन्धरेत्याह नाम्ना जालन्धरोऽभवत् ॥३६
वरं ददावथोऽस्य प्रणयेन प्रजापतिः ।
अय जालन्धरो देवैरजेयश्च भविष्यति ॥३७
पातालसहितं नाकं मत्प्रसादेन भोक्ष्यति ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा हंसमारुह्य सत्वरः ॥३८

चतुर्मुख ब्रह्मा ने समाधि में बद्ध मुद्रा का त्याग किया था। इसी बीच में उस जगत्त्रयी को उन्होंने परित्रस्त देखा था ॥२९॥ धाता (ब्रह्मा) सुरेन्द्र के वाक्य से महार्णव में गये थे। ब्रह्मा जी ने यह [illegible]

आश्चर्य हुआ था—यह क्या होगया—यही मनमे विचार करते हुए वे हस पर समारूढ होकर बडी शीघ्रता से गये थे ॥३०॥ जब अर्णव ने ब्रह्मा जी को आये हुए देखा तो उसने उनकी यथा विधि अर्चना की थी। फिर ब्रह्माजी ने उस से कहा—हे अम्बुधे! तू वृथा ही क्यो गर्जन कर रहा है ? ॥३१॥ समुद्र ने कहा—हे देवेश ! मैं तो कोई भी अर्जन नही कर रहा हूँ किन्तु हे प्रभो! मेरा पुत्र अत्यन्त बलवान् उत्पन्न हुआ है। आपका दर्शन तो अत्यन्त दुर्लभ है। अब आप कृपा करके इस शिशु की रक्षा कीजिये ॥३२॥ फिर सागर ने अपनी अत्यन्त शोभना भार्या से कहा था कि इनको अपना पुत्र दिखलादो। वह अपने स्वामी के आदेश से पुत्र के सहित ब्रह्माजी के समीप मे गयी थी ॥३३॥ उस अर्णव की पत्नी ने ब्रह्मा जी को गोद मे अपने पुत्र को रख कर फिर उसने ब्रह्माजी के चरणो मे प्रणाम किया था। उस समय मे उस समुद्र के अतीव अद्भुत पुत्र को देख कर ब्रह्मा जी को बडा भारी विस्मय हुआ था ॥३४॥ उस शिशु ने अपने हाथ से ब्रह्मा जी की दाढी पकडली थी। उस हाथ को अपनी दाढी से पृथक् ब्रह्मा नही कर सके थे। उस समय मे सागर हँसते हुए बोला और गया था। उसने ब्रह्माजी की दाढी पकड कर उस बालक के हाथ को छुडाया था ॥३५॥ ब्रह्माजी ने उस बालक का उस प्रकार का अद्भुत विक्रम देखा था और प्रसन्नता से उसे 'जालन्धर'—इस नाम से पुकारा था। तभी से उसका नाम जालन्धर हो गया था ॥३६॥ इसके अनन्तर प्रणय से प्रजापति ने उसे वरदान दिया था कि यह जालन्धर देवो के द्वारा भी अजय हो जायगा ॥३७॥ मेरे प्रसाद से यह पाताल के सहित स्वर्ग लोक का भी भोग करेगा। इतना कह कर अपने हस पर समारूढ होकर ब्रह्माजी वही अन्तर्हित हो गये थे ॥३८॥

॥ जन्माष्टमी-व्रत-विधान ॥

देवदेव ! जगन्नाथ ! भक्तानामभयप्रद !
व्रतं ब्रूहि महादेव ! कृपां कृत्वा ममोपरि ॥१

सार्वभौमः पुरा ह्यासीद्धरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
तस्य तुष्टोऽददाद् ब्रह्मा पुरीं कामदुघां शुभाम् ॥२
सर्वरत्नमयीं दिव्यां बालार्कसदृशप्रभाम् ।
तत्र स्थितो महीपालो सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥३
पालयामास धर्मेण पिता पुत्रमिवौरसम् ।
प्रभूतधनधान्यस्तु पुत्रदौहित्रवान्नृपः ॥४
सपालयञ्छुभं राज्यं परं विस्मयमागतः ।
न तादृशमभूत्पूर्वं राज्यं कस्य हि कर्हिचित् ॥५
न चेदृशं नरैरन्यैर्विमानमधिरोहितम् ।
कस्येह कर्मणो व्युष्टिर्येनाहं सुरराडिव ॥६
इति चिन्तापरो भूत्वा विमानवरमास्थितः ।
ददर्श पार्थिववरो मेरुं शिखरिणां वरम् ॥७

श्री देवर्षि नारदजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं और अपने भक्तों को अभय का प्रदान करने वाले हैं। हे महादेव ! मुझ पर कृपा करके व्रत बतलाने का कष्ट करें ॥१॥ श्रीमहादेव जी ने कहा—बहुत प्राचीन समय में महीपति हरिश्चन्द्र सार्वभौम नृपति हुआ था। उस पर परम सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी ने उसको समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली अतीव शुभ पुरी प्रदान करदी थी ॥२॥ वह पुरी सभी प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण थी और अत्यन्त दिव्य एवं बाल सूर्य के सदृश प्रभा से समन्वित थी। वहाँ पर स्थित रहने वाला राजा सातों द्वीपों से युक्त वसुन्धरा का पालन किया करता था और इस भाँति धर्म नीति से सब का परिपालन करता था जिस तरह कोई पिता अपने औरस पुत्र का पालन-पोषण किया करता है। वह राजा समस्त धन-धान्यों से युक्त था और पुत्र एवं पौत्रादि से भी समन्वित था ॥३-४॥ उसने अपने राज्य का जो कि अत्यन्त शुभ था, परिपालन करते हुए परम विस्मय देखा था। इस प्रकार का कभी भी किसी का पहिले राज्य नहीं हुआ था ॥५॥ और न इस प्रकार से पहिले कभी मनुष्यों ने विमानों पर अधिरोहण ही किया था। यह किस सुकर्म

का समुदाय है जिससे मैं आज एक सुरों के राजा की भाँति हो रहा हूँ ॥६॥ इसी चिन्तन में परायण होकर राजा एक अति श्रेष्ठ विमान पर अधिरूढ़ हुआ था। इसके अनन्तर उस राजा ने पर्वतों में परम श्रेष्ठ मेरु पर्वत को देखा था ॥७॥

तत्रास्ते च महात्मासौ द्वितीय इव भास्करः ।
आसीनं पर्वतवरे शैलपट्टे हिरण्मये ॥८
सनत्कुमारं ब्रह्मर्षि ज्ञानयोगपरायणम् ।
दृष्ट्वा ह्यवातरद्राजा प्रष्टुकामोऽस्य विस्मयम् ॥६
ववन्दे चरणौ हृष्टस्तेनापि स च नन्दितः ।
सुखोपविष्टस्तु नृपः पप्रच्छ मुनिपुङ्गवम् ॥१०
भगवन्दुर्लभा लोके सम्पच्चेय यथा मम ।
कर्मणा केन लभ्येत कश्चाह पूर्वजन्मनि ।
तत्त्व कथय मे सर्वमनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥११
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि पूर्ववृत्तस्य कारणम् ।
येन कृत्वा विशेषेण तव चानुग्रहोऽभवत् ॥१२
त्वमासीःपूर्वजनुपिसुवैश्यःसत्यवाक्छुचिः ।
स्व कर्म ते परित्यक्तं ततस्त्यक्तस्तुगान्धवैः ॥१३
सत्व वृत्तिपरिक्षीणो भार्ययानुगतस्तथा ।
निर्गतः स्वजनास्त्यक्त्वा परप्रेषणलिप्सया ॥१४

वहां पर यह महान् आत्मा वाला राजा दूसरे सूर्य के ही समान ही रहता था। उस पर्वत श्रेष्ठ पर स्थित एक हिरण्मय शैल पट्ट पर ज्ञान और योग मे परायण ब्रह्मर्षि श्री सनत्कुमार को इसने देखा था वहां पर ही यह राजा कुछ पूछने की इच्छा करता हुआ विमान से नीचे पर्वत पर उतर पड़ा था जो कि उसके हृदय में एक अति विचित्र विस्मय हो रहा था उसी के विषय में इसे पूछने की इच्छा हुई थी ॥८-६॥ इस राजा ने सनत्कुमार की वन्दना की थी और बहुत ही प्रसन्न हुआ था। उनने भी इसका अभिनन्दन किया था। जब राजा सुख-पूर्वक उपविष्ट होगया तो उन मुनियों में परम श्रेष्ठ से इसने पूछा था—

हे भगवन् ! लोक में यह सम्पत्ति परम दुर्लभ है जैसी कि इस समय में मुझे यह प्राप्त है ॥१०॥ यह ऐसी सम्पत्ति किस कर्म के करने से प्राप्त होती है और मैं पूर्व जन्म में कौन था ? यदि आप मुझ पर कृपा करें और मुझे अनुग्रह करने के योग्य पात्र समझते हैं तो मुझे आप यह साकल्य रूप से सब बताने का श्रम देवें ॥११॥ सनत्कुमार जी ने कहा—हे राजन् ! आप समाहित होकर श्रवण करें मैं पूर्ववृत्त का सम्पूर्ण कारण बतलाता हूँ जिसके करने के कारण से तुम पर यह सब अनुग्रह हुआ है ॥१२॥ हे राजन् ! आप पहिले पूर्व जन्म में सुन्दर एक वैश्य थे जो कि सत्य भाषण करने वाले एवं पवित्र थे । तुमने अपना कर्म का त्याग कर दिया था और फिर बान्धवों के द्वारा भी त्याग दिया गया था । ॥१३॥ वह तुम वृत्ति से परिक्षीण होकर केवल अपनी भार्या के द्वारा ही अनुगत हुआ था । फिर पर प्रेषण विद्या से अपने जनों का त्याग करके निकल गया था ॥१४॥

न च प्रेषणको ह्यासीत्तत्रापि दुर्भिक्षपीडितः ।
ततः कस्मिंश्चिद्गहने सरश्चोत्फुल्लपंकजम् ॥१५
दृष्ट्वा तत्र कृतो स्नानो गृहीतः पंकजानि वै ।
एतावद्दूरतरण्यासीत् तान्यादाय पदे पदे ॥१६
आसीच्च नगरी पूर्वा नाम्ना वाराणसी शुभाम् ।
यत्रो विक्रीणनः कश्चि नैव गृह्णाति पंकजम् ॥१७
तन्मठान्लिंगं च कस्मिन्नेव प्राङ्गणेऽस्थितः ।
तत्स्थाने प्रविशन्ना शुभ्रा राक्षिणनिस्तनः ॥१८
कस्मिन्नश्च स्नुचोऽस्येव कादिकस्य च निश्चलः ।
इतिवृत्ते महाशुरे लेनोको प्रविष्ट तोऽत्र नरकम् ॥१९
मालिनाजपु निशायां इ ददृश्मन्नु पार्थिवः ।
मल्लार्चितं पूर्णिमायां नाम्ना चन्द्रावली सती ॥२०

उस समय में वह प्रेषण नहीं हुआ था और वह दुर्भिक्ष से पीड़ित हो गया था । इसके अनन्तर किसी समय में एक खिले हुए कमलों वाला सरोवर उसने देखा था । वहाँ पर उन कमलों को ग्रहण करके

था भाव किया था। इतना कहकर उन पुष्पों को लेकर पद-पद मे आस्थित हुआ था। वह परम पुण्य एव शुभ वाराणसी नगरी थी। वहा पर वह पकजो का विक्रय करता था किन्तु कोई भी उन्हें नही ग्रहण करता था ॥१५-१७॥ उस मठ से कोई निकला था और वहा पर ही प्रागणो में स्थित होगया था। उस स्थान मे प्रवेश करते हुए उसने वादित्र की ध्वनि सुनी थी ॥१८॥ यह वादित्र का शब्द किस मे सुनाई दे रहा है—ऐसा पूछने पर उम समय मे उसके द्वारा तूर्य के कहने पर फिर वह रवाना हुआ था ॥१९॥ काशिराज इन्द्रद्युम्न राजा परम प्रसिद्ध था। उसकी पुत्री थी जिसका नाम सती चन्द्रावती था ॥२०॥

उपोषिता महाभागा जयन्तीमष्टमी शुभाम् ।
तत्रागतोऽसौ वैश्यस्तु यत्र तिष्ठतिसाशुभा ॥२१
संतुष्टचित्तः स तदा हर्षस्तत्रागतो महान् ।
तत्रस्थानेत्वया दृष्टो देवव्रतानिको विधिः ॥२२
आदित्यसहितो यत्र पूज्यते भगवान्हरिः ।
तद्भक्त्या चत्वयापत्न्यासहपुष्पार्चन कृतम् ॥२३
दर्पस्तु प्रकरस्तत्र कृतः पुष्पमयस्तथा ।
स दृष्ट्वा विस्मता साह केनेहाभ्यर्चनं कृतम् ॥२४
ज्ञात्वा तत्कर्म तत्सर्वं कृत सरक्षण तथा ।
ततस्तुष्टा तु सा तुभ्य ददौ वित्त बहुस्वयम् ॥२५
त्वया वित्त नोगृहीतभोजनायानुमन्त्रितः ।
न गृहीत भोजन च न च वित्त त्वया तदा ॥२६
आदित्यो विष्णुसयुक्तः पूजितोऽसौ यथाविधि ।
ततः प्रभातसमये रक्षमाणस्तया सदा ॥२७
विश्रम्भयित्वा तान्सर्वान्निर्गतोऽसि यथेच्छया ।
तदेतदन्यजनुषि सुकृत चार्चित त्वया ॥२८
पञ्चत्वं च त्वया प्राप्तं स्वीयकर्मानुयोगतः ।
तेन पुण्येन महता विमानमागमत्तदा ॥२९
तत्फल भुज्यते भूप ! पूर्वजन्मकृतं च यत् ॥३०

उस महान् भाग्य वाली ने शुभ जयन्ती अष्टमी का उपवास किया था। वहीं पर यह-वैश्य आमया था जहा पर कि वह शुभा स्थित रहती थी ॥२१॥ उस अवसर पर वह सन्तुष्ट चित्त वाला हो गया था और वहा पर उसे महान् हर्ष हुआ था। उस स्थान पर तुमने देव वैतानिक विधान को देखा था ॥२२॥ जहा पर आदित्य के सहित भगवान् श्री हरि का पूजन किया जाता है। उसकी भक्ति के भाव से तुमने अपनी पत्नी के साथ पुष्पो से समर्चन किया था। शेष जो थे उनसे वहा पर एक पुष्पमय प्रकर किया गया था। उसको देखकर अत्यन्त विस्मय युक्त हो गई थी और उसने कहा था कि यह पुष्पो से किसने अर्चन किया है ॥२३-२४॥ उसका वह सब कर्म जान कर उसका भली भाति रक्षण भी किया था। इसके अनन्तर वह बहुत ही सन्तुष्ट हो गई और उसने उसके लिए स्वय बहुत-सा धन दिया था ॥२५॥ आपने वह वित्त ग्रहण नही किया था। भोजन के लिए भी तुमको आमन्त्रित किया था किन्तु तुमने भोजन भी ग्रहण नही किया था और वित्त भी उस समय मे नही स्वीकार किया था ॥२६॥ भगवान् आदित्य का विष्णु भगवान् से सयुक्त विधि पूर्वक पूजन किया था। इसके उपरान्त प्रभात के समय मे उसके द्वारा सदा रक्षमाण रहता था ॥२७॥ उन सबको विप्रम्भित करके अपनी इच्छा के अनुसार निकल गया था। अन्य जन्म मे वह यह सुकृत तुमने अर्जित किया था ॥२८॥ फिर अपने कर्म्मों के अनुयोग से तुमने पञ्चत्व (मृत्यु) की प्राप्ति की थी। उसी महान् पुण्य से उस समय मे विमान आया था ॥२९॥ हे भूप ! पूर्व जन्म म किया हुआ जो सुकृत था उसी का फल इस समय मे आपके द्वारा भोगा जा रहा है ॥३०॥

केनैव च विधानेन कस्मिन्मासे च सा तिथि ।
पत्तंव्या तन्ममाचक्ष्व अनुग्राह्योऽस्मि ते यदि ॥३१
शृणुष्वावहितो राजन्कथ्यमान मया तव ।
श्रावणस्य तु मासस्य कृष्णाष्टम्या नराधिप ! ॥३२

रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ।
भूयो भूयो महाराज ! भवेज्जन्मनि कारणम् ॥३३
विधानमस्या वक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा मम ।
यत्कृत्वामुक्तपापस्तुविष्णुलोकंप्रगच्छति ॥३४
उपोषितस्ततः कृत्वा स्नानं कृष्णतिलैः सह ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥३५

हरिश्चन्द्र ने कहा—यदि मैं आपके द्वारा अनुग्रह करने के योग्य पात्र हूँ तो आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये किस विधि-विधान से, किस मास मे कौनसी वह तिथि है जो करनी चाहिए ॥३१॥ सनत्कुमार ने कहा—हे राजन् ! अब आप खूब सावधान चित्त वाले होकर श्रवण करिये जिसे कि मैं आपको बतलाता हूँ। हे नराधिप ! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में यदि रोहिणी नक्षत्र प्राप्त हो जावे तो वही तिथि जयन्ती मानी जाती है। हे महाराज ! पुनः पुनः जन्म मे कारण होती है ॥३२-३३॥ इसका विधान भी मैं बतलाता हूँ जैसा कि ब्रह्मा जी ने स्वयं मुझ से कहा था। इसके करने का बड़ा महान् पुण्य होता है और इसको करके समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और इसके करने वाला सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ॥३४॥ उस दिन उपवास करे और काले तिलों के सहित जल से स्नान करना चाहिए। फिर एक घट की स्थापना करे जो घट व्रण रहित होना चाहिए। उसमे पाच रत्न भी प्रक्षिप्त करने चाहिए ॥३५॥

क्षीरादिस्नपनं कृत्वा चन्दनेनानुलेपयेत् ।
श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं पुष्पमालोपशोभितम् ॥३६
नैवेद्यैर्विविधैर्भक्ष्यैः फलैर्नानाविधैरपि ।
दीपं च कारयेत्तत्र पुष्पमण्डपशोभितम् ॥३७
गीतं नृत्यं च वाद्यं चकारयेद्भक्तिमान्बुधैः ।
एवं कृत्वा विधानं तु यथाविभवसारतः ।
गुरुं संपूजयेत्पश्चात्पूजां तत्र समापयेत् ॥३८

फिर क्षीरादि से स्नपन करके चन्दन से अनुलेपन करे और अंगुष्ठ मात्र शशी तथा अंगुल की रोहिणी निर्मित करके जगत् के पति गोविन्द का स्नपनादि करे। श्वेत वस्त्र के जोड़े से आच्छन्न करे तथा पुष्पों की मालाओं से उपशोभित करना चाहिए ॥३६॥ विविध भांति के नैवेद्यों के द्वारा एवं भक्ष फलों के द्वारा जो कि अनेक तरह के हों अर्चन करे। दीपक बनावे जो कि पुष्प मण्डल से सुशोभित हो ॥३७॥ वृद्ध पुरुषों के सहित भक्तिमान् पुरुष को गीत–नृत्य और वाद्य आदि सब कराना चाहिए। अपने विभव के अनुसार इस प्रकार से यह सम्पूर्ण विधान सम्पन्न करना चाहिए। फिर अपने श्री गुरु चरण की पूजा करे और वहाँ पर व्रत का समापन करना चाहिए ॥३८॥

॥ शनि पीड़ा निवारण विधान ॥

शनिपीडा कथं याति तन्मे वद सुरोत्तम।
त्वन्मुखाच्छ्रूयते यद्वै तेन जन्तुः प्रमुच्यते ॥१
देवर्षे ! श्रृणु वृत्तान्तं येन मुच्येत बन्धनात्।
ग्रहाणां ग्रहराजोऽयं सौरिः सर्वमहेश्वरः ॥२
अयं तु देवो विख्यातः कालरूपी महाग्रहः।
जटिलो वज्ररोमा च दानवानां भयङ्करः ॥३
तस्याख्यानं च लोकेऽस्मिन्प्रथितं नास्ति वै प्रभो !।
मया गुप्तं विशेषेण नोक्तं हि कस्यचित्कदा ॥४
रघुवंशेऽति विख्यातो राजा दशरथः पुरा।
चक्रवर्ती महावीरः सप्तद्वीपाधिपोऽभवत् ॥५
कृत्तिकान्ते शनिं ज्ञात्वा दैवज्ञैर्ज्ञापितो हि सः।
रोहिणीं भेदयित्वा च शनिर्यास्यति साम्प्रतम् ॥६
शाकटं भेदमत्युग्रं सुरासुरभयङ्करम्।
द्वादशाब्दं तु दुर्भिक्षं भविष्यति सुदारुणम् ॥७

नारद जी ने कहा—हे सुरोत्तम ! शनिदेव की पीड़ा कैसे जाती है—यह आप मुझे बतलाइये। आपके मुख से जो भी सुना जाता है

उससे जन्तु की प्रमुक्ति हो जाया करती है। महादेव जी ने कहा—हे देवर्षिप्रवर ! आप मुझसे वृत्तान्त सुनिये । यह ऐसा वृत्तान्त है कि मनुष्य इसके श्रवण करने से बन्धन से मुक्त हो जाया करता है। यह समस्त ग्रहों का राजा है । यह सूर्य का पुत्र है और सर्व महेश्वर है ॥१-२॥ यह देव कालरूप वाला महाग्रह संसार में विख्यात है। यह जटिल अर्थात् जटाधारी है और वज्र के तुल्य रोमों वाला एवं दानवों को भी महान् भयंकर है ॥३॥ हे प्रभो ! इस लोक में उसका आख्यान प्रसिद्ध नहीं है। मैंने इसे विशेष रूप से गोपनीय रक्खा है और कभी भी किसी से इसको नहीं कहा है ॥४॥ पहिले रघु महाराज के वंश में दशरथ नाम धारी राजा बहुत ही विख्यात हुए थे। वह राजा चक्रवर्ती—महान् पराक्रमी और सात द्वीपों के अधिपति हुए थे ॥५॥ कृत्तिकान्त में शनि को जान कर दैवज्ञ लोगों ने इसे जनाया था वह शनि रोहिणी का भेदन करके अब जाया करता है ॥६॥ शाकट भेद अत्यन्त ही उग्र है जोकि सुर तथा असुर सभी के लिए बड़ा ही भयंकर होता है। बारह वर्ष तक बहुत ही दारुण दुर्भिक्ष उसमें हुआ करता है ॥७॥

एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं मन्त्रिभिः सह पार्थिवः ।
मन्त्रयामास किमिदं भयङ्करमुपस्थितम् ॥८
आकुलं च जगद्दृष्ट्वा पौरजानपदादिकम् ।
ब्रुवन्ति सर्वतो लोकाः क्षय एष समागतः ॥९
देशाः सनगरा ग्रामा भयभीताः समन्ततः ।
पप्रच्छप्रयतो राजा वसिष्ठप्रमुखान्द्विजान् ॥१०
सम्विधानं किमत्रास्ति ब्रूत मां हि द्विजोत्तमाः ! ॥११
प्राजापत्यमृक्षमिदं तस्मिन्भिन्ने कुतः प्रजाः ।
अयं योगो ह्यसाध्यस्तु ब्रह्मशक्रादिभिस्तथा ॥१२
इति संचिन्त्य मनसा साहसं परमं महत् ।
समादाय धनुर्दिव्यं दिव्यायुधसमन्वितम् ॥१३

रथमारुह्य वेगेन गतो नक्षत्रमण्डलम् ।
सपादं योजनं लक्षं सूर्यस्योपरि संस्थितम् ॥१४

यह वाक्य श्रवण करके मन्त्रियों के सहित राजा ने मन्त्रणा की थी कि यह क्या भयंकर स्थिति उपस्थित होगयी है ॥८॥ समस्त जगत् और पौर जानपद आदि को अत्यन्त आकुल देखकर सब लोग यही कहते थे कि यह तो क्षय होने का समय आगया है ॥९॥ समस्त देश और नगर तथा ग्राम चारों ओर से भयभीत हो गये थे। राजा ने बहुत प्रयत होकर वसिष्ठ आदि परम प्रमुख द्विजों से पूछा था कि हे द्विजोत्तम ! इसमें क्या सम्विधान है उसे मुझे बतलाइये ॥१०-११॥ वसिष्ठ जी ने कहा—यह तो प्राजापत्य ऋक्ष है। इसके भिन्न हो जाने पर प्रजा कहां रह सकती है। यह योग्य बड़ा असाध्य है, ब्रह्मा और शक्र आदि भी इसे साध्य नहीं कर सकते हैं ॥१२॥ यह भली भांति चिन्तन करके परम महान् साहस बटोर कर दिव्य आयुध से युक्त धनुष लेकर वेग के साथ रथ पर समारूढ होकर नक्षत्र मण्डल में पहुंचे जो कि सूर्य के भी ऊपर सवा लक्ष योजन पर संस्थित है ॥१३-१४॥

रोहिणीपृष्ठमास्थाय राजा दशरथः पुरा ।
रथे तु काञ्चने दिव्ये मणिरत्नविभूषिते ॥१५
हंसवर्णहयैर्युक्ते महाकेतुसमुच्छ्रये ।
दीप्यमानो महारत्नैः किरीटमुकुटोज्ज्वलः ॥१६
बभ्राज स तदाऽऽकाशे द्वितीय इव भास्करः ।
आकर्णपूर्णचापे तु संहारास्त्र न्ययोजयत् ॥१७
संहारास्त्रं शनिर्दृष्ट्वा सुरासुरभयङ्करम् ।
हसित्वा तद्भयात्सौरिरिद वचनमब्रवीत् ॥१८
पौरुषं तव राजेन्द्र परं रिपुभयङ्करम् ।
देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ॥१९
मया विलोकिता राजन्भस्मसाच्च भवन्तिते ।
तुष्टोऽहतव राजेन्द्र तपसा पौरुषेणच ।
वरं ब्रूहि प्रदास्यामि मनसा यत्त्विमिच्छसि ॥२०

रोहिणी के पृष्ठ पर समास्थित होकर महाराज दशरथ प्राचीन काल मे बहुत पहिले मणियो और रत्नो से सुशोभित काञ्चन दिव्य रथ मे विराजमान थे ॥१५॥ वह रथ हस के तुल्य श्वेत वर्ण वाले अश्वो से युक्त था और उस पर एक बहुत बडा झण्डा लगा हुआ था जिससे उसकी ऊँचाई अधिक हो रही थी। महान् मूल्यवान रत्नो से देदीप्यमान होने वाले तथा किरीट और मुकुट से समुज्ज्वल महाराज दशरथ उस समय मे आकाश मे द्वितीय सूर्य की भाँति ही भ्राजमान हो रहे थे। कर्ण पर्यन्त पूरा खिंचा हुआ जो चाप था उस पर उन्होने महारास्त्र को नियोजित किया था ॥१६-१७॥ सुरो तथा असुरो सब को महान् भय करने वाले उस महारास्त्र को देख कर शनि ने हँस कर उसके भय से सौरि अर्थात् शनि ने यह वचन कहा था—॥१८॥ शनि बोला—हे राजेन्द्र! आप का पौरुष आपके शत्रुओ के लिये परम भयकर है। देव-असुर और मनुष्य तथा सिद्ध–विद्याधर और उरग ये सब हे राजन्! भस्म के तुल्य होते हुए मैंने देखे हैं। हे राजेन्द्र! मैं आपसे बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूँ क्योकि आपका तप महान् है और आप मे पुरुषार्थ भी अत्यधिक है। अब आप वरदान माँगलो, जो भी कुछ आपके मन मे अभीष्टतम हो, मैं उसे देता हूँ। अब आप चाहते क्या हैं? ॥१९-२०॥

रोहिणी भेदयित्वा तु न गन्तव्य कदाचन।
सरित. सागरा यावद्यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥२१
याचित तु मया सौरे! नान्यमिच्छामि ते वरम्।
एवमस्तु शनि प्राह वरं दत्त्वा तु शाश्वतम् ॥२२
पुनरेवाब्रवीत्तुष्टो वर वरय सुव्रत!।
प्रार्थयामास हृष्टात्मा वरमन्य शनेस्तदा ॥२३
न भेत्तव्य हि शकट त्वया भास्करनन्दन।
द्वादशाव्दतु दुर्भिक्ष न कर्तव्य कदाचन ॥२४
द्वादशाब्द वृ दुर्भिक्ष न कदाचिद्भविष्यति।
कीर्तिरेपा त्वदीया च त्रैलोक्येविचरिष्यति ॥२५

वरद्वयं तु सम्प्राप्य हृष्टरोमा च पार्थिव. ।
रथोपरि धनुर्मुक्त्वा भूत्वा चैव कृताञ्जलिः ॥२६
ध्यात्वा सरस्वती देवीं गणनाथ विनायकम् ।
राजा दशरथ स्तोत्र सौरेरिदमथाब्रवीत् ॥२७

महाराज दशरथ ■ कहा—देखो, प्रथम तो यही बात है कि आपको रोहिणी का भेदन करके किसी भी समय मे नही जाना चाहिए । सरिद्गण—सागर और जहाँ तक चन्द्र एव सूर्य तथा मदिनी है ॥२१॥ हे सौरे ! यही मैं याचना करता हूँ इसके अतिरिक्त मुझे अन्य आपका कोई वरदान नही अभीष्ट है । उस समय म शनि ने कहा—"एवमस्तु"—अर्थात् ऐसा ही होगा । यही शाश्वत वरदान प्रदान कर फिर भी शनि ने कहा था कि मैं बहुत तुष्ट हूँ हे सुव्रत ! अन्य कोई वरदान का वरण करो । उस समय मे शनि ने अन्य वरदान की याचना करने के लिये प्रसन्नचित्त होकर महाराज दशरथ से प्रार्थना की थी ॥२२-२३॥ फिर दशरथ ने कहा—हे भास्कर नन्दन ! आपको कभी भी शकट का भेदन नही करना चाहिए । बारह वर्ष पर्यन्त ऐसा भयानक दुर्भिक्ष (अकाल) कभी नही करना चाहिए ॥२४॥ शनि ने कहा—बारह वर्ष तक का दुर्भिक्ष तो कभी नही होगा और यह कीर्त्ति आपकी त्रिभुवन मे विचरण करेगी ॥२५॥ इस प्रकार से ये दो वरदान सम्प्राप्त करके राजा बहुत ही प्रसन्न हुए थे और फिर रथ पर आरूढ होकर धनुष को उतार कर कृताञ्जलि हो गये थे । राजा ने देवी सरस्वती का ध्यान करके तथा गणो के नायक गणेश का ध्यान करके राजा दशरथ ने शनि का यह स्तोत्र कहा था ॥२६-२७॥

नम कृष्णाय नीलाय शितिकण्ठनिभाय च ।
नम कालाग्निरूपाय कृतान्ताय च वै नम ॥२८
नमो निर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटाय च ।
नमो विशालनेत्राय शुष्कोदर भयाकृते ॥२९
नम पुष्कलगात्राय स्थूलरोम्णेऽथ वै नम ।
नमो दीर्घायशुष्काय कालदंष्ट्र नमोऽस्तुते ॥३०

नमस्ते कोटराक्षाय दुर्निरीक्ष्याय वै नमः ।
नमो घोराय रौद्राय भीषणाय कपालिने ।।३१
नमस्ते सर्वभक्षाय वलीमुख नमोऽस्तु ते ।
सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु भास्करे भयदाय च ।।३२
अधोदृष्टे ! नमस्तेऽस्तु संवर्तक ! नमोऽस्तु ते ।
नमो मन्दगते ! तुभ्यं निस्त्रिंशाय नमोऽस्तु ते ।।३३
तपसा दग्धदेहाय नित्यं योगरताय च ।
नमो नित्यं क्षुधार्ताय अतृप्ताय च वै नमः ।।३४
ज्ञानचक्षुर्नमस्तेऽस्तु कश्यपात्मजसूनवे ।
तुष्टो ददासि वै राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात् ।।३५

महाराज दशरथ ने कहा—कृष्ण वर्ण वाले—नील वर्ण से युक्त, शितिकण्ठ के तुल्य—कालाग्नि के स्वरूप वाले और कृतान्त के लिये बारम्बार नमस्कार है ।।२८।। बिना मांस वाले देह से युक्त के लिये नमस्कार है । दीर्घ दाढ़ी-मूंछ और जटा धारण करने वाले के लिये नमस्कार है । विशाल नेत्रों से समन्वित और शुष्क उदर तथा भयप्रद आकृति वाले के लिये नमस्कार है ।।२६।। पुष्कल गात्र के लिये प्रणाम है । या स्थूल रोमों वाले के लिये नमस्कार है । दीर्घ-शुष्क तथा काल की दाढ़ के सदृश के लिये हमारा प्रणाम है । कोटर के तुल्य नेत्रों वाले के लिये और बड़ी कठिनाई से निरीक्षण करने के योग्य आपके लिये प्रणाम है । परमघोर—रौद्र—भीषण तथा कपाल धारी के लिये नमस्कार है । सभी कुछ भक्षण करने वाले के लिये हे बली मुख ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे सूर्य पुत्र ! भास्कर को भी भय देने वाले आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ।।३०-३२।। हे अधोदृष्टे ! हे संवर्तक ! आपके लिये हमारा प्रणाम है । हे मन्दगति वाले ! निस्त्रिंश आपके लिये हमारा प्रणाम है ।।३३।। तपश्चर्या से अपने देह को दग्ध कर देने और नित्य ही योग में रत रहने वाले आपकी सेवा में हमारा नित्य प्रणाम है । क्षुधा से आर्त्त और अतृप्त आपके लिये हमारा नमस्कार है ।।३४।। ज्ञान की चक्षु वाले आपके लिये नमस्कार है । कश्यप महर्षि

के आत्मज सार्य के पुत्र आपकी सेवा में हमारा प्रणाम है। आप यदि किसी मनुष्य पर परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो जाया करते हैं तो आप राज्य जैसा महान् अतुल वैभव प्रदान कर दिया करते हैं और यदि आप किसी भी व्यक्ति से रुष्ट हो जाते हैं तो राज्य के वैभव को भी तत्क्षण में ही अपहरण कर उसे नष्ट-भ्रष्ट ही कर दिया करते हैं ॥३५॥

देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ।
त्वयाविलोकिताःसर्वे नाशं यान्ति समूलतः ॥३६
प्रसादं कुरु मे देव वरार्होऽहमुपागतः ।
एवं स्तुतस्तदा सौरिग्रहराजो महाबलः ॥३७
अब्रवीच्च पुनर्वाक्यं हृष्टरोमा तु भास्करिः ।
तुष्टोऽहं तव राजेन्द्र स्तवेनानेन सुव्रत ।
वरं ब्रूहि प्रदास्यामि स्वेच्छया रघुनन्दन ! ॥३८
अद्यप्रभृति ते सौरे पीडाकार्या न कस्यचित् ।
देवासुरमनुष्याणां पशुपक्षिसरीसृपाम् ॥३९
गृह्णन्तीत ग्रहाःसर्वेग्रहाःपीडाकराःस्मृताः ।
अदेयंयाचितं राजन्किंचिद्युक्तं ददाम्यहम् ॥४०
त्वया प्रोक्तमिदं स्तोत्रं यः पठिष्यति मानवः ।
एककालं द्विकालं वा पीडामुक्तो भवेत्क्षणात् ॥४१
देवासुरमनुष्याणां सिद्धविद्याधररक्षसाम् ।
मृत्युं मृत्युगतो दद्यां जन्मन्यन्ते चतुर्थके ॥४२

हे शनि देव ! देव हों या असुर तथा मनुष्य हों, सिद्ध हों अथवा विद्याधर तथा उरग हों कोई भी क्यों न हों, यदि आपकी दृष्टि उन पर पड़ गई अर्थात् बुरी दृष्टि से आपने उन्हें देख लिया तो वे सब मूल के सहित नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥३६॥ हे देव ! आप मुझ पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करिये। मैं तो आपके वरदान प्रदान करने के योग्य पात्र हूँ और आपकी सेवा में समुपस्थित हो गया हूँ। इस प्रकार से स्तुति किया गया उस समय में सौरि (शनि) जो कि ग्रहों का राजा और महान् बलवान थे अत्यन्त प्रसन्न होकर भास्कर के पुत्र ने पुनः वाक्य

कहा—हे राजेन्द्र ! मैं आपसे बहुत ही सन्तुष्ट हो गया हूँ। हे सुव्रत ! आपके इस स्तव से मुझे परम प्रसन्नता हुई है। अब आप वरदान माँग लो। हे रघुनन्दन ! जो भी आपकी इच्छा हो मुझ से याचना कर सकते है, मैं अवश्य ही प्रदान कर दूंगा ॥३७-३८॥ महाराज दशरथ ने कहा—हे सौरे ! आज से लेकर आपको किसी भी व्यक्ति को पीड़ा नही देनी चाहिए चाहे कोई देवता हो, असुर हो, मनुष्य हो, पशु-पक्षी और सरीसृप हो ॥३९॥ शनि ने कहा—ग्रह शब्द का अर्थ ही यह होता है कि जो ग्रहण किया करते हैं वे ही ग्रह कहलाते हैं। समस्त ग्रह पीडा के करने वाले ही हुआ करते हैं। हे राजन् ! आपने जो भी अदेय है वही माँगा है। इसमे जो किञ्चित् युक्त है उसी को मैं बोलता हू ॥४०॥ आपके द्वारा पढा हुआ यह स्तोत्र जो भी मानव पढ़ेगा। एक बार या दिन मे दो बार जो इसका पाठ करेगा वह मनुष्य उसी क्षण मे पीडा से मुक्त हो जायगा ॥४१॥ देव-असुर-मनुष्य-सिद्ध-विद्याधर-और राक्षसो को जन्म मे, चतुर्थ मे, अन्त में होने पर मृत्युगत होकर मृत्यु देता हू ॥४२॥

यः पुनः श्रद्धयायुक्तः शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
शमीपत्रैः समभ्यर्च्य प्रतिमा लोहजा मम ॥४३
मापौदनतिलैर्मिश्र दद्याल्लोह च दक्षिणाम् ।
कृष्णा गा वृषभ वाऽपि यो वै दद्यात् द्विजातये ॥४४
मद्दिने तु विशेषेण स्तोत्रेणानेन पूजयेत् ।
पूजयित्वा जपेत्स्तोत्रं भूत्वाचैव कृताञ्जलिः ॥४५
तस्य पीडा न चैवाह करिष्यामि कदाचन ।
गोचरे जन्मलग्ने वा दशास्वन्तर्दशासु च ॥४६
रक्षामि सतत तस्य पीडाचापि ग्रहस्य च ।
अनेनैव विधानेन पीडामुक्तं जगद्भवेत् ॥४७
एव युक्त्या मया दत्ते वरस्ते रघुनन्दन ।
वरत्रय तु संप्राप्य राजा दशरथस्तदा ॥४८
मेने कृतार्थमात्मानं नमस्कृत्य शनैश्चरम् ।
शनिना चाभ्यनुज्ञातो रथमारुह्य वेगवान् ॥४९

जो भी फिर श्रद्धा से युक्त पवित्र होकर परम सावधान होता हुआ मेरी लौह की मूर्ति बनवा कर शमी के पत्तों से समभ्यर्चन करता है ॥४३॥ उर्द-ओदन और तिलों से मिश्रित लोहे की जो दक्षिणा देता है। काली गाय-वृषभ को जो कोई ब्राह्मण को दान देता है ॥४४॥ मेरे दिन मे अर्थात् शनिवार के दिन विशेष रूप से इस आपके द्वारा पढ़े हुए स्तोत्र से मेरी पूजा करनी चाहिए। पूजा करके फिर इस स्तोत्र का जाप करे और फिर कृताञ्जलि होवे ॥४५॥ इस प्रकार से पूजा करने वाले व्यक्ति को मैं कभी भी उत्पीडित नही किया करता हूँ। गोचर मे अथवा जन्म लग्न मे, दशा मे अथवा अन्तर्दशा मे मैं सर्वदा रक्षा किया करता हूँ और अन्य ग्रह की पीडा से भी रक्षा किया करता हूँ। इसी विधान से यह जगत पीडा से मुक्त होता है ॥४६-४७॥ हे रघुनन्दन। इस प्रकार से मैंने आपको वरदान दिया है। इस तरह से तीन वरदान प्राप्त करके राजा दशरथ ने उस समय मे अपने आपको कृतार्थ माना था। फिर शनि देव को नमस्कार करके शनि के द्वारा अभ्यनुज्ञात होकर वेग से युक्त रथ पर समारूढ हो गये थे ॥४८-४९॥

स्वस्थानं गतवान्राजा प्राप्तश्रेयोऽभवत्तदा।
य इदं प्रातरुत्थाय शनिवारे स्तवं पठेत् ॥५०
पठमानमिदंस्तोत्रं श्रद्धयायः शृणोति च।
नरः स मुच्यते पापात्स्वर्गलोके महीयते ॥५१
राज्ञा दशरथेनोक्तं शनेःस्तोत्रं च शारदम्।
परमायुष्करं वल्य सर्वपीडाविनाशनम् ॥५२
कान्तिदं पुत्रदं चैव ग्रहशान्तिकरं परम्।
ईदृशं नास्ति लोकेऽस्मिन्पावनं भुवि दुर्लभम् ॥५३
वृद्धाल्ये नगरे रम्ये तत्र तीर्थं ह्यनुत्तमम्।
श्रावणेमासि गन्तव्यं तस्मिंस्तीर्थे ह्यनुत्तमे ॥५४
वसन्ति ब्राह्मणा यत्र वृद्धाख्य च पुरं महत्।
शनेः सरोवरं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥५५

रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ।
भूयो भूयो महाराज ! भवेज्जन्मनि कारणम् ॥३३
विधानमस्या वक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा मम ।
यत्कृत्वामुक्तपापस्तुविष्णुलोकप्रगच्छति ॥३४
उपोषितस्ततः कृत्वा स्नानं कृष्णतिलैः सह ।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥३५

हरिश्चन्द्र ने कहा—यदि मैं आपके द्वारा अनुग्रह करने के योग्य पात्र हूँ तो आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये किस विधि-विधान से, किस मास मे कौनसी वह तिथि है जो करनी चाहिए ॥३१॥ सनत्कुमार ने कहा—हे राजन् ! अब आप खूब सावधान चित्त वाले होकर श्रवण करिये जिसे कि मैं आपको बतलाता हूँ। हे नराधिप ! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि मे यदि रोहिणी नक्षत्र प्राप्त हो जावे तो वही तिथि जयन्ती मानी जाती है। हे महाराज ! पुनः पुन जन्म मे कारण होती है ॥३२-३३॥ इसका विधान भी मैं बतलाता हूँ जैसा कि ब्रह्मा जी ने स्वयं मुझ से कहा था। इसके करने का बडा महान् पुण्य होता है और इसको करके समस्त पापो से मुक्त हो जाता है और इसके करने वाला सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ॥३४॥ उस दिन उपवास करे और काले तिलो के सहित जल से स्नान करना चाहिए। फिर एक घट की स्थापना करे जो घट व्रण रहित होना चाहिए। उसमे पाच रत्न भी प्रक्षिप्त करने चाहिए ॥३५॥

क्षीरादिस्नपन कृत्वा चन्दनेनानुलेपयेत् ।
श्वेतवस्त्रयुगच्छन्न पुष्पमालोपशोभितम् ॥३६
नैवेद्यैं विविधैर्भक्ष्यैः फलैर्नानाविधैरपि ।
दीप च कारयेत्तत्र पुष्पमण्डपशोभितम् ॥३७
गीत नृत्यं च वाद्यं चकारयेद्भक्तिमान्बुधः ।
एव कृत्वा विधान तु यथाविभवसारतः ।
गुरुं सपूजयेत्पश्चात्पूजा तत्र समापयेत् ॥३८

तत्र गत्वा नरश्रेष्ठ स्नानंचैव समाचरेत् ।
ग्रहपीडा विनश्यन्ति इत्येव ब्रह्मणो वचः ॥५६
चतुरशीतिसहस्राणि तीर्थानि तत्र वा ऋपे ।
नगरं वृद्धसञ्ज्ञं तु कथितं ब्रह्मसूनवे ॥५७
महेशेनैव रचितं यत्र तीर्थं तु वर्तते ॥५८

उस समय मे राजा दशरथ श्रेय प्राप्त करके अपने स्थान पर चले गये थे। इस कथा को जो मनुष्य शनिवार के दिन प्रात.काल से ही उठ कर पढता है तथा स्तव का पाठ करता है या पढे हुए इस स्तव को जो श्रद्धाभाव से श्रवण किया करता है वह मनुष्य पापो से मुक्त हो जाता है और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है ॥५०-५१॥ इस शनि के स्तोत्र को राजा दशरथ ने कहा था। यह शारद परम आयु की वृद्धि करने वाला तथा बल प्रदाता और समस्त पीडाओ के विनाश करने वाला है ॥५२॥ इसका प्रभाव है कि इससे कान्ति तथा पुत्र की प्राप्ति होती है और परम ग्रह-शान्ति करने वाला है। इस प्रकार का अन्य इस लोक मे परम-पावन कोई नहीं है। यह भूलोक मे अत्यन्त दुर्लभ है ॥५३॥ वृद्ध नामक सुरम्य नगर में एक अत्युत्तम तीर्थ है। श्रावण के मास मे उस सर्वश्रेष्ठ तीर्थ मे जाना चाहिए ॥५४॥ जहाँ नगर मे ब्राह्मण जाति के लोग ही निवास किया करते हैं। वह वृद्ध सज्ञा वाला नगर एक महान् नगर है। वहा पर शनि देव का एक परम पवित्र सरोवर है जहा कि सम्पूर्ण प्रकार के पापो का विनाश हो जाया करता है ॥५५॥ हे नर श्रेष्ठ। वहा पहुच कर उस सरोवर मे स्नान करना चाहिए। इससे ग्रह जनित पीडाऐं समूल विनष्ट हो जाया करती हैं—इस प्रकार का ब्रह्माजी का वचन है ॥५६॥ हे ऋषिवर! वहा पर चोरासी हजार तीर्थ हैं। वृद्ध सज्ञ वाला नगर ब्रह्माजी के पुत्र को कहा था। भगवान् महेश ने ही इस तीर्थ की रचना की थी ॥५७-५८॥

॥ विष्णु सहस्र नाम महिमा ॥

ब्राह्मणा वा क्षत्रिया वावैश्या वा गिरिकन्यके ।
शूद्रा वाथ विशेषेण पठन्त्यनुदिनयदि ॥१
धनधान्यसमायुक्ता यान्ति विष्णोः परं पदम् ।
श्लोकं वा श्लोकमर्धं वा पादं पादार्धमेव वा ॥२
पठनान्मोक्षमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ।
विन्यासेन युत देवि विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥३
ये पठन्ति नरश्रेष्ठास्ते यान्ति पदमव्ययम् ।
एककाल द्विकालं वा त्रिकालं वाऽथ यः पठेत् ॥४
किमन्यद्वहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने ।
धनायुर्वर्धते तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुत्रपौत्रास्तथा लक्ष्मी सपद विपुला लभेत् ॥५
किमन्यद् वहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने ।
विष्णोर्नामसहस्रं तु पर निर्वाणदायकम् ॥६
पूजन प्रथमं तस्य कृत येन नरेण तु ।
सपूर्णं पूजिते विष्णौ तस्य पूजा च वार्षिकी ॥७
व्यग्रत्वं च न कर्त्तव्यं पठने तु विशेषतः ।
यदि चेत्क्रियते पाठे ह्यायुर्वित्तं च नश्यति ॥८

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे गिरि कन्यके ! ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय हो, वैश्य हो किम्बा शूद्र हो कोई भी वर्ण वाले क्यों न हो, यदि विष्णु सहस्र नाम का प्रतिदिन जो पाठ किया करते हैं वे इस लोक में धन-धान्य से सुसम्पन्न होकर अन्त मे भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त किया करते हैं। यदि इसका पूर्ण पाठ भी न करके एक ही श्लोक, श्लोक का आधा भाग, एक पाद का भी आधा भाग का पाठ कर लिया करें ॥१-२॥ इसके पाठ करने से जब तक भूतों का सम्प्लव होता है तब तक मोक्ष की प्राप्ति किया करते हैं। हे देवि ! जो लोग इस विष्णु के सहस्र नाम का विन्यास से युक्त पाठ किया करते हैं वे नरो मे परम श्रेष्ठ पुरुष अव्यय पद की प्राप्ति किया करते हैं चाहे एक बार या

दो काल में अथवा तीनों कालों में इसको जो पढ़ता है। उसे इसका पुण्य फल प्राप्त होता है और अवश्य ही होता है ॥३-४॥ सहस्र नाम के पाठ करने वाले पुरुष का धन और आयु दोनों ही बढ़ते हैं और जब तक बढ़ा करते हैं जब तक चौदह इन्द्र होते हैं। वह पुरुष पुत्र-पौत्र, लक्ष्मी और विपुल सम्पत्ति का लाभ होता है ॥५॥ हे वरानने ! अत्यधिक वर्णन करने से क्या लाभ है और बारम्बार कथन से भी क्या प्रयोजन है, सब का साररूप तत्व यही है कि भगवान् विष्णु के नामों का यह सहस्र स्तव परम निर्वाण के प्रदान करने वाला है ॥६॥ जिस मनुष्य ने उनका सर्व प्रथम पूजन किया है। विष्णु के पूजन करने पर सभी का पूर्ण पूजन हो जाया करता है किन्तु उनकी वार्षिकी पूजा होनी चाहिए ॥७॥ सहस्र नाम के पाठ करते समय विशेष रूप से व्यग्रता की जाती है तो उसका विपरीत फल होता है और आयु तथा विद्या का नाश हो जाया करता है ॥८॥

यावन्ति भुवि तीर्थानि जम्बूद्वीपेषु सर्वदा ।
तानि तीर्थानि तत्रैव विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥९
तत्रैव गङ्गा यमुना त्रिवेणी गोदावरी तत्र सरस्वती च ।
सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र यत्र स्थितं नाम सहस्रकं तत् ॥१०
इदं पवित्रं परमं भक्तानां वल्लभं सदा ।
ध्येयं हि दासभावेन भक्तिभावेन चेतसा ॥११
परं सहस्रनामाख्यं ये पठन्ति मनीषिणः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते यान्ति हरिसंनिधौ ॥१२
अरुणोदयकाले तु ये पठन्ति जपन्ति च ।
आयुर्बलं च तेषां श्रीर्वर्धते च दिने: दिने ॥१३
रात्रौ जागरणे प्राप्ते कलौ भागवतो नरः ।
पठनान्मुक्तिमाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१४

इस जम्बूद्वीप मे भूमण्डल मे जितने भी सर्वदा तीर्थ हैं वे सब तीर्थ इस भगवान् के विष्णु के सहस्र नाम मे विद्यमान रहा करते हैं। वहा पर ही भागीरथी गंगा—त्रिवेणी-गोदावरी-यमुना-और सरस्वती आदि

सभी तीर्थ निवास किया करते हैं जहां पर विष्णु का सहस्र नाम स्थित रहता है। अर्थात् सहस्र नाम का पठन-श्रवण होता है ॥८-१०॥ यह परम पवित्र और सर्वदा भक्तगण का प्यारा है। इसका ध्यान दास भाव से तथा भक्ति भाव समन्वित चित्त से करना चाहिए ॥११॥ जो मनीषी लोग इस परमोत्तम सहस्र नाम संज्ञा वाले पुस्तक का पाठ किया करते हैं वे सभी तरह के पापों से छुटकारा पाकर अन्त में श्री हरि की सन्निधि में प्राप्त हुआ करते हैं ॥१२॥ अरुणोदय के समय में जो लोग इसका पाठ तथा जाप किया करते हैं उन लोगों का आयु-बल-श्री दिनोदिन बढ़ा करती हैं ॥१३॥ रात्रि के समय में जागरण करके इस इस कलियुग में जो भागवत मनुष्य इसका पठन किया करता है वह मुक्ति को प्राप्त किया करता है और मुक्ति तब तक रहती है जब तक चौदह इन्द्र अपना शासन काल पूर्ण किया करते हैं ॥१४॥

एकैकेन तु नाम्ना वै हरौ तुलसिकारणात् ।
पूजा सा चैवविज्ञेया कोटियज्ञफलाधिका ॥१५
मार्गे च गच्छमानास्तु ये पठन्ति द्विजातयः ।
न दोषा मार्गजास्तेषा भवन्ति किल पार्वति ! ॥१६
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि माहात्म्य केशवस्य तु ।
ये शृण्वन्ति नरश्रेष्ठास्ते पुण्याः पुण्यरूपिणः ॥१७

भगवान् विष्णु के एक-एक नाम का उच्चारण करके हरि के चरणों में एक-एक तुलसी का दल समर्पित करे। ऐसी जो विष्णु की पूजा होती है वह पूजा कोटि यज्ञों के फल प्रदान करने वाली समझनी चाहिए ॥१५॥ मार्ग में गमन करते हुए जो द्विजाति गण इस का पाठ किया करते हैं उनको मार्ग में होने वाले दोष नहीं होते हैं। हे पार्वति ! यह असंदिग्ध सिद्धान्त समझलो ॥१६॥ हे देवि ! आप श्रवण करो, मैं कहता हूँ कि भगवान् केशव का माहात्म्य कितना विशाल है। जो भी नरश्रेष्ठ इसको सुनते हैं वे परम पुण्य मय एवं साक्षात् पुण्य स्वरूप वाले हैं ॥१७॥

।। श्रीराम रक्षा स्तोत्र ।।

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।
ध्यात्वा वै पुण्डरीकाक्षं श्रीरामं विष्णुमव्ययम् ।।१
पातु मे हृदयं रामः श्रीकण्ठः कण्ठमेव च ।
नाभिं पातु मखत्राता कटिं मे विश्वरक्षकः ।।२
करौ पातु दाशरथिः पादौ मे विश्वरूपधृत् ।
चक्षुषी पातु वै देवस्सीतापतिरनुत्तमः ।।३
शिखां मे पातु विश्वात्मा कर्णौ मे पातु कामदः ।
पार्श्वयोस्तु सुरत्राता कालकोटिदुरासदः ।।४
अनन्तः सर्वदा पातु शरीरं विश्वनायकः ।
जिह्वां मे पातु पापघ्नो लोकशिक्षाप्रवर्त्तकः ।।५
राघवः पातु मे दन्तान्केशाग्रक्षतु केशवः ।
सक्थिनीपातु मे दत्तविजयो नाम विश्वसृक् ।।६

श्री महादेव जी ने कहा—ॐ इस राम रक्षा स्तोत्र के श्री महर्षि विश्वामित्र ऋषि हैं। श्री राम इसके देवता हैं। अनुष्टुप् इसका छन्द है। भगवान् विष्णु के लिये ही इसके जाप का विनियोग किया जाता है। अतसी (अलसी) के पुष्प के समान वर्ण के वस्त्र से समावृत-पुण्डरीक के सदृश नेत्रों वाले—अव्यय (नाशरहित)—अच्युत विष्णु श्रीराम का ध्यान करे ।।१।। श्रीराम मेरे हृदय की रक्षा करें। श्री कण्ठ भगवान् मेरे कण्ठ की सुरक्षा करें। मखो (यज्ञो) के त्राण करने वाले प्रभु मेरी नाभि की रक्षा करें। विश्व की रक्षा करने वाले भगवान् मेरे कटि (कमर) प्रदेश की रक्षा करें ।।२।। दशरथ के पुत्र दाशरथि प्रभु मेरे दोनो करों की रक्षा करें। इस सम्पूर्ण विश्व के रूप को धारण करने वाले प्रभु मेरे दोनो पैरों की रक्षा करने की कृपा करें। सर्वश्रेष्ठ भगवान् सीता के पति मेरे दोनो नेत्रों की सुरक्षा करें ।।३।। विश्व की आत्मा मेरी शिखा की रक्षा करें। कामद प्रभु मेरे दोनो कानों का त्राण करें। सुरों के त्राता पार्श्व भागों की रक्षा करें। जो कि काल-कोटि को दुरासद हैं अर्थात् करोड़ों काल भी जिनको नहीं पा सकते हैं

॥४॥ इस विश्व के नायक भगवान् अनन्त मेरे पूरे शरीर की रक्षा कर। पापो के हनन करने वाले प्रभु मेरी जिह्वा की रक्षा करें। जो कि लोगों को शिक्षा प्रदान करने के लिए ही प्रवृत्ति किया करते हैं ॥५॥ श्रीराघव मेरे दातो की सुरक्षा करें। केशव केशो का त्राण करें दत्तविजय नामक विश्व सृष्टा प्रभु मेरी दोनो सक्थियो की सुरक्षा करें ॥५॥

एता रामबलोपेता रक्षा यो वै पुमान्पठेत् ।
स चिरायु सुखी विद्वान्लभते दिव्यसपदम् ॥७
रक्षा करोति भूतेभ्य सदा रक्षातु वैष्णवी ।
रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति य स्मरेत् ॥८
विमुक्त सनर पापन्मुक्ति प्राप्नोति शाश्वतीम् ।
वसिष्ठेन त्विद प्रोक्त गुरवे विष्णुरूपिणे ॥६
ततो मे ब्रह्मण प्राप्त मयोक्त नारद प्रति ।
नारदेन तु भूलोके प्रापित सुजनेष्विह ॥१०
सुप्त्वा वाथ गृहे वापिमार्गे गच्छन्तएव वा ।
ये पठन्तिनरश्रेष्ठास्ते नरा पुण्यभागिन ॥११

इस श्रीराम के बल से समन्वित रक्षा को जो भी कोई पुरुष पढता है वह चिरकाल की आयु वाला–परम सुख से समायुक्त विद्वान् दिव्य सम्पदा को अवश्य ही प्राप्त किया करता है ॥७॥ वैष्णवी देवी सर्वदा समस्त भूतो से सुरक्षा किया करती है। कोई पुरुष राम–रामभद्र–और रामचन्द्र—इन तीनो नामो का स्मरण किया है ॥८॥ उस मनुष्य को समस्त सासारिक व धनो से छुटकारा पाया हुआ ही समझिये और पापो से मुक्त हुआ ही समझ लेना चाहिए तथा उसने शाश्वती मुक्ति मानो प्राप्त करली है—ऐसा यह महर्षि वसिष्ठ जी ने विष्णु रूपी गुरुजी से कहा था ॥६॥ इसके अनन्तर ब्रह्माजी से मैंने इसे प्राप्त किया था और फिर मैंने देवर्षि नारदजी से इसे बतलाया था। देवर्षि नारदजी का यह कार्य हुआ है कि उन्होंने इसको इस भूर्लोक में श्रेष्ठ सत्पुरुषों मे प्राप्त करा दिया था ॥१०॥ इसके पाठ करने का बडा महान् फल होता है। चाहे इसका पाठ कोई शय्या पर शयन करके किया करे अथवा घर म

स्थित होकर करे किम्वा मार्ग मे कहीं को भी गमन करते हुए इसका पाठ करे, तात्पर्य यह है कि किसी भी दशा मे स्थित होकर इसका पाठ जो मनुष्य किया करते हैं वे परम श्रेष्ठ नर है और वे मनुष्य महान् पुण्य के भागी होते हैं ।।११।।

॥ गंगा माहात्म्य ॥

गङ्गायाश्चैव माहात्म्य पुनर्वद महामते ! ।
यच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे वीतरागा. पुनः पुनः ।
माहात्म्यं कीदृशं चैव तस्याः सर्वेश्वर ! प्रभो ॥१
उत्पत्तिश्च श्रुता पूर्वं महिमा न श्रुतो मया ।
त्वमाद्यः सर्वभूताना त्व देवश्च सनातनः ॥२
वृहस्पति सम बुद्धया शक्रतुल्य पराक्रमम् ।
शरतल्पगत भीष्ममृषयो द्रष्टुमाययुः ॥३
तान्प्रणम्य यथान्याय धर्मपुत्रः सहानुजः ।
पूजयामास विधिज्जगत्पूज्यान्सुतेजसः ॥४
ते पूजिता महात्मान. सुखसीनास्तपोधनाः ।
भीष्माश्रिताः कथाश्चक्रु दिव्यधर्माश्रितास्तथा ॥५
कथान्ते तु ततस्तेषामृषीणा भावितात्मनाम् ।
प्रणम्य शिरसा भीष्म पप्रच्छेदं युधिष्ठिर ॥६
के देशास्तु महापुण्याः के शैलाः केऽपि चाश्रमाः ।
सेव्या धर्मार्थिभिर्नित्यं तन्मे ब्रूहि पितामहः ॥७

जगदम्बा पार्वती ने कहा—हे महामते ! भागीरथी गंगा का माहात्म्य आप एक बार और कहने की कृपा कीजिए जिस का श्रवण करके सब मुनिगण बारम्बार वीतराग हो जाया करते हैं अर्थात् उन्हें पूर्ण निर्वेद हो जाता है। हे सर्वेश्वर प्रभो ! इसका माहात्म्य किस प्रकार का है ? ॥१॥ मैंने इसकी उत्पत्ति के विषय मे सुना है किन्तु इसकी क्या महिमा है इस विषयों मे मैंने कभी भी नहीं सुना है। आप तो सभी देवगणो के तथा भूतगणो के आद्य हैं और आप

सनातन देव हैं। तात्पर्य है कि आप तो सभी कुछ जानते ही हैं।।२।। श्री महादेवजी ने कहा—बुद्धि मे बृहस्पति के तुल्य तथा पराक्रम मे महेन्द्र के सदृश शर शय्या पर शयन करने वाले भीष्म को देखने के लिये सभी ऋषिगण समागत हुए थे ।।३।। न्यायानुकूल उन समस्त समागत ऋषिगण को प्रणाम करके धर्मपुत्र ने अपने छोटे के राहित उन जगत् के बन्दनीय सुन्दर तेज वालो का विधि पूर्वक पूजन किया था ।।४।। वे सब पूजे हुए महान् आत्मा वाले सब तपस्वीगण सुख पूर्वक बैठ गये थे और भीष्म के आश्रय वाली तथा दिव्य धर्म का समाश्रम वाली कथाऐं करने लगे थे ।।५।। उन भावित आत्मा वाले मुनियों की कथा के अवसान मे युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह को शिर के बल प्रणाम करके उनसे पूछा था ।।६।। युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! महान् पुण्यमय देश कौन २ से हैं ? पुण्य शाली शैल कौन २ है और परम पुण्य पूर्ण आश्रम कौन हैं ? जो धर्मार्थियों के द्वारा नित्य ही सेवन करने के योग्य हैं—यही आप अनुकम्पा करके बतलाइये ।।७।।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं नरोत्तमम् !।
शिलोञ्छवृत्तेः संवादसिद्धस्य च युधिष्ठिर ।।८
कश्चित्सिद्धः परिक्रम्य समस्ता पृथिवीमिमाम् ।
उञ्छवृत्तेः शिवे राजन्गृहं प्राप्तो महात्मनः ।।९
आत्मविद्यासुतत्त्वज्ञः सर्वदा सजितेन्द्रियः ।
रागद्वेषपरित्यक्तः कुशलो ज्ञानकर्मसु ।।१०
वैष्णवेषु सदाश्रेष्ठो विष्णुधर्मपरायणः ।
अनिन्दको वैष्णवानां सदाधर्मपरायणः ।।११
योगाभ्यासरतो नित्यं शंखचक्रविधारकः ।
त्रिकालपूजातत्त्वज्ञः श्रीकण्ठेऽनुरतः सदा ।।१२
वेदविद्यासु निपुणो धर्माधर्मविचारकः ।
वेदपाठरतो नित्यं नित्य चातिथिपूजकः ।।१३
सतीर्थमतियुक्तस्तु शिलोञ्छेषु स्थितः सदा ।
चतुर्वेदेषु यद्ध्यान गीत यद्यत्स्वयम्भुवा ।।१४

तत्सर्वं स च जानाति द्विजो विष्णुस्वरूपधृत् ।
नानाधर्मार्थविशदो ह्यव्ययेष्टमतिः सदा ॥१५

भीष्म पितामह ने कहा—हे नरोत्तम युधिष्ठिर इसी के विषय मे यह शिलोञ्छ वृत्ति वाले सिद्ध का सम्वाद है उसके इतिहास को उदाहृत करते हैं—कोई सिद्ध पुरुष थे, वे इस सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके हे राजन् ! खेतो के कट जाने पर बिखरे हुए रह जाने वाले धान्य की बाली को बीन कर अपना जीवन निर्वाह करने वाले महात्मा शिवि के घर मे प्राप्त हो गये थे ॥८-९॥ वह आत्म विद्या मे सुन्दर तत्वो के ज्ञाता—सर्वदा इन्द्रियो पर विजय पाने वाले, राग और द्वेष को त्याग देने वाले—ज्ञान कर्म्मो मे कुशल—वैष्णवो मे सदा श्रेष्ठ—विष्णु के धर्म्म में परायण—वैष्णवो की निन्दा न करने वाला—सदा धर्म मे परायण—योगाभ्यास करने मे रत—नित्य ही शख चक्र का धारण करने वाला—तीनो काल मे पूजा के तत्व को जानने वाला—श्रीकण्ठ मे सदा अनुराग रखने वाला—वेदो की विद्या में निपुण—धर्म तथा अधर्म का विचार रखने वाला—नित्य वेदो के पाठ का व्रत रखने वाला तथा नित्य ही अतिथियो की पूजा करने वाला—सतीर्थ मति से समन्वित और शिलोञ्छ मे स्थित रहने वाला था । चारो वेदो मे जो ध्यान है तथा जो-जो भी स्वयम्भू ने गीत किया है वह उस सभी को विष्णु के स्वरूप को धारण करने वाला द्विज जानता था । वह नाना प्रकार के धर्मार्थ मे विशद था और सदा व्यय न होने वाली अभीष्ट मति से युक्त था ॥१०-१५॥

एकस्मिन्नेव काले तु गतोऽसौ वै शिवेर्गृहम् ।
तं दृष्ट्वा विधिवच्चैव कृत्वाऽऽतिथ्य महामनाः ।
शिबिः पप्रच्छ तं सिद्धं देशाना हितकारणम् ॥१६
के देशाः के जनपदा के शैलाः केऽपि चाश्रमाः ।
पुण्या द्विजवरप्रीत्या मह्यं निर्दिष्टुमर्हसि ॥१७
ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।
पुण्यास्त्रिपथगा येषा मध्ये नित्यं सरिद्वरा ॥१८

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञै स्त्यागेन वा पुनः ।
गतिं तां न लभेज्जन्तुर्गङ्गासंसेव्य या लभेत् ॥१६
स्नातानां तत्र पयसि गाङ्गे ये नियतात्मनाम् ।
तुष्टिर्भवति या पुंसा न सा क्रतुशतैरपि ॥२०
अपहृत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः ।
तथाऽपहृत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलाप्लुतः ॥२१

एक ही काल में यह शिवि के घर में गया था। महामना ने उसको देख कर विधान के साथ उसका आतिथ्य किया था, फिर शिवि ने उस सिद्ध से वेशों के हित का कारण पूछा था ॥१६॥ उञ्छवृत्ति ने कहा—हे द्विजवर! आप प्रीति के साथ मुझ से यह निर्देश करने के योग्य हैं कि कौन से देश—जनपद—शैल और आश्रम परम पुण्यमय हैं? ॥१७॥ सिद्ध ने कहा—वे ही देश—जनपद—शैल और आश्रम पुण्यमय हैं जिनके मध्य में त्रिपथगामिनी गंगा जो समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ है, रहा करती है ॥१८॥ तपश्चर्या से—ब्रह्मचर्य व्रत के परिपालन से—यज्ञों से और त्याग से जन्तु उस गति को प्राप्त नहीं किया करता है जो गङ्गा का भली-भाँति सेवन करके प्राप्त किया करता है ॥१६॥ गङ्गा के जल में स्नान किये हुए नियत आत्मा वाले पुरुषों की जो तुष्टि होती है वह सौ क्रतुओं से भी नहीं होती है ॥२०॥ उदयकाल में तीव्र तम का अपहरण करके जिस तरह रवि शोभा पाता है उसी भाँति गङ्गा जल में आप्लवन किया हुआ मनुष्य अपने पाप का अपहरण करके शोभित हुआ करता है ॥२१॥

अग्निंप्राप्य यथा विप्र तूलराशिर्विनश्यति ।
तथा गङ्गावगाहश्च सर्वं पापं व्यपोहति ॥२२
यस्तु सूर्यांशु संतप्तं गाङ्गेयं सलिलं पिबेत् ।
सद्यो नीहारनिर्मुक्त पावकाद्धि विशिष्यते ॥२३
चान्द्रायणसहस्रं तु चरेद्यो नियतः पुमान् ।
सम्प्लुतश्चापि गङ्गाया यो नरः स विशिष्यते ॥२४
लम्बेताधःशिरायस्तु वर्षाणामयुतं नरः ।
मासमेकं तु गङ्गाम्भःसेवते यो नरोत्तमः ॥२५

गङ्गा गङ्गे ति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२६

हे विप्र ! अग्नि का जिस प्रकार से स्पर्श प्राप्त करके तूल (रुई) का ढेर विनष्ट हो जाया करता है उसी भाँति भागीरथी गङ्गा का अवगाहन करना भी सम्पूर्ण पाप का अपोहन कर दिया करता है ॥२२॥ जो कोई पुरुष सूर्यांशु से संतप्त गङ्गा के जल का पान किया करता है वह तुरन्त ही नीहार से निर्मुक्त पावक से भी विशिष्ट हो जाता है ॥२३॥ जो कोई पुरुष नियत होकर एक सहस्र चान्द्रायण व्रतों को करता है और जो गङ्गा मे संप्लुत होता है वह गंगा में स्नान करने वाला मनुष्य चान्द्रायण व्रत करने वाले से अधिक विशिष्ट होता है ॥२४॥ जो नर दस हजार वर्ष तक नीचे की ओर सिर करके लम्बमान होता है उसका पुण्य फल जो होता है उतना ही फल एक मास पर्यन्त गङ्गा जल के सेवन करने वाले मनुष्य को हुआ करता है ॥२५॥ सौ योजन दूर स्थित होकर भी जो 'गंगा-गंगा'—यह बोलता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है और विष्णु लोक को जाया करता है ॥२६॥

दर्शनं माधवस्याथ वटस्य दर्शनं तथा ।
वेण्यां स्नानंप्र कुर्वाणो वैकुण्ठं प्रतिगच्छति ॥२७
उदिते च यथा सूर्ये विलयं याति वै तमः ।
तथैव तस्यां पापानिनश्यन्ति स्नानमात्रतः ॥२८
गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गल्लिके नीलपर्वते ।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥२९
एवं ज्ञात्वा नरश्रेष्ठो गङ्गास्नायी पुनःपुनः ।
स्नानमात्रेण भो राजन्मुच्यते किल्बिषादतः ॥३०
देवानां प्रवरो विष्णुर्यज्ञानां चाश्वमेधकः ।
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां नदी भागीरथी सदा ॥३१

माधव भगवान् का दर्शन—वट का दर्शन और वेणी में स्नान करने वाला मनुष्य सीधा वैकुण्ठ लोक को जाता है ॥२७॥ जिस तरह से सूर्य के उदित होने पर अन्धकार विलीन हो जाता है उसी भाँति उसमें केवल

स्नान भर कर लेने से समस्त पाप विनष्ट हो जाया करते हैं ।।२८।। गंगा द्वार में कुशावर्त्त में—वल्लिक मे—नील पर्वत में और कनखल तीर्थ मे स्नान करके पुनर्जन्म नही होता है ।।२६।। इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करके जो नर श्रेष्ठ पुनः-पुनः गंगा मे स्नान करने वाला होता है । हे राजन् ! स्नान मात्र से किल्विष से मुक्त होता है ।।३०।। सब देवों में प्रवर विष्णु हैं—यज्ञों मे अश्वमेध यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है । समस्त वृक्षों मे अश्वत्थ श्रेष्ठ है और भागीरथी सदा श्रेष्ठ समस्त नदियो में है ।।३१।।

।। वैष्णव लक्षण वर्णन ।।

वैष्णवानां लक्षणं च कीदृशं प्रतिपादितम् ।
महिमा कीदृशश्चैव वद विश्वेश्वर प्रभो ।।१
विष्णोरयं यतःप्रोक्तो ह्यतोवै वैष्णवोमतः ।
सर्वस्यादिस्तु विज्ञेयो ब्रह्मरूपधरस्ततः ।।२
यतःतकाद्यास्सजाता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
ते वैष्णवास्तु विज्ञेया नैवान्ये तु कदाचन ।।३
शौचसत्यक्षान्तियुक्तो रागद्वेषविवर्जिता ।
वेदविद्याविचारज्ञो यः स वैष्णव उच्यते ।।४
अग्निहोत्ररतो नित्य नित्यं चातिथिपूजकः ।
पितृभक्तोमातृभक्तः स वै वैष्णव उच्यते ।।५
दयाधर्मेण संयुक्तास्तथा पापपराङ्मुखः ।
शङ्खचक्राङ्कितो वै स वै वैष्णव उच्यते ।।६
कण्ठे मालाधरो यस्तु मुखे रामं सदोच्चरेत् ।
गानं कुर्यात्सदा भक्त्या स नरो वैष्णवः स्मृतः ।।७

पार्वती ने कहा—हे विश्वेश्वर प्रभो ! वैष्णवों के लक्षण किस प्रकार का प्रतिपादित किया गया है और महिमा किस तरह की है—यही कृपा कर बतलाइये ।।१।। श्री महादेव ने कहा—क्योंकि यह विष्णु का है अतएव इसको वैष्णव मत कहा जाता है । यह सब का आदि और ब्रह्म-

रूप का धारण करने वाले हैं ।।२।। जिसके सकाश से वेदों के पारगामी ब्राह्मण समुत्पन्न हुए हैं वे ही वैष्णव जन समझने चाहिए अन्य कभी भी नहीं हो सकते हैं ।।३।। जो शौच-सत्य और क्षान्ति से युक्त होता है तथा राग-द्वेष आदि दोषों से रहित होता है और वेद-विद्या के विचारों का ज्ञाता है वही वैष्णव कहा जाया करता है ।।४।। जो नित्य ही अग्निहोत्र में रति रखने वाला है तथा नित्य अतिथियों का पूजन किया करता है। जो पिता और माता का भक्त होता है वही पुरुष वैष्णव कहा जाता है ।।५।। जो दया और धर्म से संयुक्त होता है तथा पाप कर्मो से पराङ्मुख होता है। जो शङ्ख और चक्र से युक्त अर्थात् अंकित होता है उसी को वैष्णव नाम से पुकारा जाया करता है ।।६।। जो कण्ठ में माला को धारण किया करता है और जो सर्वदा मुख से श्रीराम के पवित्र नाम का उच्चारण किया करता है एवं सदा भगवत कीर्तन का गायन करता रहता है उसी नर को वैष्णव कहा जाता है ।।७।।

पुराणेपुरता नित्यं यज्ञेपु च रताःसदा ।
ते नरा वैष्णवा ज्ञेयाःसर्वधर्मेषु संमताः ।।८

तेषां निन्दां प्रकुर्वन्ति ये नराःपापकारिणः ।
ते मृतास्तु कुयोनिं वै गच्छन्ति च पुनःपुनः ।।९

गोपालनाम्नी मूर्ति च येऽर्चयन्ति द्विजाः सदा ।
धातुमात्रमयी कृत्वा चतुर्हस्तां सुशोभिताम् ।।१०

पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाःपुण्यभागिनः ।
कृत्वा पापाणजा मूर्ति कृष्णाख्या रूपसुन्दरीम् ।।११

पूजां कुर्वन्ति ये विप्रास्ते ज्ञेयाःपुण्यमूर्तयः ।
शालग्रामशिला यत्र यत्रद्वारावतीशिला ।।१२

उभयोःसंगमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ।
मूर्तिमन्त्रेण संस्थाप्य पूजनं क्रियते यदि ।।१३

तदर्चनं कोटिगुणं धर्मकामार्थं मोक्षदम् ।
नवधा तत्र वै भक्तिःकर्तव्या च जनार्दने ।।१४

अत.पाषाणजामूर्तिस्तथा धातुमयी त्वया ।
तस्या भक्तै.प्रकर्त्तव्य ध्यान पूजनमेव च ॥१५

सदा जो पुराणो मे रति रखने वाले हैं और जो नित्य ही यज्ञो के करने-कराने मे सर्वदा अनुराग रखते हैं, वे ही मनुष्य वैष्णव जानने चाहिए जो समस्त धर्मों मे सम्मत होते हैं ॥८॥ उन वैष्णवों की जो मनुष्य निन्दा किया करते हैं वे महान् पापकारी हुआ करते हैं । वे ही मर कर बुरी योनि मे बारम्बार जाया करते हैं ॥९॥ जो द्विज गोपाल नाम वाली मूर्त्ति का सदा अर्चन किया करते हैं । वह मूर्त्ति धातुमय से निर्मित, चार हाथ प्रमाण वाली और परम शोभित होनी चाहिए ॥१०॥ जो विप्र इस उक्त प्रकार की मूर्ति का अर्चन किया करते हैं उनको परम पुण्य का भागी समझना चाहिए । पाषाण से निर्माण की हुई श्रीकृष्ण की मूर्ति का जो रूप-लावण्य से अति सुन्दर बनाई गई हो ऐसी श्रीकृष्ण की प्रतिमा की भी जो विप्र पूजा करते हैं उन्हे परम पुण्य की मूर्ति मानना चाहिए । जहा पर शालग्राम की शिला हो और जहा द्वारावती की शिला विद्यमान हो अथवा दोनो का सगम जहा पर हो यदि उस मूर्त्ति को मन्त्रो के द्वारा सस्थापित करके पूजन किया जाता है तो वहा पर निश्चित रूप से मुक्ति हो जाया करती है—इसमे रचक मात्र भी सशय नही है ॥११-१३॥ वह अर्चना करोड़ गुण वाली होती है और धर्म-काम-अर्थ तथा मोक्ष के प्रदान करने वाली होती है । वहा पर भगवान् जनार्दन मे नौ प्रकार की भक्ति करनी चाहिए ॥१४॥ इसी लिये आपको पाषाण से निर्माण की हुई अथवा किसी भी उत्तम धातु के द्वारा बनाई हुई मूर्ति का पूजन करना चाहिए और उसी मे भक्तो के द्वारा ध्यान एव पूजन आदि सब कुछ करना चाहिए ॥१५॥

राजोपचारिकी पूजा मूर्तौ तत्र प्रकल्पयेत् ।
सर्वात्मान स्मरेन्नित्य भगवन्तमधोक्षजम् ॥१६
दीनानाथैकशरण लोकाना वृत्तिकारणम् ।
मूर्तौ तत्र स्मरेन्नित्य महापातकनाशनम् ॥१७

गोपालोऽयं तथा कृष्णो रामोऽयमिति च ब्रुवन् ।
पूजां करोति यः सम्यक्स वै भागवतोनरः ॥१८
गोकुले तु यथारूपं धृतं वै केशवेन तु ।
तादृग्रूपं प्रकर्त्तव्यं वैष्णवैर्नरसत्तमैः ॥१९
आत्मसतोषणार्थाय स्वरूप कारयेद् बुधः ।
यतो भक्तिस्तु वहुला जायते नात्रसंशयः ॥२०
शङ्खचक्रगदादीनि विष्णोश्चं वायुधानि च ।
तस्या मूर्तौ विशेषेण कर्त्तव्यानि प्रमाणतः ॥२१

उस मूर्त्ति मे राजा के समान उपचारो वाली पूजा की कल्पना करनी चाहिए । सब की आत्मा एव सर्वान्तर्यामी भगवान् अधोक्षज का नित्य ही स्मरण करे ॥१६॥ दीनो के नाथ और गरीबो की एक मात्र रक्षा करने वाले तथा लोको की वृत्ति के कारण स्वरूप उस मूर्त्ति में महान् पातको के नाश करने वाले प्रभु का नित्य ही स्मरण करना चाहिए ॥१७॥ यह ही गौओ के पालन करते वाले गोपाल हैं तथा साक्षात् श्रीकृष्ण हैं और श्रीराम हैं—ऐसा मुख से बोलते हुए जो भली-भाँति पूजा किया करता है वह ही परम भागवत नर है ॥१८॥ भगवान् केशव ने गोकुल मे जिस प्रकार का रूप धारण किया था वैसा ही उनका स्वरूप बनाना चाहिए अर्थात् उसी प्रकार का शृंगार करे—यही श्रेष्ठ एव परम वैष्णव जनो का कर्त्तव्य होता है ॥१९॥ अपनी आत्मा का जिस तरह से सन्तोष होवे उसी को सम्पादित करने के लिये भगवान् का स्वरूप बनाना चाहिए यही एक बुध पुरुष का कर्त्तव्य है । जिसमें अत्यधिक भक्ति उत्पन्न हो—इस तरह से करने मे भक्ति अधिक हुआ करती है—इसमे कुछ भी संशय नही है ॥२०॥ शङ्ख—चक्र—गदा आदि जो भगवान् विष्णु के आयुध हैं उन्हें उस मूर्त्ति मे प्रमाण के अनुसार विशेष रूप से करे ॥२१॥

चतुर्भुजां द्विनेत्रां च शङ्खचक्रगदाधराम् ।
पीतवासः परीधानां शोभनानां गरीयसीम् ॥२२

वनमालां दधाना तां लसद्वैडूर्यकुण्डलाम् ।
मुकुटेन समायुक्ता कौस्तुभोद्भासिता सदा ।।२३
सौवर्णि चाथ रौप्या वा ताम्रजा चाथ पैत्तलीम् ।
कारयेत्परया भक्त्या वैष्णवैर्द्विजसत्तमैः ।।२४
आगमोक्तैर्वेदमन्त्रैः प्रतिष्ठाप्य विशेषतः ।
पश्चाद्वा अर्चनं कार्यं यथाशास्त्रानुसारतः ।।२५
षोडशोपचारैर्मन्त्रैः पूजनं विधिपूर्वकम् ।
विजिते तु जगन्नाथे सर्वे देवाश्च पूजिताः ।।२६
अतोऽनेन प्रकारेण पूजनीयो महाप्रभुः ।
अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।
सर्वं ददाति सर्वेशो वैष्णवाः पुण्यरूपिणः ।।२७

चार भुजाओं वाली—दो नेत्रों से युक्त और शख–चक्र और गदा को धारण करने वाली—पीताम्बर धारण करने वाली अत्यधिक शोभा से सुसम्पन्न—वनमाला धारिणी—वैडूर्यमणि के निर्मित कुण्डलों से शोभा-मान मुकुट से युक्त तथा सदा कौस्तुभ मणि से युक्त एवं समुद्भासित —सुवर्ण—चाँदी—ताम्र या पीतल की मूर्त्ति का निर्माण परम वैष्णव द्विज श्रेष्ठों को कराना चाहिए ।।२२-२४।। आगम में कथित वेदों के मन्त्रों से विशेष रूप से प्रतिष्ठा करके पीछे शास्त्र के अनुसार अर्चन करना चाहिए ।।२५।। षोडश उपचार वाले मन्त्रों के द्वारा विधान के साथ पूजन करना चाहिए। भगवान् जगन्नाथ के विजित होने पर अर्थात् उनके पूजित हो जाने पर सभी अन्य देव पूजित हो जाया करते हैं ।।२६।। अतएव इसी प्रकार से महाप्रभु का अभ्यर्चन करना चाहिए। यही देव अनादि निधन है अर्थात् इनका न तो आदिकाल है और न इन-का निधन ही होता है। शख–चक्र और गदा इन आयुधों के धारण करने वाले हैं। यह भगवान् सर्वेश्वर हैं और पुण्यरूपी वैष्णवजनों को यह सभी कुछ प्रदान किया करते हैं ।।२७।।

के दासा वैष्णवाः के तु केभक्ता भुविकीर्तिताः ।
तेषां वै लक्षणं ब्रूहि यथार्थं वै महेश्वर ।।२८

शूद्रा भवन्ति वै दासा वैष्णवा नारदादयः ।
प्रह्लादश्चाम्बरीषाद्या भक्तास्ते नगनन्दिनि ॥२६
ब्रह्मक्रियारतो नित्यं वेदवेदाङ्गपाठकः ।
शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥३०
द्विजसेवारतो नित्यं नित्यं विष्णुप्रपूजकः ।
शृणोति बहुधा चैव पुराणं वेदसम्मितम् ॥३१
स शूद्रो हरिदासस्तु इत्युक्तो नगनन्दिनि ।
पञ्चपर्वस्वमाश्रित्य कृता भक्तिरनेकधा ॥३२
स वै भक्त इति प्रोक्तः सर्वं साधुषु संमतः ।
ध्रुवादयस्ते विज्ञेया अम्बरीषादयश्च ये ॥३३
भक्ताश्च मुनिभिः प्रोक्ताः सर्वकालेषु भामिनी ! ।
कलौ धन्यतमा शूद्रा विष्णुध्यानपरायणाः ॥३४
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णुं सनातनम् ।
शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु विष्णुभक्तिप्रकारकः ॥३५
चतुर्विधमहोत्साहकर्त्ता चैव विशेषतः ।
स शूद्रो विष्णुदासस्तु यथादृष्टं यथा श्रुतम् ॥३६

पार्वती ने कहा—कौन से लोग दास और वैष्णव है और कौन लोग भगवान् के ऐसे भक्त हैं जो भूमण्डल में कीर्तित किये जाते हैं ? हे महेश्वर ! उनके यथार्थ लक्षण आप मुझे बतलाने की कृपा कीजिए ॥२८॥ महादेवजी ने कहा—जो शूद्र होते है वे तो दास हुआ करते हैं अर्थात् 'दास'—इस शब्द से समुच्चरित किये जाते हैं। जो नारद आदि हैं वे वैष्णव हैं। हे नगनन्दिनि ! प्रह्लाद और अम्बरीष आदि जो हैं वे भक्त कहे जाते हैं ॥२६॥ ब्रह्म क्रिया में जो रति रखता है और नित्य ही वेदों तथा वेदाङ्ग शास्त्रों का पाठ करने वाला पुरुष है एवं शंख–चक्र के चिन्हों से जो अंकित रहता है वही वैष्णव कहा जाता है ॥३०॥ द्विजगण की सेवा में अनुराग रखने वाला और नित्य ही भगवान् विष्णु का पूजन करने वाला है तथा बहुधा वेदों से सम्मत पुराण का श्रवण किया करता है। हे नगनन्दिनि ! वह शूद्र हरिदास कहा गया है। पाँच

वर्ण का आश्रय ग्रहण करके जिसने अनेक प्रकार से भगवान् की भक्ति की है वही पुरुष "भक्त"—इस नाम से कहा गया है और वह समस्त साधु पुरुषों में सम्मत है। ऐसे भक्त ध्रुव आदि तथा अम्बरीष आदि ही जानने चाहिए ॥३१-३३॥ हे भामिनि ! सब कालों में मुनियों के द्वारा भक्त कहे गये हैं। इस घोर कलियुग में वे शूद्र परम धन्य हैं जो सर्वदा भगवान् विष्णु के ध्यान में परायण रहा करते हैं।।३४।। इस लोक में सुखों का उपभोग करके अन्त में सनातन प्रभु के विष्णु लोक में वे चले जाया करते हैं। जो शंख-चक्र के चिन्हों से अंकित है वह विष्णु की भक्ति के प्रकार वाला होता है ॥३५॥ चार प्रकार के महोत्सव का करने वाला जो विशेष रूप से हुआ करता है वह शूद्र भगवान् विष्णु का दास है जैसा कि देखा गया है और सुना गया है ॥३६॥

॥ सर्वमास-विधि वर्णन ॥

सर्वेषां चैव मासानां विधिं ब्रूहि महेश्वर।
महोत्सवः प्रकर्त्तव्यःको विधिस्तत्र संमतः ।।१
को देवः पूजनं कस्य महिमा कीदृशो भवेत् ।
कस्यां तिथौ प्रकर्त्तव्यं तन्मे वद सुरेश्वर ! ।।२
मासंप्रति किमुक्तं च वैष्णवान्पुण्यकर्मणः ।
धन्याहं कृतकृत्याहं शुभगाहं धरातले ।।३
विष्णोःकथां शृणोमीति दर्शनात्स्पर्शनात्तव ।
उत्सवानां विधिं ब्रूमो मासं प्रति तवानघे ।
मानाकर्ण्य पुनर्देवि गीतवादित्रहर्षिता ।।४
अतःसा वर्वरीत्याख्या माधवस्यातिगर्हिता ।
धात्री तुलस्यंतद्रागात्तस्यप्रीतिप्रदे सदा ।।५
ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु ।
वैकुण्ठमगमद्धृष्टःसवदेव नमस्कृतः ।।६

कार्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ।
तुलसीमूलदेशे तु प्रीतिदा सा यतःस्मृता ॥७-८

पार्वती देवी ने कहा—हे महेश्वर ! समस्त मासों की विधि आप बतलाइये । इनका महोत्सव जो भी करना चाहिए उसका विधान क्या सम्भव है ? ॥१॥ देवता कौन सा है ? किसका पूजन होता है और उसकी महिमा किस प्रकार की है ? हे सुरेश्वर ! किस तिथि में इस महोत्सव को करना चाहिए—इसे मुझको आप बतलाइये ॥२॥ पुण्य कर्मों वाले वैष्णवों को मास के प्रति क्या कहा गया है ? इस धरातल में पार्वतीजी ने कहा—मैं परम धन्य और सुभग तथा कृत कृत्य हूँ जो कि मैं आपके दर्शन और स्पर्शन से भगवान् विष्णु की कथा का श्रवण किया करती हूँ ॥३॥ भगवान् शिव ने कहा—हे अनघे ! मैं आपको मास के प्रति उत्सवों की विधि को बतलाता हूँ । हे देवि ! जिनका श्रवण करके आप पुनः गीत तथा वादित्र से हर्षित होंगी ॥४॥ इसीलिये यह वर्वरी इस नाम वाली माधव की अत्यन्त वल्लभ धात्री है । इसके राग से तुलसी सदा प्रीति प्रदा है ॥५॥ फिर भगवान् विष्णु दुःख को विस्मृत कर देने वाले हैं और उन दोनों के ही साथ समस्त देवों के द्वारा नन्दित होते हुए वैकुण्ठ में गये थे ॥६॥ इसीलिये कार्त्तिक के उद्यापन में विष्णु की पूजा की जाया करती है क्योंकि यह प्रीतिदा तुलसी के मूल देश में कही गयी है ॥७-८॥

तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्यावतिष्ठते ।
तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यमकिङ्कराः ॥९
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ।
रोपयन्ति नरश्रेष्ठा न ते पश्यन्ति भास्करीम् ॥१०
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च ।
तुलसीवनसंसर्गः सममेतत्त्रयं स्मृतम् ॥११
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ।
तुलसी दहते पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥१२

धर्म का आश्रय ग्रहण करके जिसने अनेक प्रकार से भगवान् की भक्ति की है वही पुरुष "भक्त"—इस नाम से कहा गया है और वह समस्त साधु पुरुषों में सम्मत है। ऐसे भक्त ध्रुव आदि तथा अम्बरीष आदि ही जानने चाहिएँ ॥३१-३३॥ हे भामिनि ! सब कालों में मुनियों के द्वारा भक्त कहे गये हैं। इस घोर कलियुग में वे शूद्र परम धन्य हैं जो सर्वदा भगवान् विष्णु के ध्यान में परायण रहा करते हैं ॥३४॥ इस लोक में सुखों का उपभोग करके अन्त में सनातन प्रभु के विष्णु लोक में वे चले जाया करते हैं। जो शंख-चक्र के चिन्हों से अंकित है वह विष्णु की भक्ति के प्रकार वाला होता है ॥३५॥ चार प्रकार के महोत्सव का करने वाला जो विशेष रूप से हुआ करता है वह शूद्र भगवान् विष्णु का दास है जैसा कि देखा गया है और सुना गया है ॥३६॥

॥ सर्वमास-विधि वर्णन ॥

सर्वेषां चैव मासानां विधिं ब्रूहि महेश्वर ।
महोत्सवः प्रकर्त्तव्य.को विधिस्तत्र संमतः ॥१
को देवः पूजनं कस्य महिमा कीदृशो भवेत् ।
कस्यां तिथौ प्रकर्त्तव्यं तन्मे वद सुरेश्वर ! ॥२
मासप्रति किमुक्तं च वैष्णवान्पुण्यकर्मणः ।
धन्याहं कृतकृत्याहं शुभगाहं धरातले ॥३
विष्णो कथा शृणोमीति दर्शनात्स्पर्शनात्तव ।
उत्सवानां विधिं ब्रूमो मासं प्रति तवानघे ।
यानाकर्ण्य पुनर्देवि गीतवादित्रहर्षिता ॥४
अत.सा वर्धरीत्याख्या माधवस्यातिगर्हिता ।
धात्री तुलस्यैतद्रागात्तस्यप्रीतिप्रदे सदा ॥५
ततो विस्मृतदुःखोऽसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु ।
वैकुण्ठमगमद्धृष्टःसवदेव नमस्कृतः ॥६

कार्तिकोद्यापने विष्णोस्तस्मात्पूजा विधीयते ।
तुलसीमूलदेशे तु प्रीतिदा सा यतःस्मृता ।।७ ८

पार्वती देवी ने कहा—हे महेश्वर ! समस्त मासों की विधि आप बतलाइये । इनका महोत्सव जो भी करना चाहिए उसका विधान क्या सम्भव है ? ।।१।। देवता कौन सा है ? किसका पूजन होता है और उसकी महिमा किस प्रकार की है ? हे सुरेश्वर ! किस तिथि में इस महोत्सव को करना चाहिए—इसे मुझको आप बतलाइये ।।२।। पुण्य कर्मों वाले वैष्णवों को मास के प्रति क्या कहा गया है ? इस धरातल में पार्वतीजी ने कहा—मैं परम धन्य और सुभग तथा कृत कृत्य हूँ जो कि मैं आपके दर्शन और स्पर्शन से भगवान् विष्णु की कथा का श्रवण किया करती हूँ ।।३।। भगवान् शिव ने कहा—हे अनघे ! मैं आपको मास के प्रति उत्सवों की विधि को बतलाता हूँ । हे देवि ! जिनका श्रवण करके आप पुनः गीत तथा वादित्र से हर्षित होगी ।।४।। इसीलिये वह बर्बरी दश नाम वाली माधव की अत्यन्त गर्हित धात्री है । इसके राग से तुलसी सदा प्रीति प्रदा है ।।५।। फिर भगवान् विष्णु दुःख को विस्मृत कर देने वाले हैं और उन दोनों के ही साथ समस्त देवों के द्वारा नन्दित होते हुए वैकुण्ठ मे गये थे ।।६।। इसीलिये कार्तिक के उद्यापन में विष्णु की पूजा की जाया करती है क्योंकि वह प्रीतिदा तुलसी के मूल देश मे कही गयी है ।।७-८।।

तुलसीकाननं राजन्गृहे यस्यावतिष्ठते ।
तद्गृहं तीर्थरूपं तु नायान्ति यमकिङ्कराः ।।६
सर्वपापहरं पुण्यं कामदं तुलसीवनम् ।
रोपयन्ति नरश्रेष्ठा न ते पश्यन्ति भास्करीम् ।।१०
दर्शनं नर्मदायास्तु गङ्गास्नानं तथैव च ।
तुलसीवनसंसर्गः सममेतत्त्रयं स्मृतम् ।।११
रोपणात्पालनात्सेकाद्दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ।
तुलसी दहते पापंवाङ्मनःकायसंचितम् ।।१२

तुलसीमञ्जरीभिर्यः कुर्याद्धरिहरार्चनम् ।
न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ॥१३
पुष्करादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वासुदेवादयो देवास्तिष्ठन्ति तुलसीदले ॥१४

हे राजन् ! जिसके घर मे तुलसी का वन उपस्थित है वह सम्पूर्ण घर ही तीर्थरूप है और वहाँ पर कभी भी यमराज के किङ्कर नही आया करते हैं ॥९॥ समस्त प्रकार के पापो का हरण कर देने वाले–पुण्यमय तथा कामनाओ के प्रदान करने वाला तुलसी का वन है। जो श्रेष्ठ पुरुष इस वन का आरोपण किया करते हैं वे भास्करी अर्थात् यमराज के मुख का दर्शन नही किया करते हैं ॥१०॥ नर्मदा नदी के दर्शन, गङ्गा का स्नान और तुलसी–वन का संसर्ग होना ये तीनो समान बताये गये है अर्थात् तीनो का पुण्य-फल समान होता है ॥११॥ तुलसी इसके रोपण करने से—इस तुलसी का पालन करने से—इसके सीचने से–दर्शन से और केवल स्पर्श से मनुष्यो के वाणी—मन और शरीर मे सञ्चित पापो का दाह कर दिया करती है ॥१२॥ तुलसी की मंजरियो के द्वारा जो हरि और हर का अभ्यर्चन किया करता है वह मनुष्य फिर कभी भी गर्भवास का कष्ट नही भोगा करता है। उसकी तो फिर निश्चय ही मुक्ति होती है—इसमे तनिक भी सशय नहीं है ॥१३॥ पुष्कर प्रभृति तीर्थ—गङ्गा आदि पुण्य सरिताऐं और वासुदेव प्रभृति देव इस तुलसी के दल मे स्थित रहा करते हैं ॥१४॥

तुलसीमञ्जरीयुक्तो यदि प्राणान्विमुञ्चति ।
विष्णोः सायुज्यमाप्नोति सत्ये सत्यं नृपोत्तम ॥१५
तुलसीमृत्तिकालिप्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति ।
यमोऽपि नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥१६
तुलसीकाष्ठजं यस्तु चन्दनं धारयेन्नरः ।
तद्देहं नस्पृशेत्पापं क्रियमाणमपीह यत् ॥१७
तुलसीविपिनच्छाया यत्रयत्र भवेन्नृप ।
तत्र श्राद्धं प्रकर्त्तव्यं पितृणां दत्तमक्षयम् ॥१८

धात्रीछायासु यः कुर्यात्पिण्डदानं नृपोत्तम ।
तृप्ति च यान्ति पितरस्तस्य ये नरके स्थिताः ॥१६
मूर्ध्निपाणोमुखेचैव देहे च नृपसत्तम ।
धत्ते धात्रीफलं यस्तु स विज्ञेयो हरिःस्वयम् ॥२०
धात्रीफलं च तुलसी मृत्तिका द्वारकोद्भवा ।
यस्य देहे स्थिता नित्यं स जीवन्मुक्त उच्यते ॥२१

तुलसी की मञ्जरी से समन्वित होता हुआ मनुष्य यदि प्राणों का त्याग किया करता है । हे नृपों में सर्वोत्तम ! वह मनुष्य भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है—यह पूर्णतः सत्य है ॥१५॥ तुलसी जहाँ पर समारोपित हो उस भूमि की मृत्तिका से यदि कोई लिप्त होकर अपने प्राणों का मोचन करता है तो उसका ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि चाहे वह सैकड़ों पापों से युक्त भी क्यों न हो उसको यमराज देख भी नहीं सकता है ॥१६॥ जो मनुष्य तुलसी की लकड़ी से समुद्भूत चन्दन को धारण किया करता है इसका भी ऐसा विचित्र प्रभाव है कि किया हुआ भी पाप उसके शरीर का स्पर्श नहीं किया करता है ॥१७॥ हे नृप ! तुलसी के वन की—छाया जहा-जहा पर होती है वहाँ पर पितृगण का श्राद्ध करना चाहिए क्योंकि ऐसे स्थल में दिया हुआ श्राद्ध अक्षय हुआ करता है ॥१८॥ हे नृपोत्तम ! धात्री की छाया में जो कोई पिण्डदान करता है उसके पितृगण जो नरक में भी स्थित है परम तृप्ति को प्राप्त किया करते हैं ॥१९॥ हे नृप श्रेष्ठ ! मस्तक मे-हाथ में-मुख मे और देह में जो कोई पुरुष धात्री के फल को रखता है उसे स्वयं ही हरि समझना चाहिए ॥२०॥ धात्री फल-तुलसी और द्वारका की समुद्भूत मृत्तिका जिस पुरुष के देह में स्थित है वह नित्य ही जीवन्मुक्त होता है अर्थात् जीवन रखते हुए एक मुक्त आत्मा वाले के तुल्य है ॥२१॥

धात्रीफलविमिश्रैस्तु तुलसीदलमिश्रितैः ।
जलैः स्नाति नरस्तस्य गङ्गास्नानफलं स्मृतम् ॥२२
देवार्चनं नरःकुर्याद्धात्रीपत्रैःफलैरपि ।
सुवर्णपुष्पैर्विविधैरर्चनस्याप्नुयात्फलम् ॥२३

तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाःसर्वेऽपि कार्त्तिके ।
नित्य धात्री समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलाश्रिते ॥२४
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके ।
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ॥२५
धात्रीच्छाया समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ।
अन्नसंसर्गज पापमाब्दं तस्य नश्यन्ति ॥२६
धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्त्तिकेऽर्चयते नरः ।
विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा ॥२७
धात्री तुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः ।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥२८
धात्रीतुलस्युद्भवकारण य.शृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ।
विधूतपाप्मा सह पूर्वजैश्च स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थः ॥२९

धात्री के फलों से विशेष रूप से मिश्रित तथा तुलसी के दलों से मिला हुआ जल से जो कोई भी मानव स्नान किया करता है उसको भागीरथी गङ्गा के स्नान करने का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है। ऐसा कहा गया है ॥२२॥ जो मनुष्य धात्री के पत्रों से तथा फलों के भी द्वारा देवों का अर्चन किया करता है वह अनेक प्रकार के सुवर्ण के निर्मित पुष्पों के द्वारा किये हुए अभ्यर्चन का फल प्राप्त किया करता है ॥२३॥ कार्तिक मास में समस्त देवगण-सब मुनि मण्डल-सब तीर्थ समुदाय और सभी तरह के यज्ञ तुलाश्रित अर्क में अर्थात् तुला राशि में स्थित सूर्य के होने पर ये सब नित्य ही धात्री का समाश्रय लेकर ही स्थित रहा करते हैं ॥२४॥ द्वादशी तीर्थ में तुलसी पत्र और कार्तिक मास में धात्री के पत्र को यदि कोई काटता है तो उसको नरक हुआ करता है और वह अत्यन्त ही गर्हित नरकों में जाकर गिरता है ॥२५॥ धात्री की छाया का समाश्रय लेकर कार्त्तिक मास में जो अन्न को खाता है उसके अन्न के संसर्ग से उत्पन्न होने वाला पाप वर्ष भर तक का नष्ट हो जाया करता है ॥२६॥ कार्तिक मास में धात्री के मूल में जो कोई मनुष्य भगवान् विष्णु का समर्चन किया करता है उससे वह सर्वदा

विष्णु के समस्त क्षेत्रों में पूजित होता है ॥२७॥ धात्री और तुलसी इन दोनों का माहात्म्य अतीव महान् होता है और ऐसा ही है जैसा कि शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाले भगवान् विष्णु का होता है। उसे चार मुखों वाले ब्रह्मा भी वर्णन करने में समर्थ नहीं होते हैं, अन्य की तो बात ही क्या है ॥२८॥ धात्री (आवला) और तुलसी के उद्भव का कारण जो कोई भक्तिभाव से श्रवण करता है और श्रवण कराता है वह समस्त पापों का विधूनन् करके अर्थात् नष्ट करके विशुद्ध हो अपने पूर्वज पुरखाओं के साथ अत्युत्तम विमान में स्थित होकर स्वर्गलोक को चला जाया करता है ॥२९॥

॥ कलहकारिणी की मुक्ति ॥

सेतिहासमिदं ब्रह्मन्माहात्म्यंकथितं त्वया ।
अत्याश्चर्यकरंसम्यक्तुलस्यास्तु श्रुतं महत् ॥१
यद्भूजव्रतिन.पु स.फल महदुदाहृतम् ।
तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं येन चीर्णमिदं कथम् ॥२
आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ।
ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तति विश्रुतः ॥३
विष्णुव्रतकर.शश्वद्विष्णुपूजारतःसदा ।
द्वादशाक्षरविद्याया जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥४
कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ।
रात्र्या तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ॥५
हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा ।
तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमनिःस्वना ॥६
वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्ना रक्तलोचना ।
दिगम्बरा शुष्कमासा लम्बोष्ठी घर्घरस्वना ॥७

राजा पृथु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने इतिहास के सहित माहात्म्य का वर्णन किया है और अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाला तुलसी

तीर्थानि मुनयो देवा यज्ञाःसर्वेऽपि कार्त्तिके ।
नित्यं धात्री समाश्रित्य तिष्ठन्त्यर्के तुलाश्रिते ।।२४
द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं तु कार्तिके ।
लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानतिगर्हितान् ।।२५
धात्रीच्छाया समाश्रित्य कार्त्तिकेऽन्नं भुनक्ति यः ।
अन्नसंसर्गजं पापमावर्षं तस्य नश्यन्ति ।।२६
धात्रीमूले तु यो विष्णुं कार्त्तिकेऽर्चयते नरः ।
विष्णुक्षेत्रेषु सर्वेषु पूजितस्तेन सर्वदा ।।२७
धात्री तुलस्योर्माहात्म्यमपि देवश्चतुर्मुखः ।
न समर्थो भवेद्वक्तुं यथा देवस्य शार्ङ्गिणः ।।२८
धात्रीतुलस्युद्भवकारणं यःशृणोति यः श्रावयते च भक्त्या ।
विधूतपाप्मा सह पूर्वजैश्च स्वर्गं व्रजत्यग्र्यविमानसंस्थः ।।२९

धात्री के फलों से विशेष रूप से मिश्रित तथा तुलसी के दलों से मिला हुआ जल से जो कोई भी मानव स्नान किया करता है उसको भागीरथी गङ्गा के स्नान करने का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है। ऐसा कहा गया है ।।२२।। जो मनुष्य धात्री के पत्रों से तथा फलों के भी द्वारा देवों का अर्चन किया करता है वह अनेक प्रकार के सुवर्ण के निर्मित पुष्पों के द्वारा किये हुए अभ्यर्चन का फल प्राप्त किया करता है ।।२३।। कार्त्तिक मास में समस्त देवगण-सब मुनि मण्डल-सब तीर्थ समुदाय और सभी तरह के यज्ञ तुलाश्रित अर्थ में अर्थात् तुला राशि में स्थित सूर्य के होने पर ये सब नित्य ही धात्री का समाश्रय लेकर ही स्थित रहा करते हैं ।।२४।। द्वादशी तीर्थ मे तुलसी पत्र और कार्तिक मास मे धात्री के पत्र को यदि कोई काटता है तो उसको नरक हुआ करता है और वह अत्यन्त ही गर्हित नरको मे जाकर गिरता है ।।२५।। धात्री की छाया का समाश्रय लेकर कार्त्तिक मास मे जो अन्न को खाता है उसके अन्न के ससर्ग से उत्पन्न होने वाला पाप वर्ष भर तक का नष्ट हो जाया करता है ।।२६।। कार्त्तिक मास मे धात्री के मूल मे जो कोई मनुष्य भगवान् विष्णु का समर्चन किया करता है उससे वह सर्वदा

विष्णु के समस्त क्षेत्रों में पूजित होता है ॥२७॥ धात्री और तुलसी इन दोनों का माहात्म्य अतीव महान् होता है और ऐसा ही है जैसा कि शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाले भगवान् विष्णु का होता है। उसे चार मुखों वाले ब्रह्मा भी वर्णन करने में समर्थ नहीं होते हैं, अन्य की तो बात ही क्या है ॥२८॥ धात्री (आंवला) और तुलसी के उद्भव का कारण जो कोई भक्तिभाव से श्रवण करता है और श्रवण कराता है वह समस्त पापों का विधूनन् करके अर्थात् नष्ट करके विशुद्ध हो अपने पूर्वज पुरुषाओं के साथ अत्युत्तम विमान में स्थित होकर स्वर्गलोक को चला जाया करता है ॥२९॥

॥ कलहकारिणी की मुक्ति ॥

सेतिहासमिदं ब्रह्मन्माहात्म्यंकथितं त्वया ।
अत्याश्चर्यकरसम्यग्तुलस्यास्तु श्रुतं महत् ॥१
यदूर्जव्रतिन पुंस.फल महदुदाहृतम् ।
तत्पुनर्ब्र हि माहात्म्य केन चीर्णमिदं कथम् ॥२
आसीत्सह्याद्रिविषये करवीरपुरे पुरा ।
ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तति विश्रुतः ॥३
विष्णुव्रतकरः शश्वद्विष्णुपूजारतःसदा ।
द्वादशाक्षरविद्याया जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः ॥४
कदाचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः ।
रात्र्या तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम् ॥५
हरिपूजोपकरणान्प्रगृह्य व्रजता तदा ।
तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमनि.स्वना ॥६
वक्रदंष्ट्रा ललज्जिह्वा निमग्ना रक्तलोचना ।
दिगम्बरा शुष्कमासा लम्बोष्ठी घर्घरस्वना ॥७

राजा पृथु ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने इतिहास के सहित माहात्म्य का वर्णन किया है और अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाला तुलसी

का माहात्म्य जो अतीव महान् है मैंने अच्छी तरह श्रवण किया है। जो ऊर्जित व्रत वाले पुरुष का महान् फल आपने कहा था उस माहात्म्य को आप पुनः कहिये कि यह व्रत किसने और किस प्रकार से किया था ॥१-२॥ देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—परम प्राचीन समय में पहिले सह्याद्रि के देश में एक करवीर पुर था उसमें धर्मदत्त नाम से प्रसिद्ध धर्म का ज्ञाता कोई ब्राह्मण था ॥३॥ वह विष्णु के व्रतों का करने वाला और निरन्तर सदा ही भगवान् विष्णु की पूजा में निरत रहने वाला था। द्वादश अक्षरों की विद्या में अर्थात् 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस महामन्त्र की विद्या मे जप की निष्ठा रखने वाला तथा अतिथियों में प्यार रखने वाला था ॥४॥ किसी समय कार्तिक मास में वह हरि के जागरण के लिये चतुर्थ भाग जब रात्रि का शेष रह गया था उसी समय में रात में हरि के मन्दिर में चला गया था ॥५॥ उस समय में श्री हरि की पूजा के उपकरणों को ग्रहण कर जाते हुए उसने आती हुई अत्यन्त भयानक ध्वनि करने वाली एक राक्षसी को देखा था ॥६॥ वह राक्षसी तिरछी दाढ़ों वाली—जीभ को निकाले हुए निमग्न और रक्त नेत्रों वाली थी। वह एकदम नग्न थी—उसका मांस शुष्क था—लम्बे ओष्ठों से युक्त और घर्घर ध्वनि करने वाली थी ॥७॥

तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तःकम्पितावयवस्तदा ।
पूजोपकरणैर्गात्पयोभिश्चाहनद्रुषात् ॥८
संस्मृत्य च हरेर्नाम तुलसीयुतवारिणा ।
सा हता पातकं तस्मात्तस्याः सर्वमगात्क्षणम् ॥
अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम् ।
स्वांदशामब्रवीत्सर्वां दण्डवत्तं प्रणम्यसा ॥९
पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गता ह्यहम् ।
तत्कथं तु पुनर्विप्र ! याम्युत्तमगतिं शुभाम् ॥१०
तां दृष्ट्वा प्रणतामग्रे वदमानां स्वकर्म तत् ।
अतीवविस्मिता विप्रस्तदा वचनमब्रवीत् ॥११

येन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशी गता ।
कुतस्त्वं का च किं शीला तत्सर्वं कथयस्व मे ॥१२
सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन्भिक्षुनामाऽभवद्द्विजः ।
तस्याऽहं गृहिणी पूर्वं कलहाख्यातिनिष्ठुरा ॥१३
न कदाचिन्मया भर्तुर्वचसाऽपि शुभं कृतम् ।
नार्पितं तस्य मिष्टान्नं भर्तुर्वचनभङ्गया ॥१४
कलहप्रियया नित्यं भयोद्विग्नस्तदा द्विज ।
परिणेतुं तदाऽन्यां स मतिं चक्रे पतिर्मम ॥१५

उस परम भयानक राक्षसी को देखकर वह ब्राह्मण उस समय में भय से वित्रस्त हो गया था और उसके शरीर के सब अंग कम्पायमान हो रहे थे। उसने बड़े ही वेग से भय के कारण पूजा के उपकरण जल से हनन किया था ॥८॥ भगवान् हरि के नाम का स्मरण करके उस तुलसी से युक्त जल से उसका हनन जब किया था उससे उस राक्षसी का सम्पूर्ण पातक क्षय को प्राप्त हो गया था अर्थात् नष्ट हो गया था ॥९॥ इसके अनन्तर उसने अपने पूर्व जन्म के कर्मों के विपाक से समुत्पन्न अपनी सम्पूर्ण दशा को पहिले उस ब्राह्मण को दण्डवत् प्रणाम करके पीछे कहा था। कलहा ने कहा—मैं अपने पूर्वजन्म में किये हुए कर्मों के विपाक से ही इस दशा को प्राप्त हो गई हूँ। हे विप्र! अब पुनः मैं अति उत्तम और शुभ गति को कैसे प्राप्त करूँगी—यह बतलाइए ॥१०॥ नारदजी ने कहा—उस विप्र ने उस समय में अपने आगे प्रणत और अपने उस कर्म को बतलाने वाली को देखा था तो उस विप्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ था और उस समय में वह विप्र बोला—धर्मदत्त ने कहा—किस कर्म के विपाक होने से तेरी इस तरह की दशा हुई है? तू कहाँ से आई है और तू कौन है? क्या तेरा शील स्वभाव है यह सभी मुझ से इस समय में बतला दो ॥११-१२॥ इस पर कलहा ने कहा—हे ब्रह्मन्! सौराष्ट्र नगर में एक भिक्षु नाम वाला द्विज हुआ था। उसकी मैं पूर्व में कलहा नाम वाली अत्यन्त निष्ठुर गृहिणी थी ॥१३॥ मैंने कभी भी स्वामी के वचन से शुभ कर्म नहीं किया था। स्वामी के वचनों को भङ्ग

करने वाली मैंने कभी उसे मिष्ठान्न अर्पित नहीं किया था ॥१४॥ मैं नित्य ही कलह से प्यार करने वाली थी और उस समय में वह द्विज भय से उद्विग्न रहने लगा था। उसने जो मेरा पति था उस समय में किसी अन्य स्त्री के साथ अपना विवाह करने की बुद्धि स्थिर की थी ॥१५॥

ततो गरं समादाय प्राणास्त्यक्ता मया द्विज ! ॥१६
अथ वद्ध्वा वध्यमानां मां विनिन्युर्यमानुगाः।
यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत ॥१७
अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्त ! विलोकय।
प्राप्नोत्वेषा कर्मफलं शुभं वाऽशुभमेव च ॥१८
चित्रगुप्तस्ततो वाक्य भर्त्संयन्मामुवाच ह ॥१९

हे द्विज ! इसके अनन्तर विष लाकर मैंने अपने प्राणों का त्याग किया था। इसके अनन्तर यमराज के दूतों ने मुझे बाँधकर वे वध्यमान मुझको वहाँ यम की पुरी में ले गये थे। यमराज ने उस समय में मुझ को देख कर चित्रगुप्त से पूछा था ॥१६-१७॥ यम ने कहा—हे चित्रगुप्त !-इसने क्या कर्म किया है ? देखो, यह शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल प्राप्त करेगी। कमहा ने कहा—इसके पश्चात् चित्रगुप्त ने मुझ को फटकार लगाते हुए यह वाक्य कहा था ॥१८-१९॥

अनया तु शुभं कर्म कृतं किंचिन्न विद्यते।
मिष्टान्नं भुक्तमनया न भर्तरि तदर्पितम् ॥२०
अतश्च वल्गुलीयोन्यां स्वविष्ठादावतिष्ठताम्।
भर्तुर्द्वेषकरी त्वेषा नित्यं कलहकारिणी ॥२१
विष्ठादाशूकरीयोन्यां सा स्तिष्ठत्वियं हरे।
पाकभाण्डे सदा भुक्तं नित्यं चैवानया यतः ॥२२
तस्माद्दोषाद् विडाली तु स्वजातापत्यभक्षिणी।
भर्तारमनयोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतो यतः ॥२३
तस्मात्प्रेतपिशाचेषु तिष्ठत्वेषाऽतिनिन्दिता।
ततश्चैव मरुदेश प्रापितव्या भटैःसह ॥२४

तत्र प्रेतशरीरस्था चिरं तिष्ठत्विय ततः ।
इत्थं योनित्रयं त्वेषा भुनक्त्वशुभकारिणी ॥२५

चित्रगुप्त ने कहा—इसने कुछ भी शुभ कर्म तो किया ही नहीं है जो यहाँ पर लिखा गया हो । इसने स्वयं मिष्टान्न खा लिया था और अपने भर्ता को कभी भी नहीं दिया है ॥२०॥ इसी लिये यह वल्गुनी योनि में अपनी ही विष्ठा आदि में रहेगी क्योंकि यह सदा अपने ही स्वामी के साथ द्वेष करने वाली और नित्य ही कलह के करने वाली रही है ॥२१॥ हे हरे ! यह तो विष्ठा को खाने वाली शूकरी योनि में रहेगी क्योंकि इसने सदा ही नित्य पाक करने वाले पात्र में ही खाया था ॥२२॥ इस दोष से अपने ही गर्भ से उत्पन्न सन्तति का भक्षण करने वाली यह बिडाली है । क्योंकि इसने अपने ही भर्ता का उद्देश्य करके आत्मघात किया है ॥२३॥ अतएव यह अत्यन्त निन्दित है और यह प्रेत पिशाचों के मध्य में ही रहेगी । इसके उपरान्त इसको मरुदेश में मरुों के सहित प्राप्त करा देना चाहिए ॥२४॥ यहाँ पर प्रेत के शरीर में स्थित होकर यह चिरकाल पर्यन्त रहे । इस तरह से यह अशुभ कर्मों के करने वाली तीन योनियों में रह कर अपने द्वारा कृत अशुभ कर्मों का फल भोग करे ॥२५॥

साऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता द्विज ।
क्षुत्तृड्भ्यां पीडिता नित्यं दुःखिता स्वेन कर्मणा ॥२६
ततः क्षुत्पीडिताऽविश्य शरीरं वणिजस्त्वहम् ।
आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्यास्तु सङ्गमे ॥२७
तत्तीरसंस्थिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः ।
शिवविष्णुगणैर्दूरं रमपाकृष्टा बलादहम् ॥२८
ततः क्षुत्क्षामया दृष्टो भ्रमन्त्या त्वं मया द्विज ।
प्रक्षिप्ततुलसीवारिसंसर्गगतपापया ॥२९
तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र ! कथं मुक्तिमवाप्नुयाम् ।
योनित्रयादितभयादस्माच्च प्रेतदेहतः ॥३०

इत्थं निशम्य कलहावचन द्विजश्च-
तत्कर्मपाकभवविस्मयदु.खयुक्तः ।
तद्ग्लानिदर्शनकृपाचलचित्तवृत्ति-
र्ध्यात्वा चिर स वचन निजगाद दुःखात् ॥३१

कलहा ने उस द्विज से कहा था—वही मैं पाच सौ वर्ष पर्यन्त प्रेत के देह मे स्थित रही थी और नित्य ही भूख-प्यास से अत्यन्त उत्पीडित तथा अपने ही कर्म से दु खित हूँ ॥२६॥ इसके अनन्तर मैं भूख से पीडित होती हुई एक वणिक् के शरीर मे आविष्ट होकर दक्षिण देश मे कृष्णा वेणी के सगम मे आयी हुई हूँ ॥२७॥ उसके तीर पर जब तक मैं सस्थित रही थी तभी उसके शरीर से शिव और विष्णु के गणो के द्वारा मैं बलपूर्वक पृथक् कर दी गयी थी ॥२८॥ हे द्विज ! इसके पश्चात् भ्रमण करती हुई मैंने आपको देखा है । आपने मेरे ऊपर जो तुलसी का मिश्रित जल प्रक्षिप्त किया है उसके ससर्ग होने से मेरे पाप चले गये हैं ॥२९॥ हे विप्रेन्द्र ! अब आप ऐसी कृपा मुझ पर करिये और बतलाइये कि मैं कैसे मुक्ति को प्राप्त करूँगी । तीनो योनियो से जो अत्यन्त भय देने वाली हैं और प्रेत के देह से मेरा छुटकारा किस तरह होगा ? ॥३०॥ उस द्विज ने इस तरह के उस कलहा के वचनो को सुन कर विचार किया तो उसे उसके कर्मों के विपाक से होने वाले फल से अत्यन्त विस्मय और दु ख हुआ था । उसकी ग्लानि के देखने से जो हृदय मे दया हुई तो वह चल वृत्ति वाला हो गया था । फिर चिरकाल तक ध्यान किया था और फिर दु ख के साथ यह वचन बोला था ॥३१॥

विलय यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभि ।
प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता ॥३२
त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्न च मम मानसम् ।
नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दु.खिताम् ॥३३
पातक च तवात्युग्र योनित्रयविपाकदम् ।
नैवान्यै.क्षीयते पुण्यै प्रेतत्वचातिगर्हितम् ॥३४

तस्मादाजन्मजनितं यन्मया कार्त्तिकव्रतम् ।
तत्पुण्यस्यार्धभागेन सगर्दति त्वमवाप्नुहि ॥३५
कार्त्तिकव्रतपुण्येन न साम्यंयान्ति सर्वथा ।
यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतान्यपि यतोध्रुवम् ॥३६

धर्मदत्त ने कहा—तीर्थ-दान और व्रत आदि उत्तम साधनों से पापों का विलय हुआ करता है किन्तु तू तो प्रेत के देह में स्थित है अतः इस देह में रहने वाली तेरा तीर्थ दानादि में कुछ भी करने का अधिकार ही नही है ॥३२॥ तेरी इस ग्लानि को देखने से मेरा मन तो अत्यन्त ही खिन्न हो गया है और मेरे मन मे शान्ति ही नही हो रही है जब तक मैं तेरा इस महान् दुःख से उद्धार न कर दू ॥३३॥ तेरा जो पातक है वह भी अत्यन्त उग्र है जो कि तीन योनियों के विपाक का प्रदान करने वाला है। यह प्रेतत्व अत्यन्त ही गर्हित है इसका क्षय अन्य पुण्यो से हो ही नहीं सकता है ॥३४॥ इस लिये जन्म से लेकर मैंने कार्तिक के व्रत का समाचरण किया है। मै उसका जो भी कुछ पुण्य फल प्राप्त हुआ है उसका आधा भाग तुझे देता हूँ उससे तू सद्गति की प्राप्ति कर ॥३५॥ अन्य जो यज्ञ-दान-तीर्थ और व्रत आदि हैं वे सब निश्चय ही इस कार्तिक मास के व्रत की समता को कभी भी प्राप्त नहीं किया करते हैं। कार्तिक व्रत का इन सब से कही अधिक महत्व होता है ॥३६॥

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत् ।
तुलसीमिश्रतोयेन श्रावयन्द्वादशाक्षरम् ॥३७
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा ।
दिव्यवपुर्धरा जाता लावण्याद्भासिता दिशः ॥३८
तत सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाथ त द्विजम् ।
उवाच च तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी ॥३९
त्वत्प्रसाद् द्विजश्रेष्ठ ! विमुक्ता निरयादहम् ।
पापाब्धौ मज्जमानायास्त्व नौ भूतोऽसि मे ध्रुवम् ॥४०
इत्थ सा वदती विप्रं ददर्शायातमम्बरात् ।
विमान भास्वरं युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः ॥४१

श्री नारद जी ने कहा—उस धर्मदत्त ने यह कह कर उस तुलसी के मिश्रित जल से द्वादशाक्षर मन्त्र का श्रवण करते हुए उसका अभिषिचन किया था ॥३७॥ जब तक वह अभिषिञ्चन कर रहा था तब तक वह कलहा प्रेतत्व से मुक्त होकर जलती हुई अग्नि की शिखा के समान दिव्य शरीर के धारण करने वाली हो गई थी और वह परम सुन्दर दिव्य-लावण्य से सभी दिशाओं को समुद्भासित करने लगी थी ॥३८॥ इसके पश्चात् उसने भूमि में दण्ड की भाँति पतित होकर उस द्विज को प्रणाम किया था और उस समय में हर्षातिरेक से गद्गद होकर भाषण करने वाली उसने यह वाक्य कहा था ॥३९॥ कलहा ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! मैं आपकी ही कृपा से इस नरक से विमुक्त हो गई हूँ। इस पाप के सागर में डूबती हुई मेरे लिये आप निश्चय ही नौका के समान हो गये हैं ॥४०॥ देवर्षि नारदजी ने कहा—वह इस तरह से विप्र से कह ही रही थी कि उसने आकाश से आता हुआ विष्णु के रूप को धारण करने वाले गणों से युक्त अतीव भास्वर एक विमान देखा था ॥४१॥

॥ दीपावली माहात्म्य ॥

दीपावलिफलं नाथ विशेषाद्ब्रूहि साम्प्रतम् ।
किमर्थं क्रियते सा तु तस्याः का देवता भवेत् ॥१

किं च तत्र भवेद्देयं किं न देयं वद प्रभो ।
प्रहर्षः कोऽत्र निर्दिष्टः क्रीडा कात्र प्रकीर्तिता ॥२

इति स्कन्दवचः श्रुत्वा भगवान्कामशोषणः ।
साधूक्त्वा कार्तिकं विप्रा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥३
कार्त्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां तु पावके ।
यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥४
मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह ।
त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति ॥५

कार्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्या विधूदये ।
अवश्यमेव कर्त्तव्य स्नान च पापभीरुभि ॥६

पूर्वविद्धा चतुर्दश्या कार्त्तिकस्यासितेतरे ।
पक्षे प्रत्यूषसमये स्नान कुर्यादतन्द्रित ॥७

तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावल्या चतुर्दशीम् ।
प्राप्त स्नान हि य कुर्याद्यमलोक न पश्यति ॥८

स्वामिकार्तिकेय ने कहा—हे नाथ ! इस समय मे विशेष रूप से दीपावलि का फल बतलाइये । इसको किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये किया जाता है और इस दीपावली का कौनसा देवता होता है जिसका अर्चन किया जाता है ॥१॥ हे प्रभो ! उसम क्या तो देना चाहिए और क्या नही देना चाहिए । इसमे किस प्रहर्ष का निर्देश किया गया है और कौनसी क्रीड़ा को कीर्तित किया गया है ? ॥२॥ सूतजी ने कहा—इस तरह के स्कन्द प्रभु का वचन सुन कर भगवान् वामदेव को नष्ट करने वाले शिव ने कार्तिकेय से यह कह कर कि बहुत अच्छा तुमने पूछा है हे विप्रगण ! फिर हसते हुए शिवजी ने यह कहा था ॥३॥ श्री शिव ने कहा—कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष मे त्रयोदशी तिथि मे पावक मैं घर से यमदीप रखने इसका फल यह है मनुष्य की अपमृत्यु विनाश हो जाता है ॥४॥ पाश हाथ म रखने वाले काल मृत्यु तथा भार्या के सहित सूर्य पुत्र (यमराज) त्रयोदशी म दीप दान से प्रसन्न होवें ॥५॥ कार्तिक मास कृष्ण पक्ष म चन्द्रोदय के समय मे जो पापो से भयभीत रहने वाले पुरुष हैं उनको अवश्य ही स्नान करना चाहिए ॥६॥ कार्तिक के कृष्ण-पक्ष मे पूर्व विद्धा चतुर्दशी के पक्ष मे प्रात काल के समय मे तन्द्रा से रहित होते हुए स्नान करना चाहिए ॥७॥ तेल मे लक्ष्मी, जल मे गगा और दीपावली मे चतुर्दशी इनमें जो मनुष्य प्रात काल म स्नान करता है वह यमलोक का नही देखा करता है ॥८॥

अपामार्गस्तथा तुम्बी प्रपुन्नाट च वाह्लम् ।
भ्रामयेत्स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥९

सीतालोष्टसमायुक्त सकण्टकदलान्वित ।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाण.पुन.पुन ॥१०
अपामार्ग प्रपुन्नाट भ्रामयेच्छिरसोपरि ।
ततश्च तर्पण कार्यं यमराजस्य नामभिः ॥११
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥१२
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नम ॥१३
नरकाय प्रदातव्यो दीप सपूज्य देवता. ।
तत.प्रदोपसमये दीपान्दद्यान्मनोहरान् ॥१४

अपामार्ग—तुम्बी—प्रपुन्नाट—वाह्लल को स्नान के मध्य मे भ्रामण करे। इससे नरक का क्षय होता है ॥६॥ हे अपामार्ग! आप सीता लोष्ठ समायुक्त हैं और कण्टको सहित हलो से सयुत हैं। पुन-पुन भ्राम्यमाण होते हुए पाप का हरण करो ॥१०॥ अपामार्ग (औंधा) प्रपुन्नाट को शिर के ऊपर भ्रमण करावे (घुमावे) इसके अनन्तर तर्पण करना चाहिए। वह तर्पण यमराज के नामो से ही करे। यमराज के नामो का उल्लेख है—यम के लिये-धर्मराज, मृत्यु अन्तक, वैवस्वतकाल, सर्वभूतक्षय औदुम्बर-दृघ्न-नील, परमेष्ठी-वृकोदर-चित्र, चित्रगुप्त के लिए नमस्कार है। सभी नामो के आगे नम और चतुर्थी विभक्ति योग करके तर्पण करे। देवता का भली भांति पूजन करके नरक के लिये दीप देना चाहिए। इसके पश्चात् प्रदोष के समय मे मनोहर अन्य भी दीपों का दान करना चाहिए ॥११-१४॥

ब्रह्मविष्णुशिवादीना भवनेषु विशेषत ।
कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ॥१५
प्राकारोद्यानवापीषु प्रतोलीनिष्कुटेषु च ।
मन्दुरासु विविक्तासु हस्तिशालासु चैव हि ॥१६
एव प्रभातसमये ह्यमावस्या तु पावके ।
स्नात्वा देवान्पितॄन्भक्त्या सपूज्याऽथ प्रणम्य च ॥१७

कृत्वा तु पार्वणं श्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ।
भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान्भोजयित्वा क्षमापयेत् ।।१८
ततोऽपराह्णसमये पोषयेन्नागरान्प्रिय ।
तेषां गोष्ठीं च मानं च कृत्वा संभाषण नृपः ।।१९
वक्तृणां वत्सरं यावत्प्रीतिरुत्पद्यते गुह ।
अप्रबुद्धे हरौ पर्व स्त्रीभिर्लक्ष्मीःप्रबोधयेत् ।।२०
प्रबोधसमये लक्ष्मीं बोधयित्वा सु सुस्त्रिया ।
पुमान्वै वत्सरं यावल्लक्ष्मीस्त नैव मुञ्चति ।।२१

ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि के भवनों में विशेष रूप से-कूटागारों मे-चैत्यों में-सभाओं मे-नदियों मे-प्राकार-उद्यान-वापियों में-प्रतोली-निष्कुटों में मन्दुराओं मे—विविक्ताओं में और हस्तिशालाओं मे दीप दान करे ।।१५-१६।। इस प्रकार से प्रभात समय में अमावस्या मे पावक में स्नान करके भक्ति की भावना से देवों और पितृगणों का पूजन करके प्रणाम करे तथा पार्वण श्राद्ध करना चाहिए । फिर दधि-क्षीर-घृत आदि नाना प्रकार के भोज्यों से विप्रों को भोजन करा कर उनसे क्षमापन करावे ।।१७-१८।। हे प्रिय ! इसके उपरान्त अपराह्न समय मे नागरों का पोषण करे । उनकी गोष्ठीमान करके सम्भाषण करे ।।१९।। हे गुह ! वक्ताओं की प्रीति वर्ष की समाप्ति तक समुत्पन्न हुआ करती है । भगवान् हरि के अप्रबुद्ध होने पर पर्व मे स्त्रियों के द्वारा लक्ष्मी का प्रबोधन करना चाहिए ।।२०।। सुन्दर स्त्री के द्वारा प्रबोधन के समय मे लक्ष्मी का बोधन करा कर पुमान् को पूरे वर्ष पर्यन्त लक्ष्मी कभी नहीं त्यागती है ।।२१।।

अभयप्राप्य विप्रेभ्यो विष्णुभीता सुरद्विषः ।
सुप्तं क्षीरोदधौ ज्ञात्वा लक्ष्मी पद्माश्रिता तथा ।।२२
त्वं ज्योतिःश्रीरविश्चन्द्रो विद्युत्सौवर्णतारकः ।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपज्योतिःस्थिता तु या ।।२३
या लक्ष्मीर्दिवसे पुण्ये दीपावल्यां च भूतले ।
गवां गोष्ठे तु कार्त्तिक्यां सा लक्ष्मीर्वरदा मम ।।२४

भूषणीयास्तथा गावो वर्ज्याविहनदोहनात् ।
गोवर्धनधराधार गोकुल त्राणकारक ॥२५
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवा कोटिप्रदो भव ।
या लक्ष्मीर्लोकपालाना धेनुरूपेण संस्थिता ॥२६
घृत वहति यज्ञार्थे मम पाप व्यपोहतु ।
अग्रत सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥
गावो मे हृदये सन्तु गवा मध्ये वसाम्यहम् ॥२७

विप्रो मे अभय का वरदान तथा आशीर्वाद प्राप्त करके जो सुरो से द्वेष करने वाले थे वे विष्णु से भयभीत हो गये थे। पद्म का आश्रय ग्रहण करने वाली लक्ष्मी को क्षीर सागर मे जान कर सुप्त हो गये ॥२०॥ आप ही ज्योति हैं—श्री–रवि–चन्द्र–विद्युत–सौवर्ण तारक हैं। जो यह दीप ज्योति स्थित है वह सब ज्योतियो की ज्योति है ॥२३॥ जो लक्ष्मी पुण्य दिवस मे हैं—दीपावलि मे भूतल प हैं—गौओ के गोष्ठ मे है वह लक्ष्मी कार्त्तिकी पूर्णिमा मे मुझे वरदान देने वाली होवे ॥२४॥ वहन–दोहन से वर्ज्य गौओ को भूषणो से समलकृत करना चाहिए। गोवर्धन धरा के आधार और गोकुलो के त्राण के कारण स्वरूप विष्णु के बाहु से किये हुए उच्छ्राय वाले आप गौओं के कोटि प्रद होवें। जो लक्ष्मी लोक पालों के यहाँ धेनु रूप से सस्थित है और यज्ञ के लिये घृत का वहन करती है वह मेरे पाप का व्यपोहन करे। मेरे आगे गौऐं होवें और मेरे पीछे गौऐं होवें–मेरे हृदय मे गौऐं रहें और मैं सदा गौओ के ही मध्य म निवास करूँ ॥२५-२७॥

सद्भावेनैव सतोष्य देवान्सत्पुरुषान्नरान् ।
इतरेणान्नपानैर्वाक्यदानेन पण्डितान् ॥२८
वस्त्रैस्ताम्बूलदीपैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः ।
भक्ष्यैरुच्चावचैर्भोज्यैरन्त.पुरनिवासिन. ॥२६
वृषभान्ग्रासदानैश्च सामन्तान्नृपतिर्धनैः ।
पदाति जनसङ्घाश्च ग्रैवेयःकटकैः शुभैः ॥३०

स्वानमात्याश्च तान्राजा तोषयेत्स्वजनान्पृथक् ।
यथाऽथ तोषयित्वा तु ततो मल्लन्नटास्तथा ॥३१
वृषभाश्च महोक्षाश्च युध्यमानान्परं सह ।
राजन्याश्चापियोधाश्च पदातीन्समलङ्कृतान् ॥३२
मञ्चारूढ स्वय पश्येन्नटनर्तकचारणान् ।
योधयेद्वासयेच्चैव गोमहिष्यादिक च यत् ॥३३
वत्सानाकर्षयेद्गोभिरुक्तिप्रयुक्तिवादनात् ।
ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्या दिशि पावके ॥३४
मार्गपाली प्रबध्नीयाद्दुर्गस्तम्भेऽथ पादपे ।
कुशाकाशमयी दिव्या लम्बकैर्बहुभिर्गुह ॥३५

यह गोवर्द्धन की पूजा का विधान है जो करना चाहिए । देवो की सद्भाव से तथा सत्पुरुष नरो को तथा दूसरो को अन्न पान आदि से एव वाक्य दान से पण्डितो को सन्तुष्ट करके वस्त्रताम्बूल-दीप पुष्प-कर्पूर-कुंकम--भक्ष्य तथा उच्चावच भोज्य पदार्थों से अन्त पुर मे निवास करने वालो को सन्तुष्ट करे ॥२८-२९॥ प्रास के दानो से वृषभो को दानो के द्वारा नृपति सामन्तो को सन्तुष्ट करे । जो पदातिजन के सप है उनको शुभ ग्रैवेय और कटको से सन्तुष्ट करना चाहिए ॥३०॥ राजा को अपने अमात्यो को तथा स्वजनो को पृथक् सन्तुष्ट करना चाहिए । यथोक्त रूप से उपर्युक्त सब का तोषण करके उसी भाँति मल्ल-नट-वृषभ-महोक्ष--दूसरो के साथ युध्यमान राजन्यो को--योधाओ को और पदातियो को समलकृत करे ॥३१-३२॥ स्वय मञ्च पर समारूढ होकर नट-नर्तक और चारणो को देखे । जो गौ महिषी आदि हैं उनको योधित और वासित करे । उक्ति-प्रत्युक्ति कथन से गौओ के द्वारा वत्सो को आकर्षित करना चाहिए । इसके अनन्तर दोपहर के बाद पूर्व दिशा मे अग्नि मे दुर्ग स्तम्भ मे मार्गपाली का प्रबन्धन करे । इसके अनन्तर हे गुह ! बहुत से लम्बको से दिव्य कुशकाश मयी को पादप मे प्रबन्धित करे ॥३३-३५॥

वीक्षयित्वा गजानश्वान्मार्गपाल्यास्तले नयेत् ।
गावैर्वृ पांश्च महिषान्महिषीर्घण्टिकोत्कटाः ॥३६
कृतहोमैर्द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम् ।
नमस्कारं ततःकुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रतः ॥३७
मार्गपालि नमस्तुभ्यं सर्वलोक सुखप्रदे ।
मार्गपालीतले स्कन्द यान्तिगावो महावृषाः ॥३८
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः ।
मार्गपाली समुल्लङ्घ्य नीरुज सुखिनोहि ते ॥३९
कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः ।
पूजां कुर्यात्ततःसाक्षाद्भूमौमण्डलके कृते ॥४०
बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैःपञ्चरङ्गकैः ।
सर्वाभरणसंपूर्णविन्ध्यावलिसमन्वितम् ॥४१
कूष्माण्डमयजम्भोरु मधुदानव संवृतम् ।
सपूर्णं हृष्टवदन किरीटोत्कटकुण्डलम् ॥४२

गजो और अश्वो को देख कर मार्गपाली के तल मे ले जावे तथा गौ-वृषो को, महिष-महिषियो को घण्टिका से उत्कट करे ॥३६॥ होम किये हुए द्विजेन्द्रो के द्वारा मार्ग पालिका का बन्धन करना चाहिए। सुव्रत को इसके अनन्तर नीचे बतलाये जाने वाले मन्त्र से नमस्कार करना चाहिए ॥३७॥ मन्त्र यह है—हे मार्गपाली ! आप समस्त लोको को सुख का प्रदान करने वाली हैं, आपको नमस्कार है। हे स्कन्द ! मार्गपाली के तल मे गौऐं और महावृष जाते है ॥३८॥ राजा और राज पुत्र तथा विशेष रूप से ब्राह्मण वे सब मार्गपाली का समुल्लघन करके नीरुज और सुखी होते हैं ॥३९॥ यह सब कुछ करके रात्रि मे दैत्यों के स्वामी बलि की पूजा करनी चाहिए। इसके पश्चात् भूमि मे एक मण्डल की रचना करने पर साक्षात् दैत्यो के स्वामी बलि का आलेखन पाँच वर्णो के रंगो से करे जो कि सब आभरणो से सम्पन्न विन्ध्यावलि से समुत होना चाहिए ॥४०-४१॥ कूष्माण्डमय जम्भ ऊरु

और मधु दानव से भी संयुत हो। सब हृष्ट वदन युक्त और किरीट-कुण्डलों से समन्वित होवे ॥४२॥

द्विभुजं दैत्यराजं च कारयित्वा स्वके पुनः।
गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत् ॥४३
मातृभ्रातृजनैः सार्धं सन्तुष्टो बन्धुभिः सह।
कमलैः कुमुदैः पुष्पैः कह्लारैं रक्तकोत्पलैः ॥४४
गन्धपुष्पान्ननैवेद्यैः सक्षीरैंगुडपायसैः।
मद्यमांससुरालेह्यचोष्यभक्ष्योपहारकैः ॥४५
मन्त्रेणानेन राजेन्द्रः समन्त्री सपुरोहितः।
पूजा करिष्यते यो वै सौख्यं स्यात्तस्य वत्सरम् ॥४६
बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो।
भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥४७
एवं पूजाविधिं कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः।
कारयेद्वै क्षणं रात्रौ नटनर्तकगायकैः ॥४८
लोकैश्चापि गृहस्यान्ते सपर्या शुक्लतण्डुलैः।
संस्थाप्य बलिराज तु फलैः पुष्पैश्च पूजयेत् ॥४९

दो भुजाओं वाले दैत्यराज की रचना करा कर फिर अपने घर के मध्य में विशाल शाला में अर्चन करे ॥४३॥ माता-भ्रातृजन के साथ तथा बन्धुजनों के सहित परम सन्तुष्ट होकर कमल, कुमुद, कह्लार और रक्तोत्पल पुष्पों से—गन्ध, पुष्प, अन्न, नैवेद्यों के द्वारा क्षीर के सहित गुड़ और पायस से—मद्य, मांस, सुरा, लेह्य, चोष्य और भक्ष्य उपहारों के द्वारा यजन करना चाहिए ॥४४-४५॥ अपने मन्त्री और पुरोहितों के सहित जो राजेन्द्र इस मन्त्र से पूजा करेगा वह पूरे वर्ष पर्यन्त सौख्य को प्राप्त करेगा ॥४६॥ मन्त्र यह है—हे विरोचन के पुत्र! हे प्रभो! हे बलिराज! आपको नमस्कार है। हे भविष्य के इन्द्र! हे सुरों के आराति! मेरी यह पूजा आप ग्रहण कीजिए ॥४७॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण पूजा की विधि को सम्पन्न करके फिर रात्रि में जागरण कराना चाहिए। रात्रि में नट-नर्तक और गायकों के द्वारा तथा लोगों के द्वारा

घर के अन्दर शुक्ल तण्डुलों से मपर्या को संस्थापित करके फलों और पुष्पों से बलिराज की अर्चा करनी चाहिए ॥४८-४६॥

बलिमुद्दिश्य वै तत्र कार्यं सर्वं च पावके ।
यानि यान्यक्षयाण्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥५०
यदत्र दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
तदक्षयं भवेत्सर्वं विष्णोःप्रीतिकरं शुभम् ॥५१
रात्रौ ये न करिष्यन्ति तव पूजां बले नराः ।
तेषामश्रोत्रियं धर्मं सर्वं त्वामुपतिष्ठतु ॥५२
विष्णुना च स्वयं वत्स तुष्टेन बलये पुनः ।
उपकारकरं दत्तमसुराणां महोत्सवम् ॥५३
तदा प्रभृति सेनानीःप्रवृत्ता कौमुदी सदा ।
सर्वोपद्रवविद्रावा सर्वविघ्नविनाशिनी ॥५४
लोकशोकहरा काम्या धनपुष्टिसुखावहा ।
कुशब्देन मही ज्ञेया मुदहर्षे ततो द्वयम् ॥५५
धातुत्वे निगमैश्चैव तेनैषा कौमुदी स्मृता ।
कौ मोदन्ते जना यस्मान्नानाभावैःपरस्परम् ॥५६

बलि का उद्देश्य करके वहां पर सब पावक मे करना चाहिए। तत्त्वों के देखने वाले मुनिगण जिन-जिन को अक्षय कहते हैं वे सभी करे ॥५०॥ जो कुछ भी यहाँ पर स्वल्प या बहुत अधिक दिया जाता है वह सब अक्षय होता है और शुभ तथा भगवान् विष्णु की प्रीति का करने वाला होता है ॥५१॥ हे बले ! जो मनुष्य रात्रि मे आपकी पूजा नहीं करेंगे उनका अश्रोत्रिय सब धर्म आपको उपस्थित होवे ॥५२॥ हे वत्स ! स्वयं परम तुष्ट विष्णु ने वलि के लिये असुरों के उपकार को करने वाला महोत्सव दिया है ॥५३॥ तभी से लेकर सदा सेनानी यह कौमुदी प्रवृत्त हुई है जो सब उपद्रवों के विद्रावण करने वाली और समस्त विघ्नों के विनाश करने वाली है ॥५४॥ लोकों के शोक का हरण करने वाली—काम्या और धन-पुष्टि और सुख का समावह करने वाली है। कुशब्द से तभी से यह मही मुद और हर्ष इन दोनों से युक्त

जानने के योग्य हुई है ।।५५।। इसी से धातुत्व में निगमों के द्वारा यह कौमुदी कही गयी है । कौ अर्थात् भूमि मे परस्पर मे नाना प्रकार के भावों से जिससे मनुष्य प्रसन्न होते है ।।५६।।

हृष्टतुष्टाःसुखापन्नास्तेनैषा कौमुदी स्मृता ।
कुमुदानि बलेयंस्यां दीयन्ते तेन षण्मुख ।।५७
अर्घार्थं पार्थिवैःपुत्र तेनैषा कौमुदी स्मृता ।
एकमेवमहोरात्रं वर्षे वर्षे च कार्तिके ।।५८
दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले ।
यःकरोति नृपो राज्ये तस्य व्याधिभयं कुतः ।।५९
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तस्य संपदनुत्तमा ।
नीरुजश्च जनाःसर्वे सर्वोपद्रववर्जिताः ।।६०
कौमुदी क्रियते तस्माद्भावं कर्तुं महीतले ।
यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्या च षण्मुख ।।६१
हर्षदु.खादिभावेन तस्य वर्ष प्रयाति हि ।
रुदिते रोदते वर्षं हृष्टे वर्षं प्रहर्षितम् ।।६२
भुक्ते भोक्ता भवेद्वर्षं स्वस्थे स्वस्थं भविष्यति ।
तस्मात्प्रहृष्टैःकर्त्तव्या कौमुदी च शुभैर्नरैः ।।६३
वैष्णवी दानवी चेयं तिथिःप्रोक्ता च कार्तिके ।।६४

हृष्ट-पुष्ट और सुख से आपन्न होते हैं—इसी से यह कौमुदी कही गई है । हे षण्मुख ! जिसमे बलि के लिये कुमुद दिये जाते हैं इससे भी यह कौमुदी कही गयी है ।।५७।। पुत्र ! अर्घ के लिये पार्थिवों के द्वारा कुमुदों का उपयोग किया जाता है—इस कारण से भी यह कौमुदी कही गयी है । कार्तिक मास मे प्रत्येक वर्ष मे केवल एक ही अहोरात्र मे यह करना चाहिए ।।५८।। दानव राज बलि के लिये दिया हुआ यह भूतल मे एक आदर्श के ही समान है । जो भी कोई नृप अपने राज्य मे इसको किया करता है उसको व्याधियों का भय तो कभी हो ही नही सकता है ।।५९।। उस राजा के राज्य मे सर्वत्र सुभिक्ष–क्षेम–आरोग्य और उत्तम सम्पदा होती है । सभी मनुष्य रोगो से रहित परम स्वस्थ और

उपद्रवों से रहित हुआ करते हैं ।।६०।। महीतल में इसी कारण से भाव को करने के लिये कौमुदी को भोगा करती है। हे षण्मुख ! जो इसमें जिस प्रकार के भाव से स्थित होता है ।।६१।। हर्ष और दुःख आदि के भाव से उसका पूरा वर्ष प्रयाण किया करता है अर्थात् गुजरता है। रुदित करने पर पूरा वर्ष रोदन किया करता है तथा हृष्ट रहने पर सम्पूर्ण वर्ष प्रहर्षित रहता है ।।६२।। युक्त होने पर वर्ष भोक्ता होता है और स्वस्थ होने पर स्वस्थ होगा। इसीलिये पूर्ण वर्ष की रक्षा के लिये शुभ मनुष्यों के द्वारा अत्यन्त प्रहृष्ट होते हुए ही इस कौमुदी को करना चाहिए ।।६३।। कार्त्तिक में यह तिथि वैष्णवी और दानवी कही गयी है ।।६४।।

दीपोत्सवं जनितसर्वजनप्रसादं ।
कुर्वन्ति ये शुभतया बलिराजपूजाम् ।।६५
दानोपभोगसुखवुद्धिमतां कुलानां ।
हर्षं प्रयाति सकल प्रमुदं च वर्षम् ।।६६
स्कन्देतास्तिथयोनूनं द्वितीयाद्याश्चविश्रुताः ।
मासैश्चतुर्भिश्चततःप्रावृट्कालेशुभावहाः ।।६७
प्रथमा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदे परा ।
तृतीयाश्वयुजे मासि चतुर्थी कार्तिके भवेत् ।।६८
कलुषा श्रावणे मासि तथा भाद्रपदेऽमला ।
आश्विने प्रेतसंचारा कार्तिकेयाम्यकामता ।।६९
कस्मात्सा कलुषा प्रोक्ता कस्मात्सा निर्मला मता ।
कस्मात्सा प्रेतसंचारा कस्माद्याम्या प्रकीर्तिता ।।७०

जो मनुष्य सब मनुष्यों के प्रसाद को उत्पन्न करने वाले इस दीपोत्सव को तथा परम शुभ होने से बलिराज की पूजा किया करते हैं उनका पूरा वर्ष दान-उपभोग सुख और बुद्धि वाले कुलों का प्रमुदत्व देने वाला गुजरता है ।।६५-६६।। हे स्कन्द ! द्वितीया से आदि लेकर ये तिथियाँ निश्चय ही विश्रुत हैं और प्रावृट् (वर्षा काल में चार मासों से ये शुभ का आवहन करने वाली होती हैं ।।६७।। प्रथम श्रावण मास

मे होती है। दूसरी भाद्रपद मे होती है। तीसरी आश्विन मे और चौथी कार्तिक मे हुआ करती है ॥६८॥ श्रावण मे कलुषा होती है, भाद्र पद मे अमला, आश्विन मास मे प्रेत सचारा और कार्तिक मे याम्य कामता होती है ॥६९॥ गुह ने कहा—किस कारण से श्रावण की तिथि को कलुषा बतलाया गया है और कौन से कारणो के होने से निर्मला तथा प्रेत सचारा एव याम्या कही गयी हैं ॥७०॥

इति स्कन्दवचःश्रुत्वा भगवान्भूतभावनः ।
उवाच वचन श्लक्ष्ण प्रहसन्वृषभध्वजः ॥७१
पुरा वृत्रवधे वृत्ते प्राप्ते राज्य पुरन्दरे ।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमश्वमेधःप्रवर्त्तितः ॥७२
क्रोधादिन्द्रेण वज्रेण ब्रह्महत्या निषूदिता ।
षड्विधा सा क्षितौ क्षिप्ता वृक्षतोयमहीतले ॥७३
नार्यां वह्नौ भ्रूणहनि सविभज्य यथाक्रमम् ।
तन्यापश्रवणात्पूर्वं द्वितीयाया दिनेन च ॥७४
नारीवृक्षनदीभूमि वह्निभ्रूणहनस्तथा ।
कलुषीभवन जातो ह्यतोऽथ कलुषा स्मृता ॥७५
मधुकैटभयोरक्ते पुरा मग्नानुमेदिनी ।
अष्टागुला पवित्रा सा नारीणा तु रजोमलम् ॥७६
नद्यःप्रावृण्मला.सर्वा वह्नेः ध्वं मषीमलः ।
निर्यासमलिना वृक्षा.सङ्गाद्भ्रूणहनोमलाः ॥७७

महामहर्षि सूतजी ने कहा—इस प्रकार से स्कन्द के वचन का श्रवण कर भूतो पर दया करने वाले वृषभध्वज ने हँसते हुए परम-श्लक्ष्ण यह वचन कहा ॥७१॥ महेश बोले—प्राचीन समय मे वृत्रासुर के वध होने पर राज्य मे पुरन्दर को ब्रह्महत्या प्राप्त हुई थी। उस ब्रह्म-हत्या को दूर करने के लिये अश्वमेध यज्ञ प्रवृत्त किया गया था। इन्द्र ने क्रोध से वज्र के द्वारा ब्रह्महत्या को निषूदित कर दिया था। वह फिर छै प्रकार की होकर पृथ्वी मे प्रक्षिप्त करदी गयी थी। उन छै भागो का विभाजन करके क्रम के अनुसार वृक्ष–जल–महीतल–नारी–

वह्नि और भ्रूण के हन्ता मे दे दिया गया था। उस पाप के श्रवण करने से पूर्व द्वितीया के दिन से नारी—वृक्ष—नदी—भूमि—वह्नि और भ्रूण हन्ता मे जो विभाजन हुआ था तो सब कलुषी भवन होगया था, अतएव यह कलुषा कही गयी है ॥७२-७५॥ मधु और कैटभ इन दोनो के रक्त मे पहिले यह मेदिनी मग्न हो गई थी। आठ अंगुल पवित्र थी वह नारियो का रजोमल है ॥७६॥ नदियां सब वर्षा काल मे मल वाली होती हैं—वह्नि का मयोमल ऊर्ध्व की ओर जाया करता है—वृक्ष निर्यास (गोंद) से मलिन हुआ करते हैं और सग से भ्रूणों का हनन करने वाले मल वाले हैं ॥७७॥

कलुषा विचरन्त्यस्यां तेनैषा मता।
देवर्षिपितृधर्माणां निन्दका नास्तिकाःशठाः ॥७८
तेषां सा वाङ्मलात्पूता द्वितीया तेन निर्मला।
अनध्यायेषु शास्त्राणि पाठयन्ति पठन्ति च ॥७९
साङ्ख्यकास्तार्किकाःश्रौतास्तेषां शब्दापशब्दजात्।
मलात्पूता द्वितीयाया ततोऽर्थे निर्मला च सा ॥८०
कृष्णस्य जन्मना वत्स त्रैलोक्यं पावितं भवेत्।
नभस्यैते विनिर्दिष्टा निर्मला सा तिथिर्बुधैः ॥८१
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाःसोमपास्तथा।
पितृन्पितामहान्प्रेतसंचारात्प्रेतसंचरा ॥८२
प्रेतास्तु पितरःप्रोक्तास्तेषां तस्यानुसंचरः।
पुत्रपौत्रैस्तुदौहित्रैःस्वधामन्त्रैस्तु पूजिताः ॥८३
श्राद्धदानमखैस्तृप्ता यान्त्यतःप्रेतसंचरा।
महालये तु प्रेताना सचारो भुवि दृश्यते ॥८४
तेनैषा प्रेतसचारा कीर्तिता शिखिवाहन।
यमस्य क्रियते पूजा यतोऽस्यां पावके नरैः ॥८५

सब कलुष होकर ही इसमे विचरण किया करते हैं इसी कारण से यह कलुषा मानी गयी है। देव—ऋषि और पितृगणो के धर्मो की निन्दा करने वाले, नास्तिक और शठ हैं ॥७८॥ वह उनके वाणी के मल से

पूत हुई द्वितीया है। इसी कारण से वह निर्मला कही गयी है। अनध्यायों में शास्त्रों को पढाया करते हैं और स्वय भी पढते हैं, साख्यकतार्किक और श्रौत इनके शब्दाय शब्द से उत्पन्न मल से पूता द्वितीया में है इसी से वह निर्मला है ।।७६-८०।। हे वत्स ! श्रीकृष्ण के जन्म से त्रैलोक्य पवित्र होता है। नभस्य में वह बुधो के द्वारा निर्मला तिथि विनिर्दिष्ट की गयी है ।।८१।। अग्निष्वात्त–बर्हिषद–आज्यप–सोमप–पितृगण और पिता यह इन सबके और प्रेतों के सञ्चार होने से इसका नाम प्रेत सञ्चारा है ।।८२।। प्रेत पितर कहे गये हैं उसमे उनका ही सञ्चरण होता है। पुत्र-पौत्र और दौहित्रो के द्वारा स्वधा मन्त्रों से वे पूजित होते हैं ।।८३।। श्राद्धो दान मखों के द्वारा वे तृप्त होकर जाया करते है इसीलिये इसे प्रेत सचारा कहते है। महालय में भूमण्डल मे प्रेतो का सचार दिखलाई दिया करता है इसीलिये हे शिखिवाहन ! इसको प्रेत सचारा—इस नाम से पुकारा जाता है। इसमे क्योंकि पावक मे ही मनुष्यों के द्वारा यमराज की पूजा की जाया करती है ।।८४-८५।।

तेनैपा याम्यका प्रोक्ता सत्यं सत्य मयोदितम् ।
एतत्कार्तिकमाहात्म्य ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ।।८६
कार्तिकस्नानज पुण्य तेपा भवति निश्चितम् ।
कार्तिके च द्वितीयायां पूर्वाह्णे यममर्चयेत् ।।८७
भानुजाया नरःस्नात्वा यमलोक न पश्यति ।
कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयाया तु शौनक ।।८८
यमो यमुनया पूर्वं भोजितःस्वगृहेऽर्चिता ।
द्वितीयाया महोत्सर्गो नारकीयाश्च तर्पिताः ।।८९
पापेभ्यो विप्रयुक्तास्ते मुक्ताःसर्वनिबन्धनात् ।
आशंसिताश्च सतुष्टाःस्थिताःसर्वे यदृच्छया ।।९०

इसी कारण से यह याम्यका नाम से कही गयी है, यह मैंने पूर्णरूप से सच-सच कह दिया है। जो नरोत्तम इस कार्तिक के माहात्म्य का श्रवण किया करते हैं उनको कार्तिक मास मे स्नान करने से उत्पन्न

होने वाला पुण्य-फल मिश्रित रूप से होता है। कार्तिक में द्वितीया तिथि मे पूर्वाह्न के समय मे यमराज का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥८६-८७॥ भानुजा यमुना मे इस द्वितीया में मनुष्य स्नान करके फिर यमलोक को नही देखा करता है। हे शौनक ! यह द्वितीय कार्तिक मास के शुक्ल-पक्ष मे होती है। पहिले यमुना बहिन ने अपने भाई यम को भोजन कराया था फिर वह अपने घर मे अर्चित हुई थी। द्वितीया मे महोत्सर्ग है और नारकीय जो जीव हैं वे भी तर्पित होते हैं ॥८८-८६॥ वे समस्त पापो से विप्रयुक्त हो जाते हैं तथा सब प्रकार के निबन्धन से मुक्त होते है। आशसित और सन्तुष्ट सब यदृच्छया स्थित होते हैं ॥६०॥

तेषा महोत्सवो वृत्तो यमराष्ट्र सुखावहः ।
अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥६१
तस्मान्निजगृहे विप्र न भोक्तव्य ततो बुधैः ।
स्नेहेन भगिनी हस्ताद्भोक्तव्य पुष्टिवर्द्धनम् ॥६२
दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ।
स्वर्णालङ्कारवस्त्राणि पूजासत्कारसयुतम् ॥६३
भोक्तव्यं सहजायाश्च भगिन्याहस्ततःपरम् ।
सर्वासु भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं बलवर्धनम् ॥६४
ऊर्जे शुक्लद्वितीयाया पूजितस्तर्पितो यमः ।
महिषासनमारूढो दण्डमुद्गरभृत्प्रभुः ॥६५
वेष्टित किङ्करैर्हृष्टैस्तस्मै याम्यात्मने नमः ।
यैर्भगिन्यःसुवासिन्यो वस्त्रदानादितोषिताः ॥६६
न तेषा वत्सरं यावत्कलहो न रिपोर्भयम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्य धर्मकामार्थसाधनम् ॥६७
व्याख्यातं सकल पुत्र सरहस्यं मयाऽनघ ! ॥६८
यस्या तिथौ यमुनया यमराजदेवः
सभोजितःप्रतितिथौ स्वसृसौहृदेन ।
तस्मात्स्वसुःकरतलादिह यो हि भुङ्क्ते
प्राप्नोति वित्तशुभसपदमुत्तमा सः ॥६६

यमराष्ट्र के लिये सुखों का आवहन करने वाला उनका यह महोत्सव हुआ है इसी लिये यह तीनों लोकों में यमद्वितीया—इस नाम से विश्रुत है ।।६१।। इसी कारण से हे विप्र ! यमद्वितीया के दिन में बुधों को अपने घर में भोजन नहीं करना चाहिए प्रत्युत बड़े ही स्नेह के साथ अपनी भगिनी के हाथ से ही पुष्टि के वर्धन करने वाला भोजन करना चाहिए ।।६२।। विधान के साथ बहिनों के लिये दान देने चाहिए और वे दान स्वर्ण-अलंकार तथा वस्त्र आदि होने चाहिए। पूजा एवं सत्कार से समन्वित सहजा भगिनी के हाथ से बल का वर्धन करने वाला भोजन करना चाहिए ।।६३-६४।। ऊर्ज मास में शुक्ल पक्ष में द्वितीया तिथि में पूजित हुआ यमराज तर्पित हो जाता है जो कि महिष पर समारूढ है और दण्ड तथा मुद्‌गर को धारण करने वाला प्रभु है ।।६५।। जो परम प्रसन्न किंकरों से वेष्टित हैं ऐसे उन परमात्मा के लिये नमस्कार है। जिन्होंने अपनी भगिनियों को जो सुवासिनी हैं, वस्त्र और दानादि से तोषित कर दिया है उनको पूरे वर्ष तक किसी प्रकार का कलह नहीं होता है और न किसी शत्रु से ही भय होता है। यह परम धन्य-यश के प्रदान करने वाला—आयु का वर्धन करने वाला और धर्म, अर्थ और काम का साधन है। हे पुत्र ! हे अनघ ! मैंने इसको रहस्य के सहित सम्पूर्ण व्याख्यान कर दिया है ।।६६-६८।। जिस तिथि में यमुना-भगिनी के द्वारा यमराज देव भाई को भली-भाँति भोजन कराया गया था। यह भोजन भी प्रत्येक तिथि में भगिनी के सौहार्द के साथ कराया गया था। इसी से इस संसार में जो पुरुष अपनी बहिन के हाथ से भोजन उस तिथि में किया करता है वह पुरुष उत्तम वित्त की शुभ सम्पदा को प्राप्त किया करता है ।।६९।।

।। माघ माहात्म्य वर्णन ।।

अधुना माघमाहात्म्यं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम।
पृच्छते कार्तवीर्याय दत्तात्रेयेण भाषितम् ।।१

दत्तात्रेयं हरिं साक्षाद्वसन्तं सह्यपर्वते ।
पप्रच्छ तं द्विज गत्वा राजा माहिष्मतीपतिः ॥२
भगवन्योगिनाश्रेष्ठ सर्वधर्मा श्रुता मया ।
माघस्नानफल ब्रूहि कृपया मम सुव्रत ॥३
श्रूयता नृपशार्दूल एतत्प्रश्नोत्तरं शुभम् ।
ब्रह्मणोक्तं पुरा ह्येतन्नारदाय महात्मने ॥४
तत्सर्वं कथयिष्यामि माघस्नानफल महत् ।
यथादेशं यथातीर्थं यथाविधि यथाक्रियम् ॥५
अस्मिन्वै भारते वर्षे कर्मभूमौ विशेषतः ।
अमाघस्नायिना नृणा निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥६

महामहिम वसिष्ठजी ने कहा—हे नृपोत्तम ! अब मैं माघ का माहात्म्य को कहता हूँ । इसको पूछने वाले कार्त्तवीर्य को दत्तात्रेय ने कहा था ॥१॥ सह्याद्रि पर निवास करने वाले साक्षात् हरि श्री दत्तात्रेय द्विज श्रेष्ठ से माहिष्मती के स्वामी राजा ने उनके समीप मे जाकर पूछा था ॥२॥ सहस्रार्जुन ने कहा—हे भगवन् ! आप तो योगियो मे परम श्रेष्ठ हैं । हे सुव्रत ! वैसे तो मैंने सभी धर्मों के विषय मे श्रवण किया है । अब आप मुझ पर अनुग्रह करके माघ स्नान का जो पुण्य फल होता हो उसे वर्णन कीजिए ॥३॥ भगवान् दत्तात्रेय ने कहा—हे नृप शार्दूल ! इस किये हुए आपके प्रश्न का परम शुभ उत्तर सुनिये । पहिले समय मे ब्रह्माजी ने महान् आत्मा वाले देवर्षि नारदजी से यह कहा था ॥४॥ वह सभी माघ मास के स्नान का महान् फल मैं कहूँगा और देश के अनुसार, तीर्थ के अनुरूप, विधि-विधान पूर्वक और क्रिया के अनुसार ही बतलाऊंगा ॥५॥ यह भारत वर्ष विशेष रूप से कर्मों के सम्पादन करने की भूमि है । इसमे उत्पन्न होकर भी जो मनुष्य माघ मास मे स्नान करने वाले नही हैं उनका तो जन्म ही सर्वथा निष्फल कहा गया है ॥६॥

असूर्यं गगनं यद्वदचन्द्रमुडुमण्डलम् ।
तद्वन्नाभाति सत्कर्म माघस्नान विना नृप ॥७

व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः ।
माघमज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः ॥८
न समं विद्यते किंचित्तेजःसौरेणतेजसा ।
तद्वत्स्नानेन माघस्य न समाःक्रतुजाःक्रियाः ॥६
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये ।
माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः ॥१०
किं रक्षितेन देहेन सुपुष्टेन बलीयसा ।
अध्रुवेणाप्यशुचिना माघस्नानं विना भवेत् ॥११
अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मासक्षतजलेपनम् ।
चर्मावनद्धं दुर्गन्ध पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥१२
जराशोकविपद्व्याप्तं रोगमन्दिरमातुरम् ।
रजस्वलमनित्यं च सर्वदोषसमाश्रयम् ॥१३
परोपतापितापार्तं परद्रोहि परंविषम् ।
लोलुपं पिशुनं क्रूरं कृतघ्नं क्षणिकं तथा ॥१४

हे नृप ! जिस प्रकार से बिना सूर्य वाला आकाश और बिना चन्द्रमा के उडुगण शोभित नही होते हैं ठीक उसी तरह माघ मास मे स्नान के बिना किया हुआ सत्कर्म भी शोभा युक्त नही होता है ॥७॥ व्रत-दान और तपस्या से भगवान् श्री हरि उतने प्रसन्न नही होते हैं जिस तरह से माघ मास के मज्जन मात्र से ही केशव प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं ॥८॥ सूर्य के तेज के समान अन्य कोई भी तेज नही होता है उसी भाँति माघ के स्नान के तुल्य क्रतुओ से उत्पन्न होने वाली क्रियाऐं नही हैं ॥६॥ भगवान् वासुदेव की प्रीति प्राप्त करने के लिये और सब प्रकार के पापों का अपनोदन करने के वास्ते तथा स्वर्ग के वास का लाभ प्राप्त करने के वास्ते मनुष्य को माघ मास मे स्नान अवश्य ही करना ही चाहिए ॥१०॥ सुपुष्ट, बलवान् और सुरक्षित तथा अध्रुव (नाशवान तथा अचिर स्थायी) एवं अशुचि देह के रखने से भी क्या लाभ है यदि माघ का स्नान नही किया गया है । अर्थात् माघ स्नान के बिना देह की सार्थकता ही नही होती है ॥११॥ अब मानव देह का स्वरूप बतलाते

हुए कहते हैं कि यह मानव देह हड्डियों का एक स्तम्भ है जो स्नायुओं से बँधा हुआ है तथा फिर मांस और रुधिर से लिप्त हो रहा है और चमड़े से आवृत है। यह दुर्गन्ध वाला और मूत्र एवं मल का पात्र है अर्थात् इसमें बुरी जो गन्ध है और मल मूत्र भरा हुआ है ॥१२॥ बुढ़ापा–शोक और विपत्तियों से भी यह व्याप्त रहा करता है। रोगों का तो यह एक तरह से घर ही है न मालूम कितने रोग भरे हुए हैं चाहे जब कोई उखड़ आता है। यह मानव का देह आतुर–रजस्वल–अनित्य और सभी दोषों का आश्रय होता है ॥१३॥ दूसरों को उपताप देने वाला–स्वयं भी तापों से आर्त्त–दूसरों से द्रोह रखने वाला–परम विष–लोलुप–पिशुन–क्रूर–कृतघ्न और क्षणिक है ॥१४॥

दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं दोषत्रयसमन्वितम्।
अशुचि स्रावि सच्छिद्रं तापत्रयविमोहितम् ॥१५
निसर्गतोऽधर्मरतं तृष्णाशतसमाकुलम्।
कामक्रोधमहालोभं नरकद्वारसंस्थितम् ॥१६
क्रिमिविड्भस्म भवति परिणामे शुनाहविः।
ईदृक्छरीरं व्यर्थं हि माघस्नान विवर्जितम् ॥१७
बुद्बुदा इव तोयेषु पूतिका इव जन्तुषु।
जायन्ते मरणायैवमाघस्नानविवर्जिताः ॥१८
अवैष्णवो हतो विप्रो हतं श्राद्धमयोगि च।
अब्रह्मण्यं हतं क्षेत्रमनाचारं हतं कुलम् ॥१९
सदम्भश्च हतो धर्मः क्रोधेनैव हतं तपः।
अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥२०
गुर्वभक्ता हता नारी ब्रह्मचारी तथा हतः।
अदीप्तेऽग्नौ हतो होमो हता भुक्तिरसाक्षिका ॥२१

मानव का यह देह ऐसा है जो कभी भी भरा पूरा नहीं होता है–यह दुर्धर—दुष्ट और तीन दोषों से युक्त रहता है। यह अपवित्र–स्राव करने वाला अर्थात् विभिन्न रूपों वाले मलों का स्राव बराबर किसी न किसी छिद्र से सदा होता ही रहा करता है। छिद्रों से युक्त है और तीन

प्रकार के (आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक) तापो से विशेष रूप से मोहित रहने वाला है ।।१५।। स्वभाव से इस मानव देह की रति अधर्म की ओर ही रहा करती है और इसमे सैकडो ही तृष्णाऐं भरी हुई हैं जिनसे यह सदा घिरा-बँधा-सा रहता है । तीन जो मुख्य नरक के द्वार माने गये हैं उन तीनो काम-क्रोध और महा लोभ के द्वार इसमे अच्छी तरह स्थित रहा करते हैं ।।१६।। अन्त मे प्राणो के निकलने के पश्चात् कृमि—विड् और भस्म ये तीन ही इसकी गतियाँ होती हैं तथा परिणाम मे यह श्वानो का हवि होता है । इस तरह का जो यह मानव का शरीर है वह यदि माघ स्नान इससे नही किया गया है तो व्यर्थ ही है ।।१७।। जो मनुष्य माघ स्नान से वंचित हैं वे जल मे बुलबुलो की भाँति तथा जन्तुओ मे पूतिकाओ की तरह केवल मरण के लिये ही उत्पन्न हुआ करते हैं क्योंकि अन्य किञ्चिन्मात्र भी इनकी सार्थकता है ही नही ।।१८।। जो विप्र वैष्णव नही है वह हत ही है और जो श्राद्ध अपोगी होता है वह भी नष्ट सा ही होता है । जो क्षेत्र अब्रह्मण्य है वह हत है और जिसमे आचार का अभाव रहता है वह कुल भी विनष्ट जैसा ही होता है ।।१९।। जिस धर्म मे दम्भ की कुछ भी मात्रा रहती है वह छलयुक्त धर्म हत है और क्रोध से तप की हानि होती है । जो ज्ञान विचलासा रहता है और दृढ नही है वह हत है । प्रमाद से श्रुत हत हो जाया करता है ।।२०।। जो नारी अपने स्वामी की भक्त नही है वह हत प्राय होती है और जो ब्रह्मचारी है वह ऐसी नारी से नष्ट हो जाया करता है । जो अग्नि अच्छी तरह से दीप्त नही होती है उसमे किया हुआ होम हत होता है और असाक्षिका भुक्ति हत होती है ।।२१।।

उपजीव्या हता कन्या स्वार्थे पाकक्रियाहता ।
शूद्रभिक्षो हतो याग.कृपणस्य हत धनम् ।।२२
अनभ्यासा हता विद्या हतो राजा विरोधकृत् ।
जीवनार्थं हत तीर्थं जीवनार्थं हत व्रतम् ।।२३
असत्या च हता वाणी तथा पैशुन्यवादिनी ।
सदिग्धश्च हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः ।।२४

हतमश्रोत्रिये दानं हतो लोकश्च नास्तिकः ।
अश्रद्धया हतं सर्वं कृतं यत्पारलौकिकम् ॥२५
इहलोको हतो नृणां दरिद्राणां यथा नृप ।
मनुष्याणां तथा जन्म माघस्नानं विना हतम् ॥२६
मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ ।
कथं पापैःप्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत् ॥२७
माघमासे रटन्त्याप:किंचिदभ्युदिते रवौ ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे ॥२८

जो कन्या उप जीव्य हो वह हत होती है और जो केवल अपने ही लिये की जावे वह पाक को किया भी हत है । जिस याग में शूद्र भिक्षु हो वह याग भी नष्ट होता है तथा कंजूस मनुष्य का धन किसी के भी अर्थ का साधक नहीं होता है अतएव हत ही होता है ॥२२॥ जो विद्या सीख कर अभ्यास में नहीं लाई जाती है वह नष्ट हो जाती है और जो विरोध करने वाला राजा होता है वह नष्ट हो जाता है । केवल जीवन के ही लिये जो तीर्थ एवं व्रत किये जाते हैं वे भी हत हैं । जो वाणी सत्य से रहित तथा पैशुन्य (चुगली) के बोलने वाली है वह हत होती है ॥२३-२४॥ जिस मन्त्र में सन्देह उत्पन्न होता हो कि यह फलदाता होगा या नहीं—वह मन्त्र जाप भी हत होता है तथा चित्त में व्यग्रता रखते हुए किसी भी मन्त्र का जाप करना भी हत होता है । जो श्रोत्रिय नहीं है ऐसे विप्र को दिया हुआ दान फल शून्य होता है तथा ईश्वर की सत्ता को न मानने वाला नास्तिक लोक भी हत होता है । बिना श्रद्धा भाव के परलोक मे कल्याण के लिये किया हुआ सभी कर्म हत होता है ॥२५॥ हे नृप ! जो दरिद्र मानव होते हैं उनका यह लोक ही हत प्रायः है उसी भाँति माघ स्नान के बिना मनुष्यों का यह मानव-जीवन भी नष्ट ही होता है ॥२६॥ मकर राशि पर जब सूर्य संक्रमण करता है उस समय में रवि के उदित होने पर जो स्नान नहीं करता है वह कैसे अपने किये हुए पापों से मुक्त हो सकता है और किस प्रकार से स्वर्ग में गमन कर सकता है ? अर्थात् न तो उसके पापों से मुक्ति ही

होती है और न स्वर्ग मे गमन ही होता है क्योंकि माघ स्नान से उत्तम अन्य कोई ऐसा सुलभ साधन है ही नही ।।२७।। माघ मास मे सूर्य के समुदित हो जाने पर जल यह रटन लगाया करते हैं हम कौन से ब्रह्मघ्न-सुरापान करने वाले और पतित को पवित्र करें ।।२८।।

उपपापानि सर्वाणि पातकानि महान्त्यपि ।।२६
भस्मीभवन्ति सर्वाणि माघस्नायिनि मानवे ।।३०
कम्पन्ते सर्वपापानि माघस्नानसमागमे ।
नाशकालोऽयमस्माक यदि स्नास्यति वारिणि ।।३१
एव क्रोशन्ति पापानि दृष्ट्वा स्नानोद्यत नरम् ।
पावका इव दीप्यन्ते माघस्नानैर्नरोत्तमाः ।।:२
विमुक्ताःसर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः ।
आर्द्र शुष्क लघुस्थूल वाड्मन कर्मभि कृतम् ।।३३
माघस्नान दहेत्पाप पावकःसमिधो यथा ।
प्रामादिक च यत्पाप ज्ञानाज्ञानकृत च यत् ।।३४
स्नानमात्रेण तन्नश्येन्मकरस्थे दिवाकरे ।
निष्पापास्त्रिदिव यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ।।३५

जितने भी उप पातक हैं वे सब और जो महान् पातक होते हैं वे भी सब माघ मे स्नान करने वाले मानव के जल कर भस्म हो जाया करते हैं ।।२६-३०।। माघ स्नान के समागम होने पर ही समस्त पाप काँपने लगते हैं कि अब हमारे नाश का समय उपस्थित हो गया है यदि यह पापी जिसका आश्रय हमने किया है जल मे स्नान कर लेगा ।।३१।। माघ मे स्नान करने के लिये उद्यत मानव को देख कर पाप इसी तरह आक्रोश किया करते हैं। माघ स्नान से मनुष्य अग्नि के समान देदीप्यमान हो जाया करते हैं ।।३२।। समस्त पापो से विमुक्त हुए मनुष्य ऐसे ही प्रकाशवान् हो जाया करते हैं जैसे मेघाच्छन्न चन्द्रमा मेघो से छूट कर परम स्वच्छ दिखलाई दिया करता है। आर्द्र-शुष्क लघु-स्थूल वाणी, मन और कर्म के द्वारा किया हुआ माघ स्नान समिधाओ को अग्नि के तुल्य ही पाप को दग्ध कर दिया करता है। प्रामादिक अर्थात्

प्रमाद से किया हुआ तथा ज्ञान और अज्ञान से किया हुआ जो पाप है वह सभी मकर में स्थित सूर्य के होने पर केवल स्नान मात्र से ही नष्ट हो जाता है । जो निष्पाप मनुष्य होते हैं वे ही स्वर्ग लोक को जाया करते हैं क्योंकि जो महान् मापित्र भी होते हैं वे भी माघ स्नान करने से पूर्णतया शुद्ध हो जाया करते हैं ॥३३-३५॥

संदेहो नाऽत्र कर्तव्यो माघस्नाने नराधिप ! ।
सर्वेऽधिकारिणो माघे विष्णुभक्तौ यथा नृप ! ॥३६
सर्वेषां स्वर्गदो माघःसर्वेषां पापनाशनः ।
एष एव परो मन्त्रो ह्येतदेव परंतपः ॥३७
प्रायश्चित्तं परं चैतन्माघस्नानमनुत्तमम् ।
नृणां जन्मान्तराभ्यासान्माघस्नाने मतिर्भवेत् ॥३८
अध्यात्मज्ञानकौशल्यं जन्माभ्यासाद्यथा नृप ।
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदम् ॥३९
पावनं पावनानां च माघस्नानं परं नृप ।
स्नान्ति माघे न ये राजन्सर्वकामफलप्रदे ॥४०
कथं ते भुञ्जते भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।
शृणु राजन्महाश्चर्यं माघस्नानप्रभावजम् ॥४१

हे नराधिप ! इस माघ स्नान का इतना महान् फल होता है—इस में आपको बिल्कुल भी सन्देह नही करना चाहिए । हे नृप ! जिस तरह से भगवान् विष्णु की भक्ति करने का सब को अधिकार हुआ करता है उसी तरह से माघ में स्नान के भी सभी अधिकारी हुआ करते हैं ॥३६॥ यह माघ मास ऐसी महामहिमा वाला है कि सब को स्वर्ग देने वाला है और सभी के पापो का विनाश कर देने वाला है । यही एक सर्वोपरि स्थित पर मन्त्र है और यही एक मात्र सब से श्रेष्ठ परम तप है ॥३७॥ यह अत्युत्तम माघ स्नान सबसे श्रेष्ठ प्रायश्चित्त होता है । मनुष्यों की मति कई एक जन्मो के अभ्यास से ही माघ स्नान में हुआ करती है ॥३८॥ हे नृप ! जिस तरह से अध्यात्म ज्ञान की कुशलता जन्म-जन्मान्तरो के अभ्यास करते रहने पर ही हुआ करती है, जोकि

इस संसार के कीच के आलेप को धो डालने मे दक्ष है। जो भी पावन हैं उन सब में परमोत्तम पावन यह माघ का स्नान होता है। हे राजन्! जो लोग सब मनोरथों को प्रदान करने वाले इस माघ में स्नान नही किया करते हैं वे चन्द्र सूर्य ग्रहों के समान भोगों को कैसे भोग सकते हैं? अर्थात् उन्हें भोगों का उपभोग प्राप्त ही नही हो सकता है। हे राजन्! इस माघ मास के स्नान के प्रभाव से समुत्पन्न एक महान् आश्चर्य युक्त घटना का श्रवण करो ॥३६-४१॥

कुब्जिका नाम कल्याणी ब्राह्मणी भृगुवंशजा ।
बालवैधव्यदुःखार्ता तपस्तेपे सुदुस्तरम् ॥४२
विन्ध्यपादे महाक्षेत्रे रेवाकपिलसंगमे ।
तत्र सा व्रतिनी भूत्वा नारायणपरायणा ॥४३
सदाचारवती नित्यं नित्यं सङ्गविवर्जिता ।
जितेन्द्रिया जितक्रोधा सत्यवागल्पभाषिणी ॥४४
सुशीला दानशीला च देहशोषणशालिनी ।
पितृदेवद्विजेभ्यश्च दत्त्वा हुत्वा तथानले ॥४५
षष्ठे काले च सा भुङ्क्ते ह्युञ्छवृत्तिःसदा नृप ।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रपाराकतप्तकृच्छ्रादिभिर्व्रतैः ॥४६
पुण्याश्रयतिःसा मासान्नर्मदायाश्च रोधसि ।
एवं तया तपस्विन्या वल्कलिन्या सुशीलया ॥४७
सुमहासत्वशालिन्या धृतिसंतोषयुक्तया ।
षष्टिर्माघास्तया स्नाता रेवाकपिलसंगमे ॥४८
ततःसा तपसा क्षीणा तस्मिंस्तीर्थे मृता नृप ।
माघस्नानजपुण्येन तेन सा वैष्णवेपुरे ॥४९

एक भृगु के वंश मे समुत्पन्न कुब्जिका नाम वाली कल्याणी ब्राह्मणी थी। यह बिचारी बाल्यावस्था में ही विधवा होगई थी. उस वैधव्य के दुःख से अत्यन्त आर्त्त होकर इसने दुस्तर तपश्चर्या का आरम्भ कर दिया था ॥४२॥ विन्ध्याचल के पाद मे महाक्षेत्र में जहाँ पर रेवा कपिल का संगम है वहीं पर, उसने व्रत वाली हो कर, तथा भगवान्

नारायण में ही तत्पर होती हुई तपस्या की थी ॥४३॥ यह नित्य ही सदाचार वाली और सङ्ग से रहित रहा करती थी—इन्द्रियों को जीतने वाली—क्रोध पर नियन्त्रण रखने वाली—सर्वदा सत्य और अत्यन्त भाषण करने वाली होकर रहा करती थी ॥४४॥ सुन्दर शील से समायुक्त दानशील और देह के शोषण करने के स्वभाव वाली थी। पितृगण—देवता और द्विजों को दान देकर तथा अग्नि में हवन करके ही षष्ठ काल में वह भोजन किया करती थी और वह भी सदा हे नृप! शिलो-ञ्छवृत्ति से किया करती थी। वह कृच्छ्र—अति कृच्छ्र—पाराक—तप्त कृच्छ्र आदि जो महान् शुद्धिकारक व्रत हैं उन से भी वह युक्त रहा करती थी ॥४५-४६॥ वह नर्मदा के तट पर ही पुण्य मासों को बिताया करती थी। इस तरह से वल्कल धारण करने वाली—सुशील—सुमहा-सत्व शालिनी—धैर्य और सन्तोष से युक्त उस तपस्विनी ने उस रेवा कपिल के संगम में साठ माघों का स्नान किया था ॥४७-४८॥ हे नृप! फिर वह तपस्या से बहुत क्षीण होकर उसी तीर्थ में मृत होगई थी। इन माघों के स्नान से उत्पन्न पुन्त से वह वैष्णवपुर में निवास करने वाली होगई थी ॥४९॥

उवास प्रमुदायुक्ता चतुर्युगसहस्रकम् ।
सुन्दोपसुन्दनाशाय पश्चात्पद्मभवात्पुनः ॥५०
तिलोत्तमेति नाम्ना सा ब्रह्मलोकेऽवतारिता ।
तेन पुण्यस्य शेषेण रूपस्यैकायनं ययौ ॥५१
अयोनिजाऽवतारत्नं देवानामपि मोहिनी ।
लावण्यह्लादिनी तन्वी साऽभूदप्सरसा वरा ॥५२
निपुणस्य विधेः स्रष्टुं नमाश्चर्यकारिणी ।
तामुत्पाद्य विधाता वै तुष्टोऽनुज्ञां तदा ददौ ॥५३
एणशावाक्षि ! गच्छ त्वं दैत्यनाशाय सत्वरम् ।
ततः सा ब्रह्मणोलोकाद्वीणामादाय भामिनी ॥५४
गता पुष्करमार्गेण यत्र तौ देववैरिणौ ।
तत्र स्नात्वा तु रेवायाः पवित्रे निर्मले जले ॥५५

परिधायाम्बर रक्तं बन्धूककुसुमप्रभम् ।
रणद्वलयिनी चारुशिञ्जन्मेखलनूपुरा ॥५६
लोलमुक्तावली कण्ठी चलत्कुण्डलशोभना ।
माधवीकुसुमापीडा कङ्केलीविटपे स्थिता ॥५७

वह वैष्णवपुर मे अत्यन्त ही आनन्द से युक्त होकर एक सहस्र चारो युगो की चौकडी पर्यन्त वहाँ पर निवास करने वाली रही थी फिर सुन्द–उपसुन्द के विनाश करने के पीछे पैदा हुई थी ॥५०॥ वह तिलोत्तमा–इस नाम से ब्रह्मलोक मे अवतार धारण करने वाली हुई थी। उस पुण्य के शेष भाग के होने के कारण से वह रूप–लावण्य का एक अयन बन गयी थी ॥५१॥ वह अपानिशा अबलाओ मे रत्न के तुल्य थी जो देवगणो को भी मोहित करने वाली हुई थी। लावण्य की ह्लादिनी के समान वह तन्वी सब अप्सराओ मे परम श्रेष्ठ थी ॥५२॥ जो सृजन करने वाले अत्यन्त निपुण विधाता हैं उनको भी निश्चय ही आश्चर्य मे डुबा देने वाली थी। उसका उत्पादन करके विधाता अत्यत ही तुष्ट होगये थे और उस समय मे उन्होंने उसे अनुज्ञा दी थी ॥५३॥ हे एणशावाक्षि ! अर्थात् हिरन के बच्चे के समान नेत्रो वाली ! तुम दैत्यो के विनाश करने के लिये शीघ्र ही चली जाओ। इसके पश्चात् ब्रह्म लोक से तुरन्त ही भामिनी उसने वीणा ग्रहण करके तयारी करदी थी और वह पुष्कर के मार्ग से वहाँ पहुँच गयी थी जहाँ पर वे दोनों देवगण के वैरी रहा करते थे। वहाँ पर रेवा नदी के परम पवित्र और निर्मल जल मे स्नान किया था। फिर बन्धूक के समान लाल रङ्ग वाला वस्त्र उसने धारण किया था और रणत्कार करने वाले वलयो को धारण करने वाली तथा सुन्दर शिंजित मेखला और नूपुरो वाली होगई थी। ॥५४-५६॥ उसके कण्ठ मे चचल मुक्तावलि थी और हिलने वाले कुण्डलो से वह शोभायमाना हो रही थी। माधवी कुसुमो के आपीड वाली वह कङ्केली विटप पर स्थित होगई थी ॥५७॥

गायन्ती सुस्वर साऽपि पीडयन्ती तु वल्लकीम् ।
स्वरपट्क मूर्च्छयन्ती सुस्निग्ध कोमल कलम् ॥५८

इत्थं तिलोत्तमा बाला तिष्ठन्त्यशोककानने ।
दृष्टा दैत्यभटैरिन्दोःकलेव सुखदा हृदि ॥५९

ता दृष्ट्वा विस्मितैराजन्सानन्दैःसैनिकैर्भृशम् ।
त्वरमाणैरदृष्टैव गत्वा सुन्दोपसुन्दयोः ॥६०

कथिता संभ्रमेणैव वर्णयित्वा पुनःपुनः ।
हे दैत्यौ न विजानीमो देवी वा दानवी नुकिम् ॥६१

नागाङ्गनाऽथ वा यक्षी स्त्रीरत्नं सर्वथा तु सा ।
युवा रत्नभुजौ लोके रत्नभूता हि साऽबला ॥६२

वर्त्तते नातिदूरेऽग्रे ह्यशोके शोकहारिणी ।
गत्वा ता पश्यतं शीघ्रं मन्मथस्याऽपि मोहिनीम् ॥६३

वह वहाँ पर सुन्दर स्वरों के साथ गायन करती हुई अपनी वीणा का वादन कर रही थी। परम सुस्निग्ध-कोमल और मन्द ही स्वरों को मूर्च्छित कर रही थी ॥५८॥ इस प्रकार से वह बाला तिलोत्तमा उस अशोक कानन में स्थित हो रही थी। वहाँ पर दैत्यों के भटों ने उसको देखा था जो हृदय में चन्द्रमा की कला के समान सुख दान करने वाली थी ॥५९॥ हे राजन्! उसको देख कर अत्यन्त विस्मित होते हुए अत्यन्त आनन्द से युक्त सैनिकों ने उसे देखने के साथ ही शीघ्रता से गमन करके सुन्दोपसुन्दों के समीप में अपने आपको पहुँचा दिया था ॥६०॥ उन्होंने बारम्बार उसकी लावण्य-छटा का वर्णन कर करके बहुत ही सम्भ्रम के साथ उनसे कहा था। हे दैत्यवरो! हम नहीं जानते हैं कि वह ऐसी अद्भुत रूप लावण्य से परिपूर्ण कौन है—कोई देवी है या दानवी है ॥६१॥ या तो वह कोई नागों की अंगना है या यक्षिणी है, जो भी कोई हो किन्तु वह स्त्रियों में रत्न के समान अवश्य ही सब प्रकार से है। आप दोनों ही रत्नों के सुख का उपभोग करने वाले हैं और लोक में वह अबला रत्नभूता है ॥६२॥ यहाँ से वह अधिक दूर भी नहीं है और अशोक वन में ही शोक के हरण करने वाली विद्यमान है। वहाँ पर जाकर आप उसको स्वयं देखिये। वह इतनी सुन्दरी है जो साक्षात्

कामदेव को भी जो सुन्दर शिरोमणि कहा जाता है। अपनी रूप-सौन्दर्य की छटा से मोहित कर देने वाली है ॥६३॥

इति सेनापतीना तौ श्रुत्वा वाच मनोहराम् ।
चषक सीधुन(शीघ्रत)स्त्यक्त्वा विहाय जलसेचनम् ॥६४
उत्तमस्त्रीसहस्राणि त्यक्त्वा तस्माज्जलाशयात् ।
शतभारायसी क्रूरा कालदण्डोपमा गदाम् ॥६५
भिन्नाभिन्ना गृहीत्वा तु जवेनाभिप्लुत गतौ ।
यत्र शृङ्गारसज्जा सा हन्तुं चण्डीव सस्थिता ॥६६
राजन्सधुक्षयन्तीव दैत्ययोर्मन्मथानलम् ।
स्थित्वा तस्या पुरोजाल्मौ तद्रूपेण विमोहितौ ॥६७
विशेषान्मधुनामत्तावूचतुस्तौ परस्परम् ।
भ्रातर्विरम भार्येयं ममास्तु वरवर्णिनी ॥६८
त्वमेवार्यं त्यजैता मे भार्या तु मदिरेक्षणाम् ।
इत्याग्रहेण सरब्धौ मातङ्गाविव सोन्मदौ ॥६९
अन्योन्य कालनिर्दिष्टौ गदया जघ्नतुस्तदा ।
परस्परप्रहारेण गतासू पतितौ भुवि ॥७०

इस तरह की उन सेनापतियो की परम मनोहर उस वाणी का श्रवण करके उन्होने शीघ्र ही सुरा का जो चषक (प्याला) हाथ मे था उसका त्याग कर दिया था और जल मे सेचन की जो क्रीडा-विहार कर रहे थे उसको भी बन्द कर दिया था ॥६४॥ एक से एक उत्तम सहस्रो स्त्रियो को भी वही पर त्याग दिया था और उस जलाशय से निकल कर शत भारो के प्रमाण वाली एक लोहे की गदा को जो कि कालदण्ड के समान ही थी और महान् क्रूर थी ग्रहण कर लिया था। इस तरह से भिन्नाभिन्ना को लेकर बडे वेग से अभिप्लवन करते हुए वहा पर चल गये थे जहा पर शृङ्गार की सज्जा वह चण्डी की तरह हनन करने के लिए सस्थित थी ॥६५-६६॥ हे राजन् ! वह उन दोनो दैत्यो की कामाग्नि को अत्यन्त तीव्र करती हुई वहाँ विद्यमान हो रही थी। उसके रूप से विमोहित होकर वे दोनो आत्मा उसके आगे स्थित

हो गये थे ।।६७।। विशेष रूप से मदिरा पान से मत्त वे दोनो परस्पर मे बोले—हे भाई ! तुम रुक जाओ यह वरवर्णिनी मेरी भार्या हो जावेगी ।।६८।। हे आर्य ! आप इसको त्याग देवें यह मदिरेक्षणा को मेरी ही भार्या हो जाने दो—इस तरह से दोनो ही आग्रह कर रहे थे और ऐसे ही दोनो क्रोधाविष्ट हो गये थे और उ मत्त मातगों की भाँति बन गये थे ।।६९।। वे अन्योन्य म काल से निर्दिष्ट हो गये थे और दोनो ने परस्पर म एक दूसरे पर गदाओ का प्रहार किया था । इस तरह बराबर आपसी प्रहारो से दोनों मृत होकर भूमि मे गिर गये थे ।।७०।।

तौ मृतौ सैनिकैर्दृष्ट्वा कृत कोलाहलो महान् ।
कालरात्रिसमा केय हा किमेतदुपस्थितम् ।।७१
एव वदत्सु सैन्येपु दैत्यो सु दोपसुन्दको ।
पातयित्वा गिरे शृङ्गे ह्लादिनीव तिलोत्तमा ।।७२
प्रस्थिता गगन शीघ्र द्योतयन्ती दिशो दश ।
दवकार्यं तत कृत्वा आगता ब्रह्मण पुर' ।।७३
ततस्तुष्टेन देवेन विधिना सानुमोदिता ।
स्थान सूर्यरथे दत्त तव चन्द्रानने मया ।।७४
भुङ्क्ष्व भोगाननेवास्त्व यावत्सूर्योऽम्बरे स्थित. ।
इत्थ सा ब्राह्मणी राजन्भूत्वा चाप्सरसाम्वरा ।।७५
भुङ्क्तेऽद्यापि रवेर्लोकेमाघस्नानफल महत् ।
तस्मात्प्रयत्नतो राजञ्छुद्धाने सदा नरं. ।।७६
स्नातव्य मकरादित्ये वाञ्छद्भि परमागतिम् ।
नाऽनवाप्तोऽत्र तस्यास्ति पुरुषार्थोहिकश्चन ।।७७

सैनिकों ने उन दोनो को मृत हुए देख कर महान् कोलाहल किया था और कहने लगे थे—हा ! यह कौन काल रात्रि के समान यहाँ पर आकर उपस्थित हो गई है ? यह क्या हो गया है ? ।।७१।। उन सैनिकों के इस तरह से बोलने पर उन मृत सुन्द उपसु दोनो दैत्यो को ह्लादिनी के तुल्य तिलोत्तमा ने गिरि के शृग म गिरा कर वह अति शीघ्र दशों दिशाओं को अपन तज म प्रकाशित करती हुई आकाश म प्रस्थान कर

गयी थी। देवों के उस कार्य का सम्पादन करके वह फिर ब्रह्माजी के आगे उपस्थित हो गई थी ।।७२-७३।। इससे ब्रह्माजी बहुत ही प्रसन्न हुए थे और विधि ने उसका बहुत अधिक अनुमोदन किया था और कहा था—हे चन्द्रानने ! मैंने अब तुझको भगवान् भास्कर देव के रथ में स्थान दे दिया है ।।७४।। जब तक यह सूर्यदेव इस अम्बर में स्थित रहें तब तक तुम वहां पर अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग करो। हे राजन् ! इस प्रकार से वह ब्राह्मणी अप्सराओं मे परम श्रेष्ठ हो गई थी। इस समय तक भी वह सूर्य लोक में माघ स्नान के महान् फल का उपभोग कर रही है। इस लिये हे राजन् ! प्रयत्न पूर्वक सदा मनुष्यों को अति श्रद्धालु होकर मकरादित्य के अवसर पर स्नान करना चाहिए यदि परम श्रेष्ठ गति के प्राप्त करने की इच्छा हृदय में विद्यमान है। उस पुरुष को यहा पर कोई भी पुरुषार्थ अप्राप्त नहीं रहा करता है ।।७५-७७।।

नाऽक्षीणं पातकं किंचिन्माघे मज्जति यो नरः ।
तुलयन्ति न ते नाऽत्र यज्ञाःसर्वे सदक्षिणाः ।।७८
माघस्नानेन राजेन्द्र तीर्थेचैव विशेषतः ।
न चान्यत्स्वर्गदं कर्म न चान्यत्पापनाशनम् ।।७९
न चान्यन्मोक्षदं यस्मान्माघस्नानसमं भुवि ।।८०

जो मनुष्य माघ मे मज्जन किया करता है उसका कोई भी पातक अक्षीण नहीं रहा करता है। इसके साथ सभी प्रकार के दक्षिणा वाले यज्ञ भी यहा पर तुलना नहीं कर सकते हैं ।।७८।। हे राजेन्द्र ! तीर्थ में विशेष रूप से माघ स्नान के करने से फल होता है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा स्वर्ग के देने वाला कर्म नहीं है और न अन्य कोई पापों के नाश करने वाला ही कर्म होता है। ऐसा अन्य कोई कार्य मोक्ष का प्रदान करने वाला भी माघ स्नान के समान इस भूमण्डल में विद्यमान है। तात्पर्य यह है कि माघ स्नान ही सर्वोपरि परम श्रेष्ठ कर्म है जिसकी तुलना कोई भी अन्य कर्म कर ही नहीं सकता है ।।७९-८०।।

।। विष्णु-महिमा वर्णन ।।

श्रेष्ठा भक्तिस्तु का प्रोक्ता वद विश्वेश्वर प्रभो ।
येन विज्ञानमात्रेण नरा.सुखमवाप्नुयुः ।।१
तल्लीनचित्तः स पुमान्सा भक्तिः परमा मता ।
दयाधर्मपरो नित्य विष्णुधर्मेषु तत्परः ।।२
फलमूलजलाहारी शङ्खचक्रप्रधारकः ।
त्रिकालं पूजयेद्विष्णुं सा भक्ति सात्त्विकी मता ।।३
उत्तमा सात्त्विकी प्रोक्ता राजसी चैव मध्यमा ।।४
कनिष्ठा तामसीचैव त्रिविधा भक्तिरुच्यते ।।५
श्रीधरे तु प्रकर्त्तव्या मुक्तिकामफलेप्सुभिः ।
अहङ्कारेण रूपेण दम्भमात्सर्यमायया ।।६
ये कुर्वन्ति जना भक्ति तामसी सा उदाहृता ।
परस्योत्सादनार्थं वा दम्भमुद्दिश्य वाऽथवा ।।७
या भक्तिः क्रियते देवे तामसी सा प्रकीर्तिता ।
विषयान्प्रतिसंधाय यशऐश्वर्यमेव वा ।।८
अर्चादावर्चयेद्यो मा पृथग्भावः स राजसः ।
कर्मक्षयार्थे कर्त्तव्या ब्राह्मणैर्ज्ञानतत्परैः ।।९

जगदम्बा पार्वती ने कहा—हे विभो ! मैंने आपके द्वारा वर्णित कार्तिक का और माघ का माहात्म्य श्रवण किया है । अब तो मेरी यही इच्छा है कि मैं मुक्ति के प्रदान करने वाले उत्तम कर्म का श्रवण करूँ ।।१।। हे विश्व के स्वामिन् ! हे प्रभो ! आप मुझे यह बतलाइये कि श्रेष्ठ भक्ति कौन सी कही गयी है जिसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य सुख की प्राप्ति किया करते हैं । श्री महादेव जी ने कहा—पुमान् जिसमे लीन चित्त वाला हो जावे वही परम श्रेष्ठ भक्ति मानी गयी है । दया और धर्म मे परायण नित्य ही भगवान् विष्णु के धर्मो मे मनुष्य को तत्पर रहना चाहिए ।।२।। फल-मूल और जल का आहार करने वाला तथा शंख और चक्र का धारण करने वाला पुरुष तीनो कालो मे भगवान्

विष्णु का जो पूजन किया करता है उसी भक्ति को सात्विकी भक्ति माना गया है ॥३॥ सात्विकी भक्ति को उत्तम माना गया है–राजसी भक्ति मध्यम होती है और तामसी कनिष्ठ श्रेणी की होती है—इस तरह से तीन प्रकार की भक्ति कही जाती है ॥४ ५॥ मुक्ति काम फल की इच्छा रखने वालो को यह श्रीधर म करनी चाहिए। अहकार के रूप से–दम्भ से और मात्सर्य की माया से जो जन भक्ति किया करते हैं वह तामसी भक्ति उदाहृत की गयी है। दूसरो के उत्सादन करने के लिये अथवा दम्भ का उद्देश्य लेकर जो भक्ति देवता म की जाया करती है वही तामसी भक्ति कही गयी है। विषयो या अभिसन्धान करके यश अथवा ऐश्वर्यों का प्रतिस धान करक जो अर्चा आदि म मरा अभ्यर्चन किया करता है वह पृथग्भाव राजस होता है। ज्ञान मे परायण ब्राह्मणो के द्वारा कर्मों के क्षय के लिये ही भक्ति करनी चाहिए ॥६ ९॥

विष्णोर्ह्यात्मार्पणी बुद्धि सा भक्ति सात्विकी मता।
अतो वै सर्वथा देवि ससेव्य सर्वदा हरि ॥१०
तामसेन तु भावेन तामसत्व हि लभ्यते।
राजसो राजसेनैव सात्विकेन तु सात्विक ॥११
वेदाध्यायरत श्रीमान्नागद्वेषविवर्जित।
शङ्खचक्रधरो विप्र सर्वदा शुचिरुच्यत ॥१२
कर्मकाण्डे प्रवृत्तो य सर्वदा विष्णुनिन्दक।
निन्दकस्तज्जनाना च महाचाण्डालउच्यते ॥१३
वेदाध्यायरतानित्य नित्य वै यज्ञयाजका।
अग्निहोत्ररता नित्य विष्णुधर्मपराङ्मुखा॥
निन्दन्ति विष्णुर्धाश्च वेदवाह्या सुरेश्वरि ॥१४

भगवान् विष्णु की चरण सन्निधि म जो स्वात्म समर्पण कर देने वाली बुद्धि होती है उस भक्ति को सात्विकी भक्ति माना गया है। इसी लिय हे देवि! सब प्रकार से सर्वदा हरि का भली-भाँति से सेवन करना चाहिए ॥१०॥ तामस भाव मे तामसत्व प्राप्त होता है। राजस भाव से राजसत्व की उपलब्धि होती है और सात्विक भाव से सात्विकत्व

हुआ करता है। वेदों के अध्ययन में रति रखने वाला—राग और द्वेष से रहित—शंख और चक्र को धारण करने वाला श्रीयुक्त विप्र सर्वदा पवित्र कहा जाया करता है ॥११-१२॥ जो कर्मकाण्ड में जो प्रवृत्त रहा करता है और सर्वदा भगवान् विष्णु की निन्दा करता है तथा विष्णु के भक्तों की जो निन्दा किया करता है वह महान् चाण्डाल कहा जाता है ॥१३॥ जो नित्य ही वेदों के अध्ययनाध्यापन में रत रहते हैं और नित्य ही यज्ञों का याजन किया करते हैं एवं नित्य अग्निहोत्र करने में रति रखते हैं तथा विष्णु के धर्म में पराङ्मुख रहा करते हैं और विष्णु के धर्मों की बुराई किया करते हैं, हे सुरेश्वरि ! वे वेदबाह्य होते हैं ॥१४॥

कुर्वन्ति शान्तिं विबुधा प्रहृष्टाः
क्षेमं प्रकुर्वन्ति पितामहाद्याः ।
स्वस्ति प्रयच्छन्ति मुनीन्द्र मुख्या
गोविन्द भक्ति वहता नराणाम् ॥१५
शुभाग्रहा भूत पिशाच युक्ता
ब्रह्मादयो देवगणाः प्रसन्नाः ।
लक्ष्मीः स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च
गोविन्द भक्ति वहता नराणाम् ॥१६
गङ्गा गया नैमिष पुष्कराणि
काशी प्रयागः कुरुजाङ्गलानि ।
तिष्ठन्ति देहे कृतभक्तिपूर्वं
गोविन्द भक्ति वहता नराणाम् ॥१७
एवमाराधयेद्विद्वान्भगवन्तं श्रिया सह ।
कृतकृत्यो भवेन्नित्यं स विप्रो नात्र्त्रसंशयः ॥१८
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा शूद्रो वा सुरसत्तमे ।
भक्ति कुर्वन्तिशेषेण मुक्ति याति स वै नरः ॥१९

श्रीगोविन्द की भक्ति को वहन करने वाले मनुष्यों की शान्ति को विबुध गण परम प्रहृष्ट होकर किया करते हैं। जो पितामह आदि होते हैं वे उनका क्षेम करते हैं। मुनीन्द्रों में प्रमुख स्वस्ति (कल्याण)

प्रदान करते हैं ।।१५।। गोविन्द की भक्ति का वहन करने वाले नरो के भूत पिशाचो से युक्त ग्रह भी शुभ होते हैं और ब्रह्मा आदि देवगण परम प्रसन्न होते हैं तथा उनके घर मे लक्ष्मी स्थिर होकर रहा करती है। ।।१६।। जो श्री गोविन्द की भक्ति की करने वाले नर होते हैं उनके देह मे सदा गङ्गा—गया—नैमिष—पुष्कर—काशी-प्रयाग-कुरु-जाङ्गल आदि तीर्थ व्रत भक्ति पूर्वक स्थित रहा करते हैं ।।१७।। इसी प्रकार से विद्वान पुरुष को चाहिए कि श्री के सहित भगवान् का समाराधन करे। ऐसा करने पर वह विप्र नित्य ही कृत-कृत्य होता है—इसमे रचक मात्र भी सशय नही है ।।१८।। हे सुरसत्तमे ! क्षत्रिय हो या वैश्य हो अथवा शूद्र हो जो भी कोई हो भगवान् की भक्ति पूर्णतया किया करता है वह मनुष्य मुक्ति का लाभ प्राप्त किया करता है ।।१९।।

।। शालग्राम पूजन-माहात्म्य ।।

शालग्रामशिलाशुद्धामूर्त्तयस्सन्ति भूतले ।
तासा चैव तु मूर्त्तीना पूजन कतिधा स्मृतम् ।।१
ब्राह्मणै कति पूज्यास्ता. क्षत्रियैर्वा सुरेश्वर ! ।
वैश्यैर्वाऽपि कथ शूद्रै: स्त्रीभिर्वाऽपि समादिश ।।२
शालग्रामशिला पुण्या पवित्रा धर्मकारिणी ।
यस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्महा शुध्यते नरः ।।३
तद्गृह सर्वतीर्थाना प्रवर श्रुतिनोदितम् ।
यत्रैव सर्वदा मूर्ति शालग्रामशिला शुभा ।।४
ब्राह्मणै. पञ्चपूज्याः स्युश्चतस्र क्षत्रियैस्तथा ।
वैश्यैस्तिस्रस्तथा पूज्या एका पूज्या प्रयत्नतः ।।५
तस्या दर्शनमात्रेण शूद्रो मुक्तिमवाप्नुयात् ।
अनेन विधिना देवि ये नरा पूजयन्ति वै ।।६
भोगान्सर्वास्तस भुक्त्वा यान्ति विष्णो. पर पदम् ।
इय सा महती मूर्तिः सर्वदा पापहारिणी ।।७

जगज्जननी पार्वती ने कहा—हे भगवन् ! शालग्राम शिला इस भूतल मे परम शुद्ध मूर्त्तियाँ हैं । उन मूर्तियों का पूजन जो किया जाता है उसके कितने भेद हुआ करते हैं ? ॥१॥ हे सुरेश्वर ! उन शालग्राम शिलाओं की कितनी सख्या ब्राह्मणों के द्वारा पूजनी चाहिए—क्षत्रियों को कितनी तथा वैश्यो को कितनी समर्चित करनी चाहिए तथा शूद्रों के द्वारा और स्त्रियो को भी कितनी सख्या की पूजा करना उचित होता है—इसके विषय मे आप आज्ञा दीजिए ॥२॥ श्री महादेवजी ने कहा—शालग्राम की शिला परम पुण्यमय-पवित्र और धर्म कारिणी हुआ करती है जिसके दर्शन मात्र से ब्रह्म हत्यारा मनुष्य भी शुद्ध हो जाया करता है ॥३॥ वह घर समस्त तीर्थों से भी श्रेष्ठ होता है--ऐसा श्रुति ने प्रतिपादन किया है जहा पर यह परम शुभ शालग्राम शिला की भगवान् की मूर्ति सर्वदा विराजमान रहा करती है ॥४॥ ब्राह्मणो को पाँच सख्या का भजन करना चाहिए, क्षत्रियों को चार सख्या का पूजन करना चाहिए तथा वैश्यों को केवल तीन सख्या वाले शालग्राम शिलाओ का अर्चन करना चाहिए । अथवा प्रयत्न पूर्वक केवल एक ही शिला का पूजन करें ॥५॥ शालग्राम शिला के दर्शन मात्र से शूद्र मुक्ति को प्राप्त हो जाता है । हे देवि ! इस विधि से जो नर पूजन किया करते हैं वे समस्त भोगो का सुख वहा पर भोग कर अन्त मे विष्णु के परम पद को प्राप्त हो जाया करते हैं । यह ऐसी महत्व पूर्ण महती मूर्ति है जो सर्वदा पापो का हरण करने वाली है ॥६-७॥

कैलासाद्य फल देवि जायते पूजनाद्यतः ।
तत्र गङ्गा च यमुना गोदावरी सरस्वती ॥८
तिष्ठते च शिला यत्र सर्व तत्र न सशयः ।
किमत्र बहुनोक्तेन भूयो भूयो वरानने ॥९
पूजनं मनुजैः सम्यक्कर्त्तव्य मुक्तिमिच्छुभिः ।
भक्तिभावेन देवेशि येऽर्चयन्ति जनार्दनम् ॥१०
तेषा दर्शनमात्रेण ब्रह्महा शुध्यते जनः ।
दासभावेन ये शूद्राः स्वर्चन कुर्वते सदा ॥११

तेषां पुण्यं न जानन्ति ब्रह्माद्याश्च सुरेश्वरि ।
भक्तिभावेन ये विप्रा हरिमभ्यर्चयन्ति वै ॥१२
एकविंशतिकुलं तैस्तु तारितं तेषु जन्मसु ।
शङ्खचक्राङ्कितो यस्तु विप्रः पूजनमाचरेत् ॥१३
पूजितं तु जगत्सर्वं तेन विष्णुप्रपूजनात् ।
पितरः सवदन्त्यस्मत्कुले जाताश्च वैष्णवाः ॥१४

हे देवि ! जिसके पूजन से कैलासाद्य फल होता है। वहा पर गङ्गा–यमुना–गोदावरी–सरस्वती ये सब संस्थित रहा करती हैं जहाँ शालग्राम की शिला विद्यमान होती है। वहा सब ही रहते हैं–इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे वरानने ! यहाँ पर बारम्बार बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है ॥८-६॥ जो मुक्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य हैं उनको भली रीति से पूजन करना चाहिए। हे देवेशि ! भक्ति के भाव से जो भगवान् जनार्दन की अर्चना किया करते हैं उनके दर्शन मात्र से ही ब्राह्मण का हनन करने वाला मनुष्य शुद्ध हो जाया करता है। जो शूद्र दास भाव से सदा सुन्दर अर्चन करते हैं ॥१०-११॥ हे सुरेश्वरि ! ब्रह्मा आदि भी उनका जो पुण्य होता है उसे नहीं जानते हैं। जो विप्र भक्ति की भावना से हरि की अभ्यर्चना किया करते हैं उन्होंने उनके जन्मों में एक विंशति कुलों को तार दिया है। जो विप्र शंख चक्र के अङ्कों से चिह्नित होकर पूजन किया करता है उसने उस विष्णु के ही केवल पूजन करने से सम्पूर्ण जगत् की पूजा करली है। सब पितृगण कहा करते हैं कि हमारे कुल में वैष्णव उत्पन्न होगये हैं ॥१२-१४॥

तत्कुलं तारितं तैस्तु यावदाभूतसंप्लवम् ।
ते तु चास्मात्समुद्धृत्य नयन्ते विष्णुमन्दिरम् ॥१५
स एव दिवसो धन्यो धन्या मातास्य बान्धवाः ।
पिता तस्य च वै धन्यो धन्या वै सुहृदस्तथा ॥१६
सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणाः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते ॥१७

उपपातकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवानां च दर्शनात् ।।१८
पावकाइवदीप्यन्ते ये नरा वैष्णवा भुवि ।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्यइव चन्द्रमाः ।।१६
आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ।
तत्सर्वं नाशमायाति वैष्णवाना च दर्शनात् ।।२०
हिंसादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति दर्शनाद्वैष्णवस्यच ।।२१

जब तक आभूत सम्प्लव हो उन्होंने उस कुल को तार दिया है। वे हम को समुद्धृत करके विष्णु के मन्दिर मे लेजाते हैं। वह ही दिवस धन्य है, माता धन्य है और बान्धव भी धन्य हैं। उसका पिता धन्य है तथा सुहृदगण भी परम धन्य हैं सभी अत्यन्त धन्यतम जानने चाहिए जो विष्णु की भक्ति मे परायण हैं। उनके दर्शन मात्र से मनुष्य महान् पाप से प्रमुक्त हो जाता है ।।१५-१७।। समस्त उप पातक और महान् पातक वे सभी वैष्णवो के दर्शन मात्र से नष्ट हो जाते हैं ।।१८।। जो मनुष्य इस भूमण्डल पर वैष्णव हैं वे पावक की भाँति देदीप्यमान हुआ करते हैं। वैष्णव नर सभी पापो से विमुक्त हो जाते हैं जिस तरह से मेघो से चन्द्रमा मुक्त होकर अतीव विमल हो जाया करता है ।।१६।। आर्द्र—शुष्क—लघु और स्थूल जो वाणी—मन और कर्मों के द्वारा किया गया है वह सभी वैष्णवो के दर्शन मात्र से नाश को प्राप्त हो जाया करता है ।।२०।। हिंसा आदि का जो पाप है तथा ज्ञान और अज्ञान से किया हुआ जो पाप है वह भी सम्पूर्ण विष्णु के भक्त के दर्शन से विनष्ट हो जाया करता है ।।२१।।

निष्पापास्त्रिदिव यान्ति पापिष्ठा यान्ति शुद्धताम् ।
दर्शनादेव साधूना सत्य तुभ्यं मयोदितम् ।।२२
संसारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारदः ।
पावनः पावनाना च विष्णुभक्तो न संशयः ।।२३

प्रत्यहं विष्णुभक्ता ये स्मरन्ति मधुसूदनम् ।
ते तु विष्णुमया ज्ञेया विष्णुस्तत्रनसंशयः ॥२४
नवनीलघनश्याम नलिनायतलोचनम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरावृतम् ॥२५
कौस्तुभेन विराजन्त वनमालाधरं हरिम् ।
उल्लसत्कुण्डलज्योति.कपोलवदनश्रिया ॥२६
विराजित किरीटेन वलयाङ्गदनूपुरैः ।
प्रसन्नवदनाम्भोज चतुर्बाहु श्रियान्वितम् ॥२७
एवं ध्यायन्ति ये विप्रा विष्णुं चैव तु पार्वति ! ।
ते विप्रा विष्णुरूपाश्च वैष्णवास्ते न संशयः ॥२८
तेषां दर्शनमात्रेण भक्त्या वा भोजनेन वा ।
पूजनेन च देवेशि वैकुण्ठं लभते ध्रुवम् ॥२९

जो बिल्कुल पापों से रहित हैं उनकी त्रिदिव की प्राप्ति होती है और पापिष्ठ हैं वे शुद्धता को प्राप्त कर लिया करते हैं यह ऐसा ही साधु-पुरुषों के दर्शन से होता है । यह हमने तुमको बिल्कुल सच-सच बतला दिया है ॥२२॥ इस संसार के पापरूपी कीच के आलेपन के धोने में महान् कुशल और पावनों को भी पावन कर देने वाला भगवान् विष्णु का भक्त होता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥२३॥ जो विष्णु के भक्त प्रतिदिन मधुसूदन प्रभु का स्मरण किया करते हैं उनको विष्णु-मय ही जानना चाहिए । वहां पर साक्षात् विष्णु विराजमान रहते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२४॥ अब भगवान् विष्णु के ध्यान की रीति बतलायी जाती है—नवीन नील घन के समान श्याम वर्ण वाले—नलिन के तुल्य आयत लोचनों से युक्त—शङ्ख—चक्र—गदा और पद्म इन चार आयुधों के धारण करने वाले—पीताम्बर से समावृत वपु वाले—कौस्तुभ मणि से शोभित—वनमाला को धारण करने वाले—उल्लसित कुण्डलों की ज्योति के पड़ने से कपोल और मुख की शोभा से समन्वित-किरीट धारण करके विराजमान—वलय, अंगद और पुरों से संयुक्त प्रसन्न मुख कमल वाले—चार भुजाओं से सम्पन्न तथा श्री से समन्वित

श्री हरि का ध्यान कर स्मरण करना चाहिए ॥२५-२७॥ हे पार्वति ! इस उपर्युक्त रीति से जो विप्र विष्णु के स्वरूप का ध्यान किया करते है वे विप्र विष्णु के ही रूप वाले हैं। वे वैष्णव हैं—इसमे कुछ भी संशय का अवसर नही है। उनके केवल दर्शन से—भक्ति से अथवा भोजन कराने से हे देवेशि ! ऐसे विप्रो के पूजन से मनुष्य निश्चय ही वैकुण्ठ की प्राप्ति किया करते हैं ॥२८-२६॥

॥ श्रीविष्णु भगवान माहात्म्य ॥

अनन्त वासुदेवस्य कीदृशं स्मरणं स्मृतम्।
यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहो मानुषाणांप्रजायते ॥१
दृष्ट्वा तत्त्वेन देवेशि स्मराम्येन तु नित्यशः।
तृषातुरो यथा वारि तद्वद्विष्णुं स्मराम्यहम् ॥२
हिमेनाकुलित विश्व स्मरत्यग्नि यथा तथा।
तद्वदेव तु वै विष्णु स्मरन्तिविबुधादयः ॥३
पतिव्रता यथा नारी पति स्मरति नित्यशः।
तथा स्मरामि लोकेश विष्णुं विश्वेश्वरेश्वरम् ॥४
भयार्त्त. शरण यद्वदथ लोभी यथा धनम्।
पुत्रकामो यथा पुत्र तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥५
दूरस्थोऽपि यथा गेह चातको माधव यथा।
ब्रह्मविद्या ब्रह्मविदस्तथा विष्णु स्मराम्यहम् ॥६
हसा मानसमिच्छन्ति मुनयः स्मरण हरेः।
भक्ताश्च भक्तिमिच्छन्ति तथा विष्णु स्मराम्यहम् ॥७
प्राणिना वल्लभो देहो यत्र आत्माऽवतिष्ठते।
आयुर्वाञ्छन्ति ये जीवास्तथा विष्णु स्मराम्यहम् ॥८

जगदम्बा पार्वती ने कहा—हे स्वामिन् ! भगवान् वासुदेव के अनन्त स्मरण हैं। अब यह बतलाइये—किस प्रकार का स्मरण कहा गया है जिसका श्रवण करके मनुष्यो को पुन. मोह उत्पन्न न होवे ॥१॥ श्रीमहा-

देव ने कहा—हे देवेषि ! मैंने इसको तात्त्विक रूप से भली-भाँति देख व समझ भी लिया है तो भी मैं इसका नित्य ही अच्छी तरह से स्मरण किया करता हूँ जिस प्रकार से कोई अत्यन्त ही तृषा से आतुर हो जाता है तो वह जल का बड़ी लगन के साथ स्मरण किया करता है ठीक उसी भाँति मैं भी अत्यन्त आतुर होकर भगवान् विष्णु का स्मरण किया करता हूँ ॥२॥ जिस प्रकार से हिम से व्याकुल हुआ यह विश्व अग्नि का स्मरण किया करता है ठीक उसी तरह से देवगण आदि सब भगवान् विष्णु का स्मरण किया करते हैं ॥३॥ पतिव्रत धर्म का पूर्णतः पालन करने वाली नारी जैसे नित्य ही अपने पतिदेव का ही ध्यान-स्मरण किया करती है उसी भाँति मैं भी इन विश्व के स्वामियों के भी स्वामी लोक के ईश भगवान् विष्णु का स्मरण और ध्यान करता हूँ ॥४॥ भय से आर्त्त पुरुष जिस तरह अपने रक्षा करने वाले का और लोभी पुरुष धन का तथा पुत्र की कामना रखने वाला पुत्र का सर्वदा स्मरण करता है ठीक उसी तरह से मैं विष्णु का स्मरण करता हूं ॥५॥ दूर देश में भी स्थित रहने वाला जैसे अपने घर का, चातक माधव का और ब्रह्म के वेत्ता ब्रह्मविद्या का स्मरण किया करते हैं उसी भाँति मैं भगवान् विष्णु का स्मरण तथा ध्यान बराबर करता रहता हूँ ॥६॥ हंस पक्षी मानसरोवर की ही सर्वदा इच्छा रखते हैं और मुनिगण श्रीहरि के स्मरण को चाहते हैं, भगवान् के सच्चे भक्तगण भगवद्भक्ति की इच्छा रखते हैं उसी भाँति मैं भगवान् विष्णु का स्मरण करता हूँ ॥७॥ समस्त प्राणधारियों का यह देह परमप्रिय होता है जिसमें आत्मा अवस्थित रहा करता है जो जीव अपनी आयु की अधिकाधिक वाञ्छा रखते हैं ठीक उसी तरह से मैं विष्णु भगवान् का सर्वदा स्मरण एवं ध्यान किया करता हूँ ॥८॥

भ्रमराश्च यथापुष्पं चक्रवाका दिवाकरम् ।
यथात्मवल्लभा शक्ति तथा विष्णुं स्मराम्यहम् ॥९
अन्धेनाकुलिता लोका दीपं वाञ्छन्ति वै यथा ।
तथा वै पुरुषा लोके स्मरणं केशवस्य च ॥१०

यथाश्रमार्त्तविश्राममनिद्राव्यसनिनोयथा ।
गतालस्यायथाविद्यांतथाविष्णु स्मराम्यहम् ॥११
मातङ्गाःपार्वतीभूमिंसिंहा वनगजादिकम् ।
तथैवस्मरणविष्णोः कर्तव्यंपापभीरुभिः ॥१२
सूर्यकान्तेरवेर्योगाद्वह्निस्तत्रप्रजायते ।
एवं वै साधु संयोगाद्धरौ भक्तिः प्रजायते ॥१३
शीतरश्मेर्यथाकान्तश्चन्द्रयोगादपः श्रयेत् ।
एवं वैष्णवसंयोगान्मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥१४

भ्रमर (भौंरे) मधुर मधु प्राप्त करने के लिये जैसे सर्वदा पुष्पों की प्राप्ति की इच्छा मन मे रक्खा करते है और चक्रवाक पक्षी सूर्य के उदय काल की भावना रखते हैं क्योकि निशा काल मे चकवा चकवी का वियोग हो जाना कवि समय क्यात है तथा आत्म वल्लभ पुरुष भक्ति को चाहा करते हैं उसी तरह मैं विष्णु का स्मरण किया करता हूँ ॥६॥ अन्धकार से बेचैन हुए लोग दीप के प्रकाश को चाहा करते हैं उसी तरह से लोग केशव भगवान् का स्मरण करते हैं ॥१०॥ जिस तरह श्रम से आर्त्त विश्राम को—व्यसन शील निद्रा को और विगत आलस्य वाले विद्या को प्राप्त करते है उसी भाँति मैं विष्णु का स्मरण करता हूँ ॥११॥ मातग (हाथी) पर्वतो वाली भूमि को और सिंह वन गज आदि के स्थल को चाहते हैं ठीक उसी तरह से पापो से भयभीत पुरुषों को भगवान् विष्णु का स्मरण करना चाहिए ॥१२॥ सूर्यकान्त नाम वाली मणि से सूर्य के साथ योग हो जाने पर जैसे अग्नि समुत्पन्न हो जाया करती है इसी भाँति से साधु पुरुष के संयोग से हरि मे भक्ति की भावना का उदय हो जाया करता है ॥१३॥ चन्द्रकान्त मणि से चन्द्रमा के साथ सयोग होने से जैसे शीत रश्मियो की समुत्पत्ति हो जाया करती है एव जल का स्राव होने लगता है उसी तरह वैष्णवजनो के साथ सम्पर्क प्राप्त हो जाने से शाश्वती मुक्ति होती है ॥१४॥

कुमुद्वती यथा सोमं दृष्ट्वा पुष्पं विकासते ।
तद्वद्देव कृता भक्तिर्मुक्तिदा सर्वदा नृणाम् ॥१५

यथा नला या संत्रस्ता भ्रमरी स्मरणं चरेत् ।
तेन स्मरणयोगेन नलासारूप्यतामियात् ॥१६
गोपीभिर्जारबुद्धया च विष्णोश्च स्मरण कृतम् ।
ताश्च सायुज्यता नीतास्तया विष्णुं स्मराम्यहम् ॥१७
केऽपि वै दुष्टभावेन च्छद्मभावेन केचन ।
केचापि लोभभावेन निःस्पृहाश्चैव केचन ॥१८
भयस्या वा स्नेहभावेन द्वेषभावेन वा पुनः ।
केऽपि स्वामित्वभावेन बुद्धया वा बुद्धिपूर्वकम् ॥१९
येन केनापि भावेन चिन्तयन्ति जनार्दनम् ।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥२०
अहोविष्णोश्च माहात्म्यमद्भुतं लोमहर्षणम् ।
यदृच्छयापि स्मरणंत्रिधा मुक्तिप्रदायकम् ॥२१

कुमुदनी चन्द्रोदय को देख कर अपने मे पुष्पो का विकास किया करती है अर्थात् कुमोदिनी मे निशा काल मे ही पुष्प खिला करते हैं जब सूर्य का अभाव और चन्द्र का उदय होता है। उसी तरह से की हुई भक्ति सर्वदा मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाली होती है ॥१५॥ जैसे सत्रस्त भ्रमरी नला का स्मरण किया करती है और उस स्मरण के योग से वह नला की ही स्वरूपता को प्राप्त हो जाया करती है उसी भाँति निरन्तर स्मरण से भक्त विष्णु के सारूप्य को प्राप्त किया करते हैं ॥१६॥ व्रज की गोपियो ने जार की बुद्धि से ही श्रीकृष्ण का स्मरण किया था क्योकि उस समय मे प्रणय के भाव मे ही उनका ध्यान किया था और उनको इनके परम पुरुष होने का ज्ञान ही नही था न ऐसी भावना ही व्रजागनाओ के हृदय मे समुदित हुई थी तो भी वे सब सायुज्यता को प्राप्त करदी गयी थी। भगवान् विष्णु का स्मरण किसी भी भावना से क्यो न किया जावे सर्वदा उससे कल्याण ही होता है। मैं भी उसी तरह उनका निरन्तर स्मरण किया करता हूँ ॥१७॥ कुछ लोग दुष्टता की भावना से और कुछ लोग कपट के भाव से उनका स्मरण किया करते है कतिपय लोग लालच से तथा कुछ लोग विल्कुल निःस्पृह

होकर विष्णु का स्मरण करते हैं। भक्ति से, द्वेष की भावना से या स्नेह के भाव से उनका स्मरण किया जावे। कुछ लोग स्वामित्व के भाव से अथवा बुद्धि पूर्वक ज्ञान से उनका स्मरण करते हैं। कुछ भी हो, जिस किसी भी भाव से (बुरे या भले) जो जनार्दन प्रभु का चिंतन किया करते हैं वे इस लोक में पूर्ण सुखों का उपभोग करके अन्त में विष्णु के परम पद को चले जाते हैं ॥१८-२०॥ अहो! यह भगवान् विष्णु का माहात्म्य अत्यन्त ही अद्भुत है और लोम हर्षण है तथा यदृच्छा से भी इनका स्मरण तीन प्रकार से मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है ॥२१॥

न धनेन समृद्धेन विपुलाविद्यया तथा।
एकेन भक्तियोगेन समीपे दृश्यते क्षणात् ॥२२
सान्निध्येऽपि स्थितो दूरे नेत्रयोरञ्जनं यथा।
भक्तियोगेन दृश्येत भक्तैश्चैव सनातन ॥२३
इदं तत्त्वमिदं तत्त्वं मोहितो वैष्णमायया।
भक्तितत्त्वं यदा प्राप्तं तदा विष्णुमयं जगत् ॥२४
इन्द्राद्यैरमृतं प्राप्तं सुखार्थं शृणु सुन्दरि!।
तथापि दुःखितास्ते वै भक्त्या विष्णोर्यथा विना ॥२५
भक्तिमेवाऽमृतंप्राप्य पुनर्दुःखं न जायते।
वैकुण्ठाख्यं पदं प्राप्य मोदते विष्णुसन्निधौ ॥२६
वारि त्यक्त्वा यथा हंसः पयः पिबति नित्यशः।
एवं धर्मान् परित्यज्य विष्णोर्भक्तिं समाश्रयेत् ॥२७
अन्यभक्तिं परित्यज्य विष्णुभक्तिं समाश्रयेत्।
तोयं बद्ध्वातुवस्त्रेण कृतकार्यंकथंभवेत् ॥२८

यह परम प्रभु समृद्ध धन से नहीं प्राप्त होते हैं और बहुत अधिक विद्या से भी इनकी प्राप्ति नहीं हुआ करती है केवल एक मात्र भक्ति के ही योग से यह क्षण मात्र में ही समीप में दिखलाई दिया करते हैं ॥२२॥ यह अपने सान्निध्य में ही सर्वदा स्थित रहते हुए नेत्रों में अञ्जन की भाँति दूर ही रहा करते हैं अर्थात् जैसे नेत्रगत अञ्जन दिखलाई

नही दिया करता है वैसे ही यह भी दिखाई नही देते हैं। यह सनातन प्रभु तो भक्तो के द्वारा भक्ति के ही योग से दिखलाई दिया करते हैं ॥२३॥ यह तत्व है–यह तत्व है—इस तरह से देव माया से यह समस्त लोक मोह मे आबद्ध हो रहा है। जब भक्ति का तत्व प्राप्त होता है तब यह सम्पूर्ण जगत् ही विष्णुमय दिखलाई दिया करता है। भक्ति के द्वारा तो ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी पदार्थ या स्थल ऐसा है ही नही जो विष्णु से शून्य हो–सर्वत्र वही व्यापक एवं विराजमान हैं ॥२४॥ हे सुन्दरि ! सुनो, इन्द्र आदि देवो ने सुख के लिये ही अमृत की प्राप्ति की थी जो भी उनको उस अमृत से सुख नही मिला और वे दुःखित ही हुए थे जिस तरह से बिना विष्णु की भक्ति से हुआ करते हैं ॥२५॥ वस्तुतः यह विष्णु की भक्ति ही अमृत है। इसकी प्राप्ति करके फिर दुःख कभी भी उत्पन्न ही नही हुआ करता है। भक्ति वाला पुरुष तो वैकुण्ठ नाम वाले पद को प्राप्त करके विष्णु की सन्निधि मे सदा आनन्द प्राप्त करता रहता है ॥२६॥ जिस तरह से जल से मिश्रित दूध को सामने रखने पर भी हंस जल का त्याग करके केवल दूध का ही पान किया करता है। इसी प्रकार से अन्य समस्त धर्मों का त्याग करके केवल एक भगवान् विष्णु की भक्ति का ही आश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥२७॥ अ य सब की भक्ति का समाश्रय लेना चाहिए। वस्त्र मे जल को बाँध कर मनुष्य कैसे सफल हो सकता है ! अर्थात् विष्ण के अतिरिक्त अन्य की भक्ति मे मन लगाना वस्त्र मे जल के बाँधने के समान निष्फल होता है ॥२८॥

प्राप्य देहं विना भक्ति क्रियते स वृथाश्रमः।
विष्णुभक्ति विनाधर्मानुपदिशन्तियेजनाः ॥
ते पतन्ति सदा घोरे नरके नाऽत्रसंशयः ॥२९
वाहुम्या सागर ततु यद्वन्मूर्खोऽभिवाञ्छति।
संसारसागरं तद्वद्विष्णुभक्ति विना नरः ॥३०
विष्णुभक्ति च रक्षन्ति कर्मणा पात्यते यदि।
अकिञ्चनः स्पृहायुक्तो मेरोघत्तेयथास्पृहाम् ॥३१

तव भक्तौ तथा देव मया हि क्रियतेस्पृहा ।
जन्मान्तरे हि सा भक्तिर्मामकीयत्करोतिहि ॥३२
वह्निर्यथेह स्वल्पोऽपि दहते विविध वनम् ।
तद्वदेव तु सा भक्तिरणुमात्रा कृता मया ॥३३
शतैश्च श्रूयते भक्तिः सहस्रैरपि बुध्यते ।
तेषां मध्ये तु देवेशि भक्तो ह्येकः प्रजायते ॥३४
बुद्धि परेषा दास्यन्ति लोके वहुविधा जनाः ।
स्वयमाचरते सोऽपि नरः कोटिपुद्दयते ॥३५

इस मानव शरीर की प्राप्ति करके भक्ति के बिना ही जो कुछ भी किया जाता है वह श्रम व्यर्थ ही होता है अर्थात् उसका कोई भी सुख प्रद परिणाम नही होता है। जो मनुष्य भगवान् विष्णु की भक्ति के बिना ही धर्म्मो का उपदेश दिया करते हैं वे सदा परम घोर नरक मे गिरा करते हैं—इसमे तनिक भी संशय नही है ॥२६॥ जिस तरह से कोई मूर्ख मनुष्य बाहुओ के बल से तैर कर सागर को पार करना चाहता है ठीक उसी तरह मनुष्य मूर्खता वश विष्णु की भक्ति के बिना इस संसार रूपी सागर से पार होने की इच्छा किया करता है। जैसे बाहुओ से समुद्र मे तैर कर पार होना सम्भव नहीं है वैसे ही संसार से पार होना भी बिना श्री विष्णु की भक्ति के नितान्त असम्भव है ॥३०॥ यदि कर्म से पातन किया जाता है तो विष्णु की भक्ति की रक्षा किया करते हैं। जिस तरह से कोई अकिञ्चन स्पृहा से संयुत होकर मेरु मे अपनी स्पृहा को धारण किया करता है ॥३१॥ हे देव ! आपकी भक्ति मे मेरे द्वारा स्पृहा की जाती है। जन्मान्तर मे वह मेरी भक्ति यह किया करती है ॥३२॥ जिस प्रकार से थोडी सी भी अग्नि अनेक विस्तृत विशाल वन को जला दिया करती है उसी तरह से वह मैंने अणुमात्र ही भक्ति की थी ॥३३॥ इस भक्ति का श्रवण तो सैकडो ही किया करते हैं और सहस्रो की सख्या वाले इस भक्ति को जानते हैं किन्तु हे देवेशि ! उन सब के मध्य मे कोई एक ही भक्त समुत्पन्न होता है ॥३४॥ लोक मे बहुत से मनुष्य दूसरों को बुद्धि दिया करते हैं। जो

स्वय भी वैसा ही समाचरण करे ऐसा मनुष्य तो कोई एक ही करोड़ों मे दिखलाई दिया करता है ॥३५॥

पूजया हस्यते भक्तिर्जपेन परिहस्यते ।
एवं भावो हि देवेशे भक्तिस्तेनैव गृह्यते ॥३६
सागरे च यथा पोतः कूपे द्रोणोपवेशनम् ।
यस्य भावो हि तद्वच्च भक्ति.सा तेनगृह्यते ॥३७
मूले सिक्तस्य वृक्षस्य पत्रं शाखासु दृश्यते ।
भजनादेव भो देवि फलमग्रे प्रतिष्ठितम् ॥३८
पानीयहारिणा यद्वद्घटे चित्तं प्रधीयते ।
तद्वद् वे हरौ चित्तं धृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ॥३९
शैशवे च यथा माता गुडं स्तोक ददाति वै ।
पुनर्याचति वै बालो गुड वै लोभकारणात् ॥४०
नीरे नीरं यथा क्षिप्तं दुग्धे दुग्धं घृते घृतम् ।
तद्वद्भेद न पश्यन्ति विष्णुभक्तिप्रसादतः ॥४१॥
भानुः सर्वगतो यद्वद्वह्निः सर्वगतो यथा ।
भक्तिः स्थितस्तथा भक्त कर्मभिर्नैव बाध्यते ॥४२

पूजा के द्वारा भक्ति की हसी उडाई जाती है तथा जाप के द्वारा भी भक्ति का मजाक बनाया जाता है। देवेश मे इस प्रकार का जाप ही भक्ति है और उसी से वह ग्रहण किये जाया करते हैं ॥३६॥ सागर मे जैसे जहाज और कूप मे द्रोणोपवेशन होता है, जिसका भाव उसी के समान होता है वह भक्ति उसी के द्वारा ग्रहण की जाया करती है ॥३७॥ वृक्ष के मूल मे यदि सिचाई की जाती है तो वह पत्तो और शाखाओ मे स्पष्ट दिखलाई देता है। हे देवि ! भगवान् के भजन से ही आगे फल प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥३८॥ जो जल लेकर आता है वह मस्तक पर रखे हुए घट मे जैसे अपना मन लगाकर रखता है उसी भाँति देव हरि मे चित्त को लगा कर ही मानव मोक्ष की प्राप्ति किया करता है ॥३९॥ बचपन मे माता जैसे थोडा सा गुड दे दिया करती है फिर वही बालक लोभ के कारण से गुड़ की याचना किया

करता है ॥४०॥ नीर में नीर का और दूध में प्रक्षिप्त किये हुए दूध का तथा घृत में प्रक्षिप्त घृत का कोई भी भेद नहीं होता है, उसी तरह विष्णु भक्ति के प्रसाद का यही प्रभाव है कि कोई भी भेद-भाव नहीं देखा करते हैं। तात्पर्य यह है कि विष्णु भक्त सभी भक्तों को समान भाव से ही देखता है और कुछ भी भेद-भाव नहीं समझा करता है ॥४१॥ सूर्य सर्वत्र गमन करता है, धर्मनिष्ठ-श्री सम्पन्न पुरुष की भाँति ही वह चाण्डाल के घर में भी समान रूप से किरणों का प्रसार किया करता है। इसी तरह वह्नि भी सर्वगत है। जिसमें भक्ति का भाव है वही भक्त है और वह कर्मों से बाध्य नहीं हुआ करता चाहे कोई कुछ भी कर्म करने वाला हो, भक्ति के होने से वह भक्त है, सब भक्तों से अभिन्न होता है ॥४२॥

अजामिल स्वधर्मं च त्यक्त्वा पापं समाचरन् ।
पुत्र नारायण स्मृत्वा मुक्ति वै प्राप्तवान्ध्रुवम् ॥४३
दिवारात्रौ च ये भक्ता नाममात्रोपजीविनः ।
वैकुण्ठवासिनस्ते वै तत्र वेदा हि साक्षिणः ॥४४
अश्वमेधादियज्ञानां फलं स्वर्गेऽपि दृश्यते ।
तत्फलं तु समग्रं वै भुक्त्वा वै सम्पतन्तिच ॥४५
विष्णुभक्तास्तथा देवि भुक्त्वा भोगाननेकशः ।
वैकुण्ठं प्राप्य वा तेषां पुनरागमनं कदा ॥४६
विष्णुभक्तिः कृता येन विष्णुलोके वसत्यसौ ।
दृष्टान्तं पश्य देवर्षि विष्णुभक्तिप्रभावतः ॥४७
पाषाणो जलमध्यस्था. शतयत्नेन तारिता ।
विना जलं गोमयान्तो विष्णुभक्तस्य मानसम् ॥४८
दर्दुरो यथा नीरे षट्पदो हि वनान्तरे ।
गन्धं वेत्ति कुमुद्धता भक्तो भक्तो तथा हरे ॥४९

यह एक अजामिल और परम प्रसिद्ध आख्यान है कि अजामिल ने अपने धर्म को त्याग कर पाप कर्मों को दिन रात कर लिया था किन्तु अन्त समय में पुत्र नारायण के नाम का अनिच्छा स्मरण से स्मरण

लिया था। इस नाम के स्मरण और समुच्चारण करने का ही यह महान् फल उसे प्राप्त हुआ कि वह निश्चय ही मुक्ति को प्राप्त करने वाला हो गया था ॥४३॥ पुत्र की भावना से ही भगवान् के नारायण नाम के उच्चारण मात्र का अन्त समय में जब ऐसा फल हुआ तो जो रात दिन भक्तगण भगवान् के नाम का स्मरण से उपजीवी रहते हैं वे तो वैकुण्ठ के वास करने वाले निश्चय ही हुआ करते हैं—इसके साक्षी वेद हैं ॥४४॥ जो अश्वमेध आदि यज्ञ किया करते हैं उनका फल स्वर्ग में भी दिखलाई दिया करता है। वहां पर स्वर्ग में उनके समग्र पुण्य-फल को भोग कर जब वह समाप्त हो जाता है तो फिर यहां पर पतन किया करते हैं ॥४५॥ हे देवि ! विष्णु के भक्त उसी भांति अनेक भोगों का सुख प्राप्त करके अन्त में वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करते हैं उनका फिर यहां आगमन कब होता है ? अर्थात् वे फिर यहाँ नहीं आया करते हैं ॥४६॥ जिसने विष्णु की भक्ति की है वह विष्णु के लोक में निवास किया करता है। हे देवेशि ! विष्णु की भक्ति प्रसाद से होने वाले दृष्टान्त को देख लो। ॥४७॥ जल के मध्य में स्थित सैकड़ों ही पत्थरों को जिसने तार दिया है। जल के बिना सोमकान्त मणि विष्णु के भक्त का मानस है ॥४८॥ दर्दुर (मेंढ़क) जल में निवास किया करता है और षट्पद (भौंरा) वनान्तर में रहता है। वह कुमुद्वती के गन्ध को जानता है, उसी भाँति हरि की भक्ति में भक्त हुआ करता है ॥४९॥

गङ्गातटे वसन्त्येक एके वै शतयोजनम् ।
कश्चिद्गङ्गाफलं वेत्ति विष्णुभक्तिपरस्तथा ॥५०
कर्पूरागुरुभारं हि उष्ट्रो वहति नित्यशः ।
मध्यगन्धं न जानाति तथा विष्णुर्बहिर्मुखाः ॥५१
मृगाः शालं हि जिघ्रन्ति कस्तूरीगन्धमिच्छवः ।
स्वनाभिस्थं न जानन्ति तथा विष्णुं बहिर्मुखाः ॥५२
उपदेशो हि मूर्खाणां वृथा वै नगनन्दिनि ।
तथैव विष्णुभक्तेर्हिउपदेशो बहिर्मुखे ॥५३

अहिना च पयः पीतं तत्पयो हि विषायते ।
तथा वै चान्यभक्ताना विष्णुभक्तिर्विषायते ॥५४
चक्षुर्विना यथा दीपं दृष्ट्वा दर्पणमेव च ।
समीपस्था न पश्यन्ति तथा विष्णुं बहिर्मुखा ॥५५
पावको हि यथा धूमैरादर्शोऽपि मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भो देहे कृष्णस्तथावृतः ॥५६

एक तो गङ्गा के तट पर ही निवास किया करते हैं और एक सौ योजन की दूरी पर रहते हैं। कोई ही गङ्गा के फल को जानता है उसी भाँति श्री विष्णु भगवान् की भक्ति मे जो परायण होता है वही उस भक्ति का ज्ञान रखता है ॥५०॥ कपूर और अगुरु के भार को अपने ऊपर लदा कर ऊट नित्य ही वहन किया करता है किन्तु उनके मध्य में रहने वाली विशेष गन्ध का ज्ञान उसे नही हुआ करता है। उसी तरह से जो लोग विष्णु की भक्ति के बहिर्मुख होते है उनको भी उसका महत्व का किञ्चिन्मात्र भी ज्ञान नही होता है ॥५१॥ मृग घास को सूंघा करते हैं और कस्तूरी के गन्ध की इच्छा वाले होते है किन्तु अपनी ही नाभि मे अन्दर रहने वाली उस कस्तूरी का ज्ञान नही हुआ करता है। उसी तरह से जो विष्णु की भक्ति से बहिर्मुख मानव होते हैं वे भी उस अन्तर्यामी प्रभु विष्णु का ज्ञान नही रखते हैं ॥५२॥ हे नग नन्दिनि ! जो मूर्ख मनुष्य होते हैं उनको उपदेश भी दिया जाता है तो वह व्यर्थ ही हुआ करता है। उसी तरह से विष्णु की भक्ति से जो बहिर्मुख मनुष्य है उसको भक्ति का ज्ञानोपदेश करना भी सर्वथा निष्फल ही हुआ करता है ॥५३॥ सर्प के द्वारा दूध जैसा उत्तम पदार्थ पिया जाता है किन्तु वही दूध विष बन जाया करता है वैसे ही जो अन्य की भक्ति के करने वाले मानव होते हैं उनके लिये भी सर्वोत्तम विष्णु की भक्ति भी विष की तरह हो जाया करती है ॥५४॥ यदि नेत्र ही नहीं हैं जिनसे देखा जाया करता है तो समीप मे स्थित होते हुए भी वे चक्षुहीन पुरुष दीपक की ओर दर्पण को नही देखा करते हैं। ठीक उसी तरह से जो बहिर्मुख प्राणी होते हैं, वे भगवान् विष्णु को भी नही पहिचान सकते हैं

भले ही विष्णु उनके हृदय में अन्तर्यामी स्वरूप से क्यों न विराजमान रहता हो ।।५५।। पावक (अग्नि) धूम से और दर्पण मल से समावृत रहता है और गर्भ जैसे उल्व से ढका हुआ रहा करता है उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण भी मानव के देह में आवृत रहा करते हैं और स्पष्ट उनका दर्शन नहीं हुआ करता है ।।५६।।

दुग्धे सर्पिः स्थितं यद्वत्तिले तैलं तु सर्वदा ।
चराचरे तथा विष्णुर्दृश्यतेनगनन्दिनि ।।५७
एकसूत्रे मणिगणा धार्यन्ते बहवो यथा ।
एवं ब्रह्मादिभिर्विश्वं संप्रोतं ब्रह्मचिन्मये ।।५८
यथाकाष्ठे स्थितो वह्निर्मथनादेव दृश्यते ।
एवं सर्वगतो विष्णुर्ध्यानादेव प्रदृश्यते ।।५९
आदिरेको भवेद्दीपस्तस्माज्जाताः सहस्रशः ।
एवमेकः स्थितो विष्णुः सर्वं व्याप्य प्रतिष्ठते ।।६०
यथा सूर्योदये ज्योतिः पुष्करे तिष्ठते सदा ।
दृश्यते बहुधा नीरे लोके विष्णुस्तथा हि सः ।।६१
मारुतः प्रकृतिस्थोऽपिनानागन्धवहःसदा ।
ईश्वरःसर्वजीवस्थोभुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।।६२
शर्कराविषसंयोगात्क्षीरं भवति यादृशम् ।
स भूत्वा सदृशो ह्यात्मा कर्मणःफलमश्नुते ।।६३

दूध में घृत अवश्य ही विद्यमान रहता है और उसी भाँति तिलों में तैल भी वर्तमान सर्वदा ही रहा करता है उसी तरह से हे नग नन्दिनि ! भगवान् विष्णु चर और अचर सब में दिखलाई दिया करते हैं अर्थात् व्यापक रूप से वर्तमान रहा करते हैं किन्तु उनका वैसे ज्ञान नहीं हुआ करता है ।।५७।। जिस तरह से एक ही सूत में बहुत से मणिगण धारण किये जाया करते हैं । इसी प्रकार से ब्रह्म चिन्मय में ब्रह्मादि के द्वारा यह विश्व सम्प्रोत होता है ।।५८।। जैसे काष्ठ में वह्नि स्थित रहा करता है किन्तु वैसे स्पष्ट उसका दर्शन नहीं हुआ करता है, जब मथन किया जाता है तभी वह प्रकट होकर दिखलाई दिया करता है । ठीक

उसी तरह से सर्वव्यापक भगवान् विष्णु का भी भक्तिभाव के साथ जब ध्यान किया जाता है, तभी उनका दर्शन प्राप्त होता है ।।५६।। सब के आदि में एक ही दीपक प्रज्वलित होता है और फिर उसी एक दीपक से सहस्रों दीपक प्रज्वलित हो जाया करते हैं इसी रीति से एक ही स्थित भगवान् विष्णु सब में व्यापक होकर अवस्थित रहा करते हैं ।।६०।। जिस प्रकार से सूर्य के उदय हो जाने पर उसकी ज्योति पुष्कर में सदा स्थित रहती है और जल में वह बहुत से रूपों में दिखलायी देती है वैसे ही वह भगवान् विष्णु लोक में दिखाई दिया करते हैं ।।६१।। प्रकृति में स्थित रहने वाला भी मारुत सदा अनेक प्रकार के गन्ध का वहन करने वाला सदा रहता है वैसे ही समस्त जीवों में स्थित ईश्वर भी प्रकृति से समुत्पन्न गुणों का ही उपभोग किया करते हैं ।।६२।। जल जिस तरह से शर्करा और विष के संयोग से स्वाद और गुण वाला हो जाया करता है उसी तरह से यह आत्मा भी सदृश होकर कर्मों के फल को भोगा करता है ।।६३।।

उर्वी च नीरसंयोगान्नानावृक्षाप्रजायते ।
प्रकृतेर्गुणसंयोगान्नानायोनिषु जायते ।।६४
गजे वै मशके चैव देवे वा मानुषेऽपिवा ।
नाधिको न च न्यूनो वै निष्ठोदेहेऽसनिश्चलः ।।६५
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता ये चात्र भुवि मानवाः ।
देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाः किन्नरादयः ।।६६
तेषु सर्वेषु दृश्यन्ते जले चन्द्रमसो यथा ।
सगच्चिदानन्दमयः स महेशो हि दृश्यते ।।६७
स वै विष्णुस्तथा प्रोक्तः सोऽयं सर्वगतो हरिः ।
वेदान्तवेद्यःसर्वेशः कालातीतो ह्यनामयः ।।६८
एवं स वेत्ति यो देवि स भक्तो नात्रसंशयः ।
एको हि बहुधा जातो बहुधाप्येक एवसः ।।६९
नामरूपविभेदेन जायते बहुधा भुवि ।
बहुधा न क्वचिद्धीर्भिर्भानुना बहुरच्यते ।।७०

क्रिमिमेदोमयो देहः पतते चात्मना विना ।
हेम्नो भवन्ति वर्णाश्च वह्निनायान्तिपूर्ववत् ॥७३
तद्वज्जीवाः प्रपद्यन्ते भक्ता वै पूर्वरूपताम् ।
स्वघनेनावृतं सूर्य मूढाःपश्यन्तिनिष्प्रभम् ॥७४
तथाऽज्ञानधियो मूढा न जानन्ति तमीश्वरम् ।
निर्विकल्पं निराकारं वेदान्तैःपरिपठ्यते ॥७५
निराकाराच्च साकारं स्वेच्छया च प्रकाशते ।
तस्मात्संजातमाकाशं निःशब्दं गुणवर्जितम् ॥७६
आकाशान्मारुतो जातः सशब्दं च तदाऽभवत् ।
वातादजायत ज्योतिर्ज्योतिपश्चाभवज्जलम् ॥७७

इस संसार मे प्रत्येक देह मे सर्वदा आत्मा और परमात्मा स्थित रहा करते हैं । जैसे घट-घट मे आकाश है और जब घट का भंग हो जाता है तब भी वह व्यापक नित्य आकाश का नाश नही होता है । वह तो घट के विनष्ट होने पर भी विद्यमान रहा करता है । वह आकाश जो पहिले घट गत था अब घट के विनष्ट होने पर वहां महाकाश में मिल कर वर्त्तमान है ॥७१॥ उसी तरह से आप रूप-रूप में विद्यमान है । उस रूप के अर्थात् आश्रय के भग्न हो जाने पर भी आप सुनिश्चल ही रहते हैं जैसे घट के आकाश का, घट के नाश होने पर भी कभी विनाश नही हुआ करता है । जिस तरह से काष्ठमय रूप प्रभु के बिना गिर जाया करता है ॥७२॥कृमि और मेद से परिपूर्ण यह देह आत्मा के बिना पतन होने वाला हो जाया करता है । वर्णतो हेम के ही हुआ करते हैं, वह्नि के संयोग से वे पूर्व की भांति ही हो जाया करते हैं अर्थात् हेम को जब अग्नि मे तपाया जाता है तो उसमे स्वाभाविक प्रभा दिखाई देने लगा करती है ।।७३।।उसी तरह से जीव भी भक्त होकर पूर्व रूपता को प्राप्त हो जाया करते हैं। भक्ति के ही सयोग का यह प्रभाव हुआ करता है कि जीव का सच्चा रूप निखर आता है मेघों से समावृत सूर्य्य को मूढ लोग ही प्रभा से हीन समझ लिया करते हैं॥७४॥ अज्ञान पूर्ण बुद्धि वाले मनुष्य जो महामूढ होते हैं उस ईश्वर के सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचाना करते

हैं । वह तो वेदान्तों के द्वारा सदा-सर्वदा निर्विकल्प और निराकार ही पढ़ा जाया करता है ॥७५॥ उसका स्वरूप तो बिना आकार वाला ही है किन्तु जब भी उसकी इच्छा होती है तभी स्वेच्छा से उसी अपने निराकार रूप से वह साकारता को प्राप्त कर लिया करता है और सर्वत्र प्रकाशित हो जाता है । उससे आकाश समुत्पन्न हुआ जो शब्द रहित और गुणो से वर्जित है ॥७६॥ आकाश से वायु हुआ । उस समय मे वह शब्द के सहित हुआ था । वायु से ज्योति की उत्पत्ति हुई थी और ज्योति से जल समुत्पन्न हुआ था ॥७७॥

तज्जलेहेमगर्भश्च विराड्वै विश्वरूपधृत् ।
तस्य नाभिसरोजे च ब्रह्माण्डानांच कोटयः ॥७८
प्रकृतिः पुरुषस्तस्मान्निर्मितं तु त्रिधा जगत् ।
तयोर्द्वयोश्च संयोगात्तस्त्वयोगोऽप्यजायत ॥७९
सात्त्विकी विष्णुसंभूतिर्ब्रह्मा वै राजसः स्मृतः ।
शिवस्तु तामसः प्रोक्तएभिः सर्वं प्रवर्तितम् ॥८०
एका ब्राह्मी स्थितिर्लोके कर्मबीजानुसारतः ।
तथा संहरते विष्णुः सर्वलोकानुशेषतः ॥८१
तिष्ठत्यसौ तदा तत्र भगवान्विष्णुरव्ययः ।
एवं सर्वगतो विष्णुरादिमध्यान्त एव च ॥८२
अविद्यया न जानन्ति लोका वै कर्मनिश्चिताः ।
वर्णोचितानि कर्माणि य कालेषु प्रकारयेत् ॥८३
यत्कर्म विष्णुदेवस्य न हि गर्भस्य कारणम् ।
वेदान्तशास्त्रे मुनिभिः सर्वदैव विचार्यते ॥८४

उस जल मे विश्व रूप का धारण करने वाला विराट् हेमगर्भ हुए थे । उनकी नाभि मे स्थित सरोज मे करोडो ब्रह्माड हैं ॥७८॥ उससे प्रकृति और पुरुष हुए जिनसे यह तीन प्रकार का जगत् निर्मित हुआ है । उन दोनो के संयोग से तत्त्व भोग उत्पन्न हुआ था ॥७९॥ विष्णु से समुत्पत्ति सात्विकी है । ब्रह्मा राजस समुद्भव है । शिव तामस कहा गया है—इन्ही से सब की प्रवृत्ति हुई है ॥८०॥ कर्म बीज के

अनुसार लोक मे एक ब्राह्मी स्थिति है । उसी से भगवान् विष्णु सब लोकों का संहार किया करते हैं ॥८१॥ वहा पर उस समय मे अव्यय भगवान् विष्णु स्थित रहते हैं । इस प्रकार से सर्वगत विष्णु आदि- मध्य और अन्त ही होता है ॥८२॥ कर्मनिश्चित लोक अविद्या से नही जानते हैं । कर्म वर्णोचित हैं जो कालो मे प्रकार युक्त होता है । ॥८३॥ जो कर्म विष्णु दैवत्य है वह गर्भ का कारण नही है । वेदान्त शास्त्र में मुनियों के द्वारा सर्वदा ही विचार किया जाता है ॥८४॥

ब्रह्मज्ञानमिदं देहे तदहं परिकीर्त्तये ।
शुभाशुभस्य कार्यं च कारणं मन एव हि ॥८५
मनसा शुध्यते सर्वं तदा ब्रह्म सनातनम् ।
मनएवसदा बन्धुर्मनएव सदा रिपुः ॥८६
मनसा तारिताः केचिन्मनसा पातिताश्चके ।
मध्ये सर्वपरित्यागो बाह्ये कर्मतथाचरन् ॥८७
एवमेवकृत कर्म कुर्वन्नपि न लिप्यते ।
पद्मपत्रं यथानीरलेशैरपि न लिप्यते ॥८८
अग्निरग्नौ यथा क्षिप्तो भक्त्या च किं प्रयोजनम् ।
यदाभक्तिरसो ज्ञातो न मुक्ती रोचते तदा ॥८९
योगैरष्टविधैर्विष्णुर्न प्राप्यस्त्वेह जन्मनि ।
भक्त्या वा प्राप्यते विष्णुः सर्वदा सुलभो भवेत् ॥९०
वेदान्तैः प्राप्यते ज्ञान ज्ञानेन ज्ञेयमेव च ।
तत्तु ज्ञेय यदा प्राप्त तदा शून्यमिदं जगत् ॥९१

यह देह मे ब्रह्मज्ञान है उसे मैं अब परिकीर्तित करता हूँ । शुभ और अशुभ का कार्य और कारण मन ही होता है ॥८५॥ उस समय मे सब सनातन ब्रह्म मन से शुद्ध किया जाता है । यह मन ही सदा बन्धु होता है और मन ही सदा शत्रु हुआ करता है ॥८६॥ कुछ लोग मन से ही तारित हो जाते हैं और कुछ लोग मन से ही पतित हो जाया करते हैं । मध्य में सब का परित्याग और बाह्य मे उस प्रकार से कर्म का समाचरण करते हैं ॥८७॥ इसी प्रकार से किया हुआ कर्म करते हुए भी

लिप्त नही होता है जिस प्रकार से नीर के लेशो से भी पद्म का पत्र लिप्त नही हुआ करता है। ॥८८॥ जिस तरह अग्नि मे अग्नि का क्षेप होता है और भक्ति से क्या प्रयोजन है। जब भक्ति का रस ज्ञात हो गया है तो उस समय मे उसे मुक्ति नही रुचा करती है ॥८९॥ इस जन्म मे आठ प्रकार के योग के साधनो के द्वारा विष्णु प्राप्त करने के योग्य नही होते हैं। भक्ति के द्वारा विष्णु प्राप्त किये जाते हैं और भक्ति से वह सर्वदा सुलभ भी होते है ॥९०॥ वेदान्तो के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है और ज्ञान के द्वारा ज्ञेय की प्राप्ति होती है। जिस समय वह ज्ञेय प्राप्त होजाता है, उस समय मे यह सम्पूर्ण जगत शून्य होता है ॥९१॥

क्लेन प्राप्यते विष्णुर्योगैरष्टविधैश्च किम् ।
सर्वेषामेव भावाना भावशुद्धि प्रशस्यते ॥९२
आलिङ्ग्यते यथा कान्ता यथा भावस्तथा फलम् ।
उपानद्युक्तपादो हि वेत्ति चर्ममयी महीम् ॥९३
बुद्धिर्यथा विधा यस्य तद्वत्स मन्यते जगत् ।
दुग्धेन सिक्तो निम्बोऽपि कटुभाव न तु त्यजेत् ॥९४
प्रकृति यान्ति भूतानि उपदेशो निरर्थक ।
छित्त्वा वै सहकार च फल पक्वकथलभेत् ॥९५
इन्द्रियाणा सुखार्थेन वृथा जन्मकथ नयेत् ।
स्थाल्या वैडूर्यमय्या हि पच्यतेऔषधंयथा ॥९६
दह्यते चागदस्तद्वद्वृथा जन्मकथ भवेत् ।
निधान च गृहे क्षिप्त्वा शुभ सेवाकथचरेत् ॥९७
त्यक्त्वा वैकुण्ठनाथ तमन्यमार्गे कथ रमेत् ।
भक्तिहीनैश्चतुर्वेदै पठितै कि प्रयोजनम् ॥९८

भगवान् विष्णु बल के द्वारा ही प्राप्त किये जाते हैं। इन आठ प्रकार वाले योग के साधनो से क्या प्रयोजन है। सभी भावो मे भाव की जो शुद्धि होती है वही प्रशंसित की जाया करती है ॥९२॥ जिस तरह से कान्ता का आलिङ्गन किया जाता है। जैसा ही भाव होता है

वैसा ही फल भी हुआ करता है । जो पुरुष जूतों से युक्त चरणों वाला होता है वह तो सम्पूर्ण भूमि को ही चमड़े से मढ़ी हुई समझा करता है ॥९३॥ जिसकी बुद्धि जिस प्रकार की होती है हे वत्स! उसे जग वैसा मानता है । दूध से सींचा हुआ भी नीम का वृक्ष अपने कटुता के स्वाद के भाव का कभी भी त्याग नहीं किया करता है ॥९४॥ सभी प्राणी अपनी प्रकृति का ही अनुसरण किया करते हैं उनको किसी प्रकार का उपदेश देना सर्वथा निरर्थक हुआ करता है अर्थात् उसका उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं होता है । जब सहकार (आम्र) के वृक्ष का छेदन ही कर दिया जाता है तो उसके फल और पत्र कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं ॥९५॥ इन्द्रियों के भोग के सुख के लिये इस अमूल्य मानव जीवन को वृथा ही क्यों लगाया जावे यह तो सर्वथा इसी भाँति है जैसे कोई वैडूर्यमयी स्थाली में किसी औषध का पाचन करे क्योंकि ऐसी उत्तम मणि से निर्मित स्थाली औषध के पाचन कर्म के योग्य कभी भी नहीं होती है । अगद दग्ध किया जाता है तो जन्म वृथा कैसे होता है ? घर में निधान को प्रक्षिप्त करके शुभ सेवा को कैसे समाचरित करे ॥९६-९७॥ उन वैकुण्ठ के नाथ का त्याग करके अन्य मार्ग में कैसे रमण करे । जो भक्ति से हीन हो ऐसे चारों वेदों के भी पठन से क्या प्रयोजन होता है ? अर्थात् भक्ति के बिना वेदों का पढ़ना भी व्यर्थ ही है ॥९८॥

श्वपचो भक्तियुक्तस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते ।
स्वकरेकङ्कण बद्ध्वा दर्पणैः किंप्रयोजनम् ॥९९
ब्रह्मरुद्रादिभिर्देवैर्दत्तैश्वर्याश्च सेवका. ।
अर्पित नैव गृह्णन्ति प्रमोदश्चैव तु किञ्चन ॥१००
अकिञ्चनाय भक्ताय दातुं नालं गतो वरम् ।
निःशरीरस्य कृष्णस्य तथ ध्यान कथ भवेत् ॥१०१
साकार बहवो दृष्ट्वा गता भवत्या च तत्पदम् ।
पूजाभक्तिः कथ शून्ये साकारे कथ्यते बुधैः ॥१०२
शून्यमार्गे कथं याति आधारेण विना नरः ।
साकारो यः स्वय स्वामी निराकार स वै प्रभुः ॥१०३

साकारो हि सुखेनैव निराकारो न दृश्यते ।
सेवारसश्च साकारे निराकारेण वै रसः ॥१०४
साकारेण निराकारो ज्ञायते स्वयमेव हि ।
हरिस्मृतिप्रसादेन रोमाञ्चिततनुर्यदा ॥१०५

चाहे कोई श्वपच भी हो किन्तु वह यदि भक्ति भाव से युक्त और विष्णु भगवान् का परम भक्त है तो देवगणों के द्वारा भी उसकी सर्वदा पूजा की जाया करती है । अपने कर मे कंकण को जब बद्ध कर लिया जाता है यो उसको देखने के लिये दर्पण की आवश्यकता नहीं हुआ करती है ॥९९॥ प्रभु के सेवकगण ब्रह्मा रुद्र आदि देवों के द्वारा दत्त स्वयं भी किये जावें तोभी वे कुछ भी अर्पित को ग्रहण नहीं किया करते है ।१००। जो भक्त अकिञ्चन होता है उसको वरदान देना भी पर्याप्त नहीं होता है क्योंकि बिना शरीर वाले भगवान् कृष्ण का ध्यान कैसे होगा ।१०१। बहुत से लोग साकार का दर्शन करके भक्ति के द्वारा उनके पद को प्राप्त हो गये हैं । बुध पुरुषों के द्वारा साकार प्रभु के विषय में तो पूजा और भक्ति का कथन किया जाता है किन्तु वही पूजा और भक्ति को क्रिया शून्य अर्थात् निराकार मे कैसे हो सकती है ॥१०२॥ मनुष्य बिना आधार के शून्य मार्ग में कैसे गमन कर सकता है । जो स्वामी साकार है वही स्वयं निराकार भी होता है अर्थात् प्रभु के दोनों साकार और निराकार स्वरूप हुआ करते हैं और दोनों ही की उपासना भी की जाया करती है ॥१०३॥ साकार प्रभु की उपासना तो बड़े ही सुख से की जा सकती है किन्तु जो निराकार है वह तो आधार के अभाव मे दिखलाई ही नहीं दिया करता है । साकार की उपासना मे उनकी सेवा करने का रस विद्यमान रहा करता है और निराकार के द्वारा तो केवल रस ही उत्पन्न होता है ॥१०४॥ साकार की उपासना करने वाले भक्त के द्वारा यह उस प्रभु की निराकारता तो स्वयमेव ही ज्ञात हो जाया करती है । जिस समय मे श्रीहरि की स्मृति का प्रसाद होता है, उससे भक्त का शरीर रोमाञ्चित हो जाया करता है ॥१०५॥

नयनानन्दसलिलं मुक्तिर्दासी भवेत्तदा ।
बाल्ये च यत्कृत पाप तत्कथ न विनश्यति ॥१०६
पूजादानव्रतैस्तीर्थैर्जपहोमैस्त्वदर्पितैः ।
निजधर्मं परित्यज्य तपोघोर कथ चरेत् ॥१०७
स्वधर्मे निधन श्रेयः परधर्मो भयावहः ।
विधि सन्त्यज्य शास्त्रीय तपोघोर कथं चरेत् ॥१०८
आश्रमेण विना मूढो नैव सिद्धिमवाप्नुयात् ।
ब्रह्मणा निर्मिता वर्णाः स्वे स्वे धर्मे नियोजिताः ॥१०९
स्वधर्मेणागतं द्रव्यं शुक्लद्रव्य तदुच्यते ।
शुक्लद्रव्येण यद्दान दीयते श्रद्धयान्वितम् ॥११०
स्वल्पेनाऽपि महापुण्य तस्य सङ्ख्या न विद्यते ।
नीचसङ्गेन यद्द्रव्यमानीत गृहकर्मसु ॥१११
तेन द्रव्येण यद्दानं कृतं वै मनुजादिभिः ।
तत्फलं न भवेत्ते वै नैव तत्फलभागिनः ॥११२

भक्त के शरीर के पुलकायमान होने पर उसके नयनों से आनन्दाश्रुओं का पात होने लगता है उस समय में मुक्ति तो उस भगवद्भक्त की दासी हो जाया करती है । बचपन में जो भी कुछ पाप कर्म किये हैं वे कैसे विनष्ट नहीं हो जाते हैं अर्थात् अवश्य ही सब का नाश हो जाता है ॥१०६॥ आपके श्री चरणों में अर्पित किये पूजा–दान–व्रत–तीर्थ–जप–होमों के द्वारा निज धर्म का परित्याग करके घोर तपश्चर्या क्यों समाचरित कर ॥१०७॥ अपने ही धर्म का सदा पालन करना चाहिए, यदि अपने धर्म के परिपालन करने में मृत्यु भी हो जावे तो भी वह श्रेय का सम्पादन करने वाली ही हुआ करती है । परधर्म तो सदा ही भय को देने वाला ही होता है अर्थात् कैसी भी दशा क्यों न हो पराया धर्म कभी भी ग्रहण नहीं करना चाहिए । शास्त्रोक्त विधान का परित्याग करके घोर तप का क्यों समाचरण किया जावे ? ॥१०८॥ सर्वदा आश्रम में रह कर ही उपासना करनी चाहिए । बिना आश्रम के को भी उपासना से मूढ़ मनुष्य कभी भी सिद्धि को प्राप्त नहीं किया करता है । ब्रह्माजी

के द्वारा ही ये सब वर्णों की रचना की गयी है और उन सभी वर्णों वालो को उन्होने ही अपने-अपने धर्म मे भी नियोजित किया है ।।१०६।। अपने धर्म के पूर्ण पालन करते हुए जो भी द्रव्य प्राप्त होता है अर्थात् धर्मार्जित जो धन होता है वह धन शुक्ल धन के नाम से कहा जाया करता है। उसी शुक्ल दान से जो श्रद्धा से समन्वित दान दिया जाया करता है। ऐसे बहुत ही थोडे से भी दान से महान् पुण्य हुआ करता है जिसकी कोई सख्या ही नही होती है अर्थात् वह पुण्य अपरिमित एव असख्य ही हुआ करता है। नीच के सग से जो द्रव्य गृह के कर्मो मे लाया गया है और उस धन से जो मनुष्य आदि के द्वारा दान किया जाता है उसका कुछ भी फल नही होता है और दान के दाता लोग उस फल के भागी भी नही हुआ करते हैं ।।११०-११२।।

यादृशं कुरुते कर्म इन्द्रियाणा सुखेच्छया ।
तादृशी योनिमाप्नोति मूढो हि ज्ञानदुर्बलः ।।११३
इह यत्कुरुते कर्म तत्परत्रोपभुज्यते ।
पुण्यमाचरतः पुसो यदि दुःख प्रजायते ।।११४
तदा तापो न कर्त्तव्यस्तत्कर्म पूर्वदेहजम् ।
पापमाचरत. पुंसो जायते सुखमेव च ।।११५
न कर्त्तव्यस्तदा हर्षः सुखे तत्र सुरेश्वरि ।
रज्जुबद्धाश्च पशवः प्रभुणास्वेच्छया यथा ।।११६
नीयन्ते कर्मबन्धेन मनुजा अपि भूतले ।
शाखामृगो वनचरो नृत्यते च गृहेगृहे ।।११७
एव च कर्मणा जीवा नीयन्ते सर्वयोनिषु ।
क्रीडनाकन्दुको यद्वत्प्रेर्यते प्रभुणेच्छया ।।११८
कर्मणा वा तथा जन्तुर्नीयते सुखदु.खयोः ।
प्राणी स्वकर्मभिर्बद्धो न शक्तो बन्धनिग्रहे ।।११९

अपनी इन्द्रियो के सुख की इच्छा से जैसा भी कर्म किया जाता है उसी के अनुसार ज्ञान से दुर्बल मूढ मनुष्य उसी प्रकार की योनि को प्राप्त किया करता है ।।११३।। यहाँ पर ससार मे जो भी बुरा-भला

कर्म मनुष्य किया करता है उसका तदनुसार फल वह परलोक मे जाकर अवश्य ही भोगा करता है। पुण्य कर्म के करने वाले पुरुष को भी यदि कोई दुःख उत्पन्न होता है तो उस दु.ख पाने के समय मे किसी भी प्रकार का सन्ताप नहीं करना चाहिए क्योंकि वह दु.ख तो उसको पूर्व जन्म के देह के द्वारा किये हुए कर्म के कारण ही उत्पन्न हुआ है। इसी भाँति पापो का आचरण करने वाले पुरुष को भी यहाँ ससार मे सुख की समुत्पत्ति हुआ करती है। उस सुख से उसे कोई हर्ष भी नही करना चाहिए अर्थात् पाप का कर्म का कुछ भी बुरा फल नही हुआ करता है इस भ्रम मे पड कर हर्ष मे फूल नही जाना चाहिए। हे सुरेश्वरि ! जिस तरह से स्वामी के द्वारा स्वेच्छा से रज्जु के द्वारा पशुगण बद्ध किये जाते हैं उसी तरह मनुष्य भी कर्मो के बन्धन के द्वारा ही इस भूतल मे प्राप्त किये जाया करते हैं। शाखाओ पर विचरण करने वाला वानर वनचर होता है किन्तु घर-घर मे नृत्य किया करता है ॥११४-११७॥ इसी प्रकार से कर्म के द्वारा ही ये सब जीव भी सब योनियो मे जाया करते हैं। जिस प्रकार से क्रीडा करने वाले स्वामी के द्वारा कन्दुक (गेंद) चाहे जिस ओर प्रेरित की जाया करती है उसी तरह से यह जन्तु भी कर्म के द्वारा ही सुख और दु.ख मे पहुचाया जाया करता है। यह प्राणी अपने ही किये हुए कर्मों मे बद्ध होता है और वह कर्म द्वारा प्राप्त बन्धन के निग्रह करने मे समर्थ नही होता है ॥११८-११६॥

देवा वै कर्मभिर्बद्धा ऋषयश्च तथा परे ।
कैलासे रुद्रदेहस्था भुजगा विषभोजिनः ॥१२०
असमर्थाः सुधां भोक्तुं कर्मयोनिर्बलीयसी ।
नीरोगदेहदाता यो बुधैःसूर्यो हि कथ्यते ॥१२१
तद्रथे सारथिः पङ्गुःकर्मयोनिर्बलीयसी ।
इन्द्रद्युम्नो हि राजर्षिर्गजत्वं कर्मणा गत ॥१२२
समर्थस्वामिना तस्मिन्कर्मयोनिर्वृथा कृता ।
स्कन्दादयो देवा मानवाश्चासुराश्च ये ॥१२३

ते सर्वे कर्मबद्धाश्च विचरन्ति महीतले ।
कर्माधीनं जगत्सर्वं विष्णुना निर्मितं पुरा ॥१२४
तत्कर्म केशवाधीनं रामनाम्ना विनश्यति ।
सर्वत्राऽपि स्थितं तोयं मुक्तिदं तु सितासिते ॥१२५
एवमाचरतां कर्म मुक्तिदं केशवार्चनम् ।
इन्द्रियाणां सुखार्थाय यः कर्म मनसा चरेत् ॥१२६
अहं कृतेन मन्येत केवलं देहमेव हि ।
मनसा संस्मरञ्जन्तुः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥१२७

देवगण भी कर्मों से बँधे हुए हैं और ऋषि लोग तथा दूसरे भी सभी कर्म के बन्धन में रहते हैं । कैलास में रुद्र के देह में स्थित विष-भोजी भुजग हैं ॥१२०॥ वे लोग सुधा के भोगने में भी असमर्थ होते हैं । यह कर्म योनि बहुत बलवती हुआ करती है । नीरोग (स्वस्थ) देह का देने वाला जो है वह बुध पुरुषों के द्वारा सूर्य्य कहा जाया करता है ॥१२१॥ उसी स्वास्थ्यप्रद देवता के रथ का जो सारथि है वह पंगु है । कर्मों द्वारा प्राप्त होने वाली योनि बहुत अधिक बलशालिनी होती है इन्द्रद्युम्न नाम वाला राजर्षि कर्म के प्रभाव से ही गज की योनि को प्राप्त हुआ था । समर्थ स्वामी ने उसमें कर्मयोनि को वृथा कर दिया था । रुद्र और ब्रह्मा आदि देवगण मानव और असुर ये सभी कर्मों के पाश से सुबद्ध होकर ही इस महीतल में विचरण किया करते हैं । भगवान् विष्णु ने इस सम्पूर्ण जगत् को पहिले ही से कर्मों के अधीन ही निर्मित किया है ॥१२२-१२४॥ वह कर्म भी केशव के अधीन होता है जो राम के नाम से विनाश को प्राप्त हो जाया करता है । सर्वत्र भी स्थित जल मुक्ति का प्रदान करने वाला है । सित और असित में इस प्रकार से आचरण करने वालों का कर्म केशवार्चन मुक्ति का प्रदान करने वाला होता है । इन्द्रियों के सुख के लिये जो कोई मन से ही कर्म का समाचरण करता है । अहं कृत से केवल देह ही को मानता है । ऐसा मन से संस्मरण करता हुआ जो जन्तु होता है, उसे प्रायश्चित करना चाहिए ॥१२५-१२७॥

स पूर्वकर्मभोक्ता च अग्रे कर्म न वर्धते ।
प्रशसन्ति ग्रहान्केचित्केचित्प्रेतपिशाचकान् ॥१२८
केचिद्देवान्प्रशसन्ति ह्योपधी. केचिदूचिरे ।
केचिन्मन्त्र च सिद्धि च केचिद्वुद्धि पराक्रमम् ॥१२६
उद्यम साहस धैर्य केचिन्नीति वल तथा ।
अह कर्म प्रशसामि सर्वे कर्मानुवर्तिन ॥१३०
इति मे निश्चिता बुद्धिः कथ्यते पूर्वसूरिभिः ।
यदा पुण्यमयो जन्तु पाप किञ्चिन्न विद्यते ॥१३१
ज्ञान हि द्विविध चैव तदा पुण्य सुख भवेत् ।
पाप पुण्य समयस्य तदा कर्मसु विद्यते ॥१३२
सम योग यदा द्वन्द्व तदानन्दपद व्रजेत् ।
बाह्ये सर्वपरित्यागी मनसा सस्पृही भवेत् ॥१३३

यह पूर्व किये हुए कर्मों का भोक्ता है और आगे कर्मवर्धित नही होता है । कुछ लोग तो ग्रहो की प्रशसा किया करते हैं और प्रेत तथा पिशाचो की तारीफ करते हैं । कुछ देवो की प्रशंसा करने वाले हैं तो कुछ लोग औपधियो की प्रशसा का बखान करते हैं—कुमन्त्र की—कुछ सिद्धि की—कुछ लोग बुद्धि की तो कुछ पराक्रम की तारीफ किया करते हैं ॥१२८-१२६॥ उद्यम—साहस—धैर्य—नीति और बल के विषय मे कुछ-कुछ प्रशसा के पुल बाँधते हैं—ऐसा भिन्न २ दिमागो या विचार भी विभिन्न होता है किन्तु मैं तो सर्वोपरि विराजमान एक कर्म की ही प्रशसा करता हू कि सभी कर्मों के अनुवर्त्ती हुआ करते है ॥१३०॥ मेरी तो यही बुद्धि निश्चित हुई है और पूर्व मे होने वाले विद्वानो के द्वारा भी यही कहा जाता है । जिस समय मे यह जन्तु पुण्यमय होता है तो उसमें कुछ भी पाप विद्यमान नही रहा करता है । यह ज्ञान भी दो प्रकार का है उसी समय मे पुण्य सुख होता है । पाप और पुण्य जिसका समान है उस समय म कर्मों म विद्यमान रहता है । जिस समय मे यह द्वन्द्व सम होता है उस समय म यह आनन्द के पद को जाया करता है ।

बाह्य में तो सब का परित्याग करने वाला है और मन से जो संस्पृहा रखने वाला होता है ।।१३१-१३३।।

तद्वृथाचरितं तस्य तेन तत्पापभोगिनः ।
बाह्ये करोति कर्माणि मनसा निःस्पृहो भवेत् ।।१३४
त्यागोऽसौ मध्यमो ज्ञेयो न तु पूर्णफलं लभेत् ।
बाह्यमध्ये परित्यज्य बुद्धयाशून्यावलम्बनम् ।।१३५
त्यागः स उत्तमो ज्ञेयो योगिनामपि दुर्लभः ।
क्रोधात्सर्वं त्यजन्त्येके केचिद्वादप्रभावतः ।।१३६
कष्टात्सर्वं त्यजन्त्येके त्यागाः सर्वे तु मध्यमाः ।
सुबुद्धया श्रद्धया युक्तो न क्रोधादिवशं गतः ।।१३७
कर्मणा ह्यवलिप्तोऽपि सुगतिं याति मानवः ।
शूचीनां श्रीमतां गेहे धीमतां योगिनामपि ।।१३८
योगाद्भ्रष्टस्तु जायेत कुले वै द्विजपूर्वके ।
स्वल्पेनैव तु कालेन पूर्णयोगं च विन्दति ।।१३
चिदानन्दपदं गच्छेद्योगभक्तिप्रसादतः ।
पङ्केनैवयथापङ्कं रुधिरं रुधिरेण वै ।।१४०
हिंसया कर्मणा कर्म कथं क्षालयितुं क्षमः ।
हिंसाकर्ममयो यज्ञः कथं कर्मक्षये क्षमः ।।१४१

यह उनका जो समाचरण है वह वृथा ही होता है क्योंकि उससे वे पापों के भोगी ही होते हैं । जो बाहिर में कर्मों को किया करता है किन्तु अपने मे स्पृहा से रहित रहा करता है—यह त्याग तो है किन्तु वह मध्यम श्रेणी का ही कहा जाता है । त्याग का पूर्ण फल जो होता है वह उसे कभी भी प्राप्त नहीं करता है । बाह्य मध्य में परित्याग करके बुद्धि से शून्य का अवलम्बन है । उसी को उत्तम प्रकार का त्याग समझना चाहिए जो कि बड़े-बड़े योगिजनों को भी दुर्लभ होता है । कुछ लोग क्रोध के आवेश के कारण से सभी कुछ का त्याग किया करते हैं और दूसरे ऐसे भी लोग होते हैं जो वाद के प्रभाव से ही त्याग करते हैं । कुछ लोग कष्टातिरेक के अनुभव के कारण से ही सब का

त्याग कर देते हैं किन्तु ये सभी प्रकार के जो त्याग हैं वे मध्यम श्रेणी के ही त्याग कहे जाते हैं। सुन्दर बुद्धि से और श्रद्धा से युक्त होता हुआ तथा क्रोध आदि मनोविकारो के वशीभूत न होने वाला जो त्याग किया करता है वही त्याग उत्तम है। कर्मो से अवलिप्त भी मानव सुगति को प्राप्त किया करता है। वह पवित्र—श्रीमान्—धीमान् और योगियों के घर मे होता है। जो योग से भ्रष्ट हो जाता है वह किसी द्विज के कुल मे जाता है और फिर बहुत स्वल्प काल मे ही पूर्ण योग को प्राप्त किया करता है ॥१३४-१३६॥ फिर वह योग और भक्ति के प्रभाव मे चिदानन्द की पदवी को चला जाया करता है। पंक से ही पंक (कीच) को तथा रुधिर से रुधिर को और हिंसा के कर्म से कर्म को कैसे कोई क्षालन करने मे समर्थ हो सकता है? कदापि नही हो सकता है। यज्ञ जो होता है वह भी हिंसा के कर्म से परिपूर्ण ही हुआ करता है। वह इस प्रकार का यज्ञ कर्मो के क्षय करने मे किस तरह समर्थ हो सकता है जिस कर्म मे ही हिंसा भरी हुई है। यह असम्भव ही है ॥१४०-१४१॥

स्वर्गकामकृता यज्ञाः स्वर्गे ते चाल्पसौख्यदाः।
अनित्यानि तु सौख्यानि भवन्ति च बहून्यपि ॥१४२
नित्यं सौख्यं न तेष्वस्ति विना भक्त्या हरेः क्वचित्।
सार्वभौमसुखं राज्यं स्वर्गे चाऽपि तथा सुखम् ॥१४३
अन्यत्किञ्चिन्न वाञ्छामि गर्भवासाद्बिभेम्यहम्।
ग्रावा वै भिद्यते लोहैर्मणिवर्यं नैव भिद्यते ॥१४४
नानाकाममयी बुद्धयाविष्णुभक्तिर्नभिद्यते।
बकोजलचराभुङ्क्ते मण्डूकादींश्च वर्जयेत् ॥१४५
तथा यमः सर्वहन्ता वर्जयेत्कृष्णसेवकान्।
यो रक्षति स हर्ता च स वै पालकउच्यते ॥१४६
अपराधशतैर्युक्तं स्वस्थाने नय मामितः।
यथाकृतापराधस्य कृष्णस्तस्य कृपाकरः ॥१४७

यज्ञो का फल ही यह होता है कि वे स्वर्ग की कामना को करने वाले हुआ करते हैं और वे भी स्वर्ग बहुत ही स्वल्प सौख्य के प्रदान करने वाले हुआ करते हैं। बहुत से सुख भी अनित्य ही हुआ करते हैं जो चिरस्थायी ही नहीं होते हैं ॥१४२॥ बिना श्री हरि की भक्ति के कहीं पर भी उनमें नित्य सौख्य नहीं हुआ करता है। राज्य सार्वभौम सुख वाला होता है और स्वर्ग में भी उसी प्रकार का सुख होना है। ॥१४३॥ मैं अन्य कुछ भी नहीं चाहता हूं मुझे तो निरन्तर एक में पश्चात् दूसरे जीवन धारण करने में जो गर्भ में निवास करना पड़ता है उस महान् उत्पीड़न से बड़ा भय होता है। ग्रावा का ही लौह से भेदन किया जाता है किन्तु माणिक्य मार्ग का कभी नहीं भिद्यमान हुआ करता है ॥१४२-१४४॥ अनेक प्रकार की कामनाओं से परिपूर्ण बुद्धि से विष्णु भक्ति का भेदन नहीं हुआ करता है। बगुला जो पक्षी होता है वह जल निवासी जलचरों को खाता है। उसी तरह से यद्यपि यमराज भी सभी का हनन करने वाला होता है किन्तु वह भी श्री कृष्ण की उपासना करने वाले सेवकों को वर्जित कर देता है। जो रक्षा किया करता है वही हर्त्ता और वही पालक कहा जाता है ॥१४५-१४६॥ सैकड़ों अपराधों से युक्त भी मुझको यहां से अपने स्थान पर ले चलो जिससे कि अपराध करने वाले उसके ऊपर श्री कृष्ण कृपा के करने वाले होते हैं ॥१४७॥

फलं च लभते वाद्यरक्षक किङ्करोति चेत् ।
एवमात्मा च देहेऽस्मिन्परवश्यकृपाकर ॥१४८
प्राप्तो न पारं शतकर्ममल्लैर्मुक्तानवापिता ।
व्याधस्य मुक्तिदाताचकुब्जकातारितास्वयम् ॥१४९
ब्रह्माद्यैर्दुलभः स्वप्ने सुलभो गोपमन्दिरे ।
गोपोच्छिष्ट यदा भुक्त तदा ते तारिता स्वयम् ॥१५०
योगिभिर्गीयते नित्य परमात्मा जनार्दन ।
अव्ययः पुरुष श्रीमान्दृष्ट्वा तं देवि विस्मये ॥१५१
एतत्स्मरणक दिव्य ये पठन्ति दिनेदिने ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णो परं पदम् ॥१५२

अनयाभावबुद्धया च पठन विष्णुसन्निधौ ।
इह लोके सुख भुक्त्वा पर पदमवाप्नुयात् ॥१५३

जो वाद्य का रक्षक किंकर होता है वह भी फल की प्राप्ति किया करता है । इसी प्रकार से यह आत्मा इस देह मे परवश्य कृपा कर है । पार प्राप्त नहीं हुआ है । मन के मल्लों के द्वारा अनवापिता युक्त हैं । जो स्वय ही व्याध को मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है और कुब्जा को जिसने तार दिया है । वह ब्रह्मा आदि देवो के द्वारा भी दुर्लभ होता है । तथा गोपों के घर में अनायास ही सुलभ होता है । जिस समय मे गोपो का उच्छिष्ट खाया था सब वे स्वय ही शान्ति हो गये थे ॥१४८-१४६॥ परमात्मा जनार्दन का योगियो के द्वारा नित्य गान किया जाता है अव्यय श्रीमान् पुरुष है हे देवि ! देखकर उनको भी विस्मय मे पडना होता है । यह स्मरण जो परम दिव्य है इसको जो भी आये दिन पढ़ा करते हैं वे सब पापो मे विनिर्मुक्त होकर विष्णु के परम पद की प्राप्ति किया करते हैं । इस भावभरी बुद्धि से इसका पठन विष्णु की सन्निधि में करे तो इस लोक म सुख भोग कर अन्त मे परम पद की प्राप्ति किया करता है ॥१५०-१५३॥

॥ क्रियायोगसार पीठिका वर्णन ॥

लक्ष्मीनाथपदारविन्दयुगलं ब्रह्मेश्वराद्यामर-
श्रेणीनम्रशिरोलिमालममलं वन्दामहे सन्ततम् ॥१
भक्त्या योगिमनस्तडागसुषमासन्दोहपुष्यत्तमं ।
गङ्गाम्भोमकरन्दबिन्दुनिकरं संसारदुःखापहम् ॥२
वेदेभ्य उद्धृत्य समस्तधर्मान्योऽयं पुराणेषु जगाद देवः ।
व्यासस्वरूपेण जगद्धिताय वन्दे तमेतं कमलासमेतम् ॥३
एकदा मुनयः सर्वे सर्वलोकहितैषिणः ।
सुरम्ये नैमिषारण्ये गोष्ठी चक्रुर्मनोरमाम् ॥४
तत्रान्तरे महातेजाव्यासशिष्यो महायशाः ।
सूत.शिष्यगणैर्युक्तः समायातो हरिस्मरन् ॥५
तमायान्तंसमालोक्य सूतं शास्त्रार्थपारगम् ।
नेमु'सर्वेसमुत्थाय शौनकाद्यास्तपोधनाः ॥६
सोऽपि तान्सहसाभक्त्या मुनीन्परमवैष्णवान् ।
ननाम दण्डवद्भूमौसर्वधर्मविदाम्वरः ॥७
तत्रोपविष्टं तं सूतं शौनको मुनिसत्तमः ।
बद्धाञ्जलिरिमां वाचमुवाच विनयान्वितः ॥८

सर्व प्रथम इस खण्ड के आरम्भ मे मगलाचरण किया जाता है—भगवान् श्री लक्ष्मी के नाथ के दोनो चरण कमलो की निरन्तर हम वन्दना करते हैं जो भगवच्चरण युगल सर्वदा निर्मल हैं और ब्रह्मा-शिव आदि देव वृन्द के शिरो द्वारा विनम्र भाव से समर्चित हुआ करते हैं। जिस समय मे देवगण उनके चरणो मे अपना मस्तक टेकते हैं तो उनके शिरों मे पहिनी हुई माला मे लिपटे हुए भ्रमर भी उनके चरणो मे झुके हुए दिखलाई दिया करते हैं ॥१॥ भगवान् के चरण इस सासारिक दुःखो के समूह का अपहरण करने वाले हैं। भक्ति भाव से योगि जन के मन रूपी तालाब की अत्यन्त शोभा के सन्दोह से परिपुष्ट हैं तथा गंगा के जल के मकरन्द-बिन्दुओ के समुदाय वाले हैं। क्योंकि गगा का उद्गम

श्री भगवच्चरण के जल से हुआ है ।।२।। वेदो से उद्धृत करके समस्त धर्मों का जिस देव ने पुराणो मे वर्णन कर दिया है जो व्यास श्रीकृष्ण द्वैपायन के स्वरूप से इस जगत् के हितो का सम्पादन करने के लिये अवतीर्ण हुए हैं उन कमला के सहित देव की वन्दना करते हैं ।।३।। एक समय की बात है कि सम्पूर्ण लोको के हित करने की इच्छा वाले समस्त मुनिगण परम सुन्दर नैमिषारण्य मे मिल कर अत्यन्त मनोहर गोष्ठी कर रहे थे ।।४।। उसी बीच मे वहा पर महान् तेज के धारण करने वाले एव परम विशाल यश से सुसम्पन्न व्यासजी के शिष्य श्री सूतजी अपने शिष्यगण से सयुक्त होकर श्रीहरि के गुण गण स्मरण करते हुए वहा पर आ गये थे ।।५।। समस्त शास्त्रो के अर्थों का तात्त्विक ज्ञान रखने वाले उन सूतजी को वहा पर समागत देख कर शौनक प्रभृति जो परम तपस्वी थे वे सभी मुनि गण अपने-अपने आसनो से उठकर खडे हो गये थे और सब ने बहुत ही आदर पूर्वक उनको प्रणामाभिवादन किया था ।।६।। सूत जी ने भी उन सब परम वैष्णव मुनियों को भक्ति पूर्वक सहसा भूमि पर एक दण्ड की भाँति पड कर प्रणाम किया था क्योंकि सूतजी तो सम्पूर्ण धर्मों के वेत्ता विद्वानों मे परम श्रेष्ठ मनीषी थे ।।७।। जिस समय मे श्री सूतजी ने वहा पर आसन ग्रहण कर लिया तो मुनियो मे श्रेष्ठ शौनक ने अपने दोनों हाथ जोड कर अति विनम्र भाव से युक्त होकर सूत जी से यह वाणी कही थी ।।८।।

महर्षे सूत सर्वज्ञ ! कलिकाले समागते ।
केनोपायेन भगवद्भूरिभक्तिर्भवेन्नृणाम् ।।९
कलौ सर्वे भविष्यन्ति पापकर्मरता जनाः ।
वेदविद्याविहीनाश्च तेषां श्रेयः कथं भवेत् ।।१०
कलावन्नगताः प्राणा नराः स्वल्पायुषस्तथा ।
निर्धनाश्च भविष्यन्ति नानादुःखप्रपीडिताः ।।११
प्रयासमाप्यमनुष्ठानं शास्त्रेषु विहितं द्विज ।
तस्मात्ते न करिष्यन्ति कलौ नष्टधियो जनाः ।।१२

सुकृतेषु विनष्टेषु प्रवृत्ते पापकर्मणि ।
सवंशाः प्रलयं सर्वे गमिष्यन्ति दुराशयाः । १३
स्वल्पश्रमैरल्पवित्तैरल्पकालैश्च सत्तम ! ।
यथा भवेन्महापुण्य तद्द कथय सूत नः ॥१४

शौनक मुनि ने कहा—हे महर्षि प्रवर ! हे सूतजी ! आप तो सर्वज्ञ हैं। अब आप यह बतलाइये कि इस महान् घोर कलि—काल के आ जाने पर ऐसा कौन उपाय है जिसके द्वारा मनुष्यों को भगवान् की विशेष रूप से भक्ति हो जावे ॥८॥ इस घोर कलियुग का तो प्रभाव ही ऐसा है कि इसमें सभी मनुष्य पापयुक्त कर्मों में रति रखने वाले होते हैं और वेदों की विद्या से रहित हुआ करेंगे। अब आप यही बतलाने की कृपा करें कि ऐसे पुरुषों का कल्याण कैसे होगा ॥१०॥ इस कलियुग में एक मात्र अन्न में ही प्राण रहा करेंगे और लोग बहुत ही स्वल्प आयु वाले हो जायेंगे। मनुष्यों के पास कलियुग में धन का अभाव रहेगा तथा अनेक प्रकार के दुःखों से उत्पीडित रहा करेंगे ॥११॥ हे द्विज ! शास्त्रों में जो भी सुकृत कर्म बतलाया गया है वह बहुत ही कठिन प्रयासों से साध्य होता है। इसी कारण से इस कलियुग में कोई भी मनुष्य ऐसा कोई सुकृत कर्म नहीं किया करेंगे ॥१२॥ जब इस तरह सुकृतों का विनाश हो जायगा तो पाप कर्मों की प्रवृत्ति बढ जायगी और फिर सभी दुष्ट आशय वाले मनुष्य वंशों के सहित प्रलय को प्राप्त हो जायेंगे ॥१३॥ हे सूतजी ! आप तो परम श्रेष्ठ पुरुष हैं। अब ऐसा कोई महान् पुण्य-कर्म हमको बतलाइये जिससे बहुत ही थोड़े श्रम से—थोड़े धन से और थोड़े ही समय में लोगों का कल्याण हो जावे ॥१४॥

धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ ! त्वमेव वैष्णवाग्रणीः ।
यतः समस्तलोकानां हितं वाञ्छसि सर्वदा ॥१५
शृणु शौनक ! वक्ष्यामियत्त्वयाश्रोतुमिच्छितम् ।
सर्वलोकहितार्थाय वैष्णवानांविशेषतः ॥१६
पृष्टो जैमिनिना सर्वं यदुवाच शृणुष्व तत् ।
महर्षिर्जैमिनिर्नाम योगाभ्यासरतः सदा ॥१७

प्रणम्य शिरसा व्यासं पप्रच्छ मुनिसत्तमः ॥१८
भगवन्सर्वधर्मज्ञव्यास ! सत्यवतीसुत ! ।
कलौ कस्माद्भवेन्मोक्षस्तन्ममाऽऽचक्ष्वमूलतः ॥१९
जैमिनेर्वचनं श्रुत्वा व्यासः सन्तुष्टमानसः ।
प्रारेभे मुनिशार्दूल ! कथां मङ्गलसंयुताम् ॥२०

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! आप परम धन्य हैं और सब वैष्णवों के शिरोभूषण हैं क्योंकि आप सर्वदा समस्त लोकों के हित धर्म के जानने की इच्छा किया करते हैं ॥१५॥ हे शौनक ! जो आप इस समय में मुझ से, श्रवण करना चाहते हैं उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप समाहित होकर सुनिए । मैं ऐसा ही उपाय बतलाता हूँ जो सभी लोगों के हित के लिये होगा तथा विशेष रूप से वैष्णवों के हित के करने वाला होगा ॥१६॥ एक महर्षि जैमिनि नाम वाले थे जो सर्वदा योग के अभ्यास करने में ही रति रखा करते थे । उन जैमिनि मुनि ने पूछा था और उनसे जो भी कुछ कहा था वही अब आप श्रवण करें । मुनि श्रेष्ठ ने प्रणाम करके श्री वेद व्यास देव से पूछा था ॥१७-१८॥ जैमिनि मुनि ने कहा था—हे भगवन् ! आप तो व्यास देव समस्त धर्मों के ज्ञाता हैं । हे सत्यवती के पुत्र ! इस महान् दारुण घोर कलियुग में ऐसा कौन-सा उपाय है जिससे मानवों का मोक्ष हो जावे ? अब आप कृपा कर उसी उपाय को मुझे मूल सहित बतलाइये ॥१९॥ श्री सूत जी ने कहा—जैमिनि मुनि के इस वचन को सुन कर व्यास जी का मन परम सन्तुष्ट हो गया था । हे मुनि शार्दूल ! फिर व्यास जी ने परम मंगल से समन्वित कथा के कहने का आरम्भ किया था ॥२०॥

जैमिने ! मुनिशार्दूल धन्योऽसि त्वं महामते ! ।
नारायणकथां श्रोतुं यतोऽभिलषसि सर्वदा ॥२१
यस्य पापक्षये बुद्धिर्भक्त्यर्थस्य प्रवर्तते ।
तस्य तस्य भवेन्नाशः पापानां सोऽपि वर्द्धितः ॥२२
न संसारस्य दुःखं वै भोक्ता नाशिते भुवि ।
पुरुषः सृष्ट्वा विविधा भूमिभौरवणी कृता ॥२३

कथा यैर्जगतीवक्तुं श्लाघ्यते वैष्णवैर्जनैः ।
तांमिथ्यामिव यो वक्ति सज्ञेयःपापिनांवरः ।।२४
यस्मिन्दिने मुनिश्रेष्ठ श्रूयते न हरेः कथा ।
तद्दिनं दुर्दिनं मन्ये घनच्छन्नं न दुर्दिनम् ।।२५
यत्र यत्र महीभागे वैष्णवी वर्तते कथा ।
सान्निध्यं तत्र भगवान्न जहाति कदाचन ।।२६
शृण्वतां लोकसङ्घानां पापव्याधिविनाशनी ।
नारायणकथा यत्र वर्तते प्रतिवासरम् ।।२७
मुने क्रियायोगसारं बह्वर्थं पापनाशनम् ।
नारायणकथोपेतं सेतिहासं निशामय ।।२८

श्री महर्षि व्यास देव ने कहा—हे जमिने ! आप तो समस्त मुनियों मे शार्दूल के समान हैं । हे महान् मति वाले ! आप तो परम धन्य है क्योंकि आप सर्वदा भगवान् नारायण की कथा के श्रवण करने की इच्छा किया करते हैं ।।२१।। इस समय संसार मे जिस-जिस पुरुष की बुद्धि सत्कथाओं के श्रवण करने मे प्रवृत्त होती है उस-उसको मोक्ष प्रदान करने वाला ज्ञान हो जाया करता है—ऐसा जान लेना चाहिए ।।२२।। इस भूमण्डल मे जो महापापी होता है उसी को वैष्णवों की कथा मे रुचि नही होती है । ऐसे पुरुषो की सृष्टि विधाता ने व्यर्थ ही की है जिन से यह भूमि भार वाली बना दी है ।।२३।। जिस कथा के कथन को इस जगत् में वैष्णव जनो के द्वारा श्लाघायुक्त किया जाता है उसी कथा को जो एक मिथ्यावाद कह कर पुकारता है उसे पापियो मे शिरोमणि ही जानना चाहिए ।।२४।। हे मुनि श्रेष्ठ ! जिस दिन मे भगवान् श्री हरि की कथा का श्रवण नही किया जाता है उस दिन को बडा ही दुर्दिन मैं समझता हूँ जैसा कि मेघों से समाच्छन्न हुआ करता है ।।२५।। इस मही भाग पर जहा-जहाँ पर भी वैष्णवी कथा हुआ करती है वहा पर भगवान् किसी समय में सान्निध्य का त्याग नही किया करते है ।।२६।। जो लोगों का समुदाय वैष्णवी कथा का श्रवण किया करते हैं उनके सम्पूर्ण पापों की व्याधियों का नाश करने वाली होती है । नारायण की कथा जहा

पर प्रतिदिन हुआ करती है वहां पाप नहीं रहते हैं ॥२७॥ हे मुने ! यह क्रिया योग का सार बहुत अर्थों से परिपूर्ण है और पापों के नाश करने वाला है। नारायण की कथा से युक्त इतिहास समेत इसका ही अब आप श्रवण कराइये ॥२८॥

॥ सृष्टिकरण और मधुकैटभ वध ॥

सृष्टेरादौमहाविष्णुः सिसृक्षुःसकलं जगत् ।
स्रष्टापाताच संहर्ता त्रिमूर्तिरभवस्स्वयम् ॥१
सृष्टयर्थमस्य जगतः ससर्ज ब्रह्मसञ्ज्ञकम् ।
दक्षिणाङ्गतआत्मानमात्मना श्रेष्ठपूरुषः ॥२
ततस्तु पालनार्थाय जगतो जगतीपतिः ।
विष्णुः ससर्ज वामांशान्निजांशं केशव मुने ! ॥३
अथ संहरणार्थाय जगतो रुद्रमव्ययम् ।
मुने ससर्ज मध्याङ्गात्कुलपद्मालयः प्रभुः ॥४
रजःसत्त्वतमश्चेति पुरुषं त्रिगुणात्मकम् ।
वदन्तिकेचिद्ब्रह्माणं विष्णुं केचिच्चशङ्करम् ॥५
एको विष्णुस्त्रिधा भूत्वा सृजत्यत्ति च पाति च ।
तस्माद्भेदो न कर्त्तव्यस्त्रिषु लोकेषु सत्तमैः ॥६

श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास देव ने कहा—इस विश्व की सृष्टि के आदि में भगवान् महा विष्णु ने जब इस सम्पूर्ण जगत् के सृजन करने की इच्छा की थी तो उस समय में स्वयं ही भगवान् तीन रूपों वाले हो गये थे। एक रूप सृजन करने वाला था—दूसरा पालन पोषण करने वाला था और तीसरा संहार करने वाला था ॥१॥ इस जगत् की सृष्टि के लिये ब्रह्मा नाम वाले देव की रचना की थी। श्रेष्ठ पुरुष ने अपने ही दक्षिण अंग से अपने आपको ही रचा था जिसका कि 'ब्रह्मा'—यह नाम हुआ था। फिर सृजित जगत् के पालन-पोषण करने के लिये जगत् के स्वामी प्रभु ने हे मुने ! अपना ही एक अंश केशव को जिसका नाम

विष्णु है अपने वामाग से सृजन किया था ॥२-३॥ इसके अनन्तर इस जगतीतल का सहार करने के लिये हे मुनिवर ! पद्मालय प्रभु ने अपने मध्यमाग से अव्यय स्वरूप रुद्रदेव की रचना की थी ॥४॥ परम पुरुष प्रभु रज:, सत्त्व और तम इन तीनो गुणो का समुदाय स्वरूप ही है । कुछ लोग उसको ब्रह्मा तो कुछ विष्णु एव कुछ उसी को शकर कहा करते हैं ॥५॥ वस्तुत. वह एक ही भगवान् विष्णु हैं जो तीन स्वरूपो मे अव-स्थित होकर इस जगत् का सृजन-पालन एव सहरण किया करते हैं । अतएव श्रेष्ठ पुरुषो को इन तीनो मे कुछ भी भेद-भाव नही करना चाहिए क्योकि वास्तव मे तीनो एक ही के विभिन्न रूप होते हैं ॥६॥

आद्या प्रकृतिरेतस्य महाविष्णोः परात्मनः ।
निदान भूतविश्वस्य विद्याविद्येति गीयते ॥७
भावाभावस्वरूपासा जगद्धेतु.सनातनी ।
ब्राह्मीलक्ष्मीरम्बिकेति त्रिमूर्त्ति सहसाऽभवत् ॥८
सृष्टिस्थितिविनाशेषु या नियोज्यततो मुने ! ।
आद्या चैवाऽऽद्यपुरुषस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥९
यस्याऽऽज्ञयातनो ब्रह्मा महाभूतान्ससर्जह ।
पृथिव्याकाशवाय्वम्बुवह्नी-पञ्चसमाधिना ॥१०
भूर्भुव.स्वस्तथा चैव महश्चैव जनस्तथा ।
तपश्च सत्यमित्यादीन्सृष्टवान्कमलासनः ॥११
अतल सृष्टवान्ब्रह्मा ततोऽधो वितल द्विज ! ।
ततोऽधः सुतलचैव ततोऽधश्च तलातलम् ॥१२
महातलमधस्तस्मात्ततोऽधश्च रसातलम् ।
तस्मादधश्च पाताल लोकानेव यथाक्रमम् ॥१३
देवताना निवासार्थं रत्नसानु महागिरिम् ।
सृष्टवान्पृथिवीमध्ये जाम्बूनदसमुज्ज्वलम् ॥१४

इन महाविष्णु परमात्मा की जो आद्या प्रकृति है वही इस भूत विश्व की निदान अर्थात् मूल कारण है । वह विद्या और अविद्या इन नामो से गायी जाया करती है ॥७॥ यह इस जगत् की सनातनी (सर्वदा

से चली आने वाली) भावाभाव स्वरूप वाली है। वह ही ब्राह्मी–लक्ष्मी और अम्बिका–इन तीन मूर्त्तियों वाली सहसा हो गयी थी ।।८।। हे मुने ! इस जगत् के सृजन–स्थिति और विनाश के कार्यों मे जिस आद्य की नियुक्ति करके वह आद्य पुरुष फिर वहा पर ही अन्तर्हित हो गये थे ।।६।। जिसकी आज्ञा से फिर ब्रह्मा ने सर्व प्रथम महा भूतों का सृजन किया था। समाधि से वे पच महाभूतों के नाम ये हैं—पृथिवी–आकाश –वायु–जल और अग्नि ।।१०।। कमलासन ब्रह्मा ने सात लोकों का सृजन किया जो ऊपर बताये जाते हैं—भूर्लोक–भुवर्लोक–स्वर्लोक–महर्लोक–जन लोक–तपो लोक और सत्य लोक ।।११।। इसके अनन्तर फिर इस भूमण्डल के नीचे वाले सात लोकों का सृजन किया था। उनके नाम निम्न हैं—अतल–वितल–सुतल–तलातल–महातल–रसातल–पाताल । ये सातों लोक एक-एक के नीचे वाले इसी क्रम से हैं जैसे अतल के नीचे वितल और इसी क्रम से अन्य सभी लोक है। सबके नीचे पाताल लोक है ।।१२-१३।। इसके उपरान्त फिर ब्रह्माजी ने देवगण के निवास करने के लिए एक रत्न सानु महान् पर्वत का सृजन किया था जो कि इस पृथ्वी मण्डल के मध्य भाग मे स्थित है और सुवर्ण के समान भास्वर एवं समुज्ज्वल है ।।१४।।

मन्दर चरम चैव त्रिकूटमुदयाचलम् ।
अन्याश्च पर्वताश्चैव सृष्टवान्विविधानपि ।।१५
लोकालोकस्ततश्चैव तन्मध्ये सप्त सागराः ।
सप्तद्वीपाश्च विवेन्द्र ! परमेशस्वयम्भुवा ।।१६
जम्बूद्वीपो द्विजश्रेष्ठ ! द्वीपश्चप्लक्षसञ्ज्ञितः ।
विश योद्विगुणस्तस्माच्छाल्मलोद्विगुणस्ततः ।।१७
ते च प्लक्षादयो द्वीपाः सर्वभागसमन्विताः ।
समस्तगुणसयुक्ता देवदेवर्षिभूषिता ।।१८
सप्तद्वीपा इमे विप्र सप्तसागरवेष्टिताः ।
तेषा नामानि वक्ष्यामि सागराणां निशामय ।।१९

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ।
एते समुद्रा देवर्षे ! पूर्वस्माच्च परःपरः ॥२०
विज्ञेया द्विगुणाः सर्वआलोकालोकपर्वतात् ।
द्वीपे द्वीपे ततो ब्रह्मा वृक्षगुल्मलतादिकान् ॥२१

इसके अतिरिक्त मन्दर- चरम- उदयाचल-त्रिकूट तथा अन्य अनेक पर्वतों का सृजन किया था ॥१५॥ इस के पश्चात् लोकालोक पर्वत की रचना की थी और उनके मध्य मे सात सागर, सात द्वीप हे विप्रेन्द्र ! परमेशस्वयम्भू ने सृष्ट किए थे ॥१६॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जम्बूद्वीप बनाया था। फिर इसके पश्चात् प्लक्ष सज्ञा वाले द्वीप की रचना की थी जो कि उस प्रथम सृष्ट जम्बूद्वीप से दुगुना है। इसके अनन्तर शाल्मल द्वीप की रचना की थी जो प्लक्ष से भी दुगुना विस्तार आदि मे है ॥१७॥ ये प्लक्ष आदिक द्वीप समस्त भागो से समन्वित है और सम्पूर्ण गुणो से भी सयुत हैं तथा देवगण एव देवर्षिवृन्द से सुशोभित होते हैं ॥१८॥ हे विप्र ! ये सातो द्वीप सात सागरो से परिवेष्टित हैं अर्थात् इन सातो द्वीपो के चारो ओर सात समुद्र इन्हे घेरे हुए रहते है। अब हम उन सातो सागरो के नाम भी आपको बतलाते है। उनको आप श्रवण करे ॥१९॥ लवण सागर-इक्षु सागर-सुरासागर —सर्पि (घृत) सागर-दधि सागर-दुग्ध सागर-जल सागर अन्त मे है। देवर्षे ! ये सातो समुद्र पूर्व से पर-पर ही हैं ॥२०॥ ये सभी लोकालोक पर्वत से लेकर दुगुने जानने चाहिए। प्रत्येक द्वीप द्वीप मे ब्रह्माजी ने वृक्ष-गुल्म और लता आदि का भी सृजन किया था ॥२१॥

तिर्यग्योनिगताञ्जन्तून्सृष्टवान्द्विजसत्तम ! ।
अथ देवान्मनुष्यांश्च नागान्विद्याधरांस्तथा ॥२२
क्रमात्ससर्ज पुत्रांश्च ततो दक्षादिकान्मुनीन् ।
ब्रह्मक्षत्रियविट्छूद्रानन्यांश्चैवान्त्यजास्तथा ।
तेषां च वर्तनादीनि सृष्टवान्स प्रजापतिः ॥२३
हिमाद्रिर्दक्षिणं यद्वै विन्ध्याद्रेरुत्तरं तथा ।
आहुस्तद्भारतं वर्षं शुभाशुभफलप्रदम् ॥२४

आसाद्य भारते वर्षे ये जन्म तु नरोत्तमाः ।
धर्मकर्माणि कुर्वन्ति ते सर्वे केशवोपमाः ॥२५
कर्मभूमौ कृत कर्म शुभ वाऽशुभमेव वा ।
तत्फल भुञ्जते लोका भोगभूमिषु सत्तम ! ॥२६
कर्मभूमि समागत्य यो धर्मकर्मसूद्यत. ।
न च तेन समः कोऽपि त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२७
तस्य स्यात्सफल जन्मजीवित च सुजीवितम् ।
श्रीनारायणसेवाया मतिर्यस्यचविद्यते ॥२८

हे द्विज सत्तम ! फिर ब्रह्माजी ने तिर्यग् योनियो मे जीवित रहने वाले जन्तुओ की रचना की थी फिर देवगण तथा मनुष्यों का,नागो का तथा विद्याधरो का सृजन किया था। इसके पश्चात् क्रम-क्रम से दक्ष आदि मुनियो की एव पुत्रादि की रचना की थी। फिर ब्रह्मा ने ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रो की रचना की तथा अन्य जो अन्त्यज वर्ण वाले लोगो का भी सृजन किया था। उन सब लोगो के वर्तन (वृत्ति-रोजी) आदि का भी निर्माण किया था क्योकि वह समस्त प्रजा के पति थे ॥२२-२३॥ जिसके दक्षिण मे हिमाद्रि है और जिसके उत्तर मे विन्ध्याचल पर्वत है उसे ही भारत वर्ष कहते हैं और यह भारत वर्ष शुभ तथा अशुभ कर्मों के फलों के प्रदान करने वाला है ॥२४॥ जो नरो में परम श्रेष्ठ पुरुष इस भारत वर्ष मे जन्म प्राप्त करके धर्म के कार्य किया करते हैं वे सभी भगवान् केशव के ही समान होते हैं ॥२५॥ हे श्रेष्ठतम ! यह कर्म भूमि है। इसमे किया हुआ कर्म शुभ हो या अशुभ हो उसका फल इस भोग भूमि म मनुष्य अवश्य ही भोगा करते हैं ॥२६॥ इस कर्म भूमि मे आकर जो पुरुष धर्म के कर्मों मे करने में सदा उद्यत रहा करता है उसकी समानता रखने वाला तीनों लोको मे कोई भी नहीं होता है ॥२७॥ ऐसे धर्म के कर्म मे निरत रहने वाले पुरुष का जन्म सफल होता है और उसका जीवन भी बहुत ही सुन्दर हुआ करता है अर्थात् परम श्लाघ्य होता है जिसकी मति भगवान् श्री नारायण की सेवा में हुआ करती है ॥२८॥

जन्मकोट्यर्जितैः पुण्यैः संसारैकाधिनायके ।
नारायणेदेवदेवेभक्तिःस्यात्सुदृढानृणाम् ॥२६
समस्तसुखदश्चाऽपि स श्लाघ्यो निर्भयोऽपि च ।
त्याज्यः स देशः सहसा न तिष्ठेयत्र वैष्णवः ॥३०
जन्मान्तरार्जितं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ।
तत्क्षणात्क्षयमाप्नोतिभगवद्भक्तदर्शनात् ॥३१
वैष्णवाङ्घ्रिजलयस्तुसमस्तपातकापहम् ।
वहेत्स्वशिरसाभवत्यागङ्गास्नानेनतस्यकिम् ॥३२
मुहूर्त्तमपि यः कुर्यात्सङ्गं भागवतैः सह ।
स मुच्यते सर्वपापैर्ब्रह्महत्यामुखैरपि ॥३३
धर्मकर्माणि विप्रेन्द्र ! क्रियन्ते यानि कानि च ।
भगवद्भक्तपुरतस्तानि स्युरक्षयाणि च ॥३४
मुहूर्त्त वा मुहूर्त्तार्द्धं यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ।
सत्यं सत्यं पुनःसत्यं तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ॥३५

करोड़ों जन्मों मे सञ्चित किये हुए पुण्यों के प्रभाव से ही सम्पूर्ण ससार के अधिनायक देवो के भी देव भगवान् नारायण मे मनुष्यो की मति सुदृढ हुआ करती है ॥२६॥ सभी प्रकार के सुखो को प्रदान करने वाला, परम श्लाघा के योग्य और भयो से रहित यह भारत देश है जहाँ पर कि विष्णु के भक्त वैष्णव रहा करते है। ऐसे इस देश का कभी भी त्याग सहसा नही करना चाहिए ॥३०॥ यहाँ इस देश मे भगवान् के परम भक्तो का निवास रहता है। अन्य पूर्व जन्मो मे जो पाप, चाहे थोडा हो या अधिक हो अर्जित किया है, वह भारत मे भगवद्भक्तों के दर्शन मात्र से ही तुरन्त उसी क्षण मे विनष्ट हो जाया करता है ॥३१॥ विष्णु भगवान् के परम भक्त वैष्णवो के जल का ऐसा महान् प्रभाव होता है कि वह सपूर्ण पातको का अपहरण कर दिया करता है। जो पुरुष उनके चरणो के जल को अपने शिर पर वहन किया करता है उसको फिर गगा नदी मे स्नान करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहा करती है अर्थात् यह चरणामृत ही समस्त पापो का नाश कर दिया

करता है ॥३२॥ जो पुरुष एक मुहूर्त मात्र ही (दो घड़ी का समय) यहाँ पर परम भागवत पुरुषों के साथ संगति कर लेता है वह पुरुष समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाया करता है उनमें ब्रह्म-हत्या जैसे प्रमुख पाप भी चाहे क्यों न हों, वैष्णवों के चरणों से स्पर्श करने वाला जल सभी पापों को काटता है। हे विप्रेन्द्र ! जो धर्म-कर्म किये जाते हैं वे ही यदि सब भगवान् के भक्तों के आगे किये जाते हैं तो वे सब अक्षय फल प्रदान करने वाले हो जाया करते हैं ॥३३-३४॥ एक ही मुहूर्त मात्र अथवा आधे मुहूर्त मात्र (दो घड़ियों के समय को एक मुहूर्त कहा जाता है) जहाँ पर विष्णु के भक्त वैष्णव स्थित रहा करते हैं—यह सत्य, सत्य और परम सत्य है कि वह स्थल तीर्थ के समान ही होता है और वह स्थल तपोवन के समान है ॥७३॥

अन्नं वा सलिलम्वाऽपि फलम्वा वैष्णवाय च ।
यत्किञ्चिद्दीयते विप्र ! तद्दानमक्षयंभवेत् ॥३६
समस्तदेवतारूपो वैष्णवः परिकीर्त्तितः ।
स चेत्सन्तोषितस्तेन तोषिताः सर्वदेवताः ॥३७
संसारेऽस्मिन्महाघोरे नानादुःखसमन्विते ।
भगवद्भक्तपुरुषः कदाचिन्नाऽवसीदति ॥३८
तस्मात्त्वमपिविप्रेन्द्र ! क्रियायोगेनकेशवम् ।
समाराध्यसदाभक्त्याव्रजविष्णोःपरम्पदम् ॥३९
तदेतद्वचनं श्रुत्वा कानीनस्य महात्मनः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय जैमिनिः पर्यपृच्छत ॥४०
भगवद्भक्तमाहात्म्यं त्वया प्रोक्तं पुनःपुनः ।
गुरो ! किंलक्षणं तेषां तत्सर्वं ब्रूहि साम्प्रतम् ॥४१
कथं वा वैष्णवालोका ज्ञातव्या मुनिसत्तम ! ।
आदितो ब्रूहि तत्सर्वं यदि तेमय्यनुग्रहः ॥४२

हे विप्र ! किसी भी विष्णु के भक्त वैष्णव के लिये अन्न अथवा फल किम्वा जल दिया जाता है इसके दान का अक्षय फल होता है। वैष्णव मनुष्य समस्त देवों के ही स्वरूप वाला होता है-ऐसा बताया गया है।

यदि किसी ने अपनी सेवा-शुश्रूषा से किसी वैष्णव को सन्तुष्ट कर लिया है तो समझ लीजिए उसने समस्त देवों को प्रसन्न एवं संतोष युक्त कर लिया है ।।३६-३७।। यह संसार महान् घोर है और अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण है । किन्तु जो भगवान् का परम भक्त पुरुष है वह भक्ति के प्रभाव से ही इस संसार में रह कर भी दुःखित नहीं होता है ।।३८।। हे विप्रवर ! इसीलिये आप भी क्रिया के योग से भगवान् केशव की समाराधना करके सदा भक्ति भाव से समन्वित होकर केशव की अर्चना करें तो अन्त में विष्णु के परमपद की प्राप्ति कर लेंगे ।।३९।। श्री सूतजी ने कहा—महात्मा वेद व्यासजी के, जोकि एक कन्या से समुत्पन्न हुए थे, इस वचन का श्रवण कर जैमिनि मुनि ने अपने शिर पर अञ्जलि रखकर उनसे पूछा था । जैमिनि ने कहा—हे गुरु चरण ! आपने भगवान् की भक्ति का माहात्म्य बार-बार वर्णन किया है । अब आप यह बतलाइये कि भगवद्भक्त का लक्षण क्या होता है । यह सब आप बतलाने की अनुकम्पा करेंगे ।।४०-४१।। हे मुनिश्रेष्ठ ! वैष्णव लोगों को कैसे पहिचानना चाहिए कि ये वैष्णव हैं । यदि आपकी मेरे ऊपर पूर्ण कृपा है तो हे मुनिवर ! यह सभी आदि से ही मुझे बतलाने का कष्ट करेंगे ।।४२।।

मधुकैटभयोः पूर्वं हतयोर्वेधसा स्वयम् ।
पृष्टो यदाह भगवांस्तन्निशामय वेद्म्यहम् ।।४३

कल्पान्ते रुद्ररूपेण संहृत्य सकलं जगत् ।
स्वयमेकश्च भगवान्सुष्वाप योगमायया ।।४४

सुप्ते तस्मिन्भगवति योगनिद्राविमोहिते ।
अभवत्पृथिवी सर्वा सलिलौघपरिप्लुता ।।४५

अतो ब्रह्मा जगत्स्रष्टा तन्नाभिकमलोपरि ।
तमादिपुरुषं ध्यात्वा तस्थौ तद्गतमानसः ।।४६

तस्मिन्काले महाघोरे विष्णोः कर्णमलाद्द्विज ! ।
जातौ महासुरौ घोरौ मधुकैटभसञ्ज्ञितौ।।४७

अन्तरिक्षे भ्रमन्तौ तौ दानवावतिदारुणौ ।
श्रीविष्णोर्नाभिकमलेब्रह्माणं समपश्यताम् ॥४८

तं हन्तुमथ दैत्यौ तौ महाबलपराक्रमौ ।
उद्यमं चक्रतुर्विप्र ! क्रोधसंरक्तलोचनौ ॥४६

श्री वासुदेव ने कहा—पहिले प्राचीन समय में मधु और कैटभ नाम वाले दो दैत्य हुए थे । उनके हत हो जाने पर वेध्य भगवान् ने स्वयं प्रभु से पूछा था । उस समय मे उन्होंने जो कुछ भी उत्तर दिया था उसको मैं जानता हूँ और वही आप सबको इस समय मे श्रवण कराता हूँ । उसे आप सुनिये ॥४३॥ जब कल्प का अन्त होता है तो भगवान् रुद्र का स्वरूप धारण करके इस सम्पूर्ण जगत् का संहार कर देते हैं । और फिर केवल आप ही एकाकी रह कर भगवान् योग माया के साथ शयन कर जाया करते हैं ॥४४॥ उन भगवान् के शयन कर जाने पर तथा योग निद्रा मे विमोहित हो जाने पर यह सम्पूर्ण भूमण्डल सलिल के समुदाय से एक दम सभी ओर से परिप्लुत हो जाया करता है ॥४५॥ अतएव इस जगत् का सृजन करने वाले ब्रह्माजी उन शेष की शय्या पर शयन किये हुए भगवान् की नाभि से समुत्पन्न कमल के ऊपर स्थित होकर उन्ही आदि पुरुष भगवान् के चरणो मे अपना मन लगाकर उन्ही का ध्यान किया करते थे ॥४६॥ वह समय अधिक घोर समय था हे द्विज ! भगवान् विष्णु के कान के मल से मधु और कैटभ नाम वाले महान् घोर दो असुर समुत्पन्न हुए थे ॥४७॥ वे दोनो अत्यन्त दारुण दान व आन्तरिक्ष मे भ्रमण कर रहे थे और उसी समय मे उन्होने श्री भगवान् विष्णु के नाभि से समुत्पन्न कमल पर संस्थित ब्रह्माजी को देखा था ॥४८॥ हे विप्र ! उस समय मे महान् बल और पराक्रम से युक्त उन दोनों दैत्यों ने उन ब्रह्माजी के हनन करने का उद्योग किया था । दोनो असुरो के क्रोधावेश मे लाल नेत्र हो रहे थे ॥४६॥

ततो ब्रह्मा जगत्स्रष्टा विचिन्त्य तद्वधं हृदा ।
योगनिद्रां भागवतीतुष्टावश्लक्ष्णयागिरा ॥५०

तस्य स्तवं समाकर्ण्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
उवाचेतिवचः प्रीत्याकिन्तेऽभिमतमुच्यताम् ॥५१
अत्युग्रौ दानवावेतौ हन्तुं मां कृतनिश्चयौ ।
मायया मोहय क्षिप्रं त्रातारमच्युतं त्यज ॥५२
ततो भागवती निद्रा महाविष्णुं तमत्यजत् ।
दानवाभ्यां ततस्ताभ्यामन्तरिक्षे कृपामयः ॥५३
युयुधे बाहुयुद्धेन शरणागतवत्सलः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥५४
विजयं नाऽगमत्कोऽपि न च कोऽपि पराभवम् ।
अथ तौ दानवौ तत्र महामायाविमोहितौ ॥५५

इसके अनन्तर श्री ब्रह्माजी ने जोकि इस सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा थे उन दोनों के वध के विषय में अपने हृदय में चिन्तन किया था और बहुत ही मधुर भाव भरी वाणी में उन्होने भगवती योग निद्रा देवी का स्तवन किया था ॥५०॥ परमेष्ठी ब्रह्माजी की उस स्तुति को सुन कर योग निद्रा देवी ने प्रीति पूर्वक यह वचन उनसे कहा—आपका क्या अभीष्ट है इसे स्पष्ट बतलाइये। ब्रह्मा ने कहा—ये दोनों अत्यन्त ही उग्र होते हुए दानव मुझे मारने के लिये प्रस्तुत हो गये हैं। और इन्होने मेरा वध कर देने का निश्चय ही कर लिया है। अब आप अपनी माया से इनको मोहित कर डालिये और शीघ्र ही रक्षा करने वाले भगवान् अच्युत को अब त्याग कीजिए।५१-५२।इसके अनन्तर भगवती योगनिद्रा देवी ने महाविष्णु देव का त्याग कर दिया था। इसके उपरान्त कृपामय प्रभु ने उन दोनो दानवों से अन्तरिक्ष में युद्ध किया था ॥५३॥ शरण में आये हुए जनों पर प्रेम करने वाले प्रभु ने उन दोनों के साथ बाहु युद्ध किया था। यह युद्ध बहुत ही भयानक था जोकि निरन्तर पाँच सहस्र वर्षों तक चलता रहा था। किन्तु इतने लम्बे समय तक युद्ध होने पर भी उनमें किसी को भी विजय प्राप्त नहीं हुई थी। कोई विजयी नहीं हुआ वैसे ही किसी का पराभव भी नहीं हुआ। वे दोनों दानव वहाँ पर महामाया से विशेष रूप से मोहित हो गये थे ॥५४-५५॥

वरवृण्विति चास्मत्तोऽगदता केशवम्प्रति ।
तत प्रहस्य देवेश उवाचेति वचो द्विज ! ॥५६
यदि तुष्टौ युवा दैत्यौ मद्वध्यौ भवत द्रुतम् ।
ततस्तौ दानवौघोरौ भगवन्तं जनार्दनम् ॥५७
इत्यचतुर्महामायौ महामायाविमोहितौ ।
अयमेव वरो दत्तो भवते नाऽत्रसशय ॥५८
मारयाऽऽवां विना वारि मही यत्र जनार्दन ! ।
महासुरौततस्तौ तु आनीय जघनम्प्रति ॥५९
निहतौ सहसा विप्र चित्रया चक्रधारया ।
चक्रिणा निहतौ दृष्ट्वा दानवौ मधुकैटभौ ॥
तुष्टाव देवदेवेश ब्रह्मा विगतसाध्वस ॥६०
प्रसीद पुण्डरीकाक्ष प्रसीद कमलेश्वर ! ।
प्रसीद सर्वभूतश विश्वम्भर ! नमोस्तु ते ॥६१
नमस्ते भक्तुष्टाय नमस्ते भक्तिदायिने ।
नमस्ते ज्ञानरूपाय शरण मे भवाऽनघ ! ॥६२
नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमस्तुभ्य नमोनम ।
परित्राहि परित्राहि परित्राहि जगन्मय ! ॥६३

उन दोनो ने भगवान् केशव से कहा था कि आप हमसे वरदान माँग लो । इसके उपरान्त हे द्विज ! देवों के स्वामी भगवान् हसकर यह वचन बोले—यदि आप दोनो ही महान् वीर मुझ पर परम सन्तुष्ट एव प्रसन्न हो गये हैं तो मैं यही आपसे वरदान चाहता हू कि मेरे द्वारा वध के योग्य अति शीघ्र ही हो जावें । इसके अनन्तर वे दोनो घोर दानव जो महा माया वाले थे और महामाया देवी से विमोहित हो गये थे भगवान् जनार्दन से बोले—हमने आपको यही वरदान दे दिया है—इसमे लेशमात्र भी अब सशय नहीं है ॥५६-५८॥ हे जनार्दन ! आप हम दोनो को मार दीजिए किन्तु ऐसे ही स्थल में मारिये जहाँ पर ऐसी भूमि हो कि जल न हो । इसके अनन्तर यह हुआ कि उस समय में कहीं भी भूमि ऐसी भी नही जहाँ जल न हो तो भगवान् ने उन दोनो को अपने जाँघो

पर लाकर सहसा उन दोनों महान् असुरों का सुदर्शन चक्र की विचित्र धारा से वध कर दिया था। जिस समय में भगवान् चक्रधारी विष्णु के द्वारा उन दोनों मधु और कैटभ नामक दानवों को निहत हुआ देखा तो फिर भय से विहीन होकर ब्रह्माजी ने देवों के भी देवेश भगवान् का स्तवन किया था—॥५९-६०॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे पुण्डरीकाक्ष! हे कमलेश्वर! आप प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये आपतो समस्त भूतों के स्वामी हैं और इस सम्पूर्ण विश्व का भरण करने वाले हैं। आपके लिये हमारा बारम्बार प्रणाम है ॥६१॥ अपने परम भक्तों पर प्रसन्न होने वाले आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है। आप जिन पर प्रसन्न हो जाते हैं उन्हें अपनी अनपायिनी भक्ति प्रदान करने वाले हैं—ऐसी भक्ति दाता प्रभु आपके चरणों में हमारा नमस्कार है। आप तो स्वयं ही ज्ञान के स्वरूप वाले हैं आपको हमारा नमस्कार है। हे अनघ! मैं आपकी शरणागति में आगया हूँ और आप हमारे शरण अर्थात् रक्षक हैं। आपके लिये नमस्कार है—नमस्कार है और पुन. पुनः नमस्कार है। हे जगन्मय प्रभो! आप हमारी रक्षा करिये—परित्राण कीजिए और बारम्बार सरक्षण करिये ॥६२-६३॥

एतैरन्यैरपि स्तोत्रैर्ब्रह्मणा लोककारिणा।
स्तुतः स देवो भगवान्परमां प्रीतिमाययौ ॥६४
स्तोत्रेणाऽनेन ते भक्त्या तुष्टोऽस्मि कमलासन!।
किमस्त्यभिमतं ब्रूहि तत्ते दास्याम्यहं भुवि ॥६५
यदि तुष्टोऽसि देवेश करुणाब्धे जगन्मय!।
नापदस्तव भक्तानां भवन्त्विति वरो मम ॥६६
एवमस्तु सुरश्रेष्ठ! दत्तोऽयं ते मया वरः।
मद्भक्तस्य कदाप्यापन्न भवेत्क्षितिमण्डले ॥६७
वैष्णवानां शरीरेषु सततं निवसाम्यहम्।
लभन्ते नापदस्तस्मात्कदाचिद्वैष्णवा नराः ॥६८
सर्वमेव जगन्नाथ! त्वया दत्तं न संशयः।
यदेतौ च महादैत्यौ सङ्ग्रामे विनिपातितौ ॥६९

कियत्कालं समासाद्य स्तोत्रेणाऽनेन वै प्रभो !
स्तौति त्वां परया भक्त्या तस्य त्राता भविष्यसि ॥७०

श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने कहा—इस प्रकार इन तथा अन्य भी स्तोत्रों के द्वारा लोकों की रचना करने वाले ब्रह्माजी ने भगवान् का स्तवन किया था और बारम्बार स्तुति के किये जाने पर भगवान् ब्रह्मा पर परम प्रसन्न हुए थे ॥६४॥ श्री भगवान् ने कहा—हे कमलासन ! मैं आपकी इस स्तुति से और आपकी विशुद्ध भक्ति से परम सन्तुष्ट हो गया हू । अब आप यह बतलाइये कि आपका अभिमत क्या है ? आप इस भूमण्डल मे जो भी अपना अभीष्ट चाहते हैं उसे मैं आपको दूंगा ॥६५॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर सन्तुष्ट हो गये हैं तो हे करुणा के सागर ! आप तो जगन्मय ही हैं । मैं इस समय मे आप से यही वरदान चाहता हूं कि आपके जो परम भक्त हैं उन पर किसी भी समय मे आपत्तियां न आवें और वे उत्पीडित न होवें ॥६६॥ श्री भगवान् ने ब्रह्माजी से कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! जो तुमने यह वरदान मागा है सो ऐसा ही होगा । मैंने आपको वर प्रदान कर दिया है । मेरे सच्चे भक्त को इस भूमण्डल मे किसी भी समय मे आपत्तिया नही आयेंगी ॥६७॥ वैष्णव पुरुषो के शरीर मे तो मैं निरन्तर ही निवास किया करता हू । इसी कारण से जो वैष्णव मनुष्य हुआ करते हैं वे किसी भी समय मे आपत्तियो को नही पाया करते हैं ॥६८॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! आपने कृपा करके सभी कुछ प्रदान कर दिया है—इसमे कुछ भी संशय नही है । आपने जो ये दोनो महान् दैत्य संग्राम भूमि मे मारे थे और हमारा कष्ट दूर कर दिया था ॥६९॥ हे प्रभो ! अब आप यह बतलाइये कि इस स्तोत्र से कितने समय तक परम भक्ति की भावना से आपकी स्तुति करने पर उस स्तुति के करने वाले पुरुष के त्राण करने वाले हुआ करते है ? ॥७०॥

अहो ध्यानैरपि ध्यातुं देवैस्त्वंनहि शक्यसे ।
स त्वं वैष्णवदेहेषु भ्रमसीत्यद्भुतमहत् ॥७१

क्षणमात्रमपि स्वामिस्त्वयि तुष्टेन किंभवेत् ।
स त्वं वैष्णवसङ्गेन भ्रमसीत्यद्भुतंमहत् ॥७२
के वैष्णवाः कैटभारे किंवा तेषांच लक्षणम् ।
कथं ज्ञेयास्तुते सर्वे तन्मे कथयकेशव ! ॥७३
वैष्णवानांलक्षणानिकल्पकोटिशतैरपि ।
सम्यग्वक्तुं नशक्तोऽस्मि सङ्क्षेपाच्छृणुसत्तम ! ॥७४
संसारो वैष्णवाधीनो देवा वैष्णवपालिताः ।
अहं च वैष्णवाधीनस्तस्माच्छ्रेष्ठाश्च वैष्णवाः ॥७५
क्षणमात्रमपि ह्यन्विहाय वैष्णवं जनम् ।
तिष्ठामि नाऽहमन्यत्र वैष्णवाममबान्धवाः ॥७६
कामक्रोधविहीना ये हिंसादम्भविवर्जिताः ।
लोभमोहविहीनाश्च ज्ञेयास्तेवैष्णवाजनाः ॥७७

ओ हो ! यह तो बहुत ही आश्चर्य की बात है कि आप बड़े २ देवगणों के द्वारा एकान्त समाधि में स्थित होकर ध्यान लगाये जाने पर भी आप ध्यान में नहीं लाये जा सकते हैं अर्थात् आपका ध्यान में भी प्राप्त करना देवों को भी दुर्लभ होता है। वही आप वैष्णवों के देहों में ही भ्रमण किया करते हैं। यह तो महान् विस्मय की ही बात है। हे स्वामिन् ! एक क्षण मात्र के लिये भी आपको तुष्ट हो जाने से क्या होता है ? अर्थात् एक क्षण मात्र में ही मानव का आपके प्रसाद से परम कल्याण न मालूम क्या से क्या हो जाया करता है वही आप वैष्णवों के साथ सर्वदा भ्रमण किया करते हैं—यह कितनी महान् विस्मय युक्त बात है ॥७१-७२॥ हे कैटभ दैत्य के वध करने वाले प्रभो ! जिनके देहों में आप सर्वदा ही निवास करते हुए निरन्तर उनके साथ रहा करते हैं वे कौन से वैष्णव होते हैं और उन वैष्णवों का क्या लक्षण होता है ? उन वैष्णवों का ज्ञान किस तरह से हो सकता है अर्थात् उन्हें कैसे पहिचान लेना चाहिए ? हे भगवन् ! हे केशव ! यह सब आप हमको बतलाने की कृपा करें ॥७३॥ श्री भगवान् ने कहा—वैष्णवों के जो लक्षण होते हैं वे तो महान् विशाल हैं उन्हें तो सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी मैं स्वयं

वर्णन नहीं कर सकता हूँ कि भली-भांति सब-आपको समझा दूं। हाँ कुछ लक्षण संक्षेप में मैं तुम्हारे सामने कहता हूँ उनका श्रवण तुम करलो ।।७४।। देखो, यह समस्त संसार-वैष्णवों के अधीन होता है। समस्त देववृन्द भी वैष्णव जनों के द्वारा ही पालित होते हैं मैं भी स्वयं वैष्णवों के ही अधीनता में रहा करता हूँ। इसलिये सबका निष्कर्ष यही निकलता है कि वैष्णव जन सर्वोपरि विराजमान एवं परम श्रेष्ठ हुआ करते हैं ।।७५।। हे ब्रह्माजी ! मैं आपको क्या बतलाऊं ? एक भी क्षण का समय ऐसा नहीं जाता है कि मैं वैष्णजन का साथ छोड़कर कहीं अन्यत्र ठहर सकूं। आप इसी तरह समझ लीजिये कि मैं वैष्णवों को छोड़कर अन्य स्थान में रहता ही नहीं हूँ। ये वैष्णवजन तो मेरे सच्चे बान्धव होते हैं ।।७६।। जो लोग काम वासना—क्रोध से विहीन रहा करते हैं तथा हिंसा अर्थात् किसी भी प्राणी मात्र को किसी भी प्रकार का दुख पहुंचाना, दम्भ अर्थात् पाखण्ड एवं कपट—इन दोषों से जो वर्जित रहा करते हैं जिनके मन में किसी भी तरह का लालच या किसी भी प्राणी या पदार्थ से ममता के भाव का मोह—नहीं होते हैं उन्हीं महा-पुरुषों को विष्णु के परम भक्त वैष्णवजन जानना चाहिए। निष्कर्ष यह है कि काम-क्रोध हिंसा-दम्भ और लोभ तथा मोह से रहित ही वैष्णवजन होते हैं ।।७७।।

अमरसरादयायुक्ताः सर्वभूतहितैषिणः ।
सत्योक्तिभाषिणश्चैव विज्ञेयास्तेच वैष्णवाः ।।७८
धर्मोपदेशिनश्चैव धर्माचारपरास्तथा ।
गुरुशुश्रूषिणश्चैव विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ।।७९
समानं ये च पश्यन्ति त्वां च मां च महेश्वरम् ।
कुर्वन्ति पूजामतिथेर्ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ।।८०
वेदविद्यानिरक्ता ये विप्रभक्तिरताः सदा ।
नपुंसकाः परस्त्रीषु ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ।।८१
एकादशीव्रतं ये च भक्तिभावेन कुर्वते ।
गायन्ति मम नामानि ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ।।८२

देवायतनकर्तारस्तुलसीमाल्यधारकाः ।
पद्माक्षधारिणो ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८३
शङ्खचक्रगदापद्मै रङ्कितानि ममाऽऽयुधैः ।
ब्रह्मन्येषा शरीराणि ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८४
धात्रीफलस्रजो येषां गलेषु कमलासन ! ।
मां पूजयन्ति तत्पश्चैर्ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८५
तुलसीमूलमृद्भिश्च तिलकानि नयन्ति ये ।
तुलसीकाष्ठपङ्कैश्च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८६

जो विष्णु भगवान् के परम भक्त वैष्णवजन होते हैं उनमे मत्सरता अर्थात् किसी भी अन्य के उत्कर्ष को देखकर मन मे कुढन का सर्वथा अभाव होता है और उनके हृदय मे दया का भण्डार भरा रहता है। वैष्णवजन समस्त प्राणियो के हित के सम्पादन करने वाले होते हैं। वैष्णव सदा सत्य वचनो के ही भाषण करने वाले होते हैं। ये ही कुछ ऐसे ही लक्षण हैं जिन्हे समझकर वैष्णवो का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए ॥७८॥ जो सर्वदा धर्म्म का उपदेश किया करते है और उपदेश मात्र ही नही स्वय भी धर्म्म के आचरण करने मे परायण रहते हैं। जो गुरुदेव के चरणो की सेवा किया करते हैं उन महा पुरुषो को परम सत्य वैष्णव जानना चाहिए ॥७९॥ जो लोग है ब्रह्माजी ! आपको मुझ विष्णु को और महेश्वर को समान भाव से ही देखते है और जो अकस्मात घर मे आने वाले अतिथियो की पूजा किया करते है उन पुरुषो को ही वैष्णव जानना चाहिए ॥८०॥ जो वेदो की विद्या अर्थात् ज्ञान कथन करने वाले हो और विप्रो मे सदा भक्ति की भावना रखते हो तथा पराई स्त्रियो के विषय मे नपुसक पुरुष की भाँति व्यवहार रखते हो उन्ही पुरुषो को वैष्णव जानें ॥८१॥ जो एकादशी तिथि के दिन व्रतोपवास अतीव भक्ति के भाव से किया करते हैं और मेरे शुभ नामो का सकीर्त्तन किया करते हैं उनको वैष्णव कहना चाहिए ॥८२॥ जो किसी भी देवो के स्थान का निर्माण कराया करते हैं और तुलसी की माला को कण्ठ मे धारण किया करते हैं और जो पद्माक्ष के धारण

करने वाले होते हैं उन्हें ही वैष्णव जानना चाहिए ॥८३॥ हे ब्रह्मन् ! जिनका शरीर शंख-चक्र-गदा और पद्म जो मेरे धारण किये जाने वाले आयुध हैं उन्ही आयुधों से चिह्नित हों उनको परम वैष्णव पुरुष ही समझना चाहिए ॥८४॥ हे कमल के आसन पर विराजने वाले ब्रह्माजी ! जिन पुरुषों के कण्ठों मे धात्री (आँवला) के फलों की माला पड़ी हो और धात्री के पत्रो से मेरी पूजा किया करते हैं उन्हे ही वैष्णवजन कहना चाहिए ॥८५॥ जो तुलसी के मूल को मृत्तिका से तिलकों को किया करते है अथवा तुलसी की लकड़ी तथा पंख से अपने तिलक किया करते हैं उन्हें वैष्णव पुरुष ही समझना चाहिए ॥८६॥

गङ्गास्नानरता ये च गङ्गानामपरायणाः ।
गङ्गामाहात्म्यवक्तारो ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ॥८७
शालग्रामशिला येषां गृहे वसति सर्वदा ।
शास्त्रं भागवतं चैव ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ॥८८
सम्मार्जयन्ति ये नित्यं मम स्थानानि सत्तम ! ।
दीपं यच्छन्ति तत्रैव ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ॥८९
शीर्णं मन्मन्दिरं ये च कुर्वन्ति नूतनंपुनः ।
तत्राऽऽयतनशोभांच ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ॥९०
अभयंयेच यच्छन्ति भीरुभ्यश्चतुरानन ! ।
विद्यादानंच विप्रेभ्योज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ॥९१
मत्पादसलिलैर्येषां सिक्तानि मस्तकानिच ।
ममनैवेद्यमश्नन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ॥९२
क्षुत्तृट्प्रपीडितेभ्यश्चये यच्छन्त्यन्नमम्बु च ।
कुर्युर्ये योगशुश्रूषां ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ॥९३

जो पुरुष गङ्गा मे स्नान करने की रति रखते हों और जो गंगा के नामों की ही रटन में तत्पर रहा करते हो तथा गंगा के माहात्म्य को बोलने वाले हो उन्हें वैष्णवजन समझो। जिनके घर में सदा शालग्राम की शिला का निवास रहा करता है और श्रीमद्भागवत महापुराण रहता हो उनको परम वैष्णव ही समझना चाहिए ॥८७-८८॥ हे श्रेष्ठतम !

जो पुरुष नित्य प्रति नियम से मेरे नाम से बनाये हुए स्थानों को झाड़-बुहार के साफ स्वच्छ रखते हैं उन पुरुषों को वैष्णव पुरुष ही समझ लेना चाहिए ।।८९।। जो मेरे पुराने जीर्ण-शीर्ण (टूटे-फूटे) मन्दिर का पुनः उद्धार कर उसे नवीन स्वरूप दिलाया करते हैं और देवायतनों की शोभा की वृद्धि कराया करते हैं उन्हें वैष्णवजन ही जानना चाहिए ।।९०।। हे चतुरानन ! जो भय से अत्यन्त भीत पुरुषों को अभय का दान किया करते हैं तथा जो विप्रों को विद्या का दान किया करते हैं उनको वैष्णवजन समझना चाहिए ।।९१।। मेरे चरणों के स्पर्श किये हुए जल से जिन के मस्तक सिक्त हों अर्थात् मेरा चरणामृत का स्पर्श जिनके मस्तक से हुआ हो और जो मेरे प्रसादी नैवेद्य का अशन करते हों उनको वैष्णव जन समझना चाहिए ।।९२।। भूख और पिपासा से जो प्रपीडित हों उनको जो पुरुष अन्न तथा जल का दान दिया करते हैं और जो योग-शुश्रूषा करते हैं उनको ही परम वैष्णव जन समझना चाहिए ।।९३।।

आरामकारिणो ये च पिप्पलारोहिणोऽपि च ।
गोसेवा ये च कुर्वन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ।।९४
अत्यन्तभक्ता ये ब्रह्मन्पितृयज्ञं प्रकुर्वते ।
कुर्वन्ति दीनशुश्रूषां ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ।।९५
तडागग्रामकर्त्तारः कन्यादानरताश्च ये ।
सेवन्ते पितरौ ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ।।९६
सेवन्ते ज्येष्ठभगिनीं ज्येष्ठभ्रातरमेव च ।
परनिन्दां न कुर्वन्ति ज्ञेयास्ते वैष्णवा जनाः ।।९७
वैष्णवेषु गुणाः सर्व दोषलेशो न विद्यते ।
तस्माच्चतुर्मुखत्वं च वैष्णवोभव ! साम्प्रतम् ।।९८
समाराधय मां नित्यं क्रियायोगैः प्रजापते ! ।
सर्वमेवाऽऽशु भद्रं ते भविष्यतिनसंशयः ।।९९
देवस्वं ब्राह्मणद्रव्यं परस्वञ्च चतुर्मुख ! ।
पश्यन्ति विषवद्ये च ज्ञेयास्ते वैष्णवाजनाः ।।१००

जो पुरुष आराम (उद्यान) का निर्माण कराने वाले हैं तथा जो पीपल के वृक्ष को लगाया करते हैं एवं गायों की जो सेवा किया करते हैं उनको ही वैष्णवजन समझना चाहिए ॥९४॥ हे ब्रह्मन्! जो पिता के अत्यन्त भक्त होकर पितृ-यज्ञ किया करते हैं और जो दीन पुरुषों की सेवा किया करते हैं उन्हें वैष्णव जन समझना चाहिए ॥९५॥ तालाब तथा ग्राम के कराने वाले तथा जो कन्याओं के दान करने में अनुराग रखते हैं जो अपने माता-पिता की सेवा किया करते हैं उनको वैष्णव जन जान लेना चाहिए ॥९६॥ जो अपनी बड़ी बहिन की सेवा किया करते हैं अथवा जो अपने बड़े भाई की सेवा करते हैं और जो कभी भी दूसरों की बुराई नहीं किया करते हैं वे वैष्णवजन कहे जाते हैं ॥९७॥ वैष्णवों में सब गुण ही होते हैं और उनमें दोष तो लेश मात्र को भी नहीं होते हैं। इसीलिए हे चतुर्मुख! आप भी अब वैष्णव हो जाइये ॥९८॥ हे प्रजापते! अब क्रिया के योगों के द्वारा नित्य प्रति मेरी ही समाराधना करो इससे तेरा सभी प्रकार से सब कुछ शीघ्र ही कल्याण होगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥९९॥ जो देवोत्तर धन ब्राह्मण का धन पराया धन—हे चतुर्मुख! इन सब को विष की भाँति देखा करते हैं उन्हें ही परम वैष्णवजन समझना चाहिए ॥१००॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन भाषितेन पुनः पुनः ।
ममार्ऽचायेचकुर्वन्ति विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः ॥१०१
भूयः पूर्वस्थितमिव सृज्यतां सकलं जगत् ।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवस्तत्रैव परमेश्वरः ॥१०२
ततस्तु पूर्ववद्ब्रह्मा सृष्ट्वा सकलं जगत् ।
क्रियायोगैर्हरिं चेष्ट्वा जगाम परमं पदम् ॥१०३
ये पठन्तीममध्याय भक्त्या नारायणाग्रतः ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता अन्ते यान्ति हरेर्गृहम् ॥१०४

बहुत अधिक कथन करने से तथा बारम्बार उसी के कहने से तो कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है अर्थात् अत्यधिक बतलाना इस विषय में व्यर्थ ही है। जो पुरुष मेरा यजनार्चन किया करते है उनको

वैष्णवजन समझ लेना चाहिए ।।१०१।। अब पुनः पूर्व की ही भाँति स्थिति रखने वाला सम्पूर्ण जगत् का सृजन करो—इतना कहकर वह परमेश्वर देव वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ।।१०२।। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने पहिले ही के समान समस्त जगत् का सृजन किया था। क्रिया के योगों के द्वारा श्री हरि का यजन करके फिर वह परम पद को प्राप्त होगये थे ।।१०३।। इस अध्याय का जो लोग भक्ति पूर्वक भगवान् नारायण के सम्मुख पाठ किया करते हैं वे सभी पापों से छुटकारा पाकर अन्त में श्री हरि के परम पद को प्राप्त होजाया करते है ।।१०४।।

।। माघादि मासों में विष्णुपूजा विधान ।।

इदानीं श्रोतुमिच्छामि विष्णुपूजाफलं गुरो ! ।।१
शृणु लक्ष्मीपतेर्वत्स ! सपर्याफलमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा मानवाः सर्वे लभन्ते ज्ञानमुत्तमम् ।।२
विप्र द्वादशमासेषु माघादिषु सनातनः ।
पूजितव्यो विधानैर्यैः शृणु तानि वदाम्यहम् ।।३
माघेमासि समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे ।
आमिषं मैथुनं चैव सन्त्यजेद्वैष्णवोत्तमः ।।४
प्रातः स्नायी भवेन्नित्यं तैलान्यपिचवर्जयेत् ।
द्विर्भोजन परान्नं च माघेमासिपरित्यजेत् ।।५
प्रातः शुक्लाम्बरधरः कृतपञ्चमहाध्वरः ।
सपर्यामारभेद्विष्णोःस्थिरचित्तो हि मानवः ।।६
ईषदुष्णजलैः शुद्धैः स्नापयेद्विष्णुमव्ययम् ।
अतिश्लक्ष्णैश्चन्दनैश्चविष्णोरङ्गानिः लेपयेत् ।।७

जैमिनि मुनि ने कहा—हे गुरुदेव ! इस समय में भगवान् विष्णु की पूजा का क्या फल होता है—यही मैं श्रवण करने की इच्छा करता हूँ। व्यास जी ने कहा—हे वत्स ! अब भगवान् श्री लक्ष्मी के स्वामी की पूजा का जो उत्तम फल होता है उसी के विषय में श्रवण करो। जिसका

श्रवण करके सभी मानव उत्तम ज्ञान का लाभ किया करते हैं ॥१-२॥ हे विप्रवर ! बारह मासों में माघ आदि जो मास हैं उनमें सनातन प्रभु जिन विधि-विधानों के द्वारा पूजना चाहिए उसे ही अब मैं बतलाता हूँ उसे तुम श्रवण करो ॥३॥ माघ मास के आने पर जो समस्त मासों में उत्तम एवं शुभ मास है, उसमें उत्तम वैष्णव मनुष्य को आमिष तथा मैथुन इन दोनों का त्याग कर देना चाहिए ॥४॥ नित्य प्रति बहुत ही सुबह स्नान करने वाला होवे और तैल आदि का भी त्याग कर देवे। दिन रात में दो बार भोजन करना तथा किसी अन्य के अन्न का भोजन करने का भी माघ में त्याग कर देवे ॥५॥ माघ मास में प्रातः काल में शुक्ल वस्त्र धारण करके सर्व प्रथम पञ्च यज्ञ जो नैत्यिक परमावश्यक कर्म हैं उन्हें समाप्त करे और फिर स्थिर चित्त वाला होकर मनुष्य को भगवान् श्री विष्णु का पूजन प्रारम्भ कर देना चाहिए ॥६॥ थोड़ा-सा उष्णजल लेकर उसी से अविनाशी भगवान् विष्णु का स्नपन करावे। फिर अत्यन्त श्लक्ष (पतले) चन्दन से विष्णु के अंगों पर विलेपन करे ॥७॥

पूजयेज्जगदीशस्य देवदेवस्य चक्रिणः ।
प्रक्षालितानि पात्राणि जलहीनानि कारयेत् ॥८
स्नापयित्वा जगन्नाथमीषदुष्णेन वारिणा ।
प्रोक्षितव्य तच्छरीरं दिव्यवस्त्रेण यत्नतः ॥९
सलिलैरीषदुष्णैश्च प्रस्नापयति केशवम् ।
माघे मासि द्विजश्रेष्ठ ! फल तस्य मयोच्यते ॥१०
विमुक्तः पातकैः सर्वैर्जन्मजन्मान्तरार्जितैः ।
इह भुङ्क्ते सुखं सर्वंशेषे याति हरेर्गृहम् ॥११
यस्तान्प्रक्षाल्य पात्राणि कृत्वा शुद्धानिवारिभिः ।
स पूजयेज्जगन्नाथ तस्यपुण्यं निशामय ॥१२
इह भुक्त्वाऽखिलान्कामान्सर्वव्याधिविवर्जितः ।
अन्ते युगसहस्राणि तिष्ठेत्केशवमन्दिरे ॥१३

फिर देवो के भी देव चक्रधारी भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए। ईश्वर के पूजन म आने वाले जितने भी पात्र हो उनको जल से प्रक्षालित करे तथा जल से हीन करदे ॥८॥ थोडे गर्म जल से जगन्नाथ प्रभु को स्नान करा कर फिर उनके स पूर्ण अ गो का प्रोक्षण करना चाहिए जो कि एक बहुत ही दिव्य वस्त्र से यत्न पूर्वक करे ॥९॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! ईषद् उष्ण जल से जो भगवान् केशव का माघ मास मे स्नपन कराता है उसका बहुत महान् फल होता जिसे मैं अभी तुमको बतलाता हूँ ॥१०॥ वह मनुष्य सम्पूर्ण पातको से विमुक्त हो जाता है जो कि पहिले अनेक जन्मो मे उसने अर्जित किये हैं। इस ससार मे वह पूर्ण सुखो का उपभोग किया करता है और अन्त मे श्री हरि के परम पद को प्राप्त हो जाया करता है ॥११॥ यत्न पूर्वक समस्त पूजन के पात्रो का प्रक्षालन करे और जल से उन्हें पूर्णतया शुद्ध कर लेवे। जो पुरुष भगवान् जगत् के नाथ का पूजन किया करता है अब उसका जो पुण्य-फल होता है उसे श्रवण कराता हूँ ॥१२॥ वह मनुष्य इस ससार मे सम्पूण अपने अभीष्ट मनोरथो का उपभोग करके समस्त व्याधियो से रहित होकर अन्त मे सहस्रो युगो तक भगवान् के मन्दिर मे उन्ही के सान्निध्य मे स्थित रहा करता है ॥१३॥

प्रभाते विश्वस-छायाया पुरतश्चक्रपाणिन ।
ज्वलन्त स्थापयेद्वह्नि निद्धूम वैष्णवोजन ॥१४
शीतस्य वारणार्थाय साय प्रातश्चवैष्णव ।
माघेविष्णवग्रतो वह्निज्वालयेत्तत्फलश्रृणु ॥१५
इह भुक्त्वाऽखिलान्कामान्पुत्रपौत्रसमन्वित ।
अन्ते विष्णुपुर याति दैवतैरपिदुर्लभम् ॥१६
यथैवाऽऽत्मा तथा विष्णु सन्देहो नाऽत्रविद्यते ।
स्वपञ्चदेवदेवस्य पर्यङ्के केशवस्यनु ॥१७
यथात्मनस्तथा मर्त्य कुर्याच्छीतनिवारणम् ।
क्षीरेणस्नापयेद्यस्तु माघे मासिजनार्दनम् ॥१८

तस्मैदेवोत्तमोविष्णुः सन्तुष्टोन ददातिकिम् ।
तथाशीतक्षयं कुर्याद्दिव्यवस्त्रणचक्रिणः ॥१९
यः पूजयेत्सकृन्माघेस्नापयित्वा चतुर्भुजम् ।
नालिकेरोदकैदुग्धैः फलं तस्यवदाम्यहम् ॥२०
नरकाब्धौ मज्जमानान्दुस्तरेस्वेनकर्मणा ।
उद्धृत्य कोटिपुरुषान्स याति चक्रिणःपदम् ॥२१

प्रभात समय में विश्व सन्ध्या में भगवान् चक्रपाणि के समक्ष में वैष्णवजन को निर्धूम जलती हुई अग्नि की स्थापना करनी चाहिए ॥१४॥ शीत की बाधा के निवारण करने के लिये सायंकाल में और प्रातःकाल में वैष्णव को माघ मास में भगवान् के वह्नि को जलाना चाहिए। इससे बड़ा महान् पुण्य होता है उसे सुनो ॥१५॥ इस अग्नि को जलाकर भगवान् को शीतकाल में ताप पहुंचाने का ऐसा फल होता है कि वह मनुष्य इस संसार मे सम्पूर्ण भोगों का उपभोग करके और सभी कामना का फल प्राप्त करके अपने पुत्र पौत्रादि समस्त परिवार से संयुत होकर अन्त में उस भगवान् के विष्णुपद की प्राप्ति किया करता है जो कि देवगण को भी अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥१६॥ जैसा यह अपना आत्मा है वैसा ही भगवान् विष्णु का आत्मा है—इस विषय मे तनिक भी सन्देह नहीं है। शयन करते हुए देवों के देव भगवान् केशव के पर्यंक में जिस तरह मनुष्य अपने आपका शीत निवारण किया करता है उसी भाँति शीत के निवारणार्थ क्रिया करनी चाहिए। माघ मास में यदि कोई भक्त वैष्णव भगवान् जनार्दन का क्षीर से स्नान कराता है इस पर समस्त देवो में शिरोमणि भगवान् अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ करते हैं और उस अतीव प्रसन्नता से अपने भक्त को क्या-क्या नही दे दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ प्रदान कर देते हैं। अतएव उस प्रकार से दिव्य वस्त्रों के द्वारा भगवान् के शीत का क्षय करना चाहिए ॥१७-१९॥ माघ मास में जो कोई भक्त वैष्णवजन एक बार भी भगवान् चतुर्भुज को स्नपन भी नरियल के जल तथा दुग्ध से कराया करता है उसका पुण्य-फल जो होता है वह अब, मैं आपके सामने बतलाता हूँ ॥२०॥ अपने किये हुए

दुस्तर खोटे कर्मों के कारण से नरकों से उद्धार करके स्वयं भी भगवान् के परमपद की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

माघे मासे च शुक्लायां पञ्चम्यां द्विजसत्तम !।
एकादश्यां च सप्तम्यां हरिपूजाविशेषतः ॥२२
दातव्यो देवदेवाय सपद्माय मुरारये।
पायसो धूपसहितो माघे मासि दिने दिने ॥२३
सधूपपायसं यस्तु माघे यच्छति चक्रिणे।
तस्य पुण्यफलं वच्मिश्रृणु वैष्णव जैमिने ! ॥२४
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा मन्वन्तरचतुष्टयम्।
भुङ्क्ते मनोरमान्भोगान्प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥२५
पुनरागत्य धरणीं चक्रवर्ती नृपोभवेत्।
भुङ्क्ते च भोगं सुचिरं मृतो याति हरेर्गृहम् ॥२६
पञ्चम्यां वाऽपि सप्तम्यामेकादश्यांच जैमिने ! ।
अशक्तो वैष्णवो दद्यात्परमान्नं मुरारये ॥२७
कृष्णपक्षाद्द्विजश्रेष्ठ ! शुक्लपक्षे विशेषतः।
शुक्लपक्षे तिथिष्वेषु दद्यादन्नं मुरारये ॥२८

हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी–एकादशी तथा सप्तमी तिथि मे विशेष रूप से श्री हरि की पूजा करनी चाहिए ॥२२॥ देवों के देव पद्म सहित भगवान् मुरारि के लिये माघ मास में दिन प्रतिदिन धूप के सहित पायस समर्पित करना चाहिए ॥२३॥ जो कोई पुरुष माघ मास मे भगवान् की सेवा में धूप के सहित पायस समर्पित किया करता है, हे जैमिने ! उसका पुण्य एवं फल मैं बताता हूँ, आप श्रवण करें ॥२४॥ वह मनुष्य अन्त समय में श्री विष्णु के पुर को जाकर जब तक चार मन्वन्तर का समय व्यतीत होता है तब तक अर्थात् उतने लम्बे समय पर्यन्त वह वैष्णव भक्त वहाँ पर परम मनोरम भोगो का उपभोग भगवान् के प्रसाद से किया करता है ॥२५॥ इतने लम्बे समय तक वहां सुखोपभोग करके फिर वह अन्त में पुनः इस भूमण्डल में आकर जन्म ग्रहण किया करता है और वही यहाँ पर एक चक्रवर्ती

सम्राट् हुआ करता है। अधिक समय पर्यन्त यहाँ पर साम्राज्य के अनुपम भोगों को भोगकर अन्त मे वह फिर श्रीहरि के परमपद को जाया करता है ॥२६॥ हे जैमिने ! माघ मास की पचमी-सप्तमी तथा एकादशी के दिन जो कोई भक्त वैष्णव मुरारि भगवान् की सेवा मे परमात्मा समर्पित किया करता है, हे द्विज श्रेष्ठ ! कृष्ण पक्ष से विशेष रूप से शुक्ल पक्ष मे और शुक्ल पक्ष की इन उक्त तिथियो मे मुरारि प्रभु के लिये जो अन्न दिया जावे उसका महान् पुण्य होता है ॥२७-२८॥

एकाहमपि यो माघे विष्णवे दैत्यजिष्णवे ।
सापूप पायस दद्यान्न तस्य दुर्लभो हरिः ॥२६
यत्किञ्चिद्द्विजतुष्टयर्थं माघे मासि प्रदीयते ।
तदक्षयभवेत्पु ंसः कोऽपिनास्त्यत्रसशयः ॥३०
माघे मासि कृत कर्म शुभ वाऽशुभमेव वा ।
तस्यनास्तिक्षयं विप्र ! मन्वन्तरशतैरपि ॥३१
माघे चम्पकपुष्पेण योऽर्च्चयेत्कमलापतिम् ।
सगच्छेत्परम धाम विमुक्तः सर्वपातकैः ॥३२
यावन्ति स्वर्णपुष्पाणि दीयन्ते चक्रपाणये ।
तावद्युगसहस्राणि स्थीयते विष्णुमन्दिरे ॥३३
मेरुतुल्यसुवर्णानि दत्वा भवति यत्फलम् ।
एकेनस्वर्णपुष्पेण हरिं सपूज्य तत्फलम् ॥३४
सुवर्णपुष्प विप्रेन्द्र ! सर्वदा केशवप्रियम् ।
माघे मासि विशेषेण पवित्र केशवप्रियम् ॥३५
सुवर्णकुसुमैर्दिव्यैर्येन नाऽऽराधितो हरिः ।
रत्नैर्हीनः सुवर्णाद्यैः स भवेज्जन्मजन्मनि ॥३६

माघ मास मे एक भी दिन दैत्यो पर विजय प्राप्त करने वाले भगवान् विष्णु के लिये पूओ के सहित पायस को समर्पित करता है उसको भगवान् श्रीहरि का प्राप्त कर लेना दुर्लभ नही होता है ॥२६॥ जो कुछ भी द्विजो के सतोष के लिए माघ के महीने मे प्रदान किया जाता है वह दान कभी भी क्षीण न होने वाला उस पुरुष का हो जाता

है—इस कथन मे लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥३०॥ माघ मास में किये हुए कर्म का चाहे वह कोई शुभ कर्म हो अथवा अशुभ हो, उसका क्षय हे विप्र ! सैकड़ो मन्वन्तरो मे भी नहीं हुआ करता है ॥३१॥ माघ मास में चम्पा के पुष्प के द्वारा जो कोई भी भक्त भगवान् कमलापति का अर्चन किया करता है वह परम धाम में गमन कर जाता है और सभी पातकों से वह विमुक्त हो जाता है ॥३२॥ जितने सुवर्ण पुष्प भगवान् चक्रपाणि के लिये समर्पित किये जाते हैं उतने ही युग सहस्र तक वह विष्णु के धाम में स्थित रहा करता है ॥३३॥ मेरु गिरि के समान एक परम विशाल राशि सुवर्ण के दान का जो पुण्य फल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य एक स्वर्ण पुष्प श्रीहरि का पूजन कर उनकी सेवा में समर्पित करने से हुआ करता है ॥३४॥ हे विप्रेन्द्र ! सुवर्ण पुष्प सर्वदा भगवान् केशव को अत्यधिक प्रिय हुआ करता है और माघ मास मे तो विशेष रूप से वह पवित्र एवं केशव का प्रिय हुआ करता है ॥३५॥ सुवर्ण कुसुमो के द्वारा जो कि अत्यन्त दिव्य हैं जिस पुरुष ने भगवान् श्रीहरि की समाराधना नहीं की है वह पुरुष रत्न और सुवर्ण आदि से हीन होकर जन्म-जन्मो मे रहा करता है ॥३६॥

॥ हरिपूजा विधि वर्णन ॥

जैमिने ! विधिनायेन पूजतव्यो हरिः सदा ।
तमहं वच्मि विप्रर्षे ! शृनुवत्स समाहितः ॥१
कल्यउत्थाय पर्यङ्काद्गृहीत्वापात्रमम्भसाम् ।
बहिर्दशं व्रजेत्प्राज्ञःशीर्षमाच्छाद्यवाससा ॥२
तत्रोदीच्यादिशि मौनीमज्ञसूत्राणि कर्णयोः ।
कृत्वोपविष्टःप्राजस्तु मलमूत्रंविसर्जयेत् ॥३
देवतायतने मार्गे गोष्ठेषु चत्वरेषु च ।
रथ्यायां कृष्टभूमौ च दर्भमूले तथाऽङ्गणे ॥४
तटिनीपुलिने चैत्यवृक्षमूले तथावने ।
तडागवापीगर्भेषु मलं मूत्रं च न त्यजेत् ॥५

रविं चन्द्रमसं चैव द्विजान्गाश्च दिशो दश ।
मल मूत्रं त्यजेद्यावत्तावत्प्राज्ञो न पश्यति ।।६
खनिता मूषिकाद्यैश्चबिलाभ्यन्तरवर्तिनीम् ।
फालकृष्टां मृदञ्चैव न गृह्णीयाच्छौचहेतवे ।।७

श्रीकृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास देव ने कहा—हे जैमिने ! जिस विधि-विधान से सदा श्रीहरि का यजनार्चन करना चाहिए—मैं इस समय मे उसी को आपके सामने बतलाता हूँ। हे विप्रर्षि वत्स ! उसका आप सावधान चित्त वाले होकर श्रवण करो ।।१।। प्रात.काल मे सूर्योदय से पूर्व अपने पर्यंक से उठ कर जलका एक पात्र ग्रहण करे और प्राज्ञ पुरुष को वस्त्र से मस्तक को समाच्छादित करके ही बाहिर के भाग मे चले जाना चाहिए ।।२।। वहा बाहिर जगल मे उत्तर दिशा मे मौन धारण करके अपने कानो पर यज्ञ सूत्र को चढा कर उपविष्ट होवे और इस तरह शान्ति से अपने मलमूत्र का विसर्जन करना चाहिए ।।३।। अब उन-उन स्थलों को बतलाया जाता है जहां पर मल-मूत्र का त्याग कभी भी नही करना चाहिए। किसी भी देवता के स्थान मे या स्थान के समीप म—मार्ग के मध्य मे—गौओ के बैठने के स्थानो मे—चत्वर मे—गली मे—जुती हुई भूमि मे—दर्भो के मूल मे—आंगन मे—किसी नदी के पुलिन—श्मशान मे किसी भी वृक्ष के मूल मे—वन मे—तालाब तथा बावडी के मध्य मे—इन स्थानो मे मल-मूत्र के त्याग करने का बडा दोष बतलाया जाता है ।।४-५।। सूर्य—चन्द्र—द्विज—गौ और दशो दिशाऐं जब तक न देख पावें तभी तक मल-मूत्र का त्याग प्राज्ञ पुरुष को कर देना चाहिए ।।६।। चूहों के द्वारा खोदी हुई तथा बिलो के अन्दर रहने वाली एव हल के द्वारा जो उखाडी गई है ऐसी मृत्तिका को शौच के कर्म का सम्पादन करने के लिये कभी भी ग्रहण नही करना चाहिए ।।७।।

जलाज्जल समानीय शौचं कुर्याद्विचक्षणः ।
पादं जलेषु वै दत्वा न शौचं कुरुते बुधः ।।८
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ कुर्यात्प्राज्ञो बहि.क्रियाम् ।
शिर. प्रावृत्य वस्त्रेण तत. शौच समाचरेत् ।।९

मृत्तिकैका प्रदातव्या लिङ्गे तिस्रस्तु वै गुदे ।
सप्त सव्ये करे प्राज्ञ हस्तयोरुभयोर्दश ॥१०
पादयोः षट्प्रदातव्यमृत्तिकाच विचक्षणैः ।
कृतशौचक्रिय प्राज्ञः कुर्याद्दन्तस्यधावनम् ॥११
जिह्वापामार्जनञ्चैव दशनाच्छादनादिभिः ।
दक्षिणाभिमुखोभूत्वा पश्चिमाभिमुखस्तथा ॥१२
नदन्तधावन कुर्यात्कुर्याच्चेन्नारकीभवेत् ।
मध्यमानामिकाभ्या च वृद्धाङ्गुष्ठेनवद्विज ! ॥१३
दन्तस्य धावन कुर्यान्न तर्जन्या कदाचन ।
अश्वत्थवटवृक्षाणा धात्र्याकंथिकया बुधः ॥१४
न दन्तधावन कुर्यात्तथेन्द्रस्य सुरस्य च ।
नित्य क्रियाफल तस्य सर्वमेव विनश्यति ॥१५

जलाशय से जल ग्रहण करके विचक्षण पुरुष को शौच करना चाहिए । जल में पैर देकर कभी भी बुध पुरुष शौच नहीं किया करते हैं ॥८॥ रात्रि का समय हो तो बुध पुरुष को चाहिए कि दक्षिण दिशा की ओर मुख करके ही बाहर की क्रिया को करे । सदा शौच करने के समय में वस्त्र के द्वारा शिर को प्रावृत रखना चाहिए । खुले मस्तक से मल-मूत्र त्याग करने का दोष होता है ॥६॥ एक बार मृत्तिका गुदा में शुद्धि के लिये लगानी चाहिए—तीन बार लिंग में लगावे—सात बार सव्य कर में तथा प्राज्ञ पुरुषों को दोनों हाथों को मिला कर दश बार मिट्टी शुद्धि के लिये लगानी चाहिए ॥१०॥ विचक्षण पुरुषों को छः बार दोनों पैरों में मिट्टी लगानी चाहिए । इस प्रकार से जब शौच कर्म पूर्ण हो जावे तो प्राज्ञ पुरुष को फिर दाँतों की शुद्धि के लिये दातून करनी चाहिए ॥११॥ दक्षिण दिशा की ओर मुख करके अथवा पश्चिम दिशा की ओर अभिमुख होकर दशनाच्छादन आदि के सहित जिह्वा का भी अपामार्जन करना चाहिए ॥१२॥ जो दन्त धावन नहीं करता है या हे द्विज ! वृद्धांगुष्ठ—मध्यमा एवं अनामिका से जो दाँतों का मार्जन किया करते हैं वे नारकी होते हैं ॥१३॥ दन्तों का धावन कभी भी तर्जनी

अँगुली से नही करे। अश्वत्थ (कीपल)–वट (वड)—धात्री (आँवला) और कैथ की दाँतुन से कभी दन्त धावन न करे। इन्द्र वृक्ष और सुर वृक्ष की दाँतुन से भी नही करे। यदि इन वृक्षो की दाँतुन से धावन करता है तो उस सम्पूर्ण नित्य का कर्मफल विनष्ट हो जाया करता है ॥१४-१५॥

य: स्नानसमये कुर्याज्जैमिने ! दन्तधावनम् ।
निराशा: पितरो यान्ति तस्यदेवा.सुरर्षय. ॥१६
दन्तस्य धावन कुर्याद्यो मध्याह्नापराह्णयो ।
तस्य पूजा न गृह्णन्ति देवता: पितरोजलम् ॥१७
स्नानकाले पुष्करिण्या य. कुर्याद्दन्तधावनम् ।
ततो ज्ञेय: स चाण्डालो यावद्गङ्गा न पश्यति ॥१८
भगवत्युदितेसूर्ये य. कुर्याद्दन्तधावनम् ।
तद्दन्तकाष्ठं पितरो भुक्त्वा गच्छन्ति दु.खिन: ॥१९
उपवासदिने विप्र ! पितृश्राद्धदिने तथा ।
न तत्फलमवाप्नोति दन्तधावनकृन्नर: ॥२०
प्रभाते मार्जयेद्दन्तान्वाससा रसना तथा ।
कुर्याद्द्वादश विप्रेन्द्र ! कल्लोलानि जलैर्बुध: ॥२१

हे जैमिने ! जो स्नान करने के समय मे दन्तधावन किया करता है उसके पितृगण निराश होकर तथा देववृन्द और सुरर्षिगण भी निराश होते हुए चले जाया करते हैं। तात्पर्य—स्नान के समय मे दन्तधावन का महान् दोष होता है। जो मध्याह्न और अपराह्न मे दाँतो की शुद्धि किया करते हैं उस पुरुष की पूजा को देव तथा जल के पितर ग्रहण नही किया करते हैं ॥१६-१७॥ स्नान के काल मे जो पुष्करिणी मे ही स्थित होकर दन्तमार्जन करते हैं वे उस समय तक एक चाण्डाल की कोटि मे ही गणित होते हैं जब तक भागीरथी गगा का दर्शन नही किया करते हैं ॥१८॥ भगवान् भुवन भास्कर सूर्य देव के उदित होने पर जो दन्तधावन किया करते हैं उस दाँतुन के काष्ठ को पितरगण खाकर अत्यन्त दु:खित होते हुए चले जाया करते हैं ॥१९॥ हे विप्र ! उपवास

के दिन मे तथा पिता के श्राद्ध के दिन में दन्तधावन करने वाला मनुष्य उस फल को प्राप्त नहीं किया करता है ।।२०।। प्रभात काल मे ही दाँतों का मार्जन करे और बारा से रसना (जीभ) का मार्जन करे । हे विप्रेन्द्र ! दाँतुन के पश्चात् बुध पुरुष को बारह कुल्ली करनी चाहिए ।।२१।।

उपवासे पितृश्राद्धे विधिनाऽनेन जैमिने ! ।
दन्तधावनकृन्मर्त्यं सम्पूर्णं लभते फलम् ।।२२
अनेन विधिना कृत्वा दीर्घदर्शीबहिष्क्रियाम् ।
ततो निजगृहगत्वारात्रिवस्त्रमपरित्यजेत् ।।२३
ततो देवगृहद्वारे चोपविष्टो बुध. शुचिः ।
स्मरेन्नारायण देवमनन्त परमेश्वरम् ।।२४
राम ! श्यामतनो ! विष्णो नारायण दयामय ! ।
जनार्दन जगद्धाम पाप मे हर केशव ! ।।२५
पीताम्बरधरानन्तपद्मनाभ जगन्मय ! ।
वामन ! प्रणतस्येश ! विभो ! त्व शरण भव ।।२६
दामोदर यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण करुणार्णव ! ।
कमलेक्षण देवेन्द्र ! वासुदेव कृपा कुरु ।।२७
गरुडध्वज गोविन्द विश्वम्भर गदाधर ! ।
शार्ङ्गपाणे चक्रपाणे पद्महस्त हराऽऽपद ।।२८
लक्ष्मीविलास वैकुण्ठ हृषीकेश सुरोत्तम ! ।
पुरुषोत्तम ! कंसारे कैटभारे ! भय हर ।।२९
श्रीपते श्रीधर विभो श्रीव श्रीकर माधव ! ।
पर ब्रह्म पर धाम शरण मे भवाऽव्यय ! ।।३०

हे जैमिने ! उपवास मे—पितृश्राद्ध मे इसविधि से दन्तधावन करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है ।।२२।। इस बतायी हुई विधि से जो दीर्घदर्शी पुरुष होते हैं वे इस बहिष्क्रिया को किया करते हैं । इसके अनन्तर बाहिर से आकर अपने घर मे जो भी रात्रि के धारण किये हुए वस्त्र होते हैं उनका त्याग कर देना चाहिए ।।२३।। इसके उपरान्त किसी देवगृह के द्वार पर शुचि होकर बुध पुरुष को अनन्त

परमेश्वर देव भगवान् नारायण का स्मरण करना चाहिए ॥२४॥ नारायण से निम्न नामों का उच्चारण करते हुए विनम्र प्रार्थना करे—हे राम ! श्यामतनो ! हे विष्णो ! नारायण ! दयामय ! हे जनार्दन ! हे जगद्धाम ! हे केशव ! आप कृपा करके मेरे समस्त कृत एवं पूर्व सञ्चित पापों का हरण कर दीजिए ॥२५॥ आप तो पीताम्बर के धारण करने वाले प्रभु है—आप का स्वरूप एवं नाम अनन्त हैं। हे पद्मनाभ ! यह सम्पूर्ण जगत् भी आप ही का स्वरूप है। हे वामन ! आप प्रणत भक्तों के नाथ हैं। हे विभो ! आप ही मेरे इस समय रक्षा करने वाले हो जावें ॥२६॥ हे दामोदर ! हे यदुश्रेष्ठ ! हे श्रीकृष्ण ! आप तो करुणा के सागर है। हे कमल के समान नेत्रों वाले ! हे देवों के भी स्वामिन् ! वासुदेव भगवान् अब आप मेरे ऊपर कृपा करें ॥२७॥ हे गरुडध्वज ! गोविन्द ! विश्वम्भर ! गदाधर ! हे शङ्खपाणे ! चक्र पाणि में रखने वाले ! हे पद्म हस्त ! अब आप हमारी समस्त आपदाओं का हरण कर दीजिए ॥२८॥ आप तो लक्ष्मी के साथ विलास करने वाले हैं। हे वैकुण्ठ ! हृषीकेश ! आप समस्त सुरों के शिरोमणि देव हैं। हे पुरुषोत्तम ! हे कंस का निहनन करने वाले ! हे कैटभ के वध करने वाले ! आप हमारा भय दूर कीजिए ॥२९॥ हे श्रीपते ! श्रीधर ! विभो ! श्री के प्रदान करने वाले ! हे श्रीकर माधव ! आप परम ब्रह्म हैं और आप का धाम सर्वोपरि है—आप अविनाशी हैं अब मेरे रक्षक होइये ॥३०॥

> इत्थं कृत्वा द्विजश्रेष्ठ ! श्रीविष्णुस्मरणं बुधः ।
> बद्धाञ्जलिरिति ब्रूते प्रविश्य निलयं गतः ॥३१
> ईश्वर श्रीपते कृष्ण देवकीनन्दनप्रभो ! ।
> निद्रां मुञ्च जगन्नाथ प्रभातसमयोऽभवत् ॥३२
> अथोत्थितमिवप्राज्ञः पर्यङ्के देवकीसुतम् ।
> निद्रां त्यक्त्वा सलक्ष्मीकं चिन्तयेन्निजचेतसा ॥३३
> ततः कृतच्छदं दिव्यं पात्रं च जलपूरितम् ।
> मुखप्रक्षालनार्थाय दद्यात्कृष्णाय वैष्णवः ॥३४

ईश्वरं वर्तनार्थाय सेवन्ते सेवका यथा ।
तथैव मतिमन्तोऽपि सेवन्ते परमेश्वरम् ॥३५

हे द्विज श्रेष्ठ ! इस तरह से बुध पुरुष को भगवान् के कतिपय उपरिनिर्दिष्ट शुभ नामों को पुकारते हुए उनका स्मरण करना चाहिए । दोनों हाथों को जोड़कर इस तरह से बोले और फिर देव मन्दिर में प्रवेश करे ॥३१॥ वहाँ प्रवेश करके पुनः प्रार्थना करे–हे ईश्वर ! हे श्रीपते ! कृष्ण ! देवकी नन्दन ! प्रभो ! अब आप अपनी निद्रा का त्याग करिये । आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के नाथ हैं । अब तो प्रभात की वेला होगई है अर्थात् निद्रा त्याग का समय हो गया है ॥३२॥ इसके अनन्तर प्राज्ञ पुरुष को भगवान् के पर्यंक के निकट नीचे की ओर स्थित होते हुए ऐसा चिन्तन करना चाहिए कि भगवान् देवकीसुत निद्रा का त्याग करके इस समय लक्ष्मी के सहित बैठे हुए हैं—इस तरह से अपने हृदय में ध्यान करके फिर एक ढके हुए दिव्य पात्र को जल से परिपूर्ण करके उपासक वैष्णव को भगवान् के मुख प्रक्षालन के लिये कृष्ण की सेवा में समर्पित करना चाहिए ॥३३-३४॥ जिस तरह से अपनी रोजी के लिये मनुष्य अपने स्वामी का सेवक होकर सेवा किया करते हैं उसी भाँति जो मतिमान् पुरुष होते हैं वे परमेश्वर की सेवा किया करते हैं और सेवक की भाँति सर्वदा संलग्न रहते हैं ॥३५॥

यस्तु सेवकरूपेण सेवते जगदीश्वरम् ।
अचिरेणैव विप्रर्षे ! तस्य सिध्यति वाञ्छितम् ॥३६
यथेश्वरस्य सभयाः सेवा कुर्वन्ति चेटकाः ।
प्राज्ञास्तथैव सेवन्ते सर्वदेव हरिं प्रभुम् ॥३७
निजेच्छयाऽन्यथाविष्णुं निर्भयः पूजयेन्नरः ।
कुसेवकः सएवास्ति तदा नहि भवेद्द्विज ! ॥३८
अतएव द्विजश्रेष्ठ ! त्वरया कमलापतेः ।
कर्त्तव्या सर्वदा सेवा पुंसा कैवल्यमिच्छता ॥३९
निर्माल्यं रात्रिवस्त्रं च गन्धं पर्यु षितं तथा ।
हरेरुत्तारयेदज्ञात्प्रभाते वैष्णवो जनः ॥४०

ततो देवालये तस्मिन्स्वयमेव हि मार्जयेत् ।
कुर्याच्छनैः शनैः प्राज्ञः सम्मार्जन्या परिष्क्रियाम् ॥४१
यावन्तो निलयात्तस्माद्गच्छन्ति रेणवो वहिः ।
तावन्मन्वन्तरशत तिष्ठेद्विष्णुगृहे नरः ॥४२

जो पुरुष एक सेवक के रूप से जगदीश्वर प्रभु की सेवा किया करता है हे विप्रर्षे ! वह शीघ्र ही अपने अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है ॥३६॥ जिस तरह से चेटक गण अपने स्वामी की सेवा कार्य करने में भय युक्त रहते हुए कि कहीं स्वामी नाराज न हो जावें, उसी तरह से प्राज्ञ पुरुष सर्वदा श्री हरि प्रभु की सेवा किया करते है और कोई भी प्रभु का अपराध न बन जाये— इसका भय भी रखते है ॥३७॥ इसी अपनी इच्छा से निर्भय होकर मनुष्य को भगवान् विष्ण का पूजन करना चाहिए। वही कुसेवक है जो भगवान् की सेवा ही नहीं किया करता है ॥३८॥ अतएव हे द्विज-श्रेष्ठ ! त्वरा पूर्वक भगवान् कमला पति की सेवा का आरम्भ कर देना चाहिए और सर्वदा ही उसे करते रहना चाहिए जो कि पुरुष अपनी कैवल्य की इच्छा किया करता है उसका यह प्रभु की सेवा करना परमावश्यक एकान्त कर्त्तव्य होता है ॥३६॥ जो वैष्णव उपासक भक्तजन है उसे भगवान् का निर्माल्य तथा रात्रि के धारण कराये हुए वस्त्र—गन्ध जो कि पर्युषित हो गये हैं, श्रीहरि के अंग से उतार लेने चाहिए जब कि प्रभात में प्रभु की सेवा करने को प्रस्तुत होवे ॥४०॥ फिर उस देवालय मे स्वयं ही मार्जन आदि करे। प्राज्ञ पुरुष को शनै. २ देवायतन की सम्मार्जनी से परिष्क्रिया करनी चाहिए ॥४१॥ उस देवायतन से जितने भी रज के रेणु बाहिर जाया करते हैं उतने ही शत मन्वन्तर तक वह सेवा करने वाला वैष्णव भगवान् विष्णु के धाम में स्थित रहा करता है ॥४२॥

यस्तु सम्मार्जनंकुर्याद्ब्रह्महाऽपि हरेर्गृहे ।
सोऽपि याति परं धाम किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥४३

तथोपलेपन कुर्यादूर्णकैर्गोमयैर्द्विज ! ।
तस्मिन्विष्णुगृहे प्राज्ञः स्मरेन्नारायण प्रभुम् ॥४४
यस्तूपलेपन कुर्यात्केशवस्य च मन्दिरे ।
तस्य पुण्यमह वच्मि सक्षेपाच्छृणु जैमिने ! ॥४५
रजांसि तत्र यावन्ति विनश्यन्ति द्विजोत्तम ! ।
तावत्कल्पसहस्राणि तिष्ठेद्विष्णुगृहे सुखी ॥४६
सम्मार्जन विष्णुगृहे जन कृत्वोपलेपनम् ।
लभते परम धाम किं पूजाफलवित्प्रभो ! ॥४७
देशकालविरोधेन न शक्नोति यदा स्वयम् ।
तदा विष्णुगृहेचाऽपि धर्मपत्नीनियोजयेत् ॥४८
अथवा तनय भक्त सुचरित्रतथाऽऽत्मन' ।
भ्रातर भगिनी वाऽपि देवागारे नियोजयेत् ॥४९

जो भगवान् के मन्दिर का सम्मार्जन किया करता है वह चाहे ब्रह्म हत्या का अपराधी भी क्यो न हो समस्त पातको से छुटकारा पाकर अन्त मे हरि मन्दिर के सम्माजन करने के पुण्य फल से परम धाम की प्राप्ति किया करता है। विशेष कथन करने की कोई भी आवश्यकता नही है ॥४३॥ हे द्विज ! फिर ऊर्णक और गोमय से उप लेपन करे उस विष्णु गृह मे उप लेपन करने के पश्चात् प्राज्ञ पुरुष को भगवान् प्रभु नारायण का स्मरण करना चाहिए ॥४४॥ जो भगवान् केशव के मन्दिर मे उप लेपन किया करता है उसका जो महान् पुण्य होता है उसे मैं सक्षेप से बतलाता हूँ हे जैमिने ! अब आप उसका श्रवण करिये ॥४५॥ हे द्विजोत्तम ! वहाँ पर जितने भी रज के कण विनष्ट होते हैं उतन ही सहस्र कल्प तक वह सुखी होकर भगवान् विष्णु के घर मे स्थित रहा करता है ॥४६॥ भगवान् विष्णु के घर मे भक्त समार्जन करके उप-लेपन करता है वह प्रभु की पूजा के फल को प्राप्त करने वाला अन्त मे परम धाम की प्राप्ति का लाभ लेता है ॥४७॥ किसी समय म यदि देश और काल के विरोध से स्वय भगवान् की सेवा का कार्य न कर सके तो उस समय विष्णु के मन्दिर मे समार्जन आदि के कर्म मे अपनी धर्म-

पत्नी की नियुक्ति कर देनी चाहिए ।।४८।। यदि धर्म पत्नी भी किसी कारण वश असमर्थ हो तो भक्त अपने पुत्र को जो कि सुन्दर चरित्र वाला हो अथवा भाई को अथवा भगिनी को सेवा के कार्य मे देवागार मे नियोजित कर देना चाहिए ।।४९।।

हरेः सपर्यावस्तूनि सप्तधा शुद्धवारिभिः ।
प्रक्षालयेत्त्रिधा वाऽपिस्वयमेवाऽतियत्नतः ।।५०
अम्लेन ताम्रपात्राणि कास्यपात्राणि भस्मना ।
वह्निना लोहपात्राणि शुध्यन्ति नाऽत्रसंशयः ।।५१
धनाढ्यो लोहपात्रस्थैर्यः स्नापयति वारिभिः ।
नारायणं जगन्नाथनस्य तुष्टो न केशवः ।।५२
अज्ञानाद्वाऽपि चेत्तर्हि गङ्गास्नानेन शुद्धयति ।
सम्पदि ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कर्त्तव्योनियम.सदा ।।५३
विपत्त्या नियमो नास्ति शास्त्रेष्विति विनिश्चयः ।
यत्नात्प्रक्षालितः शङ्खो यदा भूमिस्पृशेत्पुनः ।।५४
तदा स शङ्खो विप्रेन्द्र ! शतधौतेन शुध्यति ।
इत्थं प्रक्षाल्य यत्नेन पूजाद्रव्याणिचक्रिणः ।।५५
गृहीत्वा स्नानवस्तूनि स्नानार्थं सरसी व्रजेत् ।
अकृत्वास्नानकर्माणिगृहमायातियःपुनः ।।५६

भगवान् की सपर्या की जो भी वस्तुऐं हो उन्हे स्वयं शुद्ध जल से सात बार अथवा तीन बार अति यत्न के साथ प्रक्षालित करना चाहिए ।।५०।। जो ताम्र के पात्र हो उन्हें खटाई से, और जो कासे के पात्र हो उन्हें भस्म से और जो लोहे के पात्र हो उन्हें अग्नि से शुद्ध करे क्योंकि ये इन्ही प्रकारो से शुद्ध हुआ करते है—इसमे कुछ भी सशय नही है ।।५१।। धन से सम्पन्न पुरुष भी लोहे के पात्र मे स्थित जल से जो भगवान नारायण जगन्नाथ का स्नपन कराता है उससे केशव तुष्ट नही होते है ।।५२।। यदि कोई अज्ञान वश ऐसा भी करता है तो वह गंगा के स्नान से शुद्ध हो जाया करता है । सम्पत्ति रहने की दशा मे सदा नियम का पालन करना ही चाहिए । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! सपदा मे

नियम के पालन न करने से बड़ा दोष होता है जो क्षम्य नहीं है। विपत्ति की दशा मे ऐसा शास्त्र का कथन है कि उसमे कोई भी नियम नहीं होता है। यत्न पूर्वक यदि शख प्रक्षालन भी किया जावे और जिस समय मे भी वह भूमि से स्पर्श प्राप्त कर लेवे तो हे विप्रेन्द्र ! वह शख सौवार धोने से शुद्धि को प्राप्त हुआ करता है इस प्रकार से बड़े ही यत्न के साथ भगवान् चक्री के पूजा के द्रव्यो को प्रक्षालित करे ॥५३-५५॥ फिर स्नान के समस्त उपकरणो को ग्रहण करके स्नान करने के लिये किसी भी सरोवर पर जावे। जो कोई वहा पहुच कर भी स्नान के कर्मों को न करके ही पुन घर मे आजाता है तो इसका महान दोष होता है ॥५६॥

तस्मिन्दिने पितृगणस्तस्य नाप्नोति तर्पणम् ।
स्नानार्थंभोजनार्थंवागच्छतोविघ्नकृद्भवेत् ॥५७
यस्तु मोहाद्द्विजश्रेष्ठ ! स नून नारकीभवेत् ।
स्नानार्थं सरसीगत्वामलमूत्रकरोति यः ॥५८
पितरस्तस्य विण्मूत्रभोजिनः स्युर्न सशय. ।
ततः कृत्वाविधानेनस्नानच तर्पणादिकम् ॥५९
स्वकीय गृहमागच्छेत्स्मरन्नारायण बुध. ।
ततश्च प्राङ्गणे विप्र ! प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥६०
प्रविशेद्देवतागारं शुचिर्ब्राह्मणसत्तम ! ।
अप्रक्षालितपादो य. प्रविशेन्निलय जन ॥६१
सम्वत्सरकृत पुण्य तस्य नश्यति तत्क्षणात् ।
स्नान कृत्वा समागत्य प्राङ्गणेपु विचक्षण. ॥६२
तस्मात्प्रक्षालय चरणौ प्रविशेद्देवतागृहम् ।
उपविश्य पादयुग्म बुधः सव्येन पाणिना ॥६३
यत्नात्प्रक्षालयेद्विप्र ! तथा पाणिद्वयम्पुनः ।
पादेन पाद विप्रेन्द्र ! तथा दक्षिणपाणिना ॥६४

उस दिन मे उस पुरुष मे पितृगण उसके तर्पण का लाभ नही प्राप्त किया करते हैं। स्नान करने के कर्म से तथा भोजन के लिये गमन करते

हुए जो कोई भी विघ्न करने वाला बनता है वह द्विज श्रेष्ठ ! महान् अपराधी बनता है और ऐसा मनुष्य निश्चय ही नरकगामी मोह के कारण हुआ करता है। स्नान करने के लिये जो कोई भी सरोवर पर जाकर मूल मन्त्र का जाप किया करता है उसका भी दोष होता है। ।।५७-५८।। उसके पितृगण विण्मूत्र का भोजन करने वाले होते हैं— इसमें संशय नहीं है। इसके अनन्तर विधान के साथ ही स्नान और पुनः तर्पण आदि कर्तव्य कर्मों को करना चाहिए ।।५९।। बुध पुरुष को चाहिए यह सब कर्त्तव्य कृत्य समाप्त करके भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए फिर अपने घर पर आ जाना चाहिए इसके अनन्तर प्रांगण में हे विप्र ! अपने दोनों चरणों का प्रक्षालन करे ।।६०।। हे ब्राह्मणों में परम श्रेष्ठ ! पूर्णतया शुचि होकर फिर भगवान् देव के मन्दिर में प्रवेश करना चाहिए। जो अपने दोनों चरणों को बिना धोये ही भगवान् के मंदिर में प्रवेश किया करता है उसका भी महान् दोष होता है ।।६१।। एक वर्ष भर का किया हुआ सम्पूर्ण कर्म उसका उसी समय में विनष्ट हो जाया करता है जो बिना पद प्रक्षालन किये मन्दिर में प्रवेश कर लेता है। इसलिये विचक्षण पुरुष का यह परमावश्यक प्रथम कर्त्तव्य है कि स्नान करके जैसे ही अपने घर के प्रांगण में पहुँचे वैसे ही पद प्रक्षालन कर लेना चाहिए ।।६२।। इसीलिये चरणों का प्रक्षालन करके देव गृह में प्रवेश करना चाहिए। आँगन में शान्ति से बैठकर अपने सव्य हाथ से बुध-पुरुष को दोनों पदों का प्रक्षालन भली-भाँति करना चाहिए। हे विप्र ! यत्नपूर्वक फिर अपने दोनों ही हाथों को भी धो डाले। हे विप्रेन्द्र ! पाद से पाद का और दक्षिण पाणि से प्रक्षालन जो कोई भी करे ।।६३-६४।।

यश्च प्रक्षालयेन्मूढस्त लक्ष्मीस्त्यजति ध्रुवम् ।
अथोपविष्टोमतिमान्केशवार्चनमारभेत् ।।६५

अनन्यमानसो भूत्वा सर्वकामफलप्रदम् ।
मृगचर्मासने शुद्धे व्याघ्रचर्मासनेऽपि वा ।।६६

वस्त्रासने केवले च तथा कुशमयासने ।
पुष्पासने चोपविष्टः पूजयेत्कमलापतिम् ॥६७
काष्ठासने द्विजो विद्वान्न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
विष्णुना त्वं धृता पृथ्वि ! सर्वे लोकास्त्वया धृताः ॥६८
अतः सर्वं सहे देहि वस्तु मे स्थानमुत्तमम् ।
इत्युक्त्वासनमास्तीर्यं वसेन्नारायणार्चकः ॥६९
दक्षिणाभिमुखोभूत्वा न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
शङ्खेकृत्वातुपानीयमन्त्रपूतंसुवासितम् ॥७०

किन्तु ऐसा करने का महान् दोष है। जो मूढ पद में पद का तथा दक्षिण हाथ से प्रक्षालन किया करता है वह निश्चय ही अपनी लक्ष्मी का त्याग कर देता है अर्थात् लक्ष्मी स्वयं ही उसे छोड़ दिया करती है। इसके उपरान्त बैठ कर मतिमान पुरुष को भगवान् वैष्णव का समर्चन करना चाहिए ॥६५॥ भगवदर्चन के समय में उपासक वैष्णव को अपना बिल्कुल स्थिर करके ही उसे अनन्य मन से करना चाहिए। मन को इधर-उधर किसी भी अन्य विचार या विषय की ओर नहीं घुमावे। तभी पूजन समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला होता है। उस समय में पूजक का जो आसन हो वह चाहे तो मृग चर्म शुद्ध हो या व्याघ्र चर्म शुद्ध होना चाहिए। अथवा ये दोनों ही आसन समुपलब्ध न हों तो केवल किसी शुद्ध वस्त्र का आसन हो या कुशों का आसन एवं पुष्पों का आसन भी ग्राह्य है। उस पर उपविष्ट होकर ही भगवान् कमला के स्वामी श्री नारायण का अर्चन करना चाहिए ॥६६-६७॥ द्विज को केवल काष्ठ के आसन पर स्थित होकर कदापि भगवान् विष्णु का यजनार्चन नहीं करना चाहिए। पूजन के आरम्भ में निम्न प्रकार से प्रथम प्रार्थना करे— हे वसुन्धरे ! आपको भगवान् विष्णु ने धारण किया है और आपने हे देवि ! समस्त लोकों को धारण कर रक्खा है। इसलिये सभी कुछ सहन करता हूँ। अब मुझे आप बैठने के लिये कोई उत्तम स्थान प्रदान करिये। इतना कह कर फिर अपने आसन को फैला कर बिछावे और फिर नारायण भगवान् की अर्चना करने वाला

पुष्प उस पर संस्थित होवे ॥६८-६९॥ पूजन करने के समय में कभी भी दक्षिण दिशा की ओर मुख करके स्थित नहीं होना चाहिए—इसका बड़ा दोष शास्त्र मे बताया है। शख मे जल करके रक्खे और मन्त्र के द्वारा पवित्र एव अभिमन्त्रित करले तथा सुगन्धित पदार्थों से सुवासित भी कर लेना चाहिए ॥७०॥

स्नापयेत्कमलाकान्त कमलासहितं प्रभुम् ।
शङ्खेन स्नापयेद्यस्तु भगवन्त जनार्दनम् ॥७१
तत्फलं तस्य वक्ष्यामि शृणु विप्रेन्द्र जैमिने ! ।
विप्रगोस्त्रीभ्रूणहत्यासुरापानादिपातकैः ॥७२
विमुक्तोयाति वैकुण्ठं भुङ्क्ते हि सकलसुखम् ।
यदिदृष्ट्वा हृषीकेशं पूजयेन्मानवो द्विज ! ॥७३
लभते तत्तदेवाऽशु प्रसादात्कमलापतेः ।
शङ्खाभावे तु विप्रेन्द्र ! सुगन्धितोयकं बुधः ॥७४
कृत्वा च तुलसी पात्रे स्नापयेत्केशवं बुधः ।
ततो देवं स्नापयित्वा संस्थाप्यच वरासने ॥७५
सुगन्धैश्चन्दनैस्तस्य कुर्यात्सर्वाङ्गलेपनम् ।
तुलसीकाष्ठपङ्केन चक्रिणो देहलेपनम् ॥७६
यः करोति जनस्तस्य प्रसन्नः सततं हरिः ।
तुलसीपत्रमालेयं निजगन्धसुखप्रदा ॥७७
दीयते ते जगन्नाथ ! सुप्रीतो भव सर्वदा ।
मन्त्रेणाऽनेन विप्रेन्द्र तुलसीपत्रमालया ॥७८

फिर भगवान् श्री कमलापति प्रभु का कमला के सहित स्नान करावे। भगवान् का स्नान शंख से ही कराना चाहिए—इसके द्वारा स्नपन करने का बड़ा पुण्य-फल होता है। जो भी कोई भगवान् जनार्दन प्रभु का शख के जल से स्नपन कराता है उसका पुण्य हे जैमिने ! मैं अब तुमको बतलाता हूँ उसका श्रवण करो। ऐसा पुरुष चाहे कितना भी महान् पातकी क्यो न हो और विप्र—गौ—स्त्री—भ्रूण आदि की हत्या का महान् घोर पाप उसे हो अथवा सुरापान प्रभृति का महापातक हो—

इन सभी प्रकार के पातकों से शख के द्वारा भगवान् को स्नपन कराने वाला पुरुष छुटकारा पाकर वैकुण्ठ का निवास प्राप्त कर वहा पर सुखों का उपभोग किया करता है। यदि देख कर मानव हृषीकेश भगवान् का पूजन किया करता है तो वह कमलापति के परम प्रसाद से उसी क्षण मे अति शीघ्र ही लाभ प्राप्त कर लेता है ॥७१-७३॥ हे विप्रेन्द्र ! यदि शख का अभाव हो तो बुध का कर्त्तव्य है कि सुवासित जल को करके पात्र मे तुलसी के दल छोड कर भगवान् केशव का स्नपन करावे। फिर देव का स्नान करा कर किसी श्रेष्ठ आसन पर उनको विराजमान करे ॥७४-७५॥ सुगन्ध से संयुत चन्दन से भगवान् के सर्वांगो का लेपन करे। तुलसी के काष्ठ पक से भगवान् के अङ्गो का लेपन करना चाहिए ॥७६॥ इस तरह से जो भी भक्त वैष्णव किया करता है उस पर श्री हरि भगवान् निरन्तर परम प्रसन्न रहा करते हैं। फिर भगवान् से प्रार्थना करे—यह तुलसी के दलो की माला है जो अपनी ही गन्ध से सुख प्रदान करने वाली है, हे जगन्नाथ ! यह माला आपकी सेवा मे समर्पित की जाती है, आप परम प्रसन्न होइये और सर्वदा अपनी प्रसन्नता हमारे ऊपर रखिये। हे विप्रेन्द्र ! इसी उपर्युक्त प्रार्थना मन्त्र के द्वारा तुलसी पत्रो की माला समर्पित करनी चाहिए ॥७७-७८॥

अलङ्कृतो महाविष्णुः प्रसन्नो न ददाति किम् ।
ततस्तुवैदिकैर्मन्त्रैः कर्त्तव्य स्वस्तिवाचनम् ॥७६

दिग्बन्धनञ्चकर्तव्य मन्त्रै-पौराणिकैर्बुधै. ।
कृष्णो रक्षतु पूर्वस्यामाग्नेय्या देवकीसुतः ॥८०
याम्या रक्षतु दैत्यारिर्नैऋर्त्यां मधुसूदनः ।
विदिक्षु रक्षतु श्रीमानूर्ध्व च श्रीधर. प्रभुः ॥८१
अधो रक्षतु विश्वात्माकूर्ममूर्तिः कृपामयः ।
ये विघ्नकारकाःसर्वापूजाकालेभवन्तिह ॥८२
दूरंगच्छन्तु ते सर्वेहरिनामास्त्रताडिताः ।
इत्थदिग्बन्धनं कृत्वा ततः प्रह्वः कृताञ्जलिः ॥८३

वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण संकल्पं कुरुते दृढम् ।
मयाऽऽरब्धामिमा पूजा देवदेव जनार्दन ! ॥८४
सिद्धि प्रापय निर्विघ्नां प्रसीद परमेश्वर ! ।
ततस्तु कृतसङ्कल्पो वैष्णवः सर्वतत्त्ववित् ॥८५

तुलसी के दलो की माला से भली-भाँति अलकृत होने पर महाविष्णु को अत्यधिक प्रसन्नता होती है और उस प्रसन्नता मे वे अपने भक्त को क्या कुछ नही प्रदान कर दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ दे देते हैं। इसके अनन्तर वैदिक मन्त्रो के द्वारा स्वस्ति वाचन का पाठ करना चाहिए ॥७६॥ बुध पुरुषो को चाहिए कि पौराणिक मन्त्रों के द्वारा दिशाओ का बन्धन करना चाहिए। दिग्बन्धन का विधान निम्न भाँति से है—पूर्व दिशा मे श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें—देवकी के सुत आग्नेयी दिशा मे रक्षा करें। कैरयारि प्रभु याम्य दिशा मे रक्षा करें। मधुसूदन प्रभु नैर्ऋत्य दिशा मे रक्षा करे। विदिशाओ मे श्रीमान् रक्षा करे। ऊर्ध्व भाग मे श्रीधर प्रभु मेरी रक्षा करे ॥८०-८१॥ कूर्म का स्वरूप धारण करने वाले कृपामय विश्वात्मा नीचे के भाग मे मेरी रक्षा करे। इस भगवान् की पूजा के समय मे जो भी सब विघ्नो के करने वाले हैं वे सभी इस समय मे श्री हरिनाम रूपी अस्त्र से प्रताडित होकर दूर चले जावें। इस प्रकार से दिशाओ का बन्धन करके फिर हाथो को जोड कर विनम्र भाव से स्थित हो जावे ॥८२-८३॥ आगे बताये जाने वाले मन्त्र से दृढ संकल्प करे—हे देवो के भी देव ! मेरे द्वारा आरम्भ की हुई इस आपकी पूजा को हे जनार्दन ! सिद्धि के प्राप्त करने वाली बना दीजिए। हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होइये और इस मेरी पूजा को समस्त विघ्नो से रहित पूर्ण करा दीजिए। समस्त तत्त्वो का ज्ञाता वैष्णव इस प्रकार से अपना सकल्प करके ही आरम्भ करे ॥८४-८५॥

अङ्गन्यासादिकं कृत्वा ध्यायेन्नारायणं हृदा ।
नवीनमेघसङ्काशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥८६
पीताम्बरधरं देवं स्मितचारुतराननम् ।
कदम्बपुष्पमालाभिर्भूषितं सुमहाभुजम् ॥८७

वर्हिवर्हश्रेणिवद्धशिखण्डधृतकुण्डलम् ।
वंशीमधुरनादेन मोहयन्तं दिशो दश ॥८८
आवृतं गोपनारीभिश्चारुवृन्दावने स्थितम् ।
एवं सञ्चिन्त्य देवेशं गोविन्दं सर्वकामदम् ॥८९
ततश्चाऽऽवाहनं कुर्याद्भक्तिभावेन वैष्णवः ।
आवाहिताय कृष्णाय चतुर्वर्गप्रदायिने ॥९०
पाद्यार्घ्याचमनीयानि तत्र दद्याद्विचक्षणः ।
कोमलैस्तुलसीपत्रैरन्यैर्वा कुसुमर्बु धः ॥९१

इसके उपरान्त वैष्णव पूजक को अंगन्यास आदि करने चाहिए और हृदय मे प्रभु नारायण का ध्यान करना चाहिए। ध्यान इस प्रकार करे—नूतन मेघ के समान आपका सुन्दर श्याम वर्ण है। पुण्डरीक के तुल्य अत्यन्त मनोरम नेत्र हैं। पीतवर्ण का वस्त्र धारण करने वाले हैं। भगवान् के मुख पर अतीव सुन्दर मन्द मुस्कराहट खेल रही है जिससे मुख अत्यन्त सुन्दर दिखलाई दे रहा है। कण्ठ मे कदम्ब के पुष्पो की माला सुशोभित है। बडी-बडी लम्बी दोनों भुजाऐं हैं। मयूरो के पिच्छों से आपका शिरोभूषण मुकुट बना हुआ है। कानों मे कुण्डल धारण किये हुए हैं। वंशी के सुमधुर ध्वनि से दशो दिशाओ को मोहित करने वाले हैं ॥८६-८८॥ चारो ओर गोपागनाओ ने घेर कर उन्हें शोभित कर रखा है। वृन्दावन की परमसुन्दर विहार भूमि मे आप सस्थित हैं। इस प्रकार से भगवान् के स्वरूप का हृदय मे ध्यान करे जो भगवान् देवेश गोविन्द समस्त कामनाओ के पूर्ण करने वाले हैं ॥८६॥ इसके अनन्तर भक्ति के भाव से वैष्णव को भगवान् का आवाहन करना चाहिए। जब उनका आवाहन करके मन मे यह विचार लेवे कि प्रभु साक्षात् मेरे सामने कृपा करके आकर विराजमान हो गये हैं तो फिर विद्वान् पूजक पुरुष को क्रम से पाद्य-अर्घ्य आचमनीय समर्पित करनी चाहिए। बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि कोमल तुलसी के दलों से अथवा परम सुन्दर पुष्पो के द्वारा पूजन कर्म करे ॥९०-९१॥

पूजयेत्सर्वदेशं श्रीकृष्णं देवकीसुतम् ।
नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमोनमः ।।९२
नमोऽस्तु हरये तुभ्यं वामनाय नमोनमः ।
नमो रामाय रामाय रामाय बलिने नमः ।।९३
नमो बुद्धाय शुद्धाय सकृपाय नमोनमः ।
नमोऽस्तु कल्किने तुभ्यं नमस्ते बहुमूर्तये ।।९४
नारायणाय कृष्णाय गोविन्दाय च शार्ङ्गिणे ।
दामोदराय देवाय देवदेवाय ते नमः ।।९५
हृषीकेशाय शान्ताय व्योमपादाय वै नमः ।
नमोऽस्तु पद्मापतये नमस्ते पद्मचक्षुषे ।।९६
अनन्ताय नमस्तुभ्यं गदाहस्ताय वै नमः ।
तार्क्ष्यध्वजाय वै तुभ्यं नमस्ते चक्रपाणये ।।९७
पद्महस्ताय वै तुभ्यमच्युताय नमोनमः ।
नमो दैत्यारये तुभ्य सर्वकामप्रदायिने ।।९८

समस्त देवो के भी देव भगवान् देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण का अर्चन करना चाहिए । प्रार्थना निम्न प्रकार से करे—मत्स्य रूपी भगवान् के लिये नमस्कार है । कूर्म तथा वराह रूपी प्रभु को प्रणाम है । हरि के लिये तथा भगवान् वामन रूपी के लिये बारम्बार नमस्कार है । श्रीराम —बलराम और परशुराम इन तीनो बलशाली रामावतारी प्रभुओ की सेवा मे बारम्बार हमारा प्रणाम समर्पित है । बुद्ध के लिये नमस्कार है जो परम-शुद्ध स्वरूप वाले एव कृपा से परिपूर्ण हैं । कल्कि का अवतार ग्रहण करने वाले प्रभु के लिये बार-बार नमस्कार है । बहुत मूर्त्तियो के रूप को धारण करने वाले प्रभु की सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है । ।।९२-९४।। भगवान् नारायण–कृष्ण–गोविन्द–शार्ङ्गधारी–दामोदर देवो के भी देव प्रभु के लिये मेरा नमस्कार समर्पित है ।।९५।। भगवान् हृषी-केश–शान्त स्वरूप वाले—व्योम मे चरण पहुचाने वाले प्रभु की सेवा मे मेरा नमस्कार–समर्पित है । पद्मा के पति तथा पद्म के तुल्य नेत्रो वाले प्रभु के लिये नमस्कार है । अनन्त स्वरूप वाले एव गदा हाथ मे धारण

करने वाले प्रभु के लिए मेरा नमस्कार है। गरुड़ की ध्वजा रखने वाले तथा सुदर्शन चक्र धारण करने वाले प्रभु की सेवा मे नमस्कार समर्पित है ॥६६-६७॥ पद्म को हाथ मे धारण करने वाले तथा अच्युत प्रभु के लिये वारम्बार नमस्कार है। दैत्यो के विनाश करने वाले भगवान् के लिए नमस्कार है। जो अपने परमभक्त के हृदय मे रहने वाली समस्त कामनाओ को पूर्ण करने वाले प्रभु हैं उनकी सेवा मे मेरा सादर प्रणाम समर्पित है ॥६८॥

माधवाय सुरेशाय विष्णवे परमात्मने।
किरीटिने कुण्डलिने नमोऽस्तु हरये सदा ॥६६
नमो भगवते तुभ्य वाहन गरुडाह्वयम्।
ॐनमोगरुडायेति मन्त्रेणैव विचक्षण ॥१००
नमः शङ्खाय चक्राय गदायै च नमोनमः।
नमः पद्माय खड्गाय नन्दकाय नमोनमः ॥१०१
इति सम्पूज्य देवेश सदार च सवाहनम्।
सायुध च ततो मन्त्र जपेदष्टाक्षर बुधः ॥१०२
निजभक्त्या ततो जप्त्वा मन्त्रमष्टाक्षर बुधः।
गोविन्दाय ततो दद्यात्नानानैवेद्यमुत्तमम् ॥१०३
धूप दीप च ताम्बूल देवदेवाय विष्णवे।
अन्यान्यप्युपहाराणि प्रदद्याद्वैष्णवो जनः ॥१०४
यस्तु धूप द्विजश्रेष्ठ ! चन्दनागरुवासितम्।
दद्यान्मुरारये तस्य द्रुत सिध्यतिवाञ्छितम् ॥१०५

भगवान् माधव—सुरेश—गदा हाथ मे धारण करने वाले की सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है। भगवान् विष्णु परमात्मा—किरीटधारी एव कुण्डल धारी हरि भगवान् की सेवा मे मेरा सदा प्रणाम सादर समर्पित होता है ॥६६॥ भगवान् आपके लिये नमस्कार है। आपका गरुड नामक वाहन है 'ॐ नमो गरुडाय'—इस मन्त्र का उच्चारण करके विचक्षण पुरुष को गरुड के लिए प्रणाम करना चाहिए ॥१००॥ इसी प्रकार से अन्य भगवान् के आयुधों को भी उनके नाम से मन्त्रो का

उच्चारण करते हुए प्रणाम करना चाहिए। यथा—मन्त्र इस भाँति है—ओं नमः शङ्खाय, ओं नमश्चक्राय, ॐ नमोगदायै, ओं नमः पद्माय, ओं नमः खड्गाय, ओं नमो नन्दकाय ॥१०१॥ इस प्रकार से दारा और वाहनों के सहित देवेश प्रभु का यजन करे। आयुधों के सहित पूजन करने के पश्चात् बुध पुरुष को आठ अक्षरों वाला "श्रीकृष्णः शरणं मम"—इस मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥१०२॥ अपने हृदय के भक्तिभाव से अष्टाक्षर मन्त्र का जप करके फिर बुध पुरुष भगवान् गोविन्द के लिए अनेक उत्तम नैवेद्य समर्पित करे ॥१०३॥ वैष्णवजन का कर्त्तव्य है कि देवों के भी देव भगवान् के लिए धूप दीप ताम्बूल तथा अन्य भी पूजा के आवश्यक उपहार समर्पित करें ॥१०४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! भगवान् मुरारि के लिए जो भक्त चन्दन और अगरु से सुवासित धूप निवेदित करता है उसका मनोवाछित फल बहुत ही शीघ्र सिद्ध हो जाया करता है ॥१०५॥

धूपं यच्छति यो विप्र ! हरये घृतवासितम् ।
सगच्छेद्विष्णुभवन विमुक्तः पापकोटिभि. ॥१०६
नारायणाय यो धूपं दद्याद्गुग्गुलुवासितम् ।
स याति परम धाम दुर्लभं यत्सुरैरपि ॥१०७
घृतेन दीपं यो दद्यात्तिलतैलेन वा पुनः ।
निमेषात्सकलतस्य पाप हरति केशवः ॥१०८
कर्पूरवासित यस्तु ताम्बूल चक्रपाणये ।
दद्यात्तस्य द्विजश्रेष्ठ ! मुक्तिर्भवति जैमिने ! ॥१०९
यस्तुयच्छति ताम्बूलखदिरेण समन्वितम् ।
इहभुक्त्वाऽखिलान्भोगानन्तेयातिहरे.पदम् ॥११०
पष्ठीमधुरिकायुक्त तथा जातिफलादिभि. ।
ताम्बूल हरये दत्त्वा स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥१११

हे विप्र ! जो कोई वैष्णव भक्तजन हरि की सेवा मे घृत से वासित धूप निवेदित करता है वह करोड़ो पापो से मुक्त होकर विष्णु के भवन मे गमन करता है ॥१०६॥ जो नारायण प्रभु की सेवा मे गूगल से

सुवासित धूप समर्पित करता है वह उस परात्पर परमधाम की प्राप्ति किया करता है जो सुरों को भी अत्यन्त दुर्लभ होता है ।।१०७।। जो घृत का दीपक बना कर अथवा तिलों के तैल का दीपक बना कर भगवान् की सेवा में समर्पित किया करता है उसके सम्पूर्ण पापों के समूह को केशव भगवान् एक निमेष मात्र के समय में ही तुरन्त हरण कर लेते हैं ।।१०८।। जो कर्पूर से सुवासित ताम्बूल का बीड़ा चक्रपाणि भगवान् को निवेदित करता है हे द्विज श्रेष्ठ ! हे जैमिने ! उसकी अवश्य ही मुक्ति हो जाया करती है ।।१०९।। जो खदिर से सयुत ताम्बूल की भेंट भगवान् को किया करता है वह यहाँ पर समस्त प्रकार के सुखों का उपभोग करके अन्तकाल में सीधा श्रीहरि के निवास स्थान मन्दिर में प्राप्त होता है ।।११०।। पष्ठी मधुरिका से युक्त तथा जाती फल आदि अन्य समुचित उपकरणों से समन्वित ताम्बूल की बीटिका भगवान् की सेवा में समर्पित किया करता है वह मानव सीधा स्वर्गलोक का निवास प्राप्त करता है ।।१११।।

शङ्खं कृत्वा तु पानीयं कुर्याद्विष्णुप्रदक्षिणम् ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेणजैमिनेवैष्णवोजनः ।।११२
जनार्दन जगद्वन्धो शरणागतपालक ! ।
त्वद्दासदासदासस्त्वं दासस्य देहि मे प्रभो ! ।।११३
मन्त्रेणाऽनेन यः कुर्यान्नारायणप्रदक्षिणम् ।
तस्य पुण्यफलवच्मि सक्षेपाच्छृणुजैमिन ।।११४
यावत्पाद नरो भक्त्या गच्छेद्विष्णुप्रदक्षिणे ।
तावत्कल्पसहस्रानि विष्णुनासह मोदते ।।११५
हरिप्रदक्षिणे यावत्पद गच्छेच्छनैः शनैः ।
पदेपदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।।११६
प्रदक्षिणाकृत्य सर्वं संसारेयत्फलंभवेत् ।
हरि प्रदक्षिणीकृत्य तस्मात्कोटिगुणंफलम् ।।११७
अङ्गप्रदक्षिणं कुर्याद्यस्तु नारायणाग्रतः ।
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ।।११८

शङ्ख मे जल भर कर भगवान् विष्णु की परिक्रमा करे, हे जैमिने ! प्रदक्षिणा करने के समय मे निम्न लिखित मन्त्र का उच्चारण वैष्णवजन को करते रहना चाहिए ॥११२॥ वह मन्त्र यह है—'हे जनो के दु खों का अर्दन करने वाले ! हे जगत् के बन्धो ! आप तो अपनी शरणागति मे आ जाने वाले प्राणी का पूर्ण रूप से पालन करने वाले हैं । मैं आपके दासो के दास जो है उनके भी दास होने का याचक हूँ सो हे प्रभो ! मुझ दास को आप यह प्रदान करने की कृपा कीजिए ॥११३॥ इस मन्त्र का मुख से समुच्चारण करते हुए जो नारायण प्रभु की प्रदक्षिणा करता है उसका बहुत अधिक पुण्य-फल होता है । हे जैमिने ! मैं उसे अब बतलाता हूँ, तुम उसका सक्षेप मे ही श्रवण करो ॥११४॥ भक्तिभाव से मनुष्य भगवान् विष्णु की परिक्रमा करने मे धीरे-धीरे जितने भी कदम चलता है उसके एक-एक पद के चलने मे मनुष्य एक-एक अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है ॥११५॥ जितने कदम प्रदक्षिणा करते हुए भक्त चलता है उतने ही सहस्र कल्पों तक वह भगवान् विष्णु के धाम मे उनके ही साथ प्रसन्नता से निवास प्राप्त किया करता है । ॥११६॥ सम्पूर्ण ससार की प्रदक्षिणा करने मे जो पुण्य फल प्राप्त होता है उससे भी करोड़ गुना अधिक श्रीहरि की प्रदक्षिणा करने मे फल प्राप्त हुआ करता है ॥११७॥ जो नारायण के समक्ष में अङ्ग की प्रदक्षिणा करता है वह पुरुष भी उसी फल को प्राप्त किया करता है । अन्य अधिक भाषण करने मे क्या लाभ है ॥११८॥

विधिहीनामपि श्रेष्ठा पूजा श्रीयमलापते ।
यः कुर्याद्भक्तिभावेनसोऽपिस्यात्केशवप्रिय. ॥११९
विधिज्ञो विधिना विष्णुमभ्यर्च्य लभतेफलम् ।
यथोक्तविधिनाविप्रनैवेद्यैर्बहुभि प्रभो ! ॥१२०
पूजितोऽपि न तुष्ट. स्याद्यदि भक्तिर्नतिष्ठति ।
यस्य वै यावती भक्तिर्देवदेवे जनार्दने ॥१२१
तावदत्र फलावाप्तिस्तस्य नास्त्यत्र सशयः ।
अभक्त्या या हरे पूजा क्रियते भुवि मानवैः ॥१२२

सा पूजा ब्राह्मणश्रेष्ठ ! पूजाकाले भवेत्किल ।
ज्ञानमूलं हरेर्भक्तिर्भक्तिमूलं जगत्पतेः ॥१२३
पूजामोक्षद्रुमोत्पत्तौ मूलमाराधनं हरेः ।
अल्पमात्रमपि प्राज्ञ ! श्रद्धया कुरुते हि यत् ॥१२४
तदक्षयं भवेत्सर्वं श्रद्धायुक्ताखिलाक्रिया ।
भक्त्या यः पूजयेद्विष्णुमपि वा वारिमात्रतः ।
सस्थानं लभते विष्णोर्यतो भक्तवशो हरि ॥१२५
असारमेतद्भुवनं समस्त सारं हरेः पूजनमेव विप्र ! ।
तस्मान्मनुष्यो निजमङ्गलैषी
भक्त्या यजेत्कृष्णमनन्तमूर्तिम् ॥१२६

जो कोई भी पुरुष भगवान् श्री कमला पति की परम श्रेष्ठ पूजा विधि से हीन भी भक्ति के भाव से किया करता है वह भी भगवान् केशव का प्रिय होता है ॥११९॥ विधि-विधान का ज्ञाता पुरुष भगवान् विष्णु का विधि से अभ्यर्चन करके हे प्रभो ! यथोक्त विधि से बहुत से नैवेद्यों को समर्पित करके फल की प्राप्ति करता है ॥१२०॥ यदि मनुष्य के हृदय में भक्ति का भाव स्थित नहीं होता है तो चाहे कैसी भी पूजा क्यों न की जावे तो भी वे कभी प्रसन्न नहीं हो सकते हैं। जितनी भी हृदय में जितनी भी भक्ति का भाव होता है और देव देव में जनार्दन में जितनी हार्दिक निष्ठा होती है उसको उतनी फल की भी प्राप्ति हुआ करती है। इस विषय में कुछ भी संशय नहीं है। जो मनुष्यों के द्वारा बिना भक्ति की भावना के इस भूमण्डल में पूजार्चना की जाती है हे ब्राह्मणों में परम श्रेष्ठ ! वह पूजा के ही काल में होती है। श्री हरि भगवान् की भक्ति ज्ञान के मूल वाली हुआ करती है और जगत्पति का मूल ही भक्ति होती है ॥१२१-१२३॥ पूजा रूपी तथा मोक्ष रूपी द्रुम की उत्पत्ति में हरि भगवान् का समाराधन करना ही मूल होता है। जब मूल ही नहीं है तो फिर कुछ भी नहीं है। हे प्राज्ञ ! चाहे बहुत ही थोड़ा सा भी किया जावे वह श्रद्धा से सहित ही होना चाहिए। केवल विहित पूजा नाम मात्र के लिये कर देने से कुछ भी लाभ

नहीं होता है। जो श्रद्धा समन्वित स्वल्प मात्र भी किया जाता है वह सब श्रद्धा युक्त क्रिया अक्षय हुआ करती है। चाहे कुछ भी अन्य पूजा के उपकरण एवं उपचार सुलभ न हों और हृदय में भक्ति का भाव सुदृढ़ हो तो उसके द्वारा जो भी विष्णु का पूजन केवल जल मात्र से भी करे तो उसका ऐसा महान् फल होता है कि वह विष्णु के संस्थान को प्राप्त किया करता है क्योंकि श्री हरि भगवान् तो भक्त के सर्वदा वश में रहा करते हैं ।।१२४-१२५।। यह समस्त भुवन सार से शून्य है अर्थात् इसके सभी कर्म कोई भी ठोस कल्याण के प्रदान करने वाले नही हैं जिनसे आत्मा का वास्तविक कल्याण हो। हे विप्र ! इसमे श्री हरि का समर्चन ही परम सार है। इसलिए जो मनुष्य अपने मंगल की इच्छा रखने वाला है उसका कर्त्तव्य है कि भक्ति की भावना से अनन्त मूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण का यजन करे ।।१२६।।

।। विभिन्न महीनों में नाना पुष्पादि से हरिपूजा ।।

ज्येष्ठे मासि द्विजश्रेष्ठ ! भगवन्तं जनार्दनम् ।
पूजयेद्भक्तिभावेन जलैः संस्नाप्यशीतलैः ।।१
उद्वर्तनं च दातव्यं सुगन्ध्यामलकं तथा ।
तैलं सुगन्धं हरये ग्रीष्मकाले दिने दिने ।।२
सुवासिते शीतले च मन्दिरेऽतिमनोरमे ।
प्रत्यहं कमलाकान्तं स्थापयेज्जनमण्डपे ।।३
न रौद्रदेशे विप्रेन्द्र ! सधूमे रन्धनालये ।
न सूतिका गृहे चैव स्थापयेत्कमलापतिम् ।।४
चामरैर्वीजयेच्छ्वेतैःसुदीर्घैः कमलापतिम् ।
ज्येष्ठे मासि द्विजश्रेष्ठ ! सुप्रीतः किं न यच्छति ।।५
मयूरपुच्छव्यजनैर्निदाघे वीजितो हरिः ।
ददात्यभिमतं सर्वमचिरेणैव सत्तम ! ।।६

तालवृन्तकवातेन पवित्राम्बरवायुना ।
यैर्ग्रीष्मे वीज्यते विष्णुस्ते सर्वे स्वर्गगामिनः ।।७

महा महर्षि श्री व्यास देव ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! ज्येष्ठ ! मास में भगवान् जनार्दन प्रभु का शीतल जलों के द्वारा स्नान करा कर पूर्ण भक्ति के भाव से अभ्यर्चन करना चाहिए । श्री हरि के अङ्गों में परम सुगन्धित उद्वर्त्तन (उबटन) समर्पित करना चाहिए तथा आमलक (आँवला) फलों का उद्वर्त्तन लगावे । ग्रीष्म काल में प्रतिदिन श्री हरि भगवान् के लिये सुन्दर गन्ध से समन्वित तैल भी अर्पित करना चाहिए ।।१-२।। इत्यादि के द्वारा भली भाँति सुवास से समन्वित-शीतल और अत्यन्त मनोरम मन्दिर में प्रतिदिन जल मण्डप में कमला कान्त प्रभु को संस्थापित करना चाहिए ।।३।। हे विप्रेन्द्र ! कमला के स्वामी भगवान् को किसी भी रौद्र भाग में, धूंआ से युक्त स्थल में, रन्धनालय (रसोई) में और बालप्रसव होने वाले गृह में कभी भी स्थापित नहीं करना चाहिए ।।४।। सुदीर्घ और श्वेत वर्ण वाले चमरों से कमलापति प्रभु के मस्तक पर वीजन करे अर्थात् चमर ढुरावे । हे द्विज श्रेष्ठ ! इस तरह से ज्येष्ठ मास में शीतल एवं सुगन्धित सुरम्योपचारों द्वारा निषेवित प्रभु प्रसन्न होकर अपने सेवक भक्त जन को क्या नहीं दे दिया करते हैं अर्थात् सभी कुछ प्रदान कर देते हैं ।।५।। मोर पंखो के व्यजनों से ग्रीष्म ऋतु में वीजित किये हुए श्री हरि सम्पूर्ण [अभिमत पदार्थ बहुत ही शीघ्र प्रदान कर दिया करते है ।।६।। जो भक्तजन ग्रीष्म काल में ताल वृन्तक की वायु द्वारा तथा पवित्राम्बर की वायु के द्वारा भगवान् का वीजन किया करते हैं वे सभी भक्त स्वर्ग के गमन करने वाले होते हैं ।।७।।

यो गात्रलेपनं कुर्यात्सुगन्धीर्यैश्च कर्दमैः ।
ग्रीष्मे हरिं चन्दनैश्च स विशेन्माधवीतनुम् ।।८
उष्मागमे द्विजश्रेष्ठ ! स मुक्तो नाऽत्रसंशयः ।
प्रफुल्लकुसुमोद्याने तुलसीकानने तथा ।।९
सन्ध्यायां स्थापयेद्विष्णुं देशे धीरसमीरणे ।
स्रग्भिः पाटलपुष्पाणां येन विष्णुरलङ्कृतः ।।१०

आभरणो से जो श्रीकृष्ण का मण्डन करता है उसको भी वही पुण्य फल प्राप्त होता है ॥८-१४॥

कृष्णं मण्डयति ग्रीष्मे सोऽपि तत्फलमाप्नुयात् ।
विचित्रं यस्तु पर्यङ्कं सगण्डूकं प्रयच्छति ॥१५
हरये देवदेवाय न स दुःखी कदाचन ।
ग्रीष्मकाले न देयानि गुरूणि वसनानि च ॥१६
हरये ब्राह्मणश्रेष्ठ ! देयं तन्वंशुकं शुचि ।
यस्त्वच्युफलैर्दिव्यैः सुगन्धैः पूजयेद्धरिम् ॥१७
अन्ते शक्रपुरं गत्वा स पिबेदमृतं मुदा ।
प्रियालानां फलैर्दिव्यैर्योऽर्चयेत्कमलापतिम् ॥१८
सोऽपि तत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषितैः ।
निदाघे हरये यस्तु यवागूमतिशीतलाम् ॥१९
नानाव्यञ्जनसयुक्तामर्पयेद्वैष्णवो जनः ।
आषाढे मासि विप्रेन्द्र ! देवदेवं जगद्गुरुम् ॥२०
दधिभिः स्नापयित्वा च पूजयेद्भक्तितो बुधः ।
मातुः पयोधरपयः पुनस्तेन न पीयते ॥२१

ग्रीष्म काल मे भूषणो से मण्डन करने का भी यह फल होता है कि वह विष्णुपुर मे सस्थिति प्राप्त करता है जो भक्त गण्डूष के सहित विचित्र पर्य्यंक को भगवान् की सेवा मे अर्पित करता है वह जो देवो के देव हरि के लिये पर्यंक देता है संसार मे कभी दुखित नहीं होता है । ग्रीष्म काल मे भूल कर भी भारी और मोटे वस्त्र भगवान् को अर्पित नही करने चाहिए ॥१५-१६॥ ग्रीष्म ऋतु मे तो श्री हरि के लिये हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! बहुत बारीक और शुचि वस्त्र समर्पित करना चाहिए । जो अच्युत-दिव्य और सुगन्ध समन्वित फलो के द्वारा श्री हरि का पूजन करता है वह अन्त मे इन्द्र के पुर में जाकर आनन्द पूर्वक अमृत का पान करता है । जो प्रियालो के दिव्य फलो के द्वारा कमला पति का समर्चन करता है वह भी उसी पुण्य-फल की प्राप्ति किया करता है । बहुत अधिक अन्य भाषणो के करने से क्या लाभ है ? ग्रीष्म के समय मे जो

वैष्णवजन नाना प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त अति शीतल यवागू श्री हरि के अर्पित करता है उसको भी वैसा ही पुण्य का फल प्राप्त होता है। हे विप्रेन्द्र! जो बुध भक्तजन आषाढ मास में देवों के भी देव जगत् के गुरु भगवान् का अतीव भक्ति की भावना से दधि से स्नपन कराकर पूजन किया करता है वह फिर दुबारा जन्म ग्रहण करके संसार में अपनी माता का स्तन का दूध नहीं पिया करता है ॥१७-२१॥

घनागमे घनश्यामं कदम्बकुसुमैर्हरिम् ।
आराधयति विप्रर्षे ! परां गतिमवाप्नुयात् ॥२२
कदम्बपुष्पमालाभिर्मण्डपं मण्डयेन्नरः ।
यस्तस्य ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वाजिमेधफलं भवेत् ॥२३
सुगन्धैः केतकीपुष्पैः पूजितः कमलापतिः ।
सर्वदुःखं हरत्येव मानवानां द्विजोत्तम ! ॥२४
पनसानां फलैर्दिव्यैः सुपक्वैर्घृतमिश्रितैः ।
पूजितो भगवान्विष्णुर्दद्यादैश्वर्यमुत्तमम् ॥२५
आषाढेमासि दध्यन्नं हरये प्रतिवासरम् ।
श्रद्धया वैष्णवो दद्यान्मुक्तिमिच्छन्द्विजोत्तम ! ॥२६
कृष्णाय नवनीतं यो ददाति वैष्णवो जनः ।
विमुक्तः सकलैः पापैर्ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२७
शेफालिकाप्रसूनैश्च यूथिकाकुसुमैस्तथा ।
योऽर्चयेत्परमात्मानं स गच्छेत्परमं पदम् ॥२८

मेघों के समागम के समय में घनश्याम श्री हरि भगवान् की आराधना कदम्ब के कुसुमों से हे विप्रपिवर! जो भी भक्त किया करता है वह परम श्रेष्ठ गति को प्राप्त किया करता है॥२२॥ हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! जो भक्तजन भगवान् के मण्डप को कदम्ब की पुष्प मालाओं से मण्डित करता है उस को वाजिमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ॥२३॥ हे द्विजोत्तम! परम सुगन्धित केतकी के पुष्पों से समर्चित कमला के पति मानवों के सभी प्रकार के दुःखों का निश्चय ही अपहरण कर दिया करते हैं ॥२४॥ पनस के परम दिव्य-सुपक्व एवं घृत से

मिश्रित फलों के द्वारा पूजित हुए भगवान् विष्णु अपने सेवक भक्त को उत्तम ऐश्वर्य का प्रदान किया करते हैं ॥२५॥ हे द्विजोत्तम ! आषाढ मास में प्रतिदिन मुक्ति की इच्छा रखने वाले वैष्णव को परम श्रद्धा के भाव से श्रीहरि को दधि और अन्न का समर्पण करना चाहिए ॥२६॥ जो वैष्णव जन श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा में नवनीत अर्पित करता है वह सब प्रकार के पापों से विशुद्ध होकर सीधा ब्रह्म लोक को चला जाया करता है ॥२७॥ जो भक्त केतकिका अथवा यूथिका के पुष्पों के द्वारा परमात्मा की अर्चना किया करता है वह परम पद को गमन किया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥२८॥

प्रफुल्लमालतीपुष्पैः सुगन्धैर्योऽर्चयेद्धरिम् ।
तत्पुण्येन समं पुण्यं न किञ्चिद्भविता द्विज ! ॥२६
कदम्बपुष्पैर्बकुलैर्जगद्बन्धुं जनार्दनम् ।
अर्चयन्सकलं कामं प्राप्नोति भुवि मानवः ॥३०
महामहाप्रसूनैश्च तथा कुरुवकैर्हरिम् ।
प्रफुल्लैः पूजयेद्यस्तु तस्य तुष्टः सदा हरिः ॥३१
सैरीयकैश्च यो विष्णुं प्रसू पुष्पैश्च योऽर्चयेत् ।
करवीरप्रसूनैश्च स याति हरिसन्निधिम् ॥३२
श्रावणे चैव यो दद्याल्लाजान्घृतसमन्वितान् ।
हरये तस्य विप्रर्षे ! गृहे श्रीः सर्वतोमुखी ॥३३
भाद्रे मासि द्विजश्रेष्ठ ! नारायणमनामयम् ।
श्रद्धया पूजयेत्प्राज्ञश्चतुर्वर्गप्रदायकम् ॥३४
निर्मिते नूतनागारे सर्वोपद्रववर्जिते ।
स्थापयेत्पुण्डरीकाक्षं भगवन्तं जनार्दनम् ॥३५

खिले हुए सुगन्धित मालती के पुष्पों से जो श्री हरि का अभ्यर्चन करता है हे द्विज ! इस पुण्य के तुल्य अन्य कोई भी संसार में पुण्य होता ही नहीं है अर्थात् यह सबसे महान् पुण्य है ॥२६॥इस भूमण्डल में जगद्बन्धु जनार्दन की कदम्ब के तथा बकुल के कुसुमों से अर्चना करता हुआ मानव समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥ बड़े २

पुष्पो के द्वारा तथा वृत वक के खिले हुए पुष्पो से जो श्रीहरि को पूजित करता है उससे श्री हरि सदा ही परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥३१॥ जो सेरोयक पुष्प और करवीर के कुसुमो से श्रीहरि का यजन करता है वह निश्चय हरि की सन्निधि को प्राप्त कर लेता है ॥३२॥ हे विप्रर्षे ! श्रावण के मास मे जो कोई श्री हरि के लिए घृत से संयुत लाजाओ (खीलो) को अर्पित करता है उसके घर मे सदा सर्व तो मुखी श्री विद्यमान रहा करती है ॥३३॥ भाद्रपद मास मे हे द्विज श्रेष्ठ ! जो भी भक्त अनामय भगवान् नारायण की श्रद्धा से पूजा किया करता है उस प्राज्ञ पुरुष को चारो वर्ग का प्रदान करने वाला वह पूजन हुआ करता है अर्थात् धर्म-अर्थ काम और मोक्ष सबकी प्राप्ति उसे हो जाती है ॥३४॥ समस्त उपद्रवो से रहित निर्माण किये हुए नवीन मन्दिर या घर मे भगवान् पुण्डरी काक्ष जनार्दन की स्थापना करनी चाहिए ॥३५॥

दंशैश्चमशकैश्चाऽपि प्रकीर्णे मक्षिकादिभि. ।
हरिं पुरातनागारे स्थापयेन्नहि मानव. ॥३६
सकर्दमे पतद्द्वारे गलद्भित्ती गृहे तथा ।
हरिं न स्थापयेत्प्राज्ञो वर्षासु परमेश्वरम् ॥३७
विष्ण्वालयेद्विजश्रेष्ठप्रकुर्याद्यस्तुमानवः ।
चन्द्रातपविचित्रंचचन्द्रलोकसगच्छति ॥३८
रात्रौनानाविधैर्धूपैर्मन्दिरेजगतीपतेः ।
दंशाश्च मशकाश्चैव पूजाकाले निवारयेत् ॥३९
मसारिकाभि. प्रावृत्य मञ्चशायिनमच्युतम् ।
प्रावृषि स्थापयेद्विष्णु निशाया दिव्यमन्दिरे ॥४०
मल्लारपसैदवेश सुगन्धैर्नूतनैस्तथा ।
मुमुक्षुः पूजयेन्मर्त्यो भाद्रे मासि दिने दिने ॥४१
न भाद्रे केतकीपुष्पैः पूजितव्यो जनार्दन· ।
यतो भाद्रपदे मासि केतकीस्यात्सुरासमा ॥४२

मशक और मक्खी आदि कीटों से प्रकीर्ण किसी भी पुरातन आगार में श्री हरि की स्थापना मनुष्य को कभी भी नहीं करनी चाहिए ॥३६॥ वर्षा की ऋतु में प्राज्ञ पुरुष को ऐसे घर में परमात्मा श्री हरि को भूल कर भी कभी संस्थापित नहीं करना चाहिए जिसमें कीच आदि हो या गली हुई भीतों वाला और गिरने वाले दरवाजों से युक्त हो एवं जीर्ण-शीर्ण और पुराना हो ॥३७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो मानव विष्णु के देवालय में विचित्र चन्द्रातप की रचना कराता है वह चन्द्रलोक में गमन किया करता है ॥३८॥ पूजा के समय में रात्रि में जगत् के स्वामी भगवान् का मन्दिर में नाना प्रकार की धूपों से दंश और मच्छरों को निवारित कर देना चाहिए ॥३९॥ वर्षा के दिनों में मञ्च पर शयन करने वाले प्रभु विष्णु को मशारिका (मशहरी) से प्रावृत करके रात्रि के समय में दिव्य मन्दिर में संस्थापित कराकर फिर उनको शयन कराना चाहिए ॥४०॥ भाद्र मास में प्रतिदिन मुक्ति की इच्छा वाले पुरुष को सुगन्धित एवं सुन्दर कल्हार के पत्रों से देवेश्वर का अर्चन करना चाहिए ॥४१॥ भाद्रपद मास में भूल कर भी जनार्दन प्रभु की केतकी के पुष्पों से कभी पूजा नहीं करनी चाहिए क्योंकि भादों के महीने में केतकी को सुरा के समान कहा गया है ॥४२॥

पक्वैस्तालफलैर्दिव्यैर्योऽर्चयेद्यदुनन्दनम् ।
गर्भवासमहादुःखं स भूयो लभते न च ॥४३

संयुक्तं घृतदुग्धाभ्यां पक्वशालं सुगन्धि च ।
यो दद्याच्छ्रद्धया मर्त्यो न गच्छेन्मन्दिरं हरेः ॥४४

भाद्रे मासि द्विजश्रेष्ठ ! हरये ताम्बिष्टरम् ।
सपूत केतकी दद्यात्कैवल्यप्राप्तिहेतवे ॥४५

मासि भाद्रपदे विप्र ! न कुर्यात्केतकार्चनम् ।
न रात्रौ भोजनं कुर्यान्मुमुक्षुर्वत्सबोधनः ॥४६

आश्विने मासि विप्रेन्द्र ! नैवेद्यं मधुसूदनम् ।
पूजयेन्मधुरैर्भोज्यैः पत्रैर्मधुगन्धिभिः ॥४७

यत्तोयं दीयते विप्र ! पूर्वाह्णे हरये जनैः ।
पीयूषमिव तत्तोयं गृह्णाति कमलापतिः ॥४८
मध्याह्ने दीयते यत्त तोयं वै चक्रपाणये ।
तत्तोयमिव वेत्तव्यं तद्गृह्णाति द्विजोत्तम ! ॥४९

जो कोई भक्त पके हुये और दिव्य ताल के फलों से यदुनन्दन की अर्चना करता है वह पुरुष गर्भ वास के दुःख को दुबारा प्राप्त नही करता है ॥४३॥ जो मनुष्य घृत और दुग्ध से स युक्त पका हुआ ताल का फल भगवान् मुरारि की सेवा मे समर्पित किया करता है और श्रद्धा पूर्वक भेट करता है वह मनुष्य सीधा हरि के मन्दिर मे चला जाया करता है ॥४४॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! भादों के महीने में जो वैष्णव ताल का पिष्टक घृत के सहित हरि को समर्पित करता है उससे कैवल्य की प्राप्ति होती है । भाद्रपद मास मे हे विप्र ! शाक का भक्षण नही करे और मुमुक्षु वैष्णवजन है उसे रात्रि मे भोजन भी न करे ॥४५-४६॥ हे विप्रेन्द्र ! आश्विन मास मे पवित्र सुगन्धित और मधुर जलों से क्लेशों के नाश करने वाले केशव का पूजन करना चाहिए ॥४७॥ हे विप्र ! पूर्वाह्न मे भक्तो के द्वारा जो जल हरि को अर्पित किया जाता है उसको कमला पति अमृत के समान ग्रहण किया करते हैं और जो मध्याह्न के समय मे जल चक्रपाणि को दिया जाता है उसको प्रभु जल की ही भाँति ग्रहण किया करते हैं—ऐसा ही समझना चाहिए ॥४८-४९॥

अपराह्णे च यत्तोयं गोविन्दाय प्रदीयते ।
तत्तोयं रक्ततुल्य स्यान्न गृह्णाति ततो हरिः ॥५०
अतएव द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वाह्णे हरिमर्चयेत् ।
समस्त लभते कामं केशवस्याऽनुकम्पया ॥५१
एकवस्त्रेण विप्रेन्द्र ! न कुर्यात्पूजनं हरेः ।
कुर्याद्वाऽपि तथा पूजां न गृह्णाति च केशवः ॥५२
अधौतेन च वस्त्रेण यः पूजां कुरुते हरेः ।
निष्फला सा च पूजा स्यान्न च विष्णुः प्रसीदति ॥५३

यैस्त्वबद्धशिखैः पूजा क्रियते चक्रिणो जनैः ।
पूजाफलं नाऽऽप्नुवन्ति बलिग्राह्या च सा भवेत् ॥५४
असंस्कृतगृहे पूजा क्रियते जगतीपतेः ।
सा पूजा ब्राह्मणश्रेष्ठ ! बलिग्राह्या भवेत्खलु ॥५५
स्नानं देवार्चनं चैव दानं च पितृपूजनम् ।
तिलकेन विना विप्र ! कुरुते न विचक्षणः ॥५६

अपराह्न काल में जो जल गोविन्द के लिये प्रदत्त किया जाता है वह जल रक्त के समान ही होता है अतएव उसे श्रीहरि भगवान् कभी भी ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥५०॥ अतएव हे द्विज श्रेष्ठ ! पूर्वाह्न में ही श्री हरि का पूजन करना चाहिए। इसका फल यह होता है कि वह पूजक भक्त केशव प्रभु की कृपा से समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लिया करता है ॥५१॥ हे विप्रेन्द्र ! एक वस्त्र धारण करके कभी भी श्रीहरि का पूजन नहीं करना चाहिए। यदि कोई एक ही वस्त्र से अर्चन किया भी करता है तो उस पूजा को भगवान् केशव कभी ग्रहण नहीं किया करते हैं ॥५२॥ बिना धुले हुए वस्त्र को धारण करके जो श्रीहरि का यजन किया करता है वह उसकी पूजा विफल ही होती है और उससे भगवान् विष्णु कभी प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं ॥५३॥ जो जन अपनी शिखा को बद्ध न करके ही भगवान् की पूजा किया करते हैं वे कभी भी पूजा करने का फल प्राप्त नहीं करते हैं और वह पूजा बली ग्राह्य होती है ॥५४॥ हे विप्र श्रेष्ठ ! बिना संस्कार किये हुए घर में यदि जगती के स्वामी की पूजा की जाती है तो वह पूजा भी बली ग्राह्य होती है ॥५५॥ स्नान-देवों का अभ्यर्चन-दान और पितृगणों का तर्पण-पूजन आदि ये सदनुष्ठान हे विप्र ! बिना तिलक किये हुए ही कोई भी विचक्षण पुरुष नहीं किया करते हैं ॥५६॥

तिलकान्यगृहीत्वा यत्पुण्यकर्म विधीयते ।
भस्मीभवति तत्सर्वं कर्ता च नारकीभवेत् ॥५७
शङ्खचक्रगदापद्मं रङ्कितं यस्य दृश्यते ।
शरीरं ब्राह्मणश्रेष्ठ ! विज्ञेयः सोऽच्युतः स्वयम् ॥५८

यो लिखेद्दक्षिणेबाहौ शङ्खपद्मे च वैष्णवः ।
सव्ये चक्रं गदां चैव सविष्णुर्नाऽत्रसंशयः ॥५९

पङ्कजं दक्षिणे बाहौ शङ्खस्योपरि यो लिखेत् ।
पातक सकलं तस्य क्षणादेव तु नश्यति ॥६०

चक्रोपरि गदां यस्तु लिखेत्सव्ये भुजे द्विज ! ।
तवन्दन्तेद्विजश्रेष्ठ ! शक्राद्याअपिनिर्जराः ॥६१

मुरारिपादयुग्मं च स्वललाटे लिखेद्बुधः ।
पापात्माऽपि च तंदृष्ट्वामुक्तोभवति पातकात् ॥६२

अष्टाक्षर महामन्त्रं मत्स्यं कूर्मं च यो हृदि ।
लिखेत्स वैष्णवश्रेष्ठः पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३

मस्तक पर तिलक न लगा कर ही जो कुछ भी पुण्य कर्म किया जाता है वह सभी कर्मानुष्ठान भस्मीभूत हो जाया करता है और करने वाला पुरुष नरकगामी हो जाता है। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जिसका शरीर शख–चक्र–गदा और पद्मों से अंकित दिखलाई देता है अर्थात् चन्दनादि से चिह्नित होता है उसे साक्षात् विष्णु का ही स्वरूप समझना चाहिए ॥५७-५८॥ जो वैष्णव जन दक्षिण बाहु पर शंख और पद्मो को अंकित किया करते हैं और सव्य (वाम) बाहु पर चक्र तथा गदा का चिह्न लिखा करते हैं वह विष्णु ही समझना चाहिए—इसमे लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥५९॥ जो दाहिनी बाहु पर शख के ऊपर पकज को लिखता है उसके सम्पूर्ण पातक एक ही क्षण मे तुरन्त ही नष्ट हो जाया करते हैं ॥६०॥ हे द्विज ! जो सव्यबाहु पर चक्र के ऊपर गदा का चिह्न बनाया करता है उसकी वन्दना तो इन्द्रादि देवगण भी किया करते हैं ॥६१॥ जो बुध भक्तजन भगवान् मुरारि के दोनो चरणो को अपने ललाट पर लिखता है उसका दर्शन करके पापात्मा पुरुष भी अपने किये हुए पापो से मुक्त हो जाया करते हैं ॥६२॥ जो अष्टाक्षर महामन्त्र को तथा मत्स्य और कूर्म को अपने हृदय पर लिखता है वह वैष्णवो मे परम श्रेष्ठ तीनो भुवनों को पवित्र कर दिया करता है ॥६३॥

कृष्णायुधाङ्कितं यस्य शरीरं स्याद्दिने दिने ।
तस्य कृष्णोजगन्नाथो ददाति परमम्पदम् ॥६४
कृष्णायुधाङ्किततनुर्यत्कर्म कुरुते नरः ।
शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि तत्सर्वमक्षयं भवेत् ॥६५
दानवा राक्षसाश्चैव भूतवेतालकास्तथा ।
पिशाचाः पन्नगाश्चाऽपियक्षविद्याधरास्तथा ॥६६
किन्नरा गुह्यकाश्चैव ग्रहा बालग्रहास्तथा ।
कूष्माण्डाश्चैव डाकिन्यस्तथाऽन्ये विघ्नकारकाः ॥६७
सर्वे भीत्या पलायन्ते दृष्ट्वा कृष्णायुधाङ्कितम् ।
द्वीपान्तरद्वीपिनश्चैवतथाऽन्ये वनवासिनः ॥६८
दृष्ट्वैव प्रपलायन्ते भयात्कृष्णायुधाङ्कितम् ।
पामलाद्या महारोगा देहदेहावपातिनः ॥६९
कृष्णायुधाङ्कितनतु भक्त्या पश्यति यो जनः ।
कृष्णदर्शनतुल्यं तु फलप्राप्नोति मानवः ॥७०

प्रतिदिन जिसका शरीर श्रीकृष्ण भगवान् के आयुधों से अंकित रहा करता है उसको जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण परमपद प्रदान कर दिया करते हैं। श्रीकृष्ण के आयुधों से अंकित शरीर वाला मानव जो भी शुभ या अशुभ कर्म एवं अनुष्ठान किया करता है वह सभी अक्षय हो जाता है ॥६४-६५॥ श्रीकृष्ण के आयुधों से अंकित शरीर वाले वैष्णव भक्त को देख कर दानव-राक्षस-भूत-वेताल-पिशाच-पन्नग-यक्ष-विद्याधर-किन्नर-गुह्यक-ग्रह-बाल ग्रह-कूष्माण्ड-डाकिनी आदि अन्य जो भी विघ्न करने वाले हैं वे सभी भयभीत होकर शीघ्र ही पलायन कर जाया करते हैं। द्वीप-द्वीपी तथा अन्य वन के निवास करने वाले जो भी बताये गये हैं वे सभी श्रीकृष्ण के आयुधांकित पुरुष को देखकर के भय से ही दूर भाग जाया करते हैं। पामला आदि देह के अवपातन कर देने वाले जो महान् रोग हैं वे सब भी श्री कृष्णायुधांकित पुरुष के दर्शन मात्र से ही शीघ्र भाग जाते हैं। जो पुरुष श्रीकृष्ण के आयुधों से चिह्नित शरीर वाले वैष्णव भक्त का दर्शन

कर लेता है वह मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के ही साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६६-७०॥

त्रिपदीकृतदूर्वाभिराश्विने योऽर्चयेद्धरिम् ।
दूर्वावत्सन्ततिस्तस्य अविच्छिन्ना प्रवर्तते ॥७१
आश्विने मासि यो दद्याद्धरये कर्कटीफलम् ।
शोको न जायतेतस्यकदाचिद्धृदये द्विज ! ॥७२
कार्तिके च समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे ।
दामोदरं देवदेवं भक्त्या प्राज्ञः प्रपूजयेत् ॥७३
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र ! विष्णुप्रीणनहेतवे ।
यथोक्तविधिना प्राज्ञः प्रात.स्नानसमाचरेत् ॥७४
आमिषं मैथुनं चैव कार्त्तिके मासि यस्त्यजेत् ।
जन्मान्तरार्जितैः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ॥७५
तुलाराशिगते सूर्ये प्रातःस्नानं द्विजोत्तम ! ।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥७६
आमिषं मैथुनं चैव कार्तिके मासि सेवते ।
जन्मजन्मनि विप्रेन्द्र ! स भवेद्ग्रामसूकरः ॥७७

आश्विन मास मे जो पुरुष त्रिपदीकृत दूर्वाओ से श्रीहरि का अभ्यर्चन किया करता है दूर्वा की भाँति ही उसकी सन्तति अविच्छिन्न रहा करती है ॥७१॥ हे द्विज ! आश्विन महीने मे जो कोई पुरुष भगवान् हरि को कर्कटी के फल समर्पित करता है उसके हृदय मे कभी भी कोई शोक समुत्पन्न नहीं हुआ करता है ॥७२॥ समस्त मासो मे परम उत्तम और शुभ कार्तिक मास के समापात होने पर प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि देवों के देव दामोदर का पूजन करना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! भगवान् विष्णु की प्रीति प्राप्त करने के लिए कार्तिक मास मे प्राज्ञ पुरुष को प्रातः काल मे स्नान करना चाहिए ॥७३-७४॥ जो पुरुष कार्तिक मास मे विशेष नियम ग्रहण करके मास भक्षण और मैथुन का त्याग कर देता है वह पहिले जन्म-जन्मान्तरो मे किये हुए पापो से विमुक्त होकर अन्त मे परमगति की प्राप्ति किया करता है ॥७५॥ हे द्विजोत्तम ! जिस समय मे सूर्य तुला राशि पर

आ जाते हैं अर्थात् तुलाकी संक्रान्ति में सूर्योदय से पूर्व प्रातःकाल में स्नान-हविष्य पदार्थों का भोजन और ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णतया पालन करना महान् से महान् पातकों के विनाश करने वाले हुआ करते हैं। जो पुरुष शास्त्रों के विधानों की अवहेलना करके कार्त्तिक मास जैसे शुभ मास में भी आमिष का सेवन और मैथुन को किया करता है, हे विप्रेन्द्र ! वह पुरुष अपने प्रत्येक जन्म में ग्राम सूकर की योनि को प्राप्त किया करता है ॥७६-७७॥

द्विर्भोजनं परान्नं च तैलं च वैष्णवोजनः ।
आयाते कार्त्तिकेमासि यत्नादपिपरित्यजेत् ॥७८
दामोदराय नभसि दीपं यस्तु प्रयच्छति ।
फलं तस्य प्रवक्ष्यामि समासेन शृणु द्विज ! ॥७९
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्विमुक्तः क्लेशदायकैः ।
दामोदरपुरं गत्वा तिष्ठेत्कोटियुगावधि ॥८०
दीपं ज्वलन्तं नभसि त्रिदशा वासवादयः ।
विलोक्य हर्षिताः सर्वे वदन्तीतिपरस्परम् ॥८१
असौ पुण्यात्मनां श्रेष्ठः केशवार्चनतत्परः ।
प्रदीपं कार्त्तिके मासि यतो यच्छति चक्रिणे ॥८२
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र ! तस्य तुष्टः सदा हरिः ।
दद्यादक्षयदीपं यः कार्त्तिके हरिमन्दिरे ॥८३
दिनेदिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
तुलसीदललक्षैर्यः कार्त्तिके पूजयेद्धरिम् ॥८४

वैष्णवजन का कर्त्तव्य है कि कार्त्तिक मास के आगत हो जाने पर दो बार भोजन करना—पराये अन्न का उपभोग करना और तैल का सेवन करना आदि का यत्न पूर्वक परित्याग कर देना चाहिए ॥७८॥ हे द्विज ! भगवान् दामोदर के निमित्त जो आकाश में दीप का अर्पण किया करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसका वर्णन संक्षेप से करता हूँ आप उसका श्रवण करो ॥७९॥ परम क्लेशों के देने वाले ब्रह्महत्या आदि जो पाप हैं उन सब से वह दीप दान करने वाला मनुष्य विमुक्त

कर लेता है वह मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के ही साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६६-७०॥

त्रिपदीकृतदूर्वाभिराश्विने योऽर्चयेद्धरिम् ।
दूर्वावत्सन्ततिस्तस्य अविच्छिन्ना प्रवर्तते ॥७१
आश्विने मासि यो दद्याद्धरये कर्कटीफलम् ।
शोको न जायतेतस्यकदाचिद्धृदये द्विज ! ॥७२
कार्तिके च समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे ।
दामोदरं देवदेवं भक्त्या प्राज्ञः प्रपूजयेत् ॥७३
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र ! विष्णुप्रीणनहेतवे ।
यथोक्तविधिना प्राज्ञः प्रात.स्नानसमाचरेत् ॥७४
आमिषं मैथुनं चैव कार्त्तिके मासि यस्त्यजेत् ।
जन्मान्तरार्जितैः पापैर्मुक्तो याति परां गतिम् ॥७५
तुलाराशिगते सूर्ये प्रात.स्नानं द्विजोत्तम ! ।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥७६
आमिषं मैथुनं चैव कार्तिके मासि सेवते ।
जन्मजन्मनि विप्रेन्द्र ! स भवेद्ग्रामसूकरः ॥७७

आश्विन मास मे जो पुरुष त्रिपदीकृत दूर्वाओं से श्रीहरि का अभ्यर्चन किया करता है दूर्वा की भाँति ही उसकी सन्तति अविच्छिन्न रहा करती है ॥७१॥ हे द्विज ! आश्विन महीने मे जो कोई पुरुष भगवान् हरि को कर्कटी के फल समर्पित करता है उसके हृदय मे कभी भी कोई शोक समुत्पन्न नहीं हुआ करता है ॥७२॥ समस्त मासो मे परम उत्तम और शुभ कार्तिक मास के समायात होने पर प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि देवों के देव दामोदर का पूजन करना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! भगवान् विष्णु की प्रीति प्राप्त करने के लिए कार्तिक मास मे प्राज्ञ पुरुष को प्रात- काल मे स्नान करना चाहिए ॥७३-७४॥ जो पुरुष कार्त्तिक मास मे विशेष नियम ग्रहण करके माग भक्षण और मैथुन का त्याग कर देता है वह पहिले जन्म-जन्मान्तरों मे किये हुए पापो से विमुक्त होकर अन्त मे परमगति की प्राप्ति किया करता है ॥७५॥ हे द्विजोत्तम ! जिस समय मे सूर्य तुला राशि पर

आ जाते हैं अर्थात् तुलाकी संक्रान्ति में सूर्योदय से पूर्व प्रातःकाल में स्नान-हविष्य पदार्थों का भोजन और ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णतया पालन करना महान् से महान् पातकों के विनाश करने वाले हुआ करते है। जो पुरुष शास्त्रों के विधानों की अवहेलना करके कार्त्तिक मास जैसे शुभ मास में भी आमिष का सेवन और मैथुन को किया करता है, हे विप्रेन्द्र ! वह पुरुष अपने प्रत्येक जन्म में ग्राम शूकर की योनि को प्राप्त किया करता है ॥७६-७७॥

द्विर्भोजनं परान्नं च तैलं च वैष्णवोजनः ।
आयाते कार्त्तिकेमासि यत्नादपिपरित्यजेत् ॥७८
दामोदराय नभसि दीपं यस्तु प्रयच्छति ।
फलं तस्य प्रवक्ष्यामि समासेन शृणु द्विज ! ॥७९
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्विमुक्तः क्लेशदायकैः ।
दामोदरपुरं गत्वा तिष्ठेत्कोटियुगावधि ॥८०
दीपं ज्वलन्तं नभसि त्रिदशा वासवादयः ।
विलोक्य हर्षिताः सर्वे वदन्तीतिपरस्परम् ॥८१
असौ पुण्यात्मनां श्रेष्ठः केशवार्चनतत्परः ।
प्रदीपं कार्त्तिके मासि यतो यच्छति चक्रिणे ॥८२
कार्त्तिके मासि विप्रेन्द्र ! तस्य तुष्टः सदा हरिः ।
दद्यादक्षमदीपं यः कार्त्तिके हरिमन्दिरे ॥८३
दिनेदिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
तुलसीदललक्षैर्यः कार्त्तिके पूजयेद्धरिम् ॥८४

वैष्णवजन का कर्त्तव्य है कि कार्त्तिक मास के आगत हो जाने पर दो बार भोजन करना—पराये अन्न का उपभोग करना और तैल का सेवन करना आदि का यत्न पूर्वक परित्याग कर देना चाहिए ॥७८॥ हे द्विज ! भगवान् दामोदर के निमित्त जो आकाश मे दीप का अर्पण किया करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसका वर्णन संक्षेप से करता हूँ आप उसका श्रवण करो ॥७९॥ परम क्लेशों के देने वाले ब्रह्महत्या आदि जो पाप हैं उन सब से यह दीप दान करने वाला मनुष्य वियुक्त

कर लेता है वह मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के ही साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६६-७०॥

निपदीकृतदूर्वाभिराश्विने योऽर्चयेद्धरिम् ।
दूर्वावित्सन्ततिस्तस्य अविच्छिन्ना प्रवर्तते ॥७१
आश्विने मासि यो दद्याद्धरये कर्कटीफलम् ।
शोको न जायतेतस्यकदाचिद्धृदये द्विज ! ॥७२
कार्तिके च समायाते सर्वमासोत्तमे शुभे ।
दामोदर देवदेव भक्त्या प्राज्ञः प्रपूजयेत् ॥७३
कार्तिके मासि विप्रेन्द्र ! विष्णुप्रीणनहेतवे ।
यथोक्तविधिना प्राज्ञः प्रात.स्नानसमाचरेत् ॥७४
आमिष मैथुन चैव कार्तिके मासि यस्त्यजेत् ।
जन्मान्तरार्जितैः पापैर्मुक्तो याति परा गतिम् ॥७५
तुलाराशिगते सूर्ये प्रात स्नान द्विजोत्तम ! ।
हविष्य ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम् ॥७६
आमिषं मैथुन चैव कार्तिके मासि सेवते ।
जन्मजन्मनि विप्रेन्द्र ! स भवेद्ग्रामसूकरः ॥७७

आश्विन मास मे जो पुरुष त्रिपदीकृत दूर्वाओ से श्रीहरि का अभ्यर्चन किया करता है दूर्वा की भाँति ही उसकी सन्तति अविछिन्न रहा करती है ॥७१॥ हे द्विज ! आश्विन महीने मे जो कोई पुरुष भगवान् हरि को ककँटी के फल समर्पित करता है उसके हृदय मे कभी भी कोई शोक समुत्पन्न नही हुआ करता है ॥७२॥ समस्त मासो मे परम उत्तम और शुभ कार्तिक मास के समायात होने पर प्राज्ञ पुरुष का कर्त्तव्य है कि देवों के देव दामोदर का पूजन करना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! भगवान् विष्णु की प्रीति प्राप्त करने के लिए कार्तिक मास मे प्राज्ञ पुरुष को प्रात काल मे स्नान करना चाहिए ॥७३-७४॥ जो पुरुष कार्तिक मास मे विशेष नियम ग्रहण करके मांस भक्षण और मैथुन का त्याग कर देता है वह पहिले जन्म-जन्मान्तरों मे किये हुए पापों से विमुक्त होकर अन्त मे परमगति की प्राप्ति किया करता है ॥७५॥ हे द्विजोत्तम ! जिस समय मे सूर्य तुला राशि पर

आ जाते है अर्थात् तुलाकी सक्रान्ति मे सूर्योदय से पूर्व प्रातःकाल मे स्नान-हविष्य पदार्थों का भोजन और ब्रह्मचर्य व्रत का पूर्णतया पालन करना महान् से महान् पातको के विनाश करने वाले हुआ करते हैं। जो पुरुष शास्त्रो के विधानो की अवहेलना करके कार्तिक मास जैसे शुभ मास मे भी आमिष का सेवन और मैथुन को किया करता है, हे विप्रेन्द्र ! वह पुरुष अपने प्रत्येक जन्म मे ग्राम सूकर की योनि को प्राप्त किया करता है ।।७६-७७।।

द्विर्भोजनं परान्नं च तैलं च वैष्णवोजनः ।
आयाते कार्तिकेमासि यत्नादपिपरित्यजेत् ।।७८
दामोदराय नभसि दीपं यस्तु प्रयच्छति ।
फलं तस्य प्रवक्ष्यामि समासेन शृणु द्विज ! ।।७९
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्विमुक्तः क्लेशदायकैः ।
दामोदरपुरं गत्वा तिष्ठेत्कोटियुगावधि ।।८०
दीपं ज्वलन्तं नभसि त्रिदशा वासवादयः ।
विलोक्य हर्षिताः सर्वे वदन्तीतिपरस्परम् ।।८१
असौ पुण्यात्मना श्रेष्ठः केशवार्चनतत्परः ।
प्रदीपं कार्तिके मासि यतो यच्छति चक्रिणे ।।८२
कार्तिके मासि विप्रेन्द्र ! तस्य तुष्टः सदा हरिः ।
दद्यादक्षमदीपं यः कार्त्तिके हरिमन्दिरे ।।८३
दिनेदिनेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
तुलसीदललक्षैर्यः कार्तिके पूजयेद्धरिम् ।।८४

वैष्णवजन का कर्त्तव्य है कि कार्तिक मास के आगत हो जाने पर दो बार भोजन करना—पराये अन्न का उपभोग करना और तैल का सेवन करना आदि का यत्न पूर्वक परित्याग कर देना चाहिए ।।७८।। हे द्विज ! भगवान् दामोदर के निमित्त जो आकाश मे दीप का अर्पण किया करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसका वर्णन सक्षेप से करता हूँ आप उसका श्रवण करो ।।७९।। परम क्लेशों के देने वाले ब्रह्महत्या आदि जो पाप हैं उन सब से वह दीप दान करने वाला मनुष्य वियुक्त

होकर करोड़ों युगों की अवधि पर्यन्त दामोदर पुर में जाकर संस्थित रहा करता है ॥८०॥ आकाश में कार्तिक में दीप को प्रज्वलित देख कर महेन्द्र आदि देवगण परम हर्षित होते हुए सब परस्पर में यह कहा करते हैं कि यह भक्त पुण्यात्माओं में परम श्रेष्ठ है जो केशव प्रभु की अर्चना में सदा तत्पर रह कर कार्तिक मास में भगवान् के निमित्त दीप का दान किया करता है ॥८१-८२॥ हे विप्रेन्द्र ! कार्तिक में हरि के मन्दिर में जो अक्षय दीप का अर्पण करता है उससे श्रीहरि भगवान् सदा तुष्ट एवं परम प्रसन्न रहा करते हैं ॥८३॥ जो पुरुष कार्तिक में एक लक्ष तुलसी के दलों से श्रीहरि का अर्चन करता है वह प्रतिदिन अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥८४॥

लक्षैकवाजिमेधस्य मानवो लभते फलम् ।
बिल्वस्य दललक्षेण योऽर्चयेद्विष्णुमव्ययम् ॥८५
परमं मोक्षमाप्नोति प्रसादाज्जगतीपतेः ।
यत्किञ्चित्कार्तिके मासि विष्णुमुद्दिश्य दीयते ॥८६
तदक्षय भवेत्सर्वं सत्यमेतन्मयोच्यते ।
घृताक्तं सुरपत्र यः कार्तिके मासि विष्णवे ॥८७
दद्याद्दिनेदिने विप्र ! तस्य विष्णोः पुरे स्थितिः ।
प्रफुल्लपद्मपत्रेण सितेनाऽप्यसितेन वा ॥८८
योऽर्चयेत्कमलाकान्तं तस्यकिंभुविदुर्लभम् ।
द्विजाग्र्य.कार्तिकेमासि हरये येन पङ्कजम् ॥८९
न दत्तं तेन किं विप्र ! विष्णवे दैत्यजिष्णवे ।
एकमेवाऽम्बुजं हृत्वा ददाति कैटभारये ॥९०
तस्मै किं भगवान्विष्णुर्नददातिश्रियःपतिः ।
कमलैःकार्तिकेमासियेननाऽऽराधितोहरिः ॥९१

जो बिल्व के एक लाख दलों से अव्यय स्वरूप विष्णु भगवान् का अर्चन करता है वह मनुष्य एक लाख ही अश्वमेध करने का फल प्राप्त किया करता है । कार्तिक मास में तो विष्णु भगवान् का उद्देश्य ग्रहण करके जो कुछ भी थोड़ा—बहुत दान किया जाता है वह दान दाता भक्त

जगत् के स्वामी प्रभु के प्रसाद से परम पुरुषार्थ मोक्ष को प्राप्त करता है ॥८५-८६॥ जो कुछ भी कार्त्तिक मे भगवान् के निमित्त दिया जाता है वह सब अक्षय होता है—यह मैं सत्य-सत्य बतलाता हूँ । जो कार्त्तिक मे घृत से अरक्त किया हुआ सुरपत्र विष्णु के लिये दिया जाता है और यदि प्रतिदिन ही वह दिया जावे तो हे विप्र ! उसकी सस्थिति भगवान् विष्णु के पुर मे हुआ करती है । विकसित पद्म के दलो से चाहे वह सित हो या असित होवें जो कमला के कान्त प्रभु का समर्चन करता है उसके लिये इस भूमण्डल मे कुछ भी दुर्लभ नही है । जो द्विजो मे श्रेष्ठ पुरुष है उसने श्रीहरि के लिये कार्त्तिक मे पकज का अर्पण नही किया उसने दैत्यो के विजेता विष्णु के लिये फिर क्या दिया है अर्थात् कुछ भी अर्पण नहीं कर सका है । यदि एक भी कमल का आहरण करके कोई कैटभ के हनन करने वाले को देता है तो श्री के स्वामी भगवान् विष्णु उसे क्या नही प्रदान कर देते हैं अर्थात् वे प्रसन्न होकर सभी कुछ प्रदान कर दिया करते हैं । कार्त्तिक मे कमलो के द्वारा समाराधन करने का बड़ा पुण्यफल होता है ॥८७-९१॥

जन्मजन्मनि तद्गेहे कमला नहि तिष्ठति ।
पद्मबीजानि यो दद्यात्केशवाय महात्मने ॥९२
स जायते विप्रकुले शुद्धे च प्रतिजन्मनि ।
ब्राह्मणस्य कुले जातश्चतुर्वेदसुहृद्भवेत् ॥९३
धनवान्बहुपुत्रश्च कुटुम्बाना च पोषक: ।
नास्ति पद्मसम पुष्प जैमिने ! सत्यमुच्यते ॥९४
येन सम्पूज्य गोविन्द पापात्माऽपि च मोक्षभाक् ।
पद्मपुष्पस्य माहात्म्य विशेषादुच्यते मया ॥९५
सेतिहास द्विजश्रेष्ठ ! सावधान निशामय ।
आसीदेक प्रजानाम ब्राह्मण सर्वशास्त्रवित् ॥९६
हरिपादाम्बुजे यस्य मनोभृङ्गसदास्थिति ।
देवाना ब्राह्मणानाञ्च गुरूणाञ्चैव सर्वदा ॥९७

कृता पूजा द्विजश्रेष्ठ ! त्यक्त्वा कार्यशतान्यपि ।
परद्रव्यं विषंतस्य परस्त्रीच स्वमातृवत् ॥९८

कार्तिक में जो कोई कमल के पुष्पों से हरि का समाराधन नहीं करता है उसका फल यह होता है कि जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त उसके घर में श्री का निवास नहीं हुआ करता है। जो जो कोई भक्त महात्मा केशव के लिये पद्म के बीजों का समर्पण किया करता है वह प्रत्येक जन्म में परम विशुद्ध विप्रकुल में जन्म ग्रहण किया करता है और ब्राह्मण के कुल में समुत्पन्न होकर चारों वेदों का ज्ञाता हुआ करता है ॥९२-९३॥ वह धनवान्—बहुत से पुत्रों वाला और कुटुम्बियों का पोषण करने वाला हुआ करता है। हे जैमिने ! पद्म सर्वोत्तम पुष्प है और इसकी समानता करने वाला हरि की आराधना में अन्य कोई भी पुष्प नहीं है यह मैं परम सत्य कहता हूँ। जिस पद्म के पुष्प के द्वारा गोविन्द प्रभु का भली-भाँति पूजन करके महान् पापात्मा पुरुष भी मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। अब इस पद्म पुष्प का विशेष माहात्म्य विशेष रूप से मेरे द्वारा वर्णन किया जाता है ॥९४-९५॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम अब सावधान होकर इतिहास के सहित इसके माहात्म्य का श्रवण करो। पहिले एक प्रजा नाम वाला सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञाता ब्राह्मण था जिसके मन रूपी भ्रमर की सर्वदा भगवान् के चरण रूपी कमलों में स्थिति रहा करती थी। इसी भाँति देवों के—ब्राह्मणों के और गुरु वर्गों के चरणों में भी वह अपने मन रूपी भ्रमर को सदा लगाये रहा करता था। हे द्विज श्रेष्ठ ! वह सैकड़ों कार्यों का त्याग करके भी पूजा किया करता था। पराया द्रव्य उसके लिये विष के समान था और पराई स्त्री को वह अपनी माता के तुल्य ही समझा करता था ॥९६-९८॥

अभूच्चमानसं तस्य समं मित्रे च शात्रवे ।
आयान्तमतिथिं दृष्ट्वा स विप्रः परमार्थवित् ॥९९
भृशमानन्दमाप्नोति याचकञ्च द्विजोत्तमम् ।
सर्वयज्ञाः कृतास्तेन व्रतानि सकलानि च ॥१००

संसारसागरं घोरमपारं च तितीर्षुणा ।
एकदा स द्विजश्रेष्ठो हरिभक्तिपरायणः ॥१०१
स्वमृत्यु च निजा जाति चिन्तयामास चेतसा ।
अहं पूर्व स्थितः को वा किं वा कर्म कृतं पुरा ॥१०२
कथम्वा जन्मसम्प्राप्तंगमिष्यामि क्व वा पुनः ।
इतिसञ्चिन्त्यविप्रोऽसौनिःश्वस्यचपुनःपुनः ॥१०३

उसका मन मित्र और शत्रु के विषय मे एक समान रहता था। यदि कोई भी अतिथि उसके पास आता था तो वह विप्र परमार्थ का ज्ञाता आये हुए उस अतिथि को देख कर तथा द्विजोत्तम याचक को देख कर वह अत्यन्त आनन्द को प्राप्त किया करता था। उसने सम्पूर्ण यज्ञ किये थे और समस्त व्रत भी समाचरित किये थे। क्योंकि वह इस परम घोर एवं अपार संसार रूपी सागर का सन्तरण करने की इच्छा वाला था। एक समय की बात है कि हरि की भक्ति परायण उस द्विज श्रेष्ठ ने अपने चित्त मे कुछ विचार किया था। उसने चित्त से अपनी मृत्यु-निज की जाति आदि के विषय मे चिन्तन किया था कि मैं पहिले क्या रूप मे स्थित था और मैंने क्या कर्म किया था। मैंने यह जन्म कैसे प्राप्त किया है और अब भविष्य मे कहाँ पर जाऊँगा—यह इस प्रकार का उस विप्र ने मन मे चिन्तन किया था और बारम्बार वह लम्बी-लम्बी श्वासें लेने लगा था ॥९९-१०३॥

॥ भगवत पूजा माहात्म्य ॥

मार्गशीर्षे द्विजश्रेष्ठ ! महालक्ष्म्या समन्वितम् ।
पूजयेदव्ययं विष्णुं भक्तिभावेन वैष्णवः ॥१
म्लेच्छदेशे च विप्रेन्द्र ! तथैव पतितालये ।
दुर्गन्धैश्च परिव्याप्ते स्थाने विष्णुं न पूजयेत् ॥२
पाखण्डाना समीपेच महापातकिनां तथा ।
असत्यभाषिणा चैव न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ॥३

क्रन्दतां सन्निधौ चापि कलहानपि कुर्वताम् ।
तथोपहसतां स्थाने न कुर्यात्पूजनंहरेः ।।४
प्रतिग्रहरतानाञ्च स्थाने विष्णुं न पूजयेत् ।
कृपणानां गृहे चैव परवित्ताभिलाषिणाम् ।।५
तथा कपटवृत्तीनां न कुर्याद्विष्णुपूजनम् ।
नारायणार्चने विप्र ! परं भक्तिपरायणः ।।६
अन्यचित्तं परित्यज्य हरिध्यानपरो भवेत् ।
हाहाकारं च निःश्वासं विस्मयं च द्विजोत्तम ।।७

महामहर्षि व्यास देवजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! मार्गशीर्ष मास में वैष्णव को भक्ति की भावना से समन्वित होकर महालक्ष्मी के सहित भगवान् अविनाशी विष्णु का पूजन करना चाहिए। हे विप्रेन्द्र ! किसी भी म्लेच्छों के देश में—पतित पुरुषों के आलय में और दुर्गन्धों से परिव्याप्त स्थान में भगवान् विष्णु का अर्चन नहीं करना चाहिए ।।१-२।। जहाँ पर पाखण्डी लोग निवास करते हों उनके समीप में—महान् घोर पातकों के करने वाले जहाँ पर हों उनके निकट में और असत्य भाषण करने वालों की सन्निधि में कभी भी विष्णु का पूजन नहीं करना चाहिए ।।३।। जिस स्थान पर क्रन्दन करने वाले हों तथा कलह करने वाले रहते हों उनकी समीपता में और जो उपहास कर रहे हों उनके स्थान में भी श्रीहरि का पूजन नहीं करे ।।४।। जो पुरुष सदा प्रतिग्रह लेने की ही रति रखते हों उनके स्थान में भी विष्णु देव का अभ्यर्चन नहीं करना चाहिए। जो परमकृपण (कंजूस) हों अथवा दूसरों के धन प्राप्त करने की अभिलाषा मन में सर्वदा रखते हों उनके घर में भी विष्णु-पूजन न करे। जो सदा कपट का ही व्यवहार रखने वाले हों उनके समीप में भी भगवान् की अर्चना नहीं करनी चाहिए। नारायण के अर्चन में हे विप्र ! परम भक्ति में तत्पर होकर तथा अन्य विषयों की ओर से चित्त को हटाकर केवल हरि के ही ध्यान में परायण होना चाहिए। हे द्विजोत्तम ! हरि पूजा में परायण पुरुष को हाहाकार—लम्बी श्वासें छोड़ना और विस्मय आदि कभी नहीं करना चाहिए ।।५-७।।

पाखण्डजनसम्भाष न कुर्याद्धरिपूजने ।
अनन्यमानसो भूत्वा भक्त्या विष्णुं यजेद्बुधः ॥८
भ्रान्तचित्तेन यत्कर्म क्रियते तद्विनिष्फलम् ।
सर्वं कर्म मनोऽधीनं मनोऽधीनजगत्त्रयम् ॥६
तस्मान्मनो दृढीकृत्य पूजयेत्कमलापतिम् ।
पूजान्यत्रमनो यत्र भवेद्यस्य द्विजोत्तम ! ॥१०
न च तस्यफलैस्कार्यं कल्पकोटिशतैरपि ।
यत्नाद्विहितशौचोऽपि विष्णुपूजापरोऽपिच ॥११
मन शुद्धिविहीनश्चेश्चाण्डाल इव स स्मृतः ।
अभक्त्या यत्तपस्तप्तं सुचिरविधिनाद्विज ! ॥१२
भवेन्निरर्थकं सर्वं केवलं कायशोधनम् ।
मेरुप्रमाणकं स्वर्णं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥१३
अभक्त्यायत्तमप्यर्थनाशायैव तु केवलम् ।
तस्मादेकमना भूत्वा भक्तिश्रद्धासमन्वित. ॥१४

श्रीहरि के पूजन के समय मे पाखण्डी लोगो के साथ किसी भी प्रकार का भाषण नही करना चाहिए । बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि अनन्य मन वाला होकर भक्ति की एकान्त निष्ठ भावना से विष्णु का यजन करना चाहिए ।।८।। भ्रान्ति से युक्त चित्त से जो भी कोई कर्म किया जाता है वह सभी फल से रहित हुआ करता है । ससार मे सभी कर्मों का अनुष्ठान इस मन के ही अधीन होता है और तीनों जगत् भी इस मन के ही अधीन हैं । अतएव मन को सुदृढ बना कर कमलापति प्रभु का पूजन करना चाहिए । हे द्विजोत्तम ! जिसका मन तो कही अन्य विषय मे लगा हो और हरि की पूजा बिना ही मन के ध्यान के की जावे तो सैकड़ो करोड कल्पो मे भी उसका कुछ भी नहीं होगा । यत्न पूर्वक शुद्धि करने वाला भी हो और विष्णु पूजा मे परायण भी रहे किन्तु मन की शुद्धि और एक निष्ठता से रहित हो तो वह एक चाण्डाल के ही समान कहा गया है । हे द्विज ! विधि के सहित और चिर-काल पर्यन्त भी भक्तिभाव के बिना जो तपश्चर्या की जाती है वह सब

कुछ करना निरर्थक ही होता है । उससे तो केवल अपनी काया का ही विशोधन हुआ करता है । मेरु के प्रमाण वाला स्वर्ण कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये दान में दिया जावे किन्तु वह बिना ही भक्ति की भावना से दिया गया हो तो वह दिया हुआ इतना बड़ा दान भी फल से शून्य ही हुआ करता है और उसके करने से अर्थ का ही विनाश होता है । इसी कारण से एक मन वाला होकर तथा श्रद्धा और भक्ति से युक्त होकर ही दान करना चाहिए जो कि पुण्य-फल के प्रदान करने वाला होवे ॥९-१४॥

सवास्तुकादिशाकम्वा दद्यात्सदसि मैण्णवे ।
नारङ्गस्य फलं दिव्यं सुपक्वं यस्तु यच्छति ॥१५
केशवाय द्विजश्रेष्ठ ! सोऽस्माभिरभिपूज्यते ।
यत्नेन नूतनं वस्तु प्रियं भगवतो हरेः ॥१६
तदेवाऽऽप्रयणेमासि भवत्या दद्यान्मुरारये ।
पौषे मासि समायाते श्रीकृष्णं वरदंप्रभुम् ॥१७
वैवमिक्षुरसैर्दिव्यैः स्नापयेद्वैष्णवो जनः ।
यः स्नापयति विप्रेन्द्र ! विष्णुमिक्षुरसैः प्रभुम् ॥१८
इह भुङ्क्ते सुखं सर्वं मृतो यातीक्षुसागरम् ।
यो दद्यादिक्षुनैवेद्यं देवदेवाय विष्णवे ॥१९
सोऽपि तत्फलमाप्नोतिकिमन्यैर्बहुभाषितैः ।
सुदुग्धपृथुकं पौषे दधिभिर्वा समन्वितम् ॥२०
दत्वा मुरारये मर्त्यः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ।
सर्वं पुरातनं वस्त्रं दूरीकृत्य मुरारये ॥२१
शीतस्य वारणार्थाय दद्याद्वस्त्रं च नूतनम् ।
पौषसंक्रमणे विप्र ! सलक्ष्मीकाय विष्णवे ॥२२

भक्ति और श्रद्धा से समन्वित होकर वास्तुक आदि शाक, सभा मे मैष्णव को देना चाहिए और जो कोई नारगी का भली-भाँति से पका हुआ दिव्य फल का दान किया करता है और केशव भगवान् के निमित्त जो समर्पित करता है वह हमारे द्वारा अभिपूजित किया जाता है । यत्न-पूर्वक नूतन ही वस्तु भगवान् की सेवा मे समर्पित करनी चाहिए क्योंकि

नवीन वस्तु ही भगवान् हरि को प्रिय हुआ करती है ।।१५-१६।। वह नवीन ही वस्तु मार्गशीर्ष मास मे मुरारि की सेवा मे भक्ति भाव से समर्पित करे । पौष मास के समागत होने पर वरदान प्रदान करने वाले प्रभु श्रीकृष्ण देव का वैष्णव भक्त को दिव्य ईख के रस से स्नपन कराना चाहिए । हे विप्रेन्द्र ! जो भी कोई भक्त प्रभु विष्णु का ईख के रसों से स्नान कराता है वह इस ससार मे सम्पूर्ण प्रकार के सुखों का उपभोग किया करता है और अन्त मे मृत्युगत होकर इक्षुओ के सागर में गमन किया करता है । जो ईख का नैवेद्य देवों के देव विष्णु भगवान् को अर्पित करता है वह भी वही फल प्राप्त किया करता है । इस विषय में विशेष भाषण करने से क्या लाभ है । पौष मास मे दुग्ध के सहित पृथुक अथवा दधि से समन्वित पृथुक भगवान् को समर्पित करके मनुष्य समस्त कामनाओ को प्राप्त कर लेता है । समस्त पुराने वस्त्रों को दूर अपसारित करके हे विप्र ! पौष मास की संक्रान्ति मे लक्ष्मी के सहित विष्णु भगवान् के लिये शीत के निवारण करने के लिये नवीन वस्त्र धारण कराने चाहिए ।।१७-२२।।

दद्यान्मुमुक्षुर्मनुजो दशवर्णं च पीठकम् ।
यस्तु शङ्खध्वनिं कुर्यात्सम्पूज्य कमलापतिम् ।।२३
तस्य पुण्यफलं वच्मि शृणु वत्स ! समाहितः ।
अगम्यागमनाद्यैश्च विमुक्तः सर्वपातकैः ।।२४
अन्ते विष्णुपुरं गत्वा विष्णुना सह मोदते ।
वैनतेयाङ्किता घण्टां यस्तु वादयते हरेः ।।२५
पूजाकाले द्विजश्रेष्ठ ! तस्यपुण्यं वदाम्यहम् ।
अभक्ष्यभक्षणाद्यैश्च विमुक्तः सर्वपातकैः ।।२६
प्रयाति मन्दिरं विष्णोरथमारुह्य शोभनम् ।
तत्र भुक्त्वाऽखिलान्कामान्कल्पकोटिशतावधि ।।२७
पुनरागत्य धरणी चतुर्वेदी द्विजोत्तमः ।
तत्र भुक्त्वाऽखिलान्कामान्कल्पकोटिशतावधि ।।२८

पुनर्विष्णुपुरं गत्वा मोक्ष प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
वीणा वादयते यस्तु पूजाकाले जगत्पते ॥२९

मुक्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्य को भगवान् की सेवा मे दश वर्ण पीठक अर्पित करनी चाहिए । जो कमला के स्वामी भगवान् की भली-भाँति पूजा करके फिर शङ्ख की ध्वनि किया करता है हे वत्स ! उस ध्वनि करने का जो पुण्यफल होता है उसे मैं बतलाता हूँ, तुम सावधान होकर उसका श्रवण करो शङ्ख ध्वनि करने वाला पुरुष गमन न करने के योग्य स्त्री का गमन आदि महापातको से विमुक्त हो जाता है और अन्त मे विष्णुपुर मे जाकर भगवान् विष्णु के साथ आनन्द का लाभ किया करता है । जो वैनतेय से अङ्कित घण्टा को हरि के समक्ष मे पूजा के समय मे वादन किया करता है उसका जो पुण्य होता है उसे हे द्विज-श्रेष्ठ ! मैं आपको बतलाता हूँ । घण्टा वादन करने वाला पुरुष अभक्ष्य पदार्थो के भक्षण करने आदि समस्त पातको से छुटकारा पाकर एक शोभा से सम्पन्न विमान पर समारोहण करके अन्त मे भगवान् विष्णु के मन्दिर मे गमन किया करता है और वहाँ पर सैकडो करोड कल्पो की अवधि तक सब कामनाओ का उपभोग करके फिर वह द्विजोत्तम चारो वेदो का ज्ञाता होकर धरणी पर जन्म ग्रहण किया करता है । यहाँ पर भी सैकडो करोड कल्पो की अवधि पर्यन्त सब कामनाओ का उपभोग करता है और पुन. विष्णुपुर मे गमन करके उत्तम मोक्ष की प्राप्ति किया करता है । जो जगत् पति भगवान् की पूजा के समय मे वीणा का वादन करता है उसका भी महान् पुण्य होता है ॥२३-२९॥

पण्डितानामग्रणी. स्यात्स मर्त्य.प्रतिजन्मनि ।
मृदङ्गवाद्यकृद्यस्तु पूजाया कैटभद्विषः ॥३०
तस्य प्रसन्नो भगवान्ददात्यभिमत फलम् ।
डमरु डिण्डम चैव झर्झरी मधुरी तथा ॥३१
पटह दुन्दुभि चैव काहल सिन्धुवारकम् ।
क्रास्य च करताल च वेणु वादयते तु य ॥३२

पूजाकाले महाविष्णोस्तस्य पुण्यं निशामय ।
स्तेयाद्यैः पातकैर्मुक्तो मन्दिरं याति चक्रिणः ॥३३
परमं ज्ञानमासाद्य तत्रैव परिमुच्यते ।
कलशब्दं च यः कुर्यात्पूजाकाले जगद्गुरोः ॥३४
मुखवाद्यं च विप्रेन्द्र ! तस्य पुण्यं मयोच्यते ।
कोटिकोटिकुलैर्युक्तः प्रयाति मन्दिरंहरेः ॥३५

वीणा का वादन करने वाला भक्त प्रत्येक जन्म मे पण्डितों में अग्रणी होकर रहा करता है । जो कैटभादि प्रभु की पूजा के समय मे मृदंग का वादन करता है उस पर भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हो जाते हैं और उसको जो भी कुछ अभीष्ट फल होता है उस सब को दे दिया करते हैं । जो कोई विष्णु की पूजा के समय मे डमरु–डिण्डिम–झर्झरी–मधुरी–पटह–दुन्दुभि–काहल–सिन्धु वारक–कांस्य–करताल और वेणु का वादन किया करता है उसके पुण्य-फल का भी श्रवण कर लो । उपर्युक्त वाद्यों के वादन करने वाला पुरुष स्तेय कर्म आदि सम्पूर्ण पातकों मे छुटकारा पाकर अन्त मे विष्णु भगवान् के मन्दिर मे गमन किया करता है ॥३०-३३॥ वहाँ पर वह परम ज्ञान की प्राप्ति करके वहीं पर मुक्ति पाने का लाभ लिया करता है । भगवान् जगद्गुरु की पूजा के समय मे जो कोई मधुर ध्वनि किया करता है और हे विप्रेन्द्र ! मुख के वाद्य को जो करता है अब मेरे द्वारा उसका पुण्य-फल बतलाया जाता है और वह यह है कि वह भक्त करोड़ो-करोड़ों कुलो से युक्त होकर अन्त मे श्रीहरि के मन्दिर मे प्रवेश प्राप्त किया करता है ॥३४-३५॥

॥ युगधर्म निरूपण एव पुराण माहात्म्य ॥

कलौयुगेमहाभाग ! समायातेसुदारुणे ।
भविष्यन्ति जनाः सर्वेकोदृशास्तद्वदस्व मे ॥१
आद्यंसत्ययुगं प्राहुस्तत्रविप्रादयोजनाः ।
नारायणार्चनपराः शोकव्याधिविवर्जिताः ॥२

सत्योक्तिभाषिणः सर्वेसदयादीर्घजीविनः ।
धनधान्यादिसम्पन्ना हिंसादम्भविवर्जिताः ।।३
परोपकरणाश्चैव सर्वशास्त्रविदस्तथा ।
एवंविधाः सत्ययुगेसर्वेलोका द्विजोत्तम ! ।।४
राजधर्मग्राहिणश्चभूपालाजनपालनाः ।
अहोसत्ययुगस्यास्तिकोव्याख्यातुं गुणं क्षमः ।।५
अधर्मोच्चारण यत्र जनाःकेऽपिनकुर्वते ।
त्रेतायुगेसमायाते धर्मः पादोनतांगतः ।।६
अल्पशोकान्वितालोकाःकेचित्केचिदधाश्रयाः ।
विष्णुध्यानरतालोकायज्ञदानपरायणाः ।।७

जैमिनि मुनि ने कहा—हे महाभाग ! इस अतिशय सुदारुण कलि-युग के आ जाने पर यह समस्त मानव किस प्रकार की मनोवृत्ति वाले हो जायँगे—इसका वर्णन आप कृपा करके हमारे समक्ष मे कीजिए इससे बड़ा कल्याण होगा ।।१।। श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास महर्षि ने कहा—सब से प्रथम युग तो सत्ययुग था । उसमे सभी विप्र आदि लोग भगवान् नारायण की सेवा मे परायण रहने वाले होते थे तथा इसका प्रभाव भी यह था कि शोक तथा समस्त व्याधियो से मुक्त रहा करते थे ।।२।। उस युग मे सभी पुरुष सत्य वचनों का ही भाषण किया करते थे और सब के हृदय मे दया पूर्ण रूप से विद्यमान रहती थी तथा सभी दीर्घ जीवन वाले हुआ करते थे । समस्त मानव धनधान्य आदि से सुसम्पन्न होते थे । किसी मे भी उस युग मे हिंसा तथा दम्भ के दूषित भाव लेश मात्र भी नहीं होते थे । सब के हृदय मे दूसरो की भलाई करने की भावना रहती थी तथा सभी लोग समस्त शास्त्रो का पूर्ण ज्ञान रखते थे । हे द्विजो-त्तम ! इसी प्रकार के सभी लोग सत्ययुग मे होते थे ।।३-४।। जो उस युग मे राजा लोग होते थे सभी राजा के धर्मों का निर्वाह करने वाले तथा प्रजाजनों के पालन करने वाले थे । ओ हो ! सत्ययुग की गुण-गरिमा की कौन व्याख्या करने मे समर्थ हो सकता है अर्थात् किसी मे भी इतनी क्षमता नही है कि सत्ययुग के गुणो का गौरव का वर्णन कर

सके। उस युग मे कोई भी मनुष्य अधर्म का कर्म करना तो दूर रहा, अधर्म का कोई उच्चारण भी नही किया करता था। इसके अनन्तर त्रेता-युग आता है। इसके आते ही धर्म जो सत्ययुग मे चारो पादो से संयुत था वह एक पाद से रहित हो गया था। लोगो मे थोड़ा सा शोक का भाव होता था और कुछ ऐसे भी लोग त्रेता युग में थे कि वे अघो के भी आश्रय हुआ करते थे। सभी लोग विष्णु भगवान् के ध्यान मे रति रखने वाले होते थे तथा यज्ञ करना और दान देना—इनमे भी परायण रहते थे ॥५-७॥

वर्णाश्रमाचाररताः सुखिनः स्वस्थचेतसः।
क्षेत्रभूमिकृतः शूद्राः सर्वे ब्राह्मणसेविनः ॥८
ब्राह्मणाश्चमहात्मानोवेदवेदाङ्गपारगाः।
प्रतिग्रहनिवृत्ताश्च सत्यसन्धाजितेन्द्रियाः ॥९
तपोव्रतरतानित्यं दातारो विष्णुसेविनः।
त्रेतायुगस्याऽवसानेद्वापरेयुगआगते ॥१०
द्विपादहीनोधर्मःस्यात्सुखदुःखान्वितानराः।
केचित्केचित्पापरताःकेचित्केचिच्चधर्मिणः ॥११
केचित्केचिद्गुणैर्हीनाःकेचित्केचिन्महागुणाः।
अत्यन्तदु खिनःकेचित्केचिच्चसुखिनस्तथा ॥१२
प्रतिग्रहे ब्राह्मणश्च कदाचित्कुरुतेस्पृहाम्।
भूभुजैर्धनलोभेनकदाचित्पीड्यते प्रजा ॥१३
विष्णुपूजापराविप्रा. शूद्राश्च द्विजसेविनः।
युगेयुगेयदाधर्मोययौपादोनतांद्विज [1] ॥१४

त्रेतायुग मे वर्णो और आश्रमो के जो भी शास्त्रो मे बताये हुए आचार हैं उनमे सब लोग रत रहते थे। सभी सुख एवं स्वस्थ चित्त वाले होते थे। क्षेत्रभूमि के करने वाले होते थे और सब शूद्र ब्राह्मणों की सेवा करने वाले थे ॥८॥ सभी ब्राह्मण महान् आत्मा वाले तथा वेदो के अंग शास्त्रो के पारगामी विद्वान् हुआ करते थे। ब्राह्मणों मे प्रतिग्रह लेने की प्रवृत्ति उस समय मे नहीं होती थी। सब ब्राह्मण सच्ची

प्रतिज्ञा करने वाले तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले थे ॥६॥ सब लोग तपस्या में व्रत में रत रहते थे। नित्य ही सब दान दिया करते थे तथा भगवान् विष्णु की सेवा करने वाले थे। त्रेतायुग जब समाप्त होता है तो फिर इसके पश्चात् द्वापर युग का समय आया करता है ॥६ १०॥ इस द्वापर युग में धर्म दो पादों से हीन रह जाता है और इस युग में मनुष्य सुख दुःख दोनों से ही समन्वित हुआ करते हैं। कुछ-कुछ ऐसे भी लोग द्वापर में होते हैं जो पाप कर्मों में रति रखा करते हैं। कुछ-कुछ ऐसे होते हैं जो धार्मिक वृत्ति रखा करते हैं ॥११॥ कुछ लोग गुणों से हीन होते हैं तथा कुछ ऐसे भी महापुरुष द्वापर युग में होते हैं जिनमें महान् से महान् गुण हुआ करते हैं। कुछ अत्यन्त दुःखों से परिपूर्ण होते हैं तो कुछ ऐसे भी इस युग में होते हैं जो परम सुख सौभाग्य से सम्पन्न हुआ करते हैं ॥१२॥ कोई कोई ब्राह्मण किसी समय में प्रतिग्रह लेने की इच्छा रखा करते थे। राजा लोगों के द्वारा धन के लोभ से किसी समय में प्रजाजनों का पीड़ित भी किया जाता था। ब्राह्मण लोग विष्णु भगवान् की पूजा में परायण रहा करते थे और शूद्र लोग द्विजों की सेवा किया करते थे। हे द्विज ! इसी प्रकार से एक-एक युग के बदलने पर धर्म भी एक-एक पाद से हीन होता चला गया था ॥१३-१४॥

तदा व्यासो विष्णुरूपोवेदमागचकारह ।
कलौयुगेचविप्रेन्द्र ! सर्वपापैकमन्दिरे ॥१५
एकपादोभवेद्धर्मः सवपापरताजना ।
ब्राह्मणा क्षत्रियावैश्या शूद्रा पापपरायणा ॥१६
अत्यन्तकामिन क्रूराभविष्यन्तिकलौयुगे ।
वेदनि दाकराश्चैव द्यूतचौर्यकरास्तथा ॥१७
विधवासङ्गलुब्धाश्चभविष्यन्तिकलौयुगे ।
वृत्यर्थं ब्राह्मणा केचिन्महाकपटधर्मिण ॥१८
सर्वे स्त्रैणा भविष्यन्ति मादकद्रव्यसेविन ।
सदा स्त्रीयोनिनिरता परद्रव्यहरन्ति च ॥१९

पराम्नलोलुपा नित्य तपोव्रतपराङ्मुखा ।
पाखण्डसङ्गबद्धाश्च भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२०
रक्ताम्बराभविष्यन्तिब्राह्मणा शूद्रधर्मिणः ।
यजोयास्यन्तिनिर्वृत्ताउत्तमाअतिनीचताम् ॥
नीचाश्च धनसम्पन्ना यास्यन्त्युच्चपद प्रति ॥२१

जब ऐसा क्रम धर्म का चलता आया तो उस समय में विष्णु के स्वरूप वाले कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास महर्षि ने वेदो के विभाग किये थे। हे विप्रेन्द्र ! समस्त पापो के घर इस घोर कलियुग मे धर्म का केवल एक ही पाद अवशिष्ट रह गया था क्योंकि सभी मनुष्य प्राय पाप कर्मो मे रत हो गये थे। चाहे कोई ब्राह्मण वर्ण वाला हो या क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र हो सभी वर्णों वाले पाप कर्मो मे ही परायण हो रहे थे ॥१५-१६॥ इस महान् दारुण कलियुग मे मनुष्य अत्यन्त कामी तथा क्रूर हृदय वाले, वेद शास्त्रो की निन्दा करने वाले, जूआ एव चोरी करने के स्वभाव वाले हो जायेंगे ॥१७॥ कलियुग मे विधवा नारियो के सग के लालची पुरुष होगे। वृत्ति के चलाने के लिये कुछ ब्राह्मण तो महान् कपट के धर्म वाले बन जायेंगे ॥१८॥ सभी मनुष्य स्त्रैण अर्थात् स्त्रियो के सग मे रति रखने वाले एव मादक मदिरा आदि पदार्थों के सेवन करने मे प्रवृत्त होगे। सर्वदा नारियो म ही रति रख कर पराये धन का अपहरण करने वाले होगे ॥१९॥ पराये अन्न के खाने मे बहुत लोलुपता रक्खेंगे तथा नित्य ही तपश्चर्या और धार्मिक व्रत आदि से विमुख होवे। पाखण्ड करने वालो क ही साथ मे बँधे हुए रहा करेगे। यह कलियुग का ऐसा ही सभी पर प्रभाव छा जायगा। शूद्रो जैसे व्यवहार करने वाले ब्राह्मण लाल वस्त्रों को धारण करके इस कलियुग म बहुत उत्तम जन भी अत्यन्त नीच कर्मों मे तत्पर रहते हुए निवृत्त हो जायेंगे। नीच लोग ही इस कलियुग मे धन से सुसम्पन्न होकर उच्च पद को प्राप्त करेंगे ॥२०-२१॥

प्रदास्यन्त्युपकारिभ्यो दानानि सकला जना ।
यत्नाद्दपिघनेप्यन्तितृपलाविप्रवर्त्तनम् ॥२२

मित्रस्नेहाद्वदिष्यन्ति कूटसाक्ष्यं कलौ जनाः ।
अधर्मवुद्धिलपना धर्मबुद्धिविलासिनः ॥२३
परोक्षनिन्दकाःक्रूराः सम्मुखेप्रियवादिनः ।
साध्वीवादंवदिष्यन्तिभर्तारं पुंश्चलीस्त्रियः ॥२४
परस्त्रीहिंसकाश्चैवगोत्रविक्रयिणोद्विजाः ।
कन्याविक्रयिणश्चैवभविष्यन्ति कलौयुगे ॥२५
स्त्रीजिता.पुरुषाःसर्वे स्त्रियोऽप्यत्यन्तचञ्चलाः ।
कलौयुगेभविष्यन्तिकलौमर्यादुराशयाः ॥२६
अल्पसस्यावसुमतीमेघाःस्वल्पोदकास्तथा ।
अकालवर्षिणश्चाऽपिभविष्यन्तिकलौयुगे ॥२७
कलौविड्भोजिनोगाव.स्वल्पक्षीराश्चजेमिने ।
घृतहीन च तत्क्षीरं भविष्यतिनसशयः ॥२८

जिनसे अपना कुछ उपकार होने की आशा होगी । इस युग मे सभी पुरुष यदि कुछ दान भी देने की प्रवृत्ति रखेंगे तो वह दान उन्ही को देंगे । शूद्र लोग यत्नपूर्वक विप्रो जैसा बरताव किया करेंगे ॥२२॥ कलियुग मे मनुष्य मित्रो के स्नेह से झूठी गवाही दिया करेंगे । सर्वदा अधर्म की वृद्धि से बातचीत करने वाले तथा धर्म बुद्धि का विलास करने वाले लोग हो जायेंगे ॥२३॥ परोक्ष मे आँखो के ओझल होने पर लोग परस्पर मे सभी एक दूसरे की निन्दा किया करेंगे अत्यन्त निर्दयी-क्रूर और मुख के सामने मीठी तथा प्यारी बातें बनाने वाले लोग हो जायेंगे । जो स्त्रियाँ अत्यन्त दूषित चरित्र वाली होगी वे अपने स्वामी के सम्मुख अत्यन्त साध्वी-सती स्त्रियो जैसा वाद किया करेंगी ॥२४॥ द्विज लोग पराई स्त्रियो के प्रेमी–हिंसक और गोत्र मे ही विक्रय कर्म करने वाले तथा कन्याओ का विक्रय करने वाले हो जायेंगे—यह इस कलियुग का दारुण प्रभाव है ॥२५॥ सभी पुरुष स्त्रियो के द्वारा जीत लिये जावेंगे अर्थात् स्त्रियो के ही वश मे रहने लगेंगे और स्त्रियाँ इस युग मे अत्यन्त चंचल स्वभाव धारी हो जायेंगी । यह इस कलियुग का प्रभाव ही ऐसा है इसमे सभी मनुष्यो के भाव एव विचार बुरे तथा दूषित हो जायेंगे

॥२६॥ इस भूमि मे भी उपज बहुत थोडी हुआ करेगी और मेघ भी बहुत ही कम जल बरसाने वाले होंगे। अकाल मे जब कि वर्षा का समय नही होगा उस काल मे वृष्टि हुआ करेगी जिससे लाभ के बदले मे हानि ही हुआ करेगी ॥२७॥ कलियुग मे गौऐं मल को खाने वाली हुआ करेंगी। हे जैमिने! इस युग में गौओ के नीचे बहुत ही कम दूध होगा और वह दूध भी ऐसा होगा जिसमे घृत का अभाव रहेगा—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥२८॥

आत्मस्तुतिपरा लोकाः परनिन्दापरायणाः।
भविष्यन्तिचखर्वाङ्गाबालाबह्वन्नभोजनाः ॥२९
पितृयज्ञं करिष्यन्ति दम्भार्थब्राह्मणाःकलौ।
सर्वेवचःस्नेहिनःस्युर्वित्कार्यंनसिध्यति ॥३०
नरान्धर्मपरान्दृष्ट्वा सर्वे चोपहसन्ति वै ॥३१
वर्धन्तेऽधर्मतो लोकास्तस्मात्पापरता जनाः।
दशद्वादशवर्षेच समूलोऽप्येति सक्षयम् ॥३२
जलस्येव भविष्यन्ति यथा वर्षासुवृद्धय।
ततोलोका भविष्यन्ति कलौगलितयौवनाः ॥३३
पञ्चमेवाऽपि पष्ठे वा वर्षे स्त्रीगर्भधारिणी।
बहुपत्याश्च पुरुषा भविष्यन्त्यतिदुःखिनः ॥३४
नेतुकामाश्चसर्वेऽपिदातुकामानकेऽपिच।
कलौम्लेच्छाभविष्यन्तिराजानःपापतत्पराः ॥३५
एकवर्णा भविष्यन्तिविपर्यायँकलौजना।
कलेःप्रथमस ध्यायाहरिनिन्दन्ति मानवाः ॥३६

कलि मे सभी लोग अपनी ही प्रशसा करने वाले होंगे और दूसरों की सर्वदा निन्दा किया करेगे। प्राय. बहुत ही छोटे आकार वाले तथा अधिक अन्न के खाने वाले बालरूपन से ही लोग हुआ करेंगे ॥२९॥ कलियुग मे ब्राह्मण लोग केवल दम्भ के लिये ही पितृयज्ञ किया करेंगे। सभी लोग केवल वचनो मे ही स्नेह प्रकट करने वाले होंगे और हृदय में उनके बिल्कुल भी स्नेह नही होगा और वचन का स्नेह भी तभी तक रहेगा

जब तक उनका कार्य्य नही बनता है काम निकल जाने पर वह भी नहीं रहेगा ॥३०॥ जो मनुष्य कभी कुछ धर्म्म के कार्य्यों में प्रवृत्त भी होगे तो साधारणतया सभी लोग उनका उपहास उड़ाया करेंगे ॥३१॥ अधर्म करने ही से लोगों की अभिवृद्धि होती दिखाई देगी । इसी लिए लोग पाप कर्मों मे रत रहने वाले हो जायेंगे । किन्तु जो धन अधर्म से अर्जित करेंगे वह दश वर्ष या बारह वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जाया करेगा किन्तु इस संक्षय को देखते हुए भी कभी कोई कुछ उपदेश ग्रहण नही करेगा ॥३२॥ वर्षा ऋतु में जल की भाँति वृद्धियाँ कुछ ही समय तक स्थिर रहने वाली हुआ करेंगी । इसके पश्चात् लोग कलियुग में गलित यौवन वाले हो जायगे अर्थात् यौवन अधिक समय तक कुछ भी प्रभाव नही रक्खेगा ॥३३॥ पाचवें अथवा छटवें वर्ष में ही स्त्री गर्भ धारण करने वाली हो जायगी । पुरुषों के अत्यन्त अधिक सन्तान होगी जिनके कारण वे अत्यन्त दुःखित हुआ करेंगे ॥३४॥ सभी लोग लेने की ही इच्छा रक्खेगे और देने की इच्छा कभी नही करेंगे । इस कलियुग में राजा लोग पाप कर्मों मे तत्पर होने वाले म्लेच्छ ही जायेंगे ॥३५॥ कलियुग में विषयों में लुप्त होकर एक ही वर्ण वाले हो जायगे अर्थात् कोई वर्ण भेद दिखलाई नही देगा । कलि की प्रथम सन्ध्या में ही मनुष्य भगवान् श्री हरि की निन्दा करने वाले हो जाया करते हैं ॥३६॥

कलेर्मध्ये न पश्यन्ति हरेर्नामानि केवलम् ।
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्यावृषलाश्चकलौयुगे ॥३७
एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वारएव च ।
यदायदा द्विजश्रेष्ठ ! हानिःसुकृतिनांभवेत् ॥३८
वृद्धिश्च पापिनां नृणां ज्ञेयावृद्धिस्तदा कलौ ।
यद्यप्ययंकलिर्घोरोमयाप्रोक्तोद्विजोत्तम ॥३९
तथाप्यस्ति महानस्यगुणो गुणवताम्वर ! ।
सत्ये द्वादशभिर्वर्षैर्भवेत्पुण्यस्य साधनम् ॥४०
तदर्धेन च त्रेतायां मासेन द्वापरे भवेत् ।
अहोरात्रेण वै विप्र ! भवेत्तच्चकलौयुगे ॥४१

तस्मात्कलियुगेनृणांदिनेनैवोत्तमागतिः ।
द्वादशाब्दैर्युगेऽन्यस्मिन्हरिमभ्यर्च्यंयत्फलम् ॥४२
तत्फलं लभते मर्त्यो हरिमुच्चार्य वै कलौ ।
हरेर्नामैकमप्यत्र कलौ वदति यो नरः ॥
कलिर्न बाधते तं च सत्यं सत्यं न संशयः ॥४३

जिस समय में इस कलियुग का मध्य काल होगा उसमे तो मनुष्य केवल हरि के नामों को भी नही देदेगे । इस कलियुग में ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सभी लोग एक ही वर्ण जैसे हो जांयगे क्योंकि चारो वर्णों के जो पृथक् २ धर्म-कर्म हैं उन्हें सभी छोडकर समान ही व्यवहार करने वाले हो जांयगे अतः कोई भी भेद न रहेगा । हे द्विजश्रेष्ठ ! जब-जब भी सुकृत करने वालों की हानियाँ होंगी तथा पापी मनुष्यों की वृद्धि होगी उसी समय में समझ लेना चाहिए कि कलि की वृद्धि हो जायगी या हो रही है । हे द्विजोत्तम ! यद्यपि मैंने इस कलियुग को अत्यन्त घोर बतलाया है तो भी हे गुण वालों में परम श्रेष्ठ ! इसका एक महान् गुण भी है । सत्युग मे बारह वर्षो मे धर्म का साधन सम्पन्न हुआ करता था । उससे आधे समय में त्रेता युग में पुण्य-धर्म का साधन सम्पन्न होता है । द्वापर मे एक मास में होता है । किन्तु हे विप्र ! इस कलियुग में केवल एक ही अहोरात्र मे पुण्य का साधन सम्पन्न हो जाया करता है ॥३७-४१॥ इसलिये इस कलियुग का चाहे वह कितना ही दारुण है, बड़ा भारी महत्व है कि मनुष्यों को इसमे एक ही दिन में उत्तम गति हो जाया करती है जो कि अन्य किसी भी युग में बारह वर्ष पर्यन्त श्री हरि की अभ्यर्चना करने पर फल प्राप्त होता है ॥४२॥ वही फल कलिकाल मे मानव श्री हरि के शुभ नाम का मुख से उच्चारण करके ही प्राप्त कर लिया करता है । जो मनुष्य इस कलियुग में केवल एक श्री हरि के नाम का ही उच्चारण किया करता है उसे कलियुग कोई भी बाधा नही पहुंचाता है—यह सत्य है और ध्रुव सत्य है—इसमें लेश मात्र भी संशय नही है ॥४३॥

मनः शुद्धिविहीनत्वात्समस्तं कर्म निष्फलम् ।
इतिपूर्वंत्वया प्रोक्तं मनोविस्मयदं मम ॥४४
कलौ सर्वे भविष्यन्ति मनःशुद्धिविवर्जिताः ।
तेषां यथा भवेत्कर्मसकलं ब्रूहि तद्गुरो ॥४५
यत्किंचित्कुरुते कर्म मर्त्यो धर्म कलौयुगे ।
तदर्पयेन्महाविष्णौ भक्तिभावसमन्वितः ॥४६
विष्णौ समर्पितं कर्म सर्वमेवाऽक्षयं भवेत् ॥४७
इतिते कथितं सर्वं वृत्तं ब्राह्मणसत्तम ! ।
यच्छ्रुत्वा भक्तिभावेन नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥४८

जैमिनि महर्षि ने कहा—जब तक मन की शुद्धि नहीं होती है तब तक सभी कर्म्म निष्फल होते हैं । कर्मों की सफलता प्राप्त करने के लिए मन का शुद्ध होना नितान्त आवश्यक होता है । मेरे मन को विस्मय प्रदान करने वाली यह बात पहिले ही आपने कही थी ॥४४॥ कलियुग में प्रायः सभी लोग मन की शुद्धि से रहित हुआ करते हैं । ऐसे मन की विशुद्धि से वर्जित पुरुषों का समस्त कर्म जैसा होता है वही इस समय में आप कृपा करके मुझसे कहिए ॥४५॥ श्री व्यास देव ने कहा—इस कलियुग में मनुष्य जो भी कर्म तथा क्रिया करता है वह सभी भगवान् महाविष्णु की सेवा में भक्ति की भावना से संयुक्त होकर समर्पित कर देवे ॥४६॥ भगवान् श्रीमहाविष्णु की सेवा में समर्पित किया हुआ सभी कर्म तथा धर्म कृत्य निश्चय ही अक्षय हो जाया करता है ॥४७॥ व्यासदेव ने कहा—हे ब्राह्मणों के समाज में परमश्रेष्ठ ! मैंने तुमको यह सभी वृत्त कह कर सुना दिया है । इस सम्पूर्ण वृत्त के श्रवण करने की भी बड़ी महिमा है, जो पुरुष भक्ति भाव से इसका श्रवण किया करता है वह इस संसार के जन्म-मरण के निरन्तर आवागमन से छुटकारा पाकर मोक्ष पद की प्राप्ति किया करता है ॥४८॥

एवंप्रबोधितस्तेन जैमिनिः परमात्मना ।
क्रियायोगरतोभूत्वा जगामपरमंपदम् ॥४९

इमंक्रियायोगसारंव्यासेनोक्तंमहात्मना ।
ये पठन्ति जनाभक्त्या शृण्वन्ति च मुमुक्षवः ॥५०
तेसर्वपातकैर्घोरैर्बहुजन्मार्जितैरपि ।
विमुक्ताः परमां मुक्तिं लभन्ते नाऽत्रसंशयः ॥५१
यद्यदिष्टं पठन्त्येतच्छृण्वन्ति च मुमुक्षवः ।
लभन्ते तत्तदेवाऽऽशुप्रसादात्कमलापतेः ॥५२
श्लोकार्धंश्लोकमेकंवाश्लोकपादमथापिवा ।
नरः पठित्वाश्रुत्वाच लभतेवाञ्छितंफलम् ॥५३
लिखित्वालेखयित्वावा यःशास्त्रमिदमर्चयेत् ।
सविष्णुपूजनस्यैव फलं प्राप्नोतिमानवः ॥५४
इदमतिशयगुह्यं निःसृतं व्यासवक्त्राद्
रुचिरतरपुराणं प्रीतिदं वैष्णवानाम् ॥५५
चिरममरवराद्यैर्वन्दिताङ्घ्रेर्मुरारेः
सकलभुवनभर्तुश्चक्रिणः प्रीतयेऽस्तु ॥५६

सूत जी ने कहा—परमात्मा के द्वारा इस प्रकार से प्रबोधन किया हुआ महर्षि जैमिनि फिर क्रिया योग में रत होकर परम पद को प्राप्त हो गये थे ॥४६॥ इस क्रिया योग के सार को महान् आत्मा वाले व्यासदेव ने वर्णन किया था। जो जन इसको पढ़ते हैं या इसका श्रवण किया करते हैं और मुक्ति के प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं वे बहुत से पूर्व जन्मों में अर्जित किये हुए भी महान् घोर पातकों से विमुक्त हो जाया करते हैं फिर वे सभी परम पुरुषार्थ जो मुक्ति है उसका लाभ अवश्य ही प्राप्त किया करते हैं—इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है ॥५०-५१॥ जो मोक्ष के इच्छुक पुरुष अपने हृदय में अपना अभीष्ट मनोरथ किया करते हैं वे सभी मनोरथ इसके पठन एवं श्रवण करने से पूर्ण हो जाया करते हैं। भगवान् कमला के स्वामी उन पर परम प्रसन्न हो जाते हैं। उन्हीं के प्रसाद से वे सम्पूर्ण कामनाएँ बहुत ही शीघ्र सफल हो जाया करती हैं ॥५२॥ यदि इस क्रिया योग सार का सम्पूर्ण भाग कोई पठन या श्रवण करने का सुअवसर

किसी भी कारण वश न पासके तो इसका एक श्लोक, या आधा ही श्लोक अथवा श्लोक का चौथा भाग भी पठन कर लेवे तो उसका भी महत्व होता है कि उसके सभी वाञ्छित फल प्राप्त हो जाया करते हैं ।।५३।। इसको स्वयं लिख कर या किसी योग्य विद्वान् से लिखवा कर जो इस शास्त्र की समर्चना नित्य किया करता है वह मानव निश्चय ही भगवान् विष्णु के पूजन करने का पूर्ण फल प्राप्त कर लिया करता है ।।५४।। यह विषय अत्यन्त ही गोपनीय है अर्थात् सर्व साधारण के सामने बताने के योग्य नहीं है किन्तु श्री महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास जी के मुख से किसी तरह से निकल गया है । यह पद्म सुन्दर पुराण है और वैष्णवजनों की प्रीति का प्रदान करने वाला है । यह देवो मे परम श्रेष्ठो के द्वारा चिर काल पर्यन्त वन्दनीय भगवान् श्री मुरारि के लिये प्रीति प्रदान करने वाला होवे जो सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले तथा इस सम्पूर्ण भुवन मण्डल के स्वामी हैं ।।५५-५६।।

।। श्री पद्मपुराण द्वितीय खण्ड समाप्त ।।
